॥ ॐ अर्हं ॥

ऋषि-संप्रदाय का इतिहास

लेखक :—

श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रमण संघ के प्रधान मंत्री
पं. रत्न मुनिश्री आनन्दऋषिजी म. के सुशिष्य
पं. मुनिश्री मोती ऋषिजी महाराज

प्रतियाँ १०००

मूल्य
३) तीन रुपया

वीर सं. २४८२
वि. सं. २०१३
सन् १९५६

प्रकाशकः—
मन्त्री
श्री रत्न जैन पुस्तकालय,
पाथर्डी (अहमदनगर)
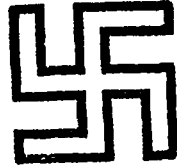
मुद्रकः—
श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस,
चौमुखीपुल, रतलाम

प्रकाशकीय निवेदन

प्रिय पाठकवृन्द ! विद्वद्वर, परम पूजनीय, गुरुदेव श्रीरत्न-ऋषिजी महाराज की स्मृति मे संस्थापित ' श्रीरत्न जैन पुस्तकालय" पाथर्डी में चलने वाली अनेक संस्थाओं मे से एक है।

विक्रम सं० १९८४ ज्येष्ठ कृ० ७ सोमवार के रोज हिंगनघाट शहर के समीपस्थ अल्लीपुर मे गुरुदेव का स्वर्गवास होने के पश्चात् उसी वर्ष पाथर्डी संघ द्वारा इस पुस्तकालय की स्थापना की गई थी। तदनंतर उन्हीं महापुरुष के सुयोग्य शिष्य, पं०रत्न, श्री-आनन्दऋषिजी म० के सदुपदेश और सत्प्रेरणा से क्रमशः उसका विकास हुआ। पुस्तकालय एक महत्त्वपूर्ण साहित्य भंडार है। जिसमें न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, साहित्य, धर्मशास्त्र आदि विविध विषयों के और संस्कृत, प्राकृत, हिंदी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओ में मुद्रित ग्रंथों का एवं सैकड़ों हस्त-लिखित ग्रंथों का संग्रह है; जिससे संतों को, सतियों को, अन्य जिज्ञासुओ को तथा पाथर्डी की अन्य संस्थाओं को लाभ पहुंच रहा है।

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आज इस पुस्तकालय को ऋषि संप्रदाय के इस महत्त्वपूर्ण इतिहास को प्रकाशित करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। महापुरुषो को पावनी जीवनी स्वतः मंगलमयी होती है। उसका अध्ययन अध्येता के जीवन को विशेष स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करता है। अतएव उसे सर्व साधारण

जनता के समक्ष प्रस्तुत करना, महान् पुण्य का कार्य है। फिर इस इतिहास का तो अन्यान्य दृष्टियों से भी विशेष महत्त्व है। यही कारण है कि चिरकाल से इस इतिहास के लेखन और प्रकाशन की प्रतीक्षा की जा रही थी। सौभाग्य से वह चिरसेवित मनोरथ अब सम्पन्न हो रहा है इसके लिये पं० रत्न बालब्रह्मचारी. श्रीवर्द्धमान स्था० जैन श्रमण संघ के प्रधानमंत्री गुरुदेव श्रीआनन्दऋषिजी म० सा० का जितना आभार माना जाय, थोड़ा है; जिनकी देख-रेख में इतिहासज्ञ, पंडित मुनिश्री मोतीऋषिजी म० सा० ने घोर परिश्रम उठाकर इस इतिहास का निर्माण किया है।

इस परमोपयोगी ग्रंथ को प्रकाशित करने का लाभ इस पुस्तकालय को मिला, यह हमारे लिये अत्यन्त गौरव और आनंद का विषय है। प्रस्तुत इतिहास मे सन्तों और सतियों का संक्षेप में परिचय दिया गया है। इसे पढ़ने से पता चलेगा कि हमारे संघ में कैसी-कैसी उज्ज्वल और महान् विभूतियाँ हुई हैं। हम उनसे कुछ प्रेरणा ग्रहण कर सकें तो हमारा बड़ा सौभाग्य होगा और इस इतिहास का प्रकाशन विशेष सार्थक होगा।

इतिहास के प्रकाशन में जिन उदारचित्त महानुभावों ने आर्थिक सहायता प्रदान करके हमारा भार हल्का किया है उनके प्रति हम कृतज्ञ हैं। उनकी शुभ नामावली पृथक् दी जा रही है। इनके अतिरिक्त जिन-जिन सज्जनों ने जो भी सहयोग दिया है उन सबको भी हमारा पुनः पुनः धन्यवाद है।

पाथर्डी
(अहमदनगर)

निवेदक
हीरालाल गांधी
अध्यक्ष-श्रीरत्न जैन पुस्तकालय

भूमिका

प्रिय सज्जनवृन्द ! क्रियोद्धारक महाप्राभाविक परमपूज्यश्री १००८ श्रीलवजी ऋषिजी म० से लेकर ऋषि सम्प्रदायी संत-सतियों का जीवनवृत्त इतिहास द्वारा आपके करकमलों मे प्राप्त हो रहा है, यह परम प्रमोद का विषय है। भूतपूर्व श्रीऋषि सम्प्रदायाधीश और वर्तमान में श्रीवर्द्धमान स्था० जैन श्रमण संघ के प्रधान-मन्त्रीजी, पं० रत्न गुरुदेव श्रीआनन्दऋषिजी म० की शुभ भावना थी कि महापुरुषो का जीवन-वृत्तांत इतिहास के रूप मे प्रसिद्ध हो। इस सम्बन्ध में समय-समय पर अनेक विद्वानो से सूचना भी मिलती रही परन्तु समयाभाव और कालपरिपक्व न होने से वह भावना सफल नहीं हो सकी।

"स्थानकवासी जैन, पत्र में सम्पादक पं० श्रीजीवनलाल संघवी द्वारा संवत् १९८८ के बोदबड़ चातुर्मास में इस विषय की प्रेरणा हुई थी कि पूज्यश्री धर्मसिंहजी म० तथा पूज्यश्री धर्मदासजी म० की सन्तानों ने अपने अपने पूर्वजों के जीवन-वृत्त प्रकाशित करवाये हैं, परन्तु पूज्यश्री लवजी ऋषिजी महाराज के उत्तराधिकारियों ने अभी तक अपने परमोपकारी पूर्वज महापुरुषो का कुछ भी जीवन प्रकाशित करने मे प्रयत्न नहीं किया, यह खेद का विषय है। उस पर से प्रधानमन्त्रीजी म० की भावना इतिहास लेखन के विषय में विशेष जागृत हुई। समीपस्थ महापुरुष जैसे

कविकुल-भूषण पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म०, परमोपकारी गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म०, उग्रतपस्वी श्रीकेवल ऋषिजी म०, शास्त्रोद्धारक पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म०, तपस्वीराज पूज्यश्री देवजी ऋषिजी म०. सती शिरोमणी शान्तमूर्ति श्रीरामकुंवरजी म० आदि के स्वतंत्र एवं संक्षिप्त जीवन चरित्र स्था० जैन समाज के सामने आये हैं, परन्तु श्रीऋषि सम्प्रदाय के मूलनायक और उनकी परम्परा के समस्त संत-सतियों का इतिहास अपने समाज के सामने नहीं आया, जो कि परम आवश्यक था।

सं० १९९७ अहमदनगर के चातुर्मास में विद्यावारिधि पं० श्रीराजधारी त्रिपाठी शास्त्री द्वारा पुनः ऋषि सम्प्रदायी इतिहास लेखन सम्बन्धी युवाचार्य पं० रत्नश्री आनन्द ऋषिजी म० की सेवा मे अर्जी की गई। यह कार्य महत्त्वपूर्ण होने से इसे करना विशेष आवश्यक है; अतः सम्प्रदाय के सन्त-सतियों से दीक्षा संवत, मिति, स्थान और जन्म स्थान, माता पितादि सम्बन्धो जानकारी के लिए पं० शुक्लजी द्वारा पत्र व्यवहार किया जाय; उस पर से पंडित शुक्लजी ने लिखित फार्म भेज के सन्त-सतियो से जानकारी प्राप्त की।

सं० २००५ में चिचोंड़ी शिराल (अहमदनगर) का चातुर्मास पूर्ण कर पूज्यश्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी म० ठाणे ४ ने मालव देश की तरफ विहार किया और अहमदनगर, घोड़नदी, सगमनेर, मनमाड़, मालेगांव, धुलिया, शीरपुर, सेंधवा आदि क्षेत्रों मे धर्म प्रचार करते हुए चैत्रवदि में धारा नगरी में पधारे; उस समय पं० त्रिपाठी शास्त्रीजी ने वहाँ उपस्थित होकर पूज्यश्री की सेवा में फिर से निवेदन किया कि स० २००६ के ब्यावर चातुर्मास में इतिहास कार्य को मैं सम्पूर्ण करूंगा, ऐसी शुभ भावना थी, किन्तु समय बलवान् है, मनुष्य चिंतन कुछ और करता है, और भावी भाव

कुछ और हो जाता है। यही समस्या पं० त्रिपाठीजी की हुई, जो शुभ भावना थी, वह उनके मन मे ही रह गई; और सं० २००६ मिती चैत्र शुक्ल १३ श्रीमहावीर जयन्ती के दिन आप अकस्मात् पाथर्डी (अहमदनगर) में इस लोक की यात्रा पूर्ण कर परलोक-वासी हुए। अस्तु।

संवत् २००६ ब्यावर चातुर्मास में पूज्यश्री ने श्रीधीरज भाई तुरखियाजी को भी ऋषि संप्रदायी इतिहास लेखन के बारे में सूचना की थी, परन्तु समयाभाव होने से कार्य नहीं हो सका। संवत् २००७ का चातुर्मास उदयपुर मे प्रधानाचार्य श्रीआनन्द ऋषिजी म० ठाणे ४, तथा जिनशासन प्राभाविका पंडिता प्रवर्तिनीजी श्रीरतनकुंवरजी म० ठाणे १० से हुआ था। इस चातुर्मास में ऋषि संप्रदायी संतों की नामावली संकलित करके वृक्ष का कच्चा ढाँचा तैयार किया गया। सं० २००८ का चातुर्मास भीलवाड़ा में किया। सं० २००९ के नाथद्वारा चातुर्मास में मुनि श्रीभानुऋषिजी म० ने संतो के नामों का वृक्ष तैयार किया, परन्तु उसमें कुछ नाम लिखने में रह गये थे, बदनोर चातुर्मास में दूसरे वृक्ष मे वे नाम दिए गये है।

संवत् २०१० में जोधपुर का संयुक्त चातुर्मास करके प्रधान मंत्रीजी महाराज का नाथद्वारा, उदयपुर, सेमल, सनवार, कपासन होते हुए प्रतापगढ़ शहर मे पधारना हुआ। प्र० स्थविरा महासतीजी श्रीहगामकुंवरजी म० से कुछ पुराने पन्ने और सतियों के विषय मे कुछ जानकारी मिली। वहाँ से विहार कर पीपलोदा मे वयोवृद्ध महासती श्रीगुलाबकुंवरजी म० द्वारा शास्त्र विशारद पं० मुनिश्री अमीऋषिजी म० के हस्तलिखित कुछ पन्ने और पुराने पन्ने भी प्राप्त हुए। वहाँ से आगे कालुखेड़ा में प्र० पं० श्रीरतनकुंवरजी म० तथा रतलाम में महासतीजी श्रीकेशरजी म० से कुछ पुराने पन्ने प्राप्त हुए।

प्रतापगढ़ भंडार से संवत् १८१० में लिखा हुआ पुराना पन्ना, तथा प्राचीन पट्टावलियाँ, सिखामण बोल का पुराना पन्ना, और उपरिलिखित महासतियों से लब्ध पुराने पन्ने एवं जानकारी मिलने से; इसी तरह (१) ऐतिहासिक नोंध (श्री० वा० मो० शाह) (२) पूज्यश्री अजरामरजी म० के जीवन चरित्र की प्रस्तावना (शतावधानी पं० रत्न श्रीरत्नचन्द्रजी म०) (३) पूज्य श्रीधर्मसिंहजी पूज्यश्री धर्मदासजी म० (छ कोटि आठ कोटी विषयक चर्चा) (४) श्रीमान् लौंकाशाह (श्रीज्ञान सुन्दरजी) (५)खंभात संघाड़े के पूज्यश्री छगनलालजी म० का जीवन चरित्र (६) श्री प्रभुवीर पट्टावली (पं०-मुनिश्री मणिलालजी म० (७) पूज्यश्री रघुनाथजी स्वामी (दरियापुरी संम्प्रदाय) (८) बोटाद सम्प्रदाय की पट्टावली, और (९) आचार्य सम्राट् अमरसूरि काव्य (मन्त्रीश्री पुष्कर मुनिजी) ये ग्रन्थ प्राप्त होने से सं० २०११ के बड़ीसादड़ी चातुर्मास में इतिहास लेखन प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् मसूदा मे विराजित पं० रत्न, वयोवृद्ध, मन्त्री मुनिश्री पन्नालालजी म० के सौजन्य से पद्यमय पट्टावली, और दूसरी २ पट्टावलियाँ, इसी तरह पं० रत्न सहमन्त्रीजी श्रीहस्तीमलजी म० की सुजनता से श्रीविस्तृत पट्टावली, श्रीलूंका पट्टावली सं० १८८९ में लिखित पत्र की नकल, और एक पट्टावली तथा कवि मुनि श्रीरूपचंदजी म० के द्वारा सं० १७०४ का लिखित जीर्ण पत्र प्राप्त होने से इतिहास लिखने मे विशेष सहयोग मिला और सं० २०१२ के बदनोर (मेवाड़) मे मैंने यथाबुद्धि सन्त सतियों का इतिहास संकलित किया और श्रीगुरुदेव की महती कृपा से यह महान् कार्य पूर्ण हुआ।

इतिहास लेखन का कार्य ही ऐसा है कि जैसे जैसे शोधक अन्वेषण करता है, वैसे २ उसमें लेखक को सफलता मिलती जाती है, ऐसा अनुभवी लोगों का अनुभव है। करीब तीन सौ पच्चीस वर्षों से पूर्व का इतिहास होने से इसमे त्रुटियाँ रहना सम्भव है,

अतः इतिहासज्ञ पाठक त्रुटियों का संशोधन सूचित करने की कृपा करेंगे तो भविष्य में इस ग्रंथ की पुनरावृत्ति में सुधार हो सकेगा।

इतिहास लेखन मे संतों के नामों के आगे योग्यतानुसार पंडित, तपस्वी, सुव्याख्यानी, युवाचार्य, आचार्य, प्रधानाचार्य, प्रधानमन्त्री, इत्यादि, तथा महासतियों के लिये पंडिता, विदुषी, तपस्विनी, मधुर व्याख्यानी, प्रवर्तिनी, स्थविरा आदि पदवियों के विशेषणों से अलंकृत किये गये हैं, वे पदवियाँ तत्तत्समय में विद्यमान होने की अपेक्षा से उनका उल्लेख किया गया है, ऐसा पाठकगण समझें।

अपने जैन समाज के सिद्ध हस्त लेखक, और सुविख्यात पंडित श्रीशोभाचंद्रजी भारिल्ल ने श्रीकुन्दन जैन सिद्धान्तशाला ब्यावर का अध्यापन कार्य और अन्य लेखन कार्य की जवाबदारी होते हुए भी समय निकाल कर अत्यन्त हार्दिक भावों से भाषा का संशोधन करके इतिहास कार्य मे विशेष सहयोग दिया है, उसे मैं भूल नहीं सकता। भविष्य मे भी पंडितजी की समाज सेवा का लाभ मिलता रहे ऐसी शुभ कामना मैं करता हूँ।

लेखक—
श्रीगुरु चरण कमल सेवी
मुनि-मोतीऋषि

श्री ऋषि-सम्प्रदायी इतिहास प्रकाशन में
आश्रयदाताओं की
शुभ नामावली

२२१) श्रीमान् तिलोकचंदजी खूबचंदजी गुंदेचा चांदा (अहमदनगर)
२०१) ,, मोतीलालजी हीराचन्दजी चोरड़िया (बोरी वाले)
नारायणगांव (पूना)
१५१) श्रीमती तानीबाई भ्र० रतनचन्दजी चोरड़िया वर्धा (सी. पो)
१५१) श्रीमान् माणकचन्दजी पूनमचन्दजी चोरड़िया हिंगणघाट
१०२) ,, सूरजमलजी दौलतरामजी दरड़ा जोधपुर (राज०)
१०१) श्रीमती पतंगाबाई भ्र० वींजराजजी संकलेचा
वणीगणेशपुरा (बरार)
१०१) ,, तुलसाबाई कोचर हिंगणघाट (वर्धा)
१०१) श्रीमान् फूलचन्दजी ताराचन्दजी बरड़िया शेलवड़ (खान०)
१०१) ,, बालारामजी फकीरचन्दजी गुगले
चिंचोड़ी (सिराल) (नगर)
१०१) ,, केशरचंदजी कचरदासजी बोरा आष्टी (अहमदनगर)
१०१) ,, नारायणदासजी गोपालदासजी छाजेड़
आम्बा चकला (बीड़)
१०१) ,, गोविंदरामजी चुनीलालजी जैन (बोदवड़ वाले)
मलकापुर (पू० खानदेश)
१००) ,, उदेराजजी हरकचन्दजी रेदासणी बीबी (बुलडाणा)

१००) वैराग्यवती श्री सिरेकुंवरबाई — रायपुर (म० प्र०)
५१) श्रीमान् उत्तमचंदजी कचरदासजी भटेवरा राहु (पूना)
५१) ,, माणकचन्दजी भीवराजजी ,, राहु (पूना)
५१) ,, छोगालालजी मुलतानमलजी डागा धारवाड़
५१) ,, रूपचदजी मोतीलालजी गुन्देचा, चांदा (अहमदनगर)
५१) ,, बन्सीलालजी कपूरचन्दजी भटेवरा ,, राहु (पूना)
५०) ,, मानमलजी रतनप्रकाशजी बलदोटा खड़की (पूना)
४१) ,, भागचन्दजी खुशालचन्दजी गांधी आश्वी (नगर)
४१) ,, जेठमलजी मारुतीलालजी कटारिया खरवंडी (नगर)
४१) ,, जेठमलजी घोड़ीरामजी ,, खरवंडो (नगर)
३५) श्रीमती गीगीबाई ध्र० लालचन्दजी फिरोदिया अहमदनगर
३१) ,, राधाबाई ध्र० रामचदजी गाँधी रस्तापुर (नगर)
२५) श्रीमान् कनकमलजी चुनीलालजी गाँधी- चांदा ,, (नगर)
२५) ,, नथमलजी किशनलालजी कोठारी रांजणी (खानदेश)
२५) ,, भीवराजजी माणकचंदजी कर्णावट, शिरसमार्ग (नगर)
२१) श्रीमती रूपाबाई ध्र० भुंवरलालजी कटारिया चांदा (नगर)
२१) श्रीमान् गम्भीरमलजी माणकचदजी चोरड़ीया, बोरी (पूना)
२१) ,, पूनमचंदजी गोकुलदासजी गांधी करजी (नगर)
२१) ,, तिलोकचंदजी भगवानदासजी गुगले ,, (नगर)
२१) ,, विरदीचंदजी अनराजजी मुणोत अमरावती (बरार)
१५) ,, जवानमलजी चुनीलालजी मुथा, मीरी (नगर)
१५) ,, राजमलजी वशीलालजी कटारिया महोज (नगर)
११) ,, भुम्बरलालजी हस्तीमलजी कटारिया ,, ,,
११) ,, फूलचंदजी जोगीदासजी संचेती टाकलीभान (नगर)
११) ,, बिरदीचन्दजी धनराजजी कटारिया, बाम्बोरी (नगर)
११) ,, भीकमचन्दजी मोतीलालजी कोटेचा नांदूर (बीड़)
११) ,, मोतीलालजी मदनलालजी बड़ेरा मोमीनाबाद (नि.)

११) ,, बंसीलालजी कांतीलालजी कटारिया पाटोदा (बोड़)
११) ,, रूपचन्दजी हीरालालजी बडेरा मोमीनाबाद (निजा.)
११) ,, दलीचंदजी भूंवरलालजी कटारिया पाटोदा (बीड़)
११) ,, सागरमलजी पोखरचन्दजी माका (नगर)
११) श्रीमती लछीबाई ध्र० पूनमचन्दजी गांधी करंजी (नगर)
११) श्रीमान् दगडूरामजी भूंवरलालजी गुगले
चिंचोड़ी (सिराल) (नगर)
११) ,, सूरजमलजी शांतिलालजी छाजेड़ खलेगांव (बीड़)
११) ,, किसनदासजी पन्नालालजी मेहेर मोरी (नगर)
११) ,, चुन्नीलालजी रतनचन्दजी भंडारी आश्वी (ननर)
११) श्रीमती चांदाबाई ध्र० ताराचन्दजी गांधी श्रीगोंदा (नगर)
११) ,, हीराबाई ध्र० उत्तमचन्दजी मुणोत घोटन (नगर)
११) श्रीमान् चोथमलजी हीरालालजी कटारिया शिरुर (नगर)
११) ,, जेठमलजी नेमीचांदजी कटारिया खरबंडी कासार(न.)
११) ,, धनराजजी मोतीलालजी सिंगी पूना
११) ,, रतनचन्दजी स्वरूपचन्दजी मुणोत बाम्बोरी (नगर)
११) ,, शांतिलाल, वसन्तलाल, रमणलाल भटेवरा
राहु (पूना)
११) ,, मदनलाल, रसिकलाल, अशोकलाल भटेवरा
राहु (पूना)
११) ,, रमेशाचन्द्र बच्चूलाल भटेवरा राहु (पूना)
११) ,, बन्सीलालजी ईश्वरलाल भटेवरा राहु (पूना)
११) ,, नैनसुखजी स्वार्थीलाल भटेवरा राहु (पूना)
११) ,, मिश्रीलालजी चौधरी बदनौर (मेवाड़)
११) ,, पूनमचन्दजी रांका नागपुर (सी. पी.)
११) ,, फूलचन्दजी गोठी बैतूल (सी. पी.)
११) श्रीमती कस्तूराबाई सियाल चांदूर बजार (बरार)

११) श्रीमान् हीरालालजी मगनलालजी गांधी मीरी (नगर)
ह. चम्पालालजी गांधी
११) ,, अमरचन्दजी पारसमलजी संकलेचा भीलवाड़ा (राज.)
११) ,, दलीचन्दजी नाथाजी चोपड़ा रतलाम
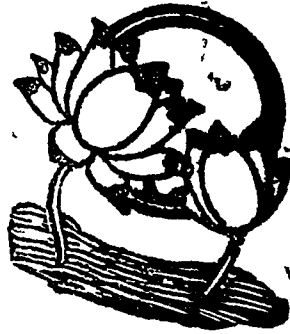
ऋषि-सम्प्रदाय का इतिहास

पूर्व-पीठिका
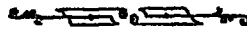
निष्पक्ष और उदार भावना से जैनधर्म और इतर धर्मों के स्वरूप के महत्त्वपूर्ण अन्तर को समझ लिया जाय तो जैनधर्म की अनादिता को समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। जैनधर्म कोई पंथ या मत नहीं है और न वह इतर धर्मों की भांति किसी व्यक्ति या पुस्तक पर निर्भर है। वेदधर्म के अनुयायी मानते हैं—'नोदनालक्षणो धर्मः।' अर्थात् वेद नामक पुस्तकों से प्राप्त होने वाली प्रेरणा ही धर्म है। यह वैदिक धर्म है। इस व्याख्या से स्पष्ट है कि वैदिक धर्म वेद के अस्तित्व पर जीवित है। जब वेद नहीं थे तो वैदिक धर्म भी नहीं था। वेद के बाद इस धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार बौद्ध धर्म का महात्मा गौतमबुद्ध से प्रादुर्भाव हुआ है। उनसे पहले बौद्धधर्म के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं है।

परन्तु जैनधर्म पर न किसी पुस्तक के नाम की छाप है और न किसी व्यक्ति के नाम की। जैनधर्म की व्याख्या भी निराली है। 'वत्थुसहावो धम्मो' अर्थात् वस्तु का स्वरूप धर्म है, यह जैनों की धर्मव्याख्या है। इस व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि वस्तु का स्वभाव अनादि है, अतएव जैनधर्म भी अनादि है।

धर्म मे सदाचार की प्रधानता स्वीकार करके अहिंसा, संयम और तप को भी धर्म माना गया है। किन्तु धर्म का यह त्रिपुटी स्वरूप भी अनादि-अनन्त है। अहिंसा, संयम और तप के बिना मानव-जाति के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विभिन्न देशो और कालो मे अहिंसा आदि का रूप विभिन्न हो सकता है, किन्तु किसी न किसी रूप मे उनकी सत्ता रहेगी ही। और जितने अंशो मे जहाँ अहिंसा आदि है, वहाँ उतने अंशो मे जैनधर्म का सद्भाव है। ऐसी स्थिति मे निष्पक्ष वैदिक धर्मी विद्वान् डॉ. सतीशचन्द्र विद्याभूषण, सिद्धान्तमहोदधि, एम ए. पी-एच. डी. अगर कहते हैं कि—'जैनमत तब से प्रचलित हुआ है, जब से संसार मे सृष्टि का आरंभ हुआ है' तो वह यथार्थ ही है।

इस अनादिकालीन धर्म का उपदेश करने वाले सर्वज्ञ-सर्वदर्शी महापुरुष युग-युग मे होते रहते हैं। जैन उन्हे 'तीर्थंकर' अथवा 'जिन' की उपाधि से संबोधित करते है। इस युग में भगवान् ऋषभदेव आद्य तीर्थंकर हुए। श्रीवरदाकान्त मुखोपाध्याय एम. ए. के शब्दो मे कहा जा सकता है—'पार्श्वनाथजी जैनधर्म के आदि प्रचारक नहीं थे, परन्तु इसका प्रचार ऋषभदेवजी ने किया था, इसकी पुष्टि के प्रमाणो का अभाव नहीं है।' लोकमान्य तिलक ने यही बात अधिक स्पष्ट शब्दो में कही है—'महावीर स्वामी जैनधर्म को पुनः प्रकाश मे लाये। इस बात को आज २४०० वर्ष हो चुके

है। बौद्ध धर्म की स्थापना के पहले जैनधर्म फैल रहा था, यह बात विश्वास करने योग्य है। चौवीस तीर्थंकरो मे महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थङ्कर थे। इससे भी जैनधर्म की प्राचीनता जानी जाती है।

यहाँ हम विस्तार में नहीं जाना चाहते। हमारा अभिप्राय सिर्फ यह दिखला देने का है कि जैनधर्म ने धर्म का जो व्यापक स्वरूप स्वीकार किया है, उससे उसकी अनादिता पर स्पष्ट ही प्रकाश पड़ता है और यह बात न केवल जैन विद्वान् ही, बल्कि जैनेतर निष्पक्ष विद्वान् भी स्वीकार करते है।

इस अवसर्पिणी युग मे श्रीऋषभदेवजी आद्य तीर्थङ्कर हुए। वैदिक धर्म के ऋषियो ने अपने धर्म को व्यापक रूप प्रदान करने के लिए बौद्ध धर्म के संस्थापक बुद्ध को अपने चौवीस अवतारों में सम्मिलित किया और जैनधर्म के आद्य प्रचारक ऋषभदेवजी को भी अवतारो मे परिगणित किया। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिस युग मे चौवीस अवतारों की कल्पना की गई, उस युग के वैदिक आचार्य, भगवान् ऋषभदेव को ही जैनधर्म के आद्य उपदेशक मानते थे। इसी कारण ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद मे अनेक स्थानों पर भगवान् ऋषभदेव की स्तुतियाँ पाई जाती है। यही नहीं, वेदो मे बाईसवे तीर्थङ्कर श्री अरिष्टनेमि के नाम का भी उल्लेख है। इससे यह निश्चित हो जाता है कि वेदो से पहले बाईस तीर्थङ्कर हो चुके थे।

तात्पर्य यह है कि जैसे आकाश और काल अनादि हैं, उसी प्रकार जैनधर्म भी अनादि है। उसके उत्पत्तिकाल की कल्पना करना सम्भव नहीं है।

चौवीस तीर्थंकरों में भगवान् महावीर चरम तीर्थंकर थे। अब से २४८१ वर्ष पूर्व भगवान् का निर्वाण हुआ। उस समय भगवान् के ग्यारह गणधरों मे से नौ गणधर निर्वाण प्राप्त कर चुके थे; सिर्फ श्री इन्द्रभूति गौतम और श्रीसुधर्मा स्वामी जीवित थे। भगवान् का निर्वाण होते ही गौतम स्वामी को कैवल्य प्राप्त हो चुका था अतएव श्रीसुधर्मा स्वामी भगवान् के पाट पर आरूढ़ हुए, अर्थात् वे श्रमणसंघ के नायक हुए। महावीर–निर्वाण के पश्चात् की जो पट्टावली उपलब्ध है, वह इस प्रकार है:—

(१) श्री सुधर्मा स्वामी
(२) ,, जम्बू स्वामी
(३) ,, प्रभव स्वामी
(४) ,, शय्यंभव स्वामी
(५) ,, यशोभद्र स्वामी
(६) ,, संभूतिविजयजी
(७) ,, भद्रबाहु स्वामी
(८) ,, स्थूलभद्र स्वामी
(९) ,, महागिरिजी
(१०) ,, आर्य सुहस्ती
(११) ,, वलिस्सह स्वामी
(१२) ,, स्वाति स्वामी
(१३) ,, श्यामार्य स्वामी
(१४) ,, सांडिल्य स्वामी
(१५) श्री समुद्र स्वामी
(१६) ,, मंगु स्वामी
(१७) ,, नंदिल स्वामी
(१८) ,, नागहस्ती स्वामी
(१९) ,, रेवती स्वामी
(२०) ,, ब्रह्मद्वीपिकसिंह स्वामी
(२१) ,, स्कंदिलाचार्य स्वामी
(२२) ,, हिमवन्त स्वामी
(२३) ,, नागार्जुन स्वामी
(२४) ,, भूतदिन्न स्वामी
(२५) ,, लोहित स्वामी
(२६) ,, दूष्यगणि स्वामी
(२७) ,, देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण

वीर निर्वाण सं. ९८० तक श्री नंदीसूत्र में उल्लिखित सत्ताईस पट्टधर आचार्य हुए। इस पट्टावली में भी पट्टधर आचार्यों के विषय में कुछ मतभेद हैं। इनके ब्यौरे में हम उतरना नहीं चाहते।

वीर निर्वाण संवत् ६८० के पश्चात् भी अनेक गच्छ स्थापित हुए। अतएव उनकी आचार्य-परम्परा भी अनेक प्रकार की हो गई है। इन आचार्यों मे अनेक प्रचण्ड दार्शनिक, सिद्धान्तवेत्ता, प्रभावक और विविध विषयो के वेत्ता विद्वान् आचार्य हुए है, जिन्होंने अपनी कृतियो से जैनसाहित्य की समृद्धि मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि की है।

भगवान् महावोर का निर्वाण हुए करीब एक हजार वर्ष व्यतीत हो चुके थे। भगवान् के शासन में काल के प्रभाव से अनेक प्रकार के परिवर्त्तन हुए। भगवान् का तत्त्वज्ञान इतनी ठोस भूमिका पर आधारित था कि उसे लेकर जैनसंघ में कोई उल्लेखनीय मतभेद उत्पन्न न हुआ, जैसा कि वैदिक धर्म और बौद्धधर्म मे हुआ। किन्तु क्रियाकाण्ड के आधार पर अनेक गच्छ बन गये थे। धीरे-धीरे शिथिलता फैलती गई और भगवान् के द्वारा प्रदर्शित संयममार्ग अनेक प्रकार की विकृतियो से परिपूर्ण हो गया। साधु प्रायः चैत्यवासो बन गये थे। चैत्यवाद अपनी पराकाष्ठा पर जा पहुँचा था। साधु समुदाय मठों की तरह उपाश्रय बना कर रहने लगा। पालकी आदि पर आरूढ़ होने लगा और आरम्भ परिग्रह का सेवन करने लगा। मूर्त्तिपूजा ही एक मात्र धर्म का अंग बन गया। भगवान् का उपदेश सर्वथा विस्मृत कर दिया गया।

ऐसे समय में एक महान् क्रान्तिकारी पुरुषपुंगव का जन्म हुआ। वह श्रीमान् लौंकाशाह के नाम से विख्यात हैं। श्री लौंकाशाह सिरोही राज्य के अरहटवाड़ा नामक ग्राम के निवासी श्री हेमा भाई के सुपुत्र थे। आपकी माता का नाम गंगाबाई था। वि० सं० १४८२ की कार्त्तिकी-पूर्णिमा के दिन आपने जन्म ग्रहण

किया*। पन्द्रह वर्ष की उम्र में आपका विवाह हुआ और तीन वर्ष बाद आपको पुत्र की प्राप्ति हुई।

श्री लौंकाशाह धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न असाधारण पुरुष थे। आपकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल थी और हस्ताक्षर बहुत सुन्दर थे। अरहटवाड़ा छोड़ कर आप अहमदाबाद में रहने लगे थे। राजदरबार मे आपको बड़ी प्रतिष्ठा थी और आप 'महताजी' कहलाते थे। बाल्यकाल से ही धार्मिक अभिरुचि होने से आपने धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया था। बाद में मूल आगमो के भी अध्ययन का योग मिल गया। इससे आपके ज्ञान का अच्छा विकास हो गया और वह अत्यन्त विशद हो गया। उस समय का यतिवर्ग आत्मसाधना के पथ से पतित हो चुका था। श्रीपूज्य लोग छड़ी, चामर और छत्र आदि के साथ पालकी आदि पर आरूढ़ होकर शाही ठाठ मे रहने लगे थे। पूजा करवाते थे और पैसा भी लेते थे। ज्योतिष और वैद्यक का आश्रय लेकर आजीविका करते थे। राजदरबार मे बैठते थे।

श्री लौंकाशाह ने विशेष रूप से शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था। वे शास्त्रो की गहराई में उतरे थे। उन्हे सुस्पष्ट प्रतिभासित होने लगा कि आगमोक्त साधु-आचार और प्रचलित यति-आचार मे कोई समानता ही नहीं है। धरती और आकाश जितना अन्तर है। यह देखकर उनकी सरल आत्मा दया से द्रवित हो उठी। हृदय मे एक नूतन संकल्प जाग उठा। उन्होंने निर्भयतापूर्वक शास्त्रोक्त आचार का प्रतिपादन करना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी।

*श्री मणिलालजी म. की मान्यतानुसार सं. १४७२ में जन्म हुआ।

इस समय श्रीमान् लौंकाशाहजी गृहस्थ अवस्था मे रहते हुए भी पूरी तरह शासन की प्रभावना में तल्लीन हो गये थे। आपके एक अनुयायी और भक्त सज्जन ने आपको दीक्षा लेने का सुझाव दिया था। परन्तु आपने कहा कि मेरी वृद्धावस्था है। इसके अतिरिक्त गृहस्थावस्था मे रह कर मै शासन-प्रभावना का कार्य अधिक स्वतंत्रता के साथ कर सकूँगा। फलतः आप दीक्षित नहीं हुए, मगर जोरशोर से संयममार्ग का प्रचार करने लगे।

यतियो की ओर से आपके विरुद्ध अनेक षड्यंत्र रचे गये और अनेकानेक विघ्न उपस्थित किये गये, परन्तु आपने अपने दृढ़ संकल्प और पवित्र आत्मबल से उन सब पर विजय प्राप्त की। आपके सदुपदेश से प्रेरित होकर एक साथ ४५ मुमुक्षु जनो ने साधु--दीक्षा अंगोकार करने की भावना व्यक्त की। उस समय श्रीज्ञानऋषिजी म. आपके परिचय मे आये थे और अन्य साधुओ की अपेक्षा आचार--विचार से अच्छे थे। अतः आपने उन ४५ मुमुक्षुओ को उनके पास ही दीक्षा लेने का परामर्श दिया। उन्होने तदनुसार ही सं. १५३१ मे दीक्षा ली। बाद मे इन ४५ महात्माओं ने अपने उपकारक महापुरुप के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने के उद्देश्य से अपने गच्छ का नाम 'लौंकागच्छ' रक्खा। वि. सं. १५४१ मे धर्मप्राण लौंकाशाह स्वर्गवासी हो गये।

किसी-किसी के मतानुसार धर्मप्राण लौंकाशाहजी ने वि. सं. १५०९ मे पाटन मे यति श्री सुमतिविजयजी से दीक्षा ली थी और आपका दीक्षानाम श्री लक्ष्मीविजयजी रक्खा गया था। बाद में उन्होंने साधुदीक्षा स्वयं ग्रहण की थी।

इन दोनो कथनों मे सत्य क्या है, यह अब भी अन्वेपण का विषय है। इस संबंध मे कुछ भी निर्णय करने से पहले इस प्रश्न

को सन्तोषजनक रूप मे हल करना होगा कि अगर धर्मप्राण दीक्षित हुए थे और उनका नाम भी परिवर्त्तित हो चुका था तो फिर उनके गृहस्थावस्था के नाम से ही गच्छ की स्थापना क्यों की गई? इतिहास मे ऐसा कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता।

४५ महापुरुषो से आरंभ हुआ लौंकागच्छ दिनोदिन प्रगति करता गया। शुद्धाचार-विचार विषयक प्रबल वल के प्रभाव से उनके अनुयायी श्रावक-श्राविकाओ की ही संख्या नहीं बढ़ी, बल्कि साधुओं की संख्या में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुइ। करीब ७०--७५ वर्ष के अल्पकाल मे ही साधुओ की संख्या ११०० तक जा पहुँची।

मगर 'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण' अर्थात् गाड़ी के पहिये के समान संसार मे सब की अवस्था का परिवर्त्तन होता रहता है; इस कथन के अनुसार सत्तरहवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक लौंकागच्छ की प्रगति जारी रही। तत्पश्चात् जितने वेग से उसका विकास हुआ था, दुर्भाग्य से उतने ही वेग के साथ चारित्र की शिथिलता के कारण ह्रास आरंभ हो गया। आपस की फूट ने उस ह्रास को और अधिक सहायता पहुँचाई।

लौंकागच्छ के प्रथम पट्टधर श्री भाणजीऋषिजी म. दूसरे श्री रूपऋषिजी म. और तीसरे श्री जीवाजीऋषिजी म. थे। श्री जीवाजीऋषिजी के तीन प्रधान शिष्य थे—श्री कुँवरऋषिजी म., श्री वृद्ध वरसिंहजी म. और श्री श्रीमलजी म.। श्री जीवाजीऋषिजी म. के स्वर्गवास के पश्चात् गच्छ के भी तीन टुकड़े हो गये:—(१) गुजराती लौंकागच्छ (२) नागौरी लौंकागच्छ और (३) उत्तरार्ध लौंकागच्छ।

श्री वृद्ध वरसिंहजी म. के पाट पर श्री लघु वरसिंहजी म. और उनके पाट पर श्री जसवन्तऋषिजी म. आसीन हुए। इन्हीं

श्री जसवन्तऋषिजी के समय में श्री बजरंगऋषिजी हुए, जो आगमों के अच्छे ज्ञाता थे। आद्य क्रियोद्धारक पूज्य श्री लवजीऋषिजी म. ने इन्हीं के समीप यतिदीक्षा ग्रहण की थी।

श्री कुँवरजी म. की परम्परा में पूज्य श्री धर्मसिंहजी म. हुए हैं।

इस प्रकार संयम संबंधी शिथिलता एवं गच्छभेद जनित पारस्परिक वैमनस्य से धार्मिक स्थिति शोचनीय हो गई। लगभग डेढ़ सौ वर्ष के इस अन्तराल में पुनः वैसी ही स्थिति हो गई जैसी श्री लौंकाशाह से पहले थी। इस परिस्थिति को सुधारने के लिए किसी आत्मबली, सत्यनिष्ठ और संयमपरायण महापुरुष की आवश्यकता थी। ऐसे समय में ही महापुरुष श्री लवजीऋषिजी म. धार्मिक क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। इन महापुरुष ने किस प्रकार घोर विपत्तियों से जूझ कर संयम मार्ग का उद्धार किया और किस प्रकार शुद्ध साधुपरम्परा का संरक्षण किया, यह सब वृत्तान्त पाठक आगे के पृष्ठों में पढ़ सकेंगे।

परमपुरुष क्रियोद्धारक पूज्य श्रीलवजी ऋषिजी महाराज

१—पूर्वपरिचय

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुर्जरदेशीय लौंकागच्छ के पाट पर श्रीबजरंगजी ऋषि विराजमान थे। आप बड़े ही विद्वान् और शास्त्र के ज्ञाता थे। विक्रम सं. १६४९ में, श्री जसवन्तसिंहजी के समय में सूरत अहमदाबाद आदि मुख्य स्थानों में आप विचर रहे थे। सूरत-निवासी श्रीमान् वीरजी वोरा, जो उस समय के सुप्रसिद्ध कोट्यधीश थे, आपके परम भक्त और अनुरागी थे। आप लौंकागच्छ के श्रीकेशवजी के पक्ष के श्रावक थे। आप दशा श्रीमाली जाति के एक उत्तम रत्न थे।

२—श्री वीरजी वोरा का संक्षिप्त परिचय

श्रीयुत वीरजी वोरा सूरत नगर के गोपीपुरा मुहल्ले में निवास करते थे। कुमार अवस्था तक आपकी आर्थिक स्थिति साधारण थी। आप एक वैष्णव सेठ के यहाँ नौकरी करते थे। सेठ के आदेशानुसार आप प्रतिदिन दूध की एक तावड़ी (अर्थात् घट) भर कर, बलदानी कोठी के पास होकर, पश्चिम दिशा में. रांदेर ग्राम के रास्ते से तापी नदी में डालने के लिए जाया करते थे। एक दिन आप जा रहे थे कि रास्ते में एक भयंकर सर्प दिखाई दिया। सर्प ने आगे का रास्ता रोक दिया। उस समय वोराजी ने विचार किया-संभव है सर्पराज को दूध पीने की इच्छा हो। यह सोचकर आपने दूध का वह घट उसके सामने रख दिया। सर्पराज की भी यही चाह थी। उसने दूध का घट खाली कर दिया। उसे लेकर वोराजी वापिस फिरने लगे तो साँप ने फिर उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। वह और भी समीप आया। वोराजी डरे नहीं, भागे

नहीं। साँप के प्रति उनके अन्तःकरण में लेश मात्र भी द्वेष नहीं था, अतः उन्हे साँप से भय भी नहीं लगा। उसी समय साँप और भी सन्निकट आया और उनकी धोती का पल्ला पकड़ कर एक ओर खींचने लगा, मानों उस ओर चलने का संकेत कर रहा हो!

वोराजी असमंजस में पड़ गये। उन्होंने सोचा-देखना चाहिए, नागराज कहाँ ले जाना चाहता है! वे उसके पीछे पीछे ठेठ नदी के किनारे तक जा पहुंचे। वहाँ एक सिला थी। सर्प उसके किनारे से नीचे जाने लगा। उसने वोराजी को भी अंदर आने का संकेत किया। शिला हटा कर वोराजी भी कड़ा जी करके अंदर झांकने लगे। वहाँ उन्हें जो कुछ दिखाई दिया, उससे विस्मय की सीमा न रही। अन्दर एक भोंयरा था। सर्प ने अपने मस्तक पर एक मणि रक्खी और उसी समय भोयरे में तथा बाहर के भाग में झिलमिल-झिलमिल प्रकाश हो उठा। सर्प के पीछे-पोछे वोराजी भोंयरे के भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ अपार धन-राशि भरी पड़ी थी। देवी नौबत बज रही थी। नाग-देवता ने उस धन का स्वामो वोराजी को बना दिया और फन फैला कर उनके ऊपर छत्र किया। बाद में उस धन का मूल्य कूतने पर पता चला कि वह छप्पन करोड़ का था!

इस समय भी गोपीपुरा में प्रेमचन्द रायचन्द की धर्मशाला है। कहते हैं, उसके सन्निकट जहाँ रांदेर का पुल बँधा हुआ है, वहाँ तक वह भौंयरा फैला हुआ था। जो हो, प्राप्त धन वोराजी घर पर ले आये और देश विदेश में व्यापार करने लगे। न्याय नीति और सत्यनिष्ठा के कारण आप थोड़े ही समय मे प्रसिद्धि में आ गये। धर्म-कृत्यों में आपका गहरा अनुराग था। दीन दुखीजनों पर आप दया की वर्षा किया करते थे। यही नहीं. राजाओं महाराजाओ पर कभी कोई संकट आता या युद्ध आदि का प्रसंग

आता तो आप उदारतापूर्वक उन्हे भी सहयोग देते थे। इस प्रकार सधन निर्धन सब की सहायता करने के कारण आपको नगरश्रेष्ठी का प्रतिष्ठित पद प्राप्त हुआ।

दीपमालिका (कार्त्तिक वदि ३०—गुजराती आश्विन वदि ३०) के दिन वोराजी आठ प्रहर का पौषध किया करते थे और कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपद् के दिन बही-पूजन करते थे जिससे यह प्रतिपद् वीरजी वोरा की प्रतिपद् (वीरजी वोरानो पडवो) के रूप में प्रसिद्ध है। सूरत मे अब भी यही प्रणाली प्रचलित है। धनकुबेर वोराजी की एक सुपुत्री थी। उसका नाम फूलाबाई था।

३—श्री लवजी की माता और बाल्यावस्था

वोराजी की सुपुत्री श्री फूलाबाई ही हमारे चरितनायक श्रीलवजी की माता थी। फूलाबाइ का विवाह सूरत मे ही एक श्रेष्ठिपुत्र के साथ हुआ था। इनका नाम उपलब्ध नहीं होता। बालक लवजी पुण्यशाली, सुकुमार, सुन्दर, तेजस्वी और सभी के हृदय को आकर्षित करने वाला था। मगर दैवयोग से बाल्यावस्था में ही आपको पितृ वियोग सहन करना पड़ा। आपकी माता वोराजी के यहाँ रहने लगीं। वह प्रतिदिन सायंकाल सामायिक-प्रतिक्रमण करती थीं। बालक लवजी प्रायः उनके पास ही बैठता और माता के द्वारा उच्चारण किये जाने वाले आवश्यक (सामायिक-प्रतिक्रमण) के पाठो को ध्यान पूर्वक सुनता था। इस महापुण्यशाली बालक की स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी कि उसने सात वर्ष में ही सामायिक-प्रतिक्रमण के पाठ सुन सुन कर ही कंठस्थ कर लिये। मगर बालक की गम्भीरता का खयाल कीजिए कि उसने अपनी माताजी को भी यह बात मालूम न होने दी।

४ – सत्संग और धर्ममार्ग में प्रवृत्ति

एक दिन फूलाबाई अपने प्रियपुत्र को साथ लेकर श्रीबजरंगजी गुरु महाराज के दर्शनार्थ उपाश्रय में गईं। विधिपूर्वक वंदना आदि करके गुरु महाराज से निवेदन किया—गुरुदेव, बालक लवजी को सामायिक-प्रतिक्रमण सिखा देने की कृपा करें। साथ ही बालक से कहा—'देख बेटा, तू प्रतिदिन गुरु महाराज के दर्शन किया कर और आपके श्रीमुख से सुनकर सामायिक प्रतिक्रमण याद करने का उद्योग किया कर।'

उस समय बालक लवजी ने मन्द मुस्कान के साथ कहा—'माताजी, सामायिक-प्रतिक्रमण तो मुझे याद है।

माता के आश्चर्य का पार न रहा। उन्होंने पूछा—तू ने कब और किससे सीखा है? तब बालक ने पिछली घटना का रहस्योद्घाटन किया। उसी समय गुरु महाराज को कंठस्थ पाठ सुना दिये। श्री बजरंगजी स्वामी, बालक की यह प्रतिभा देख कर और उसकी अद्भुत स्मरण शक्ति का विचार करके तथा बालक के शरीर पर बने हुए शुभ लक्षण-व्यंजन आदि चिह्नों को देख कर फूलाबाई से बोले—बाईजी, इस बालक की बुद्धि बड़ी ही तीव्र है। इसको जैनागमों का अभ्यास कराओ। यह होनहार भव्य आत्मा है। तब फूलाबाई ने निवेदन किया—गुरुदेव! आप कृपा करके इच्छानुसार इसे ज्ञान-दान दीजिये। मैं आपका उपकार मानूंगी। आप जो भी सिखाएंगे, उसमे मेरी हार्दिक सम्मति और अनुमति समझिए।

५—ज्ञानाभ्यास

फूलाबाई की प्रार्थना अंगीकार करके श्री बजरंगजी स्वामी ने बालक लवजी को जैनागमों का अभ्यास कराना आरंभ किया।

लवजी भी मन लगाकर अभ्यास करने लगे। सबसे पहले श्री दशवैकालिक, फिर उत्तराध्ययन, तत्पश्चात् आचारांग, निशीथ, दशाश्रुतस्कंध और वृहत्कल्प आदि सूत्र, जिनमें साधु के आचार गोचर का निरूपण किया गया है, आपको सिखलाए गए। शास्त्रों के पढ़ने से और उनके मर्म को समझ लेने से बालक लवजी की निर्मल और पवित्र आत्मा संसार से उदासीन हो गई और वैराग्य के रंग में रँग गई। गुरुजी बालक की इस मनोवृत्ति को समझ गए।

गुरुजी ने शास्त्र पढ़ाना बन्द कर दिया। मगर अपार जिज्ञासा से प्रेरित होकर उसने कहा—गुरु महाराज ! कृपा करके और ज्ञान-दान दीजिए। मैं आपका आभारी होऊँगा।

गुरुजी—देखो लवजी, अगर तुम्हारी भावना दीक्षा लेने की हो तो मेरे ही समीप दीक्षा लेना। अगर यह बात स्वीकार करो तो मैं तुम्हे जैनागमों का आगे अभ्यास कराऊँ।

लवजी—गुरुदेव ! मेरे अन्तःकरण में दीक्षा ग्रहण करने का शुभ परिणाम उत्पन्न हुआ और चारित्ररत्न को प्राप्त करने योग्य महान् पुण्य का उदय आया और मैं दीक्षा लेने लगा तो आपश्री के समीप ही लूँगा।

इस प्रकार की स्वीकृति के पश्चात् श्रीबजरङ्गजी ने पुनः जैनागम पढाना आरंभ किया। प्रतिभाशाली बालक ने गहरी लगन के साथ शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। द्रव्यानुयोग के सूक्ष्म रहस्यों को समझा। अल्पकाल मे ही वह अद्वितीय विद्वान् हो गए। विशेषता यह थी कि आपने जितने भी शास्त्र पढ़े, सब कंठस्थ कर लिये।

तब एक दिन ऋषि बजरंगजी ने फूलाबाई और श्रीमान् वीरजी वोरा से कहा—लवजी जैनसिद्धान्त का विद्वान् बन गया

है । अनेक प्रश्न करके उसकी परीक्षा भी ले ली । यह देख माताजी और नानाजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । उन्होंने ऋषि बजरंगजी का बहुत आदर-सत्कार किया ।

६—हृदयमन्थन

लवजी अब आगमों के वेत्ता थे । साधुओं के शास्त्रनिरूपित आचार-गोचर के भी ज्ञाता थे और वर्त्तमान काल के साधुओं के आचार को भी देख रहे थे । दोनों की तुलना करने पर कोई संगति नहीं बैठती थी । बड़ा अन्तर नजर आता था । एक दिन वह विचार करने लगे—अहा, इस पंचम काल के प्रभाव से, तथा प्रमाद आदि कारणों से साधु धर्म मे कैसी शिथिलता आ गई है ! साधु आचार-विचार में अत्यन्त शिथिल हो गये हैं । वस्त्रों और पात्रों की मर्यादा का लोप हो गया है । कोई ज्योतिष और निमित्त शास्त्र का आश्रय लेते हैं तो कोई मंत्र तंत्र का प्रयोग कर रहे हैं । वीतराग मार्ग के अनुयायी सन्तों की ऐसी दुर्दशा होना तो पानी में आग लग जाने के समान है ! जब यही चारित्र से इस प्रकार शिथिल हो रहे हैं तो जगत् को उच्चतर चारित्र का मार्ग कौन दिखलाएगा ? श्रीलूङ्काजी के समय में जो मर्यादा थी, उसमें अब बहुत परिवर्त्तन हो गया है । अब पहले जैसे आचार को पालने वाले साधु दृष्टि-गोचर ही नहीं होते ।

७—दीक्षा ग्रहण करने का विचार

असाधारण पुरुष दूसरो की त्रुटियाँ और बुराइयाँ देखकर और उनकी आलोचना करके ही अपने कर्त्तव्य की इति नही मान लेते । त्रुटियों के पात्र जो होते हैं, उनके ऊपर भी उनकी करुणा का प्रवाह अबाध गति से बहता है । वे उनके सुधार की निर्मल और उदार भावना रखते हैं । उन्हे यह भी विदित होता है कि

मौखिक उपदेश से उतना लाभ नहीं हो सकता, जितना कि अपने चारित्र का उज्ज्वल उदाहरण उनके समक्ष उपस्थित करने से हो सकता है। पुण्य पुरुष लवजी सोचने लगे—शिथिलाचारी साधुओं को सुधारने का सर्वोत्तम मार्ग यही है कि मैं स्वयं साधु-दीक्षा अंगीकार करके आदर्श उपस्थित करूँ।

इस प्रकार विचार करके श्री लवजी ने अपने नानाजी से दीक्षा लेने की आज्ञा मांगने का निश्चय किया। साथ ही यह भी सोचा कि—श्रमण भगवान् महावीर का आदेश है कि साधु को आचार्य-उपाध्याय की और साध्वियों को आचार्य, उपाध्याय एवं अपनी गुरुणी की आज्ञा में विचरना चाहिए। अतएव शास्त्र के अनुसार संयम का पालन करने वाले गुरु की खोज कराना चाहिए। उन्हीं की आज्ञा मे रह कर संयम का सम्यक् प्रकार से पालन हो सकेगा। यह सोच कर आपने गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मालवा, मारवाड़ और पंजाब आदि प्रान्तों मे साधु-आचार का हुँडीपत्र भेजा। सब जगह से समाचार मंगवाए। परन्तु आपकी कसौटी पर खरा उतरने वाला कोई साधु नहीं मिला। इससे भी आप निराश न हुए। आपने श्री वीरजी वोरा से साधु-आचार श्रद्धा, प्ररूपणा आदि के विषय मे वार्तालाप किया और दीक्षा अंगीकार करने की भावना व्यक्त करते हुए आज्ञा मॉगी।

८—प्रलोभनों पर विजय

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, लक्ष्मी के विशाल भाण्डार के स्वामी नगर सेठ वीरजी वोरा की एक ही सन्तान थी। अतएव वोराजी की समस्त सम्पत्ति के संभावित उत्तराधिकारी लवजी ही हो सकते थे। मगर जो अपनी आत्मा की अनन्त और अक्षय सम्पत्ति के दर्शन कर लेता है उसके लिए पर पदार्थ निस्सार

और तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं। छप्पन करोड़ का द्रव्य क्या, तीन लोक का अखिल सम्पदा को भी वह कंकर-पत्थर के रूप मे देखने लगता है। 'वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते' अर्थात् प्रमादग्रस्त पुरुष की धन से रक्षा नहीं हो सकती, यह ठोस सत्य उसके नेत्रो के सामने चमकता रहता है। श्री लवजी ऐसे हो महापुरुष थे। वह जान चुके थे कि अर्थ ही अनर्थ का मूल है। जो अर्थ के प्रलोभन में पड़ता है, वह इहभव और परभव—दोनो को बिगाड़ कर दुःखों का पात्र बनता है। उसका आत्मिक सर्वस्व लुट जाता है।

नानाजी और माताजी ने अनेक प्रकार के प्रलोभन लवजी के सामने प्रस्तुत किये, परन्तु वे सफल न हो सके। सांसारिक वैभव उन्हें अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका। उनकी भावना बलवती रही। अन्त मे सब प्रकार से निराश होकर वोराजी ने कहा—हमारा कहना माना तो दीक्षा लेने का विचार त्याग दो और घर में रह कर ही धर्म को आराधना करो। अगर दीक्षा लेना ही हो तो श्री बजरंगजी के पास दीक्षा लेनी होगी। यह बात स्वीकार करो तो हम आज्ञा दे सकते है।

वोराजी की यह शर्त सुन कर दीर्घदृष्टि वैरागी लवजी ने बजरंग ऋषिजी से मिल कर भविष्य के संबंध में स्पष्टता कर लेनी चाही जिससे आगे चल कर कोई बाधा या भ्रान्ति न रहे। उन्होंने श्री बजरंगऋषिजी के निकट जाकर निवेदन किया—महाराज! मेरा भाव दीक्षा लेने का है। दीक्षा लेने की इच्छा होने पर आपके समीप ही दीक्षा लेने का मैं ने वायदा किया था। मैं उस वायदे को पूरा करना चाहता है। मेरे नानाजी को भी यही इच्छा है कि मै आपका शिष्य बनूं। मगर मेरी एक प्रार्थना है। आप उसे स्वीकार करे तो मैं आपके समीप सहर्ष दीक्षा अंगीकार करूंगा।

ऋषिजी ने कहा—कहो, क्या कहना चाहते हो ?

लवजी ने गंभीर भाव से कहा—आपके और मेरे बीच अगर आचार-विचार संबन्धी मतभेद उत्पन्न न हुआ और ठीक तरह निभाव होता रहा तो मैं आपकी सेवा मे रहूँगा, अन्यथा दो वर्ष बाद मैं पृथक् होकर विचरण करूँगा।

ऋषि बजरंगजी ने सोचा होगा—हमारे गच्छ में आकर फिर कहाँ जायगा ? कदाचित् पृथक् हो गया तो भी कहलाएगा तो मेरा ही चेला ! संभव है, उन्होने कुछ और भी विचार किया हो। परन्तु लवजी की शर्ते उन्होने स्वीकार कर ली और अपनी स्वीकृति लिखित रूप मे दे दी।

वीरजी वोरा जैसे महान् प्रतिष्ठित और धनसम्पन्न सेठ के इकलौते नाती की दीक्षा के समारोह का वर्णन करना कठिन है। वोराजी ने अपने हौंसले पूरे कर लिये। बड़े ही ठाठ के साथ, हजारों दर्शकों की उपस्थिति मे, सूरत नगर में, वैरागी लवजी की दीक्षा-विधि सम्पन्न हुई। संवत १६९२ मे आप श्री बजरंग ऋषि के शिष्य बने।

दीक्षा लेने के पश्चात् आपने ज्ञान और चारित्र की उपासना करने में कुछ भी कसर न रक्खी। आप जैन आगमो के तथा तर्क शास्त्र के प्रौढ़ ज्ञाता बन गये। अपने वचन के अनुसार दो वर्ष तक आप गुरु महाराज की सेवा मे रहे। इस अन्तराल मे वे शास्त्रसंगत आचार और वर्त्तमान मे प्रचलित आचार की तुलना करते और सोचते रहते कि वर्त्तमान परिस्थिति में किस प्रकार सुधार किया जाय ! आखिर दो वर्ष समाप्त हो गये तो उन्होंने अपने गुरु महाराज से निवेदन किया गुरुदेव ! आपको ज्ञात ही है कि शास्त्र में यह गाथा आई है:—

दस अट्ठ य ठाणाइं, जाइं बालोवरज्झइ।
तत्थ अन्नयरे ठाणे, निग्गंथत्ताओ भस्सइ ॥दस.॥ ६ अ. ॥७॥

शास्त्र तो ऐसा ही कहता है, किन्तु आजकल का आचार-विचार इससे बहुत भिन्न प्रतीत हो रहा है। इसका कारणक्या है?

ऋषि बजरंगजी ने कहा—भाई, यह पंचम आरा है। इसमे शुद्धाचार का पालन नहीं हो सकता।

श्री लवजी ऋषिजी को इस समोधान से सन्तोष नहीं हुआ। उन्होने कहा—अगर कोई पाले तो क्यो नहीं पलेगा?

श्री बजरंगजी—जो पाले उसे धन्यवाद है।

श्री लवजीऋषि-गुरुदेव! गच्छ में बहुत शिथिलाचार फैल रहा है। आप क्रियोद्धार कीजिए।

श्री बजरंगजो-देखते हो भाई, मेरी वृद्धावस्था है। मैं कठिन क्रिया का पालन नहीं कर सकता।

श्री लवजी ऋषि—गुरुवर! तो मुझे आज्ञा दीजिए, मैं क्रियोद्धार करूँ।

तब प्रमुदित भाव से श्री बजरंग ऋषिजी बोले-तुम सुखपूर्वक क्रिया का उद्धार करो, मेरी आशीष-पूर्वक आज्ञा है!

१०—श्री लवजी ऋषिजी म. द्वारा क्रियोद्धार

गुरुदेव की आज्ञा और आशीष पाकर श्री लवजी ऋषिजी अपने साथ श्री थोभनजी ऋषि और श्री भानुऋषिजी नामक दो सन्तों को लेकर सूरत से विहार करके खंभात पधारे। आप पीठी के दरवाजे के पास कपासो के एक सेठ की दुकान में ठहरे। कपासी के सेठजी धर्म के बड़े अनुरागो थे। वे हमारे चरितनायक की सेवा

में आकर सेवा-भक्ति करने लगे। प्रतिदिन व्याख्यान होने लगा। आप श्री ने व्याख्यान में 'स भिक्खू' नामक दशवैकालिक सूत्र का दसवाँ अध्ययन वांचना आरंभ किया श्रोताओ को आपकी वाणी मे अपूर्व संदेश मिला। नूतन आदर्श दृष्टिगोचर होने लगा कितने ही श्रावकों ने आपकी अमृतमयी वाणी सुन कर प्रतिबोध पाया। कइयों ने प्रश्न किया—स्वामिन्! ऐसे आचारनिष्ठ, क्रियावन्त सन्त क्या आज भी कोई है? किस देश मे विचरते हैं?

श्री लवजी ऋषिजी महाराज ने फरमाया—श्रावको! साधु ऐसे ही होते थे और ऐसे ही हो सकते हैं; किन्तु वर्त्तमान में शिथिलता व्याप रही है। साधु भी मोह मे पड़ गये हैं।

महान् आत्मा श्रीलवजी ऋषिजी म. के शास्त्र संगत एवं निर्मल अन्तः करण से निकले हुए वचनों का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होने निवेदन किया—आपकी वाणी सुन कर मै धन्य हुआ। तब ऋषिजी बोले-मेरी भावना सिद्धान्तानुसार शुद्ध क्रिया का पालन करने की है। आप जैसे ज्ञाता और प्रतिष्ठित श्रावक क्रियोद्धार के कार्य में सहायक हो तो मैं पुनः शुद्ध संयम ग्रहण करके क्रिया का उद्धार करूँ। मै यही चाहता हूँ और इसी उद्देश्य से गुरुजी से पृथक् हुआ हूँ।

सेठजी ने गद्गद होकर कहा—स्वामिन्! मैं अपनी शक्ति का गोपन न करके तन, मन, धन से आपके पवित्र उद्देश्य की सिद्धि मे सहायक बनूँगा। मुझे अपनी सेवा में हाजिर समझिए।

११—खंभात में क्रियोद्धार-संवत् १६९४

इस प्रकार शुद्ध भाव को प्रकट करके श्रीलवजी ऋषिजी म. श्रीथोभण ऋषिजी म. और श्रीभानुऋषिजी म. ठाणा ३ खंभात

नगर के बाहर एक उद्यान मे पधारे। पूर्व दिशा के सन्मुख खड़े हुए। अरिहन्त तथा सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके, श्रीसंघ की साक्षी से पाँच महाव्रतों के पाठों का उच्चारण किया। पुनः शुद्ध संयम को धारण कर शास्त्रानुसार क्रिया का पालन करते हुए क्रियोद्धार के लिए कटिबद्ध हुए। इस प्रकार संवत् १६९४ में आपने क्रियोद्धार किया और तप तथा संयम मे प्रबल पराक्रम करते हुए विचरने लगे *

---

*श्रीलवजी ऋषिजी म. की दीक्षा का यह काल निम्नलिखित प्रमाणों से पुष्ट होता है।

(१) पं. र. शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्रजी म. ने लिखा है— पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म. ने दीक्षा सं. १६९२ में ली और शुद्ध क्रियोद्धार सं. १६९४ में किया। आपने पूज्यश्री धर्मसिंहजी म. की दीक्षा का समय १७०१ लिखा है।

(अजरामर स्वामी का जीवन चरित्र प्रस्तावना पृ. १४)

इस उल्लेख से यह बात भलीभाँति सिद्ध है कि पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म. ही प्रथम क्रियोद्धारक हुए हैं।

(२) खंभात सम्प्रदाय के पूज्यश्री छगनलालजी म. के जीवन चरित में पृ. २२ पर उल्लेख है कि पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म. की दीक्षा सं. १६९२ में हुई है।

(३) पं. मुनिश्री हर्षचन्द्रजी महाराज ने 'श्रीमद् धर्मसिंहजी अने श्रीमद् धर्मदासजी' नामक पुस्तक में लिखा है—'श्रीमान् लवजी ऋषिजी छेल्ली नोंध मलवा प्रमाणे कहिए तो १६९२ माँ यति सम्प्रदाय थी मुक्त थई जैन समाज आगल आव्या।'

१२—धर्म प्रचार और प्रभावना

खंभात में नागेश्वर तालाब के रास्ते पर पानी की प्रपा (प्याऊ) है। वहीं गुसाईं की धर्मशाला अभी मौजूद है। उसी धर्मशाला के समीप एक स्थान पर आप ठा. ३ से विराजमान थे। आपके क्रियोद्धार का समाचार सम्पूर्ण नगर में फैल चुका था। अतएव नगर-निवासी जनता प्रतिदिन आपका व्याख्यान सुनने के लिए आने लगी। क्या जैन और क्या अजैन, हजारों की संख्या मे श्रोता उपस्थित होते थे। अनेक बाइयाँ तो पानी के घड़े सिर पर रक्खे-रक्खे सुनने को खड़ी हो जातीं और उन्हे ऐसा रस आता कि देर तक खड़ी सुनती रहती थीं। विशुद्ध हृदय से निकले हुए आपके शब्दों का श्रोताओं पर गहरा असर पड़ने लगा। कितने हो सुलभबोधि भव्य जीव आपकी प्ररूपणा सुन कर धर्म-मार्ग मे सुदृढ़ बने और कुव्यसनों आदि का त्याग करके सदाचार के पथ

---

(४) प्रतापगढ़-भंडार में सुरक्षित पुरानी पट्टावली में पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म. की दीक्षा सं. १६९२ में हुई, ऐसा स्पष्ट उल्लेख है।

(५) प्रतापगढ़-भंडार की ही दूसरी पट्टावली में भी आपकी दीक्षा का काल १६९२ और क्रियोद्धार का काल सं. १६९४ दिया है।

(६) पण्डिता श्रीरत्नकुंवरजी म. के पास जो पट्टावली है, उसमें भी पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म. का दीक्षा काल सं. १६९२ लिखा है।

इन प्रमाणों के विपरीत कहीं-कहीं आपकी दीक्षा का समय १७०४ और १७०५ भी मिलता है। किन्तु यह ठीक नहीं है। इस संबंध में आगे चल कर विचार किया जाएगा।

पर प्रवृत्त हुए। आपके उपदेश-वचनों में विद्वत्ता का पुट तो रहता ही था पर उच्च और विशुद्ध चरित्र ने उन्हें अत्यधिक प्रभाव-पूर्ण बना दिया था। अतएव आपके प्रवचनो से जिन शासन का खूब उद्योत हुआ। चारों ओर आपकी कीर्त्ति फैलने लगी।

इस समय आपके चारित्र मे अनेक विशेषताएँ आ गई थीं। दोषों से वर्जित आहार लेना, निरवद्य स्थानक, वस्त्र, पात्र को ग्रहण करना, शास्त्रों का संग्रह करके भंडार न रखना, श्वासोच्छ्वास लेते समय भी मुख को खुला न रखना, श्री आचारांग सूत्र के अनुसार निरन्तर मुख पर मुखवस्त्रिका बाँधे रखना, इत्यादि उत्कृष्ट आचार-विचार को तथा शुद्ध श्रद्धा और प्ररूपणा को तथा स्पर्शना को देख कर सहस्रों लौंकागच्छीय यति-पक्ष के अनुयायी श्रावक आपकी ओर आकर्षित हो गए और आपके परम अनुयायी बन गये।

१३— शिथिलाचारियों की तरफ से उपसर्ग

शिथिलाचारी लौंका गच्छ के यति और उनके अन्ध भक्त श्रावक प्रारंभ में तो चुप्पी साधे रहे, परन्तु स्वल्प समय में ही आप श्री के प्रभाव का विस्तार देख कर और हजारों श्रावकों को आपका अनुगामी बनता जान कर क्षुब्ध हो उठे। यति स्पष्ट अनुभव करने लगे कि हमारी दुकानदारी उठी जा रही है। अभी तक कोई ऐसा उत्कृष्टाचारी महात्मा नहीं था, जिसकी तुलना में यति शिथिला-चारी सिद्ध हो। पर श्रीलवजीऋषिजी ने अपने उत्कृष्ट आचार की, जो कसौटी सर्व साधारण के सामने उपस्थित कर दी थी उस पर लोग यति-वर्ग को कसने लगे और उन्हे हीनाचारी समझने लगे। स्वयं यति भी आपकी तुलना में अपने आपको हीन समझने लगे

हों, यह स्वाभाविक ही है। मगर उन्हें यह परिस्थिति सहन न हो सकी। वे आपश्री के कट्टर शत्रु बन गये।

नगरसेठ श्रीसंत वीरजी वोरा उस समय के बड़े प्रभावशाली व्यक्ति थे। उन्हें श्रीलवजी ऋषिजी म. के विरुद्ध भड़काये बिना इनकी दाल नहीं गल सकती थी। अतएव यतियों ने मनगढ़न्त बातें कह कर और तरह-तरह से बुराइयाँ करके उन्हें भड़काना आरंभ किया। कहा—देखिए, लवजी ने गच्छ में भारी भेद डाल दिया है। वह साधुओं की निन्दा करता है। अपनी प्रतिष्ठा कायम करने के लिए उत्कृष्टता का आडम्बर करता है। उसने यह चाल चल कर हजारों को अपने पक्ष में कर लिया है। यही हाल रहा और लवजी को रोका न गया तो श्रीमान् लौंकाशाह की गद्दी ही उठ जायगी या गच्छ का अस्तित्व खतरे में पड़ जायगा। वार-वार इस प्रकार की बातें सुनने के कारण वोराजी भी महाप्राण महात्मा लवजी ऋषिजी म. से विरुद्ध हो गये।

एक वार तपोधन श्रीलवजी ऋषिजी महाराज ठा. ३ से खंभात में विराजमान थे। उस समय वोराजी ने खंभात के नवाब के नाम पर एक पत्र लिख भेजा। उसमें लिखा कि लवजी नामक साधु को और उसके साथी साधुओं को आप वहाँ से निकाल दें या ऐसा बंदोवस्त कर दें कि वे अपना उपदेश किसी को न सुनाने पावें।

वोराजी नवाब की कई बार अवसर आने पर आर्थिक सहायता कर चुके थे। वह उनसे उपकृत था। अतएव जब उनका पत्र नवाब को मिला तो उसने सेठजी का मान रखने के लिए हाकिम को हुक्म दे दिया कि लवजी नामक सेवड़े को कैद कर लिया जाय। हाकिम ने तत्काल आप श्री के पास आकर नवाब साहब

का हुक्म सुनाया। आपके लिए कारागार और राजमहल समान थे। अतएव बिना किसी खेद, चिन्ता या विषाद के आप सहज समभाव से हाकिम के साथ चल दिये। आपको ड्योढ़ी के घड़ि-याली दरवाजे पर एक जगह नज़र कैद कर दिया गया। आपके साथ के दोनों मुनिराज भी साथ ही नज़र कैद कर दिये गये थे। तीनो मुनियो ने अष्टम भक्त (तेले) की तपस्या अंगीकार कर ली। स्वाध्याय तथा ध्यान मे लीन हो गये। तीसरे दिन एक दासी ने बेगम साहिबा से कहा—हुजूर नवाब साहब ने तीन सेवड़ो (श्वेतपटों) को कैद कर रक्खा है। मालूम नही, उन्होने क्या गुनाह किया है? वे न कुछ खाते है, न पीते है। दिन भर किताब पढ़ते रहते हैं या आँखे मूँद कर कुछ सोचते रहते है।

बेगम को पता था कि सेवड़े ऐसा कोई गुनाह नही करते जिससे उन्हे कैद किया जाय। अतएव दासी की बात सुन कर उसे आश्चर्य हुआ। बेगम ने नवाब से कहा—इन सेवड़ों ने आपका क्या गुनाह किया है? क्यो इन्हे कैद किया गया है? नवाब ने बतलाया—बेचारो ने मेरा तो कोई गुनाह नहीं किया है, पर मेरे एक मित्र ने इन्हे कैद कर लेने की प्रेरणा की है। पति के इस उत्तर से बेगम को दुःख हुआ। वह कहने लगी—फकीरो की बद्दुआ लेना ठीक नही। अपना भला इसी मे है कि इन्हे जल्दी से जल्दी छोड़ दिया जाय।

बेगम की बात सुन कर नवाब के चित्त मे अनिष्ट की कुछ आशंका हुई। वह उसी समय आपश्री के पास पहुँचा और बोला— हुजूर, मेरा कोई कुसूर नहीं है। श्रीमान् वीरजी वोरा का खत आया था। उन्हीं के लिखने से मैने आपको यह तकलीफ़ दी है। मुझे मुआफ़ी फरमावे।' इस प्रकार कह कर नवाब ने मुनियो को

नमस्कार किया और उनके पैर छुए। मुनिश्री लवजी ऋषिजी म. ने उसे धर्म का उपदेश दिया और अपनी ओर से अभयदान दिया। नवाब आपका अनुरागी बन गया। उसने कहा—आप जहाँ चाहें, पधारें। धर्म का उपदेश करें। मेरी तरफ से आपको कोई तकलीफ़ नहीं होगी।

१४—पूज्य पदवी और धर्म प्रचार का संकल्प

चारित्रपरायण मुनिश्री लवजी ऋषिजी महाराज अब तक खंभात मे काफी धर्म प्रचार कर चुके थे। यहाँ की जनता शुद्ध जिनमार्ग को समझने लगी थी। उसने आपश्री के ज्ञान और उच्च-कोटि के चारित्र को महत्ता समझ ली थी। अतएव खंभात संघ ने आपको पूज्यपदवी से अलंकृत किया। कुछ ही दिनों के पश्चात् यहाँ से विहार करके आप कालोदरे पधारे। पूज्य श्री ने विचार किया—भगवान् वीर प्रभु ने फरमाया है कि राजा की, गाथापति की, शय्यातर की तथा समुदाय आदि की नेश्राय से संयममार्ग का पालन होता है। अतएव कोइ प्रभावशाली पुरुष प्रतिबोध प्राप्त करे तो धर्म की अच्छी वृद्धि होगी। खंभात, सूरत और अहमदाबाद आदि के शासक वोराजी के हाथ मे है। अगर वोराजी समझ जाएँ तो धर्म-प्रचार मे बहुत सहायता मिल सकती है। इससे यतियो का बल भी घट जायगा। इस प्रकार विचार करके पूज्य श्री ने कालोदरा से विहार किया और रास्ते के अनेक ग्रामों मे वीतराग देव का पावन सन्देश सुनाते हुए अहमदाबाद मे पदार्पण किया।

अहमदाबाद में आप प्रतिदिन धर्मोपदेश करने लगे। प्रारंभ मे कुछ लोग कुतूहल से प्रेरित होकर आये। मगर जब पूज्य श्री की वाणी-गंगा का प्रवाह बहा, उनकी उत्कृष्ट क्रिया, श्रद्धा और प्ररूपणा का परिचय मिला तो जनता आपकी भक्त बनने

लगी। आपके श्रोता दिन प्रतिदिन बढ़ने लगे। आपने जिन मार्ग का रहस्य समझाना आरंभ किया। लोग आपके विशद ज्ञान और शुद्ध चारित्र की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। अहमदाबाद के अनेक जौहरी भी आपकी वाणी सुनकर प्रभावित हुए और आपके परमभक्त तथा अनुरागी बन गये। सारे अहमदाबाद से आपकी कीर्त्ति फैल गई।

१५—श्रीधर्मसिंहजी का समागम

एक वार पूज्य श्री अहमदाबाद में गोचरी के लिए पधार रहे थे। मार्ग में लौंकागच्छीय यति शिवजी ऋषि के शिष्य श्री धर्मसिंहजी म. मिल गये। आपके साथ पूज्य श्री की आचार गोचर के संबंध में कितनी ही बातें हुईं और कुछ प्रश्नोत्तर भी हुए।

पूज्य श्री का तथा श्री धर्मसिंहजी म. का समागम अत्यन्त प्रेम से हुआ। जो भी वार्त्तालाप हुआ और प्रश्नोत्तर हुए, उनमे लेश मात्र भी कटुता नहीं थी। दोनो की एक संक्षिप्त वीतराग चर्चा थी। धर्मप्रेम से प्रेरित होकर उस समय पूज्य श्री ने श्रीधर्मसिहजी से कहा—हे मुनि! आप इतने विद्वान् है, आगमों के वेत्ता हैं, भगवान् के सत्य मार्ग को भलीभाँति समझने हैं, फिर भी शिथिलाचारी गच्छ मे पड़े है। आपको तो सिंह के समान गर्जना करके, पराक्रम करके, और शुद्ध क्रिया का उद्धार करके जिनमार्ग की प्रभावना करनी चाहिए। यह मुखवस्त्रिका हाथ मे रखने की नहीं है; इसे तो मुख पर बाँधना चाहिए।

विशुद्ध हृदय से, सद्भावना से, की हुई प्रेरणा का श्री धर्मसिंहजी म. के चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे स्वयं भद्र हृदय विद्वान् थे। विद्वान के लिए संकेत ही पर्याप्त होता है, तिस पर

पूज्यश्री ने तो आपको प्रेमपूर्ण प्रेरणा भी की थी। अतएव मुनिजी ने कहा—'मेरा भी विचार शुद्ध क्रिया पालन करने का हो गया है। जैसा अवसर होगा, देखा जाएगा।'

इस प्रकार कह कर मुनि श्रीधर्मसिंहजी म. अपने उपाश्रय में पहुँचे। आपने डोरा डाल कर मुख पर मुखवस्त्रिका बाँध ली और क्रिया का उद्धार किया।

पूज्यश्री का अहमदाबाद में प्रभाव बढ़ने लगा। प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी। लौंकागच्छीय लोगों ने और यतियों ने आपको तरह-तरह से कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न किया. मगर आप सभी उपसर्गों और परीषहों को शान्त और सम भाव से सहन करते रहे। इन परीषहों को आपने अपने हित के लिए सहायक माना। शेष काल तक अहमदाबाद में विराजकर आपने विहार कर दिया।

१६—विभिन्न क्षेत्रों में धर्म प्रचार

अहमदाबाद से विहार करके पूज्यश्री गुजरात प्रान्त के अनेक छोटे-बड़े क्षेत्रो को पावन करने लगे और वीर भगवान् के धर्म का मर्म जनता को दिखलाने लगे। आपने अपनी ओजस्वी और तेजस्वी वाणी से अनेक राजाओ-महाराजाओं को प्रतिबोध दिया और कितने ही भव्य जीवों को सन्मार्ग दिखला कर उस पर आरूढ़ किया। इस तरह आपने गुजरात काठियावाड़ के सभी मुख्य-मुख्य क्षेत्रो मे पदार्पण किया। जहाँ विरोधी पक्ष वाले और यतिवर्ग अधिक शक्ति-सम्पन्न थे, वहाँ खास तौर से आप पधारे। वहाँ पर आपने अपने श्रेष्ठ ज्ञान और चारित्र का सिक्का जमाया। यतियों को ऐसा जान पड़ने लगा कि हमारा

आसन खिसकने लगा है। वे पूज्यश्री का सामना करने में असमर्थ थे, मगर उनके बतलाये कठिन संयम के मार्ग पर चलने मे भी समर्थ नहीं थे। अतएव परोक्ष मे विरोध करने मे कुछ भी कसर नहीं रखते थे, फिर भी आचार्य श्री का प्रचार अबाध गति से अग्रसर होता जाता था। सत्य का बल आखिर प्रबल होता है। यह बल आपको प्राप्त था।

आपका प्रचार गुजरात-काठियावाड़ तक ही सीमित नहीं रहा। आप मारवाड़, मालवा और मेवाड़ आदि प्रान्तो मे भी पधारे। वहाँ भी आपने धड़ल्ले के साथ वीतराग का सच्चा मार्ग प्रदर्शित किया। वरहानपुर में यतियो का बहुत प्रभाव था। वहाँ भी आप पधारे। निर्भय सिंह के समान वहाँ भी शेषकाल और चातुर्मास-काल में विराज कर अनेक भव्यात्माओ का उद्धार किया। अनेक परीषहों को समभाव से सहन करते हुए आप पुनः गुजरात पधारे।

१७--सूरत में चातुर्मास, प्रचार और दीक्षा

देश-देशान्तर मे ग्रामानुग्राम विचरते हुए, वीतराग-प्ररूपित शुद्ध मार्ग का प्रचार करते हुए, अनेक क्षेत्रो में चातुर्मास काल एवं शेषकाल मे विराज कर पूज्यश्री ने अपनी जन्मभूमि-सूरत नगर-में पदार्पण किया। पहली बार गोचरी के लिए आप श्रीमान् वोरजी वोरा के यहाँ ही पधारे। वहाँ अँधेरा होने के कारण आप भूमि का रजोहरण से प्रमार्जन करते हुए आगे बढ़े। आपको इस प्रकार आते देख कर श्रीवोरजी वोरा ने प्रश्न किया—'क्या सारा रास्ता पूंजते-पूंजते आये हो ?' इस प्रश्न के उत्तर में पूज्यश्री ने कहा— 'बाहर जहाँ दृष्टि से मार्ग स्पष्ट दिखाई देता है, वहाँ देख-देख कर चलता हूं। यहाँ अँधेरा होने से दृष्टि का बल काम नहीं करता,

अतएव मार्ग को पूंज कर चलता हूँ। यही साधु की ईर्यासमिति है।' बोराजी बोले-'ठीक है, पधारो भीतर और आहार-पानी ग्रहण करो।'

पूज्य श्री निर्दोष और कल्पनीय आहार-पानी ग्रहण करके अपने स्थान पर पधार गये।

सूरत के लिए आप नवीन नहीं थे, फिर भी आपका आचार-गोचर नवीन था। आप इस बार क्रान्ति के अग्रदूत बन कर पधारे थे। जिनप्रणीत आचार मे आई हुई शिथिलता को आप नष्ट करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से आपके व्याख्यान होने लगे। लोगों को ज्यों ज्यो आपके शुभागमन का पता चलता गया त्यो-त्यों श्रोताओ की संख्या बढ़ने लगी। प्रतिदिन बहुत बड़ी संख्या मे श्रावक आते, श्राविकाएँ आतीं और जैनेतर जिज्ञासु भी आते। आपने इतने सुन्दर और-प्रभावशाली ढंग से तत्त्व एवं आचार की प्ररूपणा की कि श्रोता मुग्ध हो गए। लोगो का भ्रम भागने लगा। उन्हे ऐसा आभास हुआ, मानों वे अंधकार मे से निकल कर प्रकाश मे आ रहे हैं। उनकी श्रद्धा शुद्ध होने लगी; धारणा परिवर्त्तित होने लगी। अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध की प्राप्ति हुई। आपके संसार-पक्ष के नाना श्रीमान् वीरजी वोरा, जिन्होने खंभात में आपको कैद करवाया था और जो आपके कट्टर विरोधी थे, अब आपकी प्ररूपणा और स्पर्शना से परिचित होकर आपके भक्त श्रावक बन गये। उन्होने आपके उच्च चारित्र की तथा गंभीर ज्ञान की परीक्षा की, संयम-निष्ठा की जॉच की और सवेग-निर्वेद को कसौटी पर कसा। यह सब देख कर आप अपने पिछले विरोध के लिए पश्चात्ताप करने लगे। कहावत प्रसिद्ध है-'सत्यमेव जयते, नानृतम्' अन्त मे सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। सूर्योदय से पहले घना कोहरा व्याप्त रहता है और वह लोगो की दृष्टि को

अवरुद्ध कर देता है। उस समय जगत् बहुत संकीर्ण प्रतीत होता है, परन्तु यह स्थिति थोड़े ही समय रहती है। दिवाकर की तेजोमय रश्मियाँ गगन मे फैलती है और वे उस कोहरे को पी जाती हैं। वातावरण निर्मल बन जाता है। दूर-दूर तक दृष्टि का प्रसार होने लगता है। विशालता चमक उठती है। ठीक, यही बात यहाँ हुई। पूज्यश्री के पदार्पण से पूर्व अज्ञान और भ्रम का जो कोहरा जैन-जगत् मे व्याप्त थो, वह सूर्य के समान आपके आगमन से तत्काल दूर हो गया। लोगो के सामने सत्य चमकने लगा। दृष्टि मे विशालता एवं निर्मलता आ गई। यह सब आपके ज्ञानबल, तपोबल, आचारबल और उच्चकोटि के व्यक्तित्व के ही बल का प्रभाव था।

पूज्यश्री को लोग वीर-वाणी का महान् संदेशवाहक समझने लगे। आप जैसे महात्मा के दर्शन और उपदेशश्रवण को प्रकृष्ट पुण्य का फल मानने लगे। सूरत के धर्मप्रिय संघ को मानो ज्ञान-चारित्र का अक्षय खजाना मिल गया। लोग उसे छोड़ना नहीं चाहते थे। अतः संघ ने मिल कर सूरत में ही चौमासा व्यतीत करने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने संवत् १७१० का चौमासा तीन ठाणे से सूरत मे व्यतीत करने की मर्यादानुसार स्वीकृति प्रदान की।

पूज्यश्री अब तक ज्ञान-ध्यान मे प्रबल पराक्रम कर रहे थे। इसी तरह बेले-बेले का अखंड तप भी करते थे। ऊपर से दिन मे सूर्य की आतापना लेते और रात्रि मे शीत की आतापना लेते। इस प्रकार की कठोर चर्या करके आप संवर-निर्जरा के पथ पर अग्रसर हो रहे थे। आपकी इस चर्या से जनता अत्यन्त प्रभावित थी।

इस चातुर्मास मे सूरत-निवासी ओसवाल ज्ञातीय श्रीमान् सखियाजी भणसाली के अन्तःकरण मे वैराग्य-भावना उत्पन्न हुई। उत्कृष्ट वैराग्य से प्रेरित होकर आपने पूज्यश्री से प्रार्थना की-

गुरुदेव ! मेरे चित्त में महान् मंगलमय अध्यवसाय उत्पन्न हुआ है। आपकी कृपा हो जाय तो मैं उसके अनुसार क्रिया करना चाहता हूँ। आप तरण-तारण हैं। भव-सागर से मेरा उद्धार कीजिए। मुझे अवलम्ब देकर उपकृत कीजिए। मैं महापुरुषो के मार्ग का पथिक बनना चाहता हूँ। आपके चरणों की नौका का सहारा लेकर भव सागर को तिरना चाहता हूँ। मुझे दीक्षा देने की अनुकम्पा कीजिए।

वैरागी ने वोराजी से आज्ञा प्राप्त कर ली थी। आज्ञा माँगते समय साधुओं के आचार-विचार के संबंध मे बहुत से बोलों की चर्चा हुई थी। वैरागीजी ने शास्त्र के प्रमाणों के साथ उनके प्रश्नों के उत्तर दिये। इनका उल्लेख 'प्रवचन परम्परा पंचोत्तरी' (मिथ्यात्व तम नाशक) ग्रंथ मे देखना चाहिए। पूज्यश्री ने भणसालीजी की योग्यता और भावना की परीक्षा करके उन्हें दीक्षा प्रदान करने की स्वीकृति दे दी। इसी चातुर्मास मे, सं. १७१० में सूरत मे ही दीक्षा की विधि सम्पन्न हुई।

चातुर्मास समाप्त होने पर पूज्यश्री ने ठाणा ४ से सुख शान्ति पूर्वक खंभात की ओर विहार किया।

१८ अहमदाबाद में पुनः पदार्पण

सूरत से विहार करके पूज्यश्री ठा. ४ से रास्ते के क्षेत्रो में धर्मोपदेश करते हुए खंभात पधारे। पूर्वपरिचय तथा चारित्रवल के प्रभाव से खंभात के श्रीसंघ ने आपका हर्ष और उल्लास के साथ हार्दिक स्वागत किया। सैकड़ो धर्म प्रेमी श्रावको और श्राविकाओं ने आपके स्वागत मे भाग लिया। यहाँ कुछ दिनों तक विराज कर और धर्म के पहले वोये हुए बीज का पुनः सिंचन करके आपने अहमदावाद की ओर विहार किया। यथासमय अहमदाबाद

पधार कर आपश्री एक विशाल स्थान में, शय्यातर की आज्ञा लेकर विराजमान हुए। यहाँ पधारने पर आपको पता चला कि मुनिश्री धर्मसिंहजी, श्री अमीपालजी, श्री श्रीपालजी आदि मुनि लौंकागच्छीय कुंवरजी की शाखा से पृथक् हो चुके हैं और क्रियो-द्धार करके अलग प्ररूपणा करने लगे हैं। पुस्तके नही रखना लिखना भी नहीं, इत्यादि प्ररूपणा करने लगे हैं। इस कारण गच्छ भेद हो गया है। यह समाचार सुन कर पूज्यश्री लवजी ऋषिजी महाराज मुनिश्री धर्मसिंहजी से मिले, प्रतापगढ़ भंडार की दो पट्टावलियो के उल्लेखानुसार दोनों महापुरुषों ने परस्पर वार्त्तालाप करके श्रद्धा, प्ररुपणा और समाचारी मिला कर आहार-पानी का संभोग कर लिया। * इस प्रकार पूज्यश्री को एक विद्वान् सहायक मुनि का साथ प्राप्त हो गया जिससे आपका बल और अधिक बढ़ गया।

१६—श्री सोमजी की दीक्षा

पोरवाल जाति के एक रत्न श्रीमान् सोमजी नामक एक सुश्रावक पूज्यश्री के प्रवचनों से अत्यन्त प्रभावित हुए। आपके धर्ममय अन्तः करण मे वैराग्य की लहरें उठने लगीं। कालूपुरा (अहमदाबाद) के रहने वाले, २३ वर्ष के नवयुवक थे। गृहस्था-वस्था में श्रावक के व्रतों का पालन कर रहे थे। कुछ शास्त्रीय ज्ञान भी प्राप्त किया था। आपने पूज्यश्री से दीक्षा देने की प्रार्थना को। पूज्यश्री ने आपको संयम का योग्य पात्र समझ कर सं. १७१० के

किसी किसी पट्टावली से यह भी ज्ञात होता है कि दोनों महापुरुषों में कई विषयों में मतभेद रहा, जिससे दोनों पृथक्-पृथक् विचरे।

उत्तरार्ध में, अहमदाबाद श्रीसंघ की सम्मति से, तथा आपके पारिवारिक जनों की आज्ञा से, भागवती दीक्षा प्रदान की।

२०—हृदयविदारक दुर्घटना

पूज्यश्री जब अहमदाबाद में विराजमान थे, उसी समय एक अतीव शोचनीय और हृदयविदारक घटना घटित हुई। एक दिन मुनिश्री भानुऋषिजी, श्री थोभण ऋषिजी और श्री सखिया ऋषिजी के साथ पूज्यश्री शौचार्थ बाहर पधारे। चारों महाभाग सन्त लौट कर अपने स्थान की ओर आ रहे थे। किसी कारण से मुनिश्री भानुऋषिजी म. कुछ पीछे रह गये।

पूज्यश्री का अहमदाबाद में वर्चस्व स्थापित हो रहा था। यतियों का आसन डोल रहा था। उनके भक्त सद्धर्म का प्रतिबोध पाकर उनसे विमुख हो रहे थे और पूज्यश्री के उपासक बनते जा रहे थे। इस परिस्थिति को वहाँ के यति चुपचाप सहन नहीं कर सकते थे। मगर करें तो क्या करें? उनके लिए कोई वैध मार्ग नहीं था। सचाई उनके पक्ष में नहीं थी। पूज्यश्री का सामना करने में अधिक पोल खुलने का भय था। मगर उनकी प्रतिष्ठा धूल में मिली जा रही थी। उन्हे ऐसा लगता था कि अब तक जो शिथिलाचार का पोषण एवं सेवन करते रहे है, अब उसके लिए अवकाश नही रहा है। इस बात से उनका क्रोध भड़क उठा था।

तिस पर मुनिश्री धर्मसिंहजी महाराज ने पूज्य श्री की प्रेरणा पाकर यतिवर्ग से विद्रोह किया—क्रियोद्धार किया और इस बार वे उनके साथ मिल गये। इस घटना ने यतियों के क्रोध को और अधिक भड़का दिया। यति पागल हो उठे। वे पूज्यश्री से किसी भी तरीके से बदला लेना चाहते थे। आज उन्हे अवसर मिल गया।

मुनिश्री भानुऋषिजी जब पीछे रह गये तो रास्ते में उन्हें कुछ यति मिले। सीधा रास्ता बतलाने के बहाने वे मुनिश्री को अपने मन्दिर के पिछवाड़े के एक वाड़े में ले गये। वहाँ ले जाकर उन नरपिशाचो ने मुनिश्री पर तलवार का वार किया। मुनिश्री की जीवनलीला समाप्त हो गई। उन अनार्य, स्वार्थलोलुप यतियो ने वहीं एक गड़हा खोद कर शव को गाड़ दिया।

विश्व के इतिहास मे धर्मान्धता के फलस्वरूप इस प्रकार की सैकड़ों घटनाएँ घटित हुई है; किन्तु अहिंसा के उपासक जैन समाज ने कभी ऐसे अनार्योचित उपायों का अवलम्बन नहीं लिया। बड़े-बड़े जैन सम्राट् हुए और उन्होने जैनधर्म के प्रचार मे महत्त्वपूर्ण योगदान भी दिया, किन्तु शैव आदि राजाओ की भांति उन्होंने भी कभी हिंसा का प्रयोग नहीं किया। इस विषय मे जैनसमाज का इतिहास अत्यन्त उज्ज्वल रहा है। परन्तु अहमदाबाद के तत्कालीन कुछ यतियों ने उस उज्ज्वल इतिहास पर कालिमा पोत दी। उन्होने यतिवर्ग को ही नहीं, समग्र जैन संघ को कलंकित कर दिया।

मुनिश्री जब बहुत देर तक भी अपने स्थान पर न पहुँचे तो खोज की गई। एक सोनी से यह समाचार विदित हुए। पूज्यश्री ने कठोर प्रसंग को वज्र की छाती करके सहन किया। उनके हृदय मे लेश भी द्वेष उत्पन्न न हुआ। उस अमानवीय कृत्य के समाचारों से अनेक श्रावक उत्तेजित हो उठे। उन्हे भी पूज्यश्री ने रोका और समझाया कि धर्म क्षमा और शान्ति मे है, बदला लेने मे नहीं। इस प्रकार के जघन्य अत्याचार धर्म प्रसार को रोक नहीं सकते। आप सब लोग शान्ति रक्खें और सोचे कि स्वार्थी मनुष्यो का अधःपतन किस सीमा तक हो सकता है। इस प्रकार बहुत कुछ समझाने-बुझाने से श्रावक शान्त हुए।

२१—अत्याचार पर अत्याचार

कुछ दिन वहीं ठहर कर और अपने भक्त श्रावकों को शान्त करके पूज्यश्री अपने शिष्य-परिवार के साथ गुजरात-काठियावाड़ को स्पर्शते हुए बरहानपुर की ओर पधारे। आपके अहमदाबाद से विहार करने के पश्चात् गच्छवासी लोगों ने पूज्यश्री के अनुयायी श्रावकों को जाति से बहिष्कृत कर दिया। वे यहाँ तक नीचता पर उतर आये कि कुए से पानी भरना बंद कर दिया। नाइयों और धोबियों को भी उनका काम करने से रोक दिया। इस परिस्थिति में पूज्यश्री के अनुयायी जो पचीस धनाढ्य श्रावक थे, उन्होंने अन्य श्रावकों की सहायता की। परन्तु उन लोगों के अत्याचार जब असह्य प्रतीत होने लगे तो मुख्य-मुख्य श्रावकों ने दिल्ली जाकर बादशाह से फरियाद करने का विचार किया। कुछ लोग दिल्ली पहुँचे। विरोधी पक्ष के लोगो ने और यतियों ने यह जान कर ऐसी व्यवस्था की कि बादशाह के साथ इन श्रावकों की मुलाकात ही न हो सके। परन्तु वे अपने मनोरथ को पूर्ण करने में सफल न हो सके। एक आकस्मिक घटना घटित होने से फरियाद करने के लिए गये हुए श्रावकों का काम बन गया।

दैवयोग से दिल्ली के काजी के लड़के को एक जहरीले साँप ने डँस लिया। काजी ने मंत्र-तंत्र आदि के अनेक प्रयोग किये, दवाइयाँ दीं, जिसने जो बताया वही उपाय किया, किन्तु सर्प का जहर न उतरा। आखिर लड़का निश्चेष्ट हो गया। उसे मृत समझ कर काजी कब्रस्तान ले गया।

अहमदाबाद से गये हुए श्रावक शहर में योग्य स्थान न मिलने के कारण कब्रस्तान के निकट ही ठहरे थे। उनमें से एक श्रावक ने लड़के को भलीभाँति जाँच करके काजी से कहा—आप

धीरज रक्खें। मै इस बालक को स्वस्थ कर देता हूँ। अभी तक यह मरा नही है, विष के प्रकोप से मूर्छित हो गया है। काजी को ऐसा लगा, मानों कोई देवदूत ही दया करके आ पहुँचा है! उसने कहा-- मैं आपका जिंदगी भर एहसान नहीं भूलूंगा; गुलाम होकर रहूँगा। लड़के को अच्छा कर दीजिए।

उस दृढ़ धर्मी श्रावक ने एकाग्रचित्त होकर नमस्कार मंत्र का जाप किया। इस महामंत्र के जाप से सर्प का विष उतर गया और लड़के ने आँखें खोल दीं अपने मृत माने हुए बालक को जीवित हुआ देख कर काजी को अपार प्रसन्नता हुई। काजी उनका बहुत एहसानमंद हुआ। उसने श्रावकों से पूछा—आप लोग कौन हैं और कहाँ से, किस प्रयोजन से यहाँ आये है? श्रावको ने मुनिश्री भानुऋषिजी म. की हत्या आदि से लेकर सारा वृत्तान्त सुनाया। काजी ने आश्वासन दिया—आपका काम बहुत शीघ्र होगा।

काजीजी ने बादशाह से मुलाकात करके अहमदाबाद की सारी घटना सुनाई। श्रावको की मुलाकात का प्रबंध करवाया और होने वाले अत्याचार को रोकने का माकूल इन्तजाम करने की सब व्यवस्था कर दी।

बादशाह नें स्वयं काजीजी को ही अहमदाबाद जाकर घटित घटना की जाँच-पड़ताल करने और आगे को ठीक व्यवस्था करने का भार सौंपा। साथ मे फौज की एक छोटी-सी टुकड़ी भी भेज दी। काजीजी श्रावकों के साथ अहमदाबाद पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही काजीजी ने उस बाड़े की खुदाई का हुक्म दिया, जिसमें मुनिराज श्रीभानुऋषिजी का शव गाड़ दिया गया था। खुदाई कराने पर शव का अस्थि पंजर निकल आया। उसे देख कर काजीजी के क्रोध का पार न रहा। उन्होंने मन्दिर को नींव सहित उखाड़ फैंकने का

हुक्म दे दिया। तब इन्हीं श्रावकों ने आजीजी करके किसी प्रकार उनके गुस्से को शान्त किया और मन्दिर की रक्षा की। कहते हैं, यह काजीजी जैन धर्म के अनुयायी बन गये। यह भी पता चला है कि आपने श्रीपार्श्वनाथ भगवान् की कितनी ही स्तुतियाँ रची है। इस प्रकार क्रियोद्धार का और जैन धर्म के प्रचार का कार्य जोरों के साथ आगे बढ़ने लगा।

२२—अन्तिम जीवन की विशेष घटना

बरहानपुर में यतियों का बहुत जोर था। उनके प्रभाव को देखते हुए वहाँ कोई साधारण साधु जाने और यतियों की भ्रष्टाचारमयी परम्परा के विरुद्ध जीभ खोलने का साहस नहीं कर सकता था। परन्तु पूज्यश्री तो एक असाधारण महापुरुष थे। वे उस ऊँची भूमिका पर जा पहुँचे थे जहाँ जीवन और मरण, सुख और दुःख, अपमान और सन्मान, समान रूप धारण कर लेते हैं। अतएव आप निर्भय निःसंकोच भाव से वहाँ पधारे और शुद्ध धर्म की प्ररूपणा करने लगे। आपका व्याख्यान सुनने के लिए हजारों श्रोता एकत्र होने लगे। आपने जैन सिद्धान्तों का और जैन शास्त्र सम्मत साधना-मार्ग का ऐसा सुन्दर निरूपण करना आरंभ किया कि सुनने वाले मुग्ध हो गए। आपकी वाणी मे दृढ़ता के साथ नम्रता, मधुरता और सादगी थी। उच्च चारित्र के पालक होने पर भी अहंकार की गंध तक नहीं थी। आपके व्यवहार मे शिष्टता थी, सरलता थी। प्रकृति मे भद्रता थी। संयम की तेजस्विता अन्दर और बाहर फूटी पड़ती थी। इन सब कारणों से श्रोताओ पर और सम्पर्क मे आने वालों पर आपकी बड़ी ही सुन्दर छाप लगती थी। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों मे सैकड़ो लोग आपके अनुयायी और भक्त बन गए। वहाँ के मुख्य-मुख्य श्रावकों को

पूज्यश्री का अनुयायी बनते देख कर स्थानीय यतियों को भय उत्पन्न हो गया। वे सोचने लगे—यही हाल रहा तो हमे कोई भी नहीं पूछेगा! सभी लोग हमे दुत्कारने लगेंगे। हमें चारित्र भ्रष्ट समझ कर घृणा की दृष्टि से देखेंगे। अतएव कोई भी उपाय करके अपनी रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए।

इधर पूज्यश्री शेषकाल पूर्ण होने पर बरहानपुर के ही एक उपनगर-इंदलपुर प्रधार गये। वहाँ भी प्रतिदिन व्याख्यान होने लगा और बरहानपुर के जिज्ञासु श्रावक भी उसमें सम्मिलित होने लगे।

उधर यतियों का चक्र चलने लगा। अपनी प्रतिष्ठा को खतरा समझ कर वे अत्यन्त उत्तेजित हो उठे। उन्होने जघन्य से जघन्य उपाय और अधम से अधम कृत्य करके भी अपनी रक्षा करने का विचार किया। वे यहाँ तक नीचे गिर गये कि पूज्यश्री के प्राण लेने तक का निश्चय कर चुके। सोचने लगे—किसी भी उपाय से अगर इन्हें समाप्त कर दिया जाय तो झगड़ा मिट जाय! न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। इस पैशाचिक निश्चय के अनुसार एक यति ने दो विषमिश्रित लड्डू बनाए। दोनो लड्डू उसने एक रंगारिन बाई को दे दिये। कहा—बड़े महात्माजी को दे देना। वे हमारे यहाँ तो आते नहीं हैं। कदाचित् पूछे तो कह देना कि यह लड्डू शादी में आये हैं। इस प्रकार रंगारिन को लड्डू देकर यति अपने ठिकाने आ गया। भोली रंगारिन बाई समझ नहीं सकी कि इसमे क्या रहस्य है।

दूसरे दिन पूज्यश्री व्याख्यान के पश्चात् गोचरी के लिए पधारे। आप बेले-बेले पारणा करते थे सो आज पारणा का दिन था। रास्ते में रंगारिन बाई का घर मिला। उसने प्रार्थना की—

'महाराज, मेरा घर भी पावन कीजिए।' पूज्यश्री गोचरी के लिए पधारे और उन लड्डूओं में से एक लड्डू ले लिया। आप श्री ने पारणा में वह मोदक खाया तो परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए था। लड्डू में मिले हुए विष ने अपना प्रभाव दिखाना आरम्भ किया। जी घबड़ाने लगा। अन्दर वेदना का अनुभव होने लगा। आपने उसी समय आहार त्याग दिया और पं० मुनि सोमजी ऋषिजी म० से कहा—मुझे तीव्र वेदना हो रही है। चक्कर आ रहे हैं। थोड़ी ही देर में मैं बेभान हो जाऊंगा। अब आयुष्य का कोई भरोसा नहीं है; अतः सागारी संथारे का प्रत्याख्यान करा दो।

पूज्यश्री ने संथारा ग्रहण कर लिया। समभाव से तीव्र वेदना को सहन किया। समाधि के साथ आयु पूर्ण की और स्वर्ग वासी हो गए। पूज्यश्री के जीवन का अन्त जिनशासन की एक ऐसी महान् क्षति थी, जिसकी पूत्ति नहीं हो सकती थी। पूज्यश्री क्या गये, क्रान्ति का एक महारथी चला गया। धर्म का एक स्तंभ टूट गया। यतियों ने जिस क्रान्ति को समाप्त करने के लिए पूज्यश्री के जीवन के समाप्त किया था, वह क्रान्ति तो रुक नहीं सकी, पर यतियों का असली स्वरूप जनता के सामने प्रकट हो गया। लोग समझ गये कि सीधे भोजन पर मौज उड़ाने वाले इन यतियो का कितना अधः पतन हो चुका है!

इस आकस्मिक दुर्घटना का समाचार बात की बात में सर्वत्र फैल गया। जिसने सुना वही चकित हो रहा! बहुतों को तो विश्वास ही नहीं हुआ। झुंड के झुंड लोग मुनिराजों के स्थान पर पहुँचे। किसी की समझ मे ही नहीं आ रहा था कि सहसा यह अचिन्त्य घटना कैसे घटित हो गई! पूछ-तांछ करने पर लोगों को लड्डू वाली बात का पता लगा। रंगारिनबाई के घर जाकर जाँच की

गई। उस बाई ने यति के आने पर दो लड्डू देने की सारी घटना सुनाइ। बचा हुआ दूसरा लड्डू भी उसने दिखला दिया। उस लड्डू की परीक्षा कराई गई तो मालूम हुआ कि उसमे विष मिला हुआ है *

---

* *इस घटना की सत्यता का पता इसी से लग जाता है कि विरोधी पक्ष वालों ने भी इसको स्वीकार किया है। अलबत्ता उन्होंने अपने पक्ष के अमानुषिक और लज्जाजनक दुष्कृत्य पर पर्दा डालने का प्रयत्न किया है और घटना को विकृत करके उपस्थित किया है। उन्होंने रंगारिन बाई को या तो भ्रम से या जान बूझकर चालाकी खेल कर मुस्लिम महिला बतलाया है। उन्हें पता नहीं कि महाराष्ट्र में रंगारी जाति हिन्दुओं में होती है। जो कि काठियावाड़ में भावसार कहलाते थे। पू० श्रीधर्मदासजी म० भी इसी भावसार जाति के थे। पता भी हो तो मतान्धता के शिकार लोग सत्य को असत्य का रूप देने में जरा भी संकोच नहीं करते। जो लोग विचारों में भिन्नता होने के कारण एक महान् धर्माचार्य के प्राण ले सकते हैं, उनके उत्तराधिकारी अगर घटनाओं को तोड़ मरोड़ कर मिथ्या रूप में उपस्थित करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?*

अगर कोई ज्ञान-सुन्दर के बदले चारित्र-सुन्दर होता तो इस घटना को विकृत रूप में रखने के बदले इस पर आँसू बहाता, इसकी वकालत नहीं करता। मगर कठिनाइ तो यह है कि ऐसा करने वाला ज्ञान-सुन्दर नहीं, अज्ञान सुन्दर जान पड़ता है, जिसे रंगारी जाति की असलियत का पता नहीं और जो यह भी नहीं जानता कि जैन मुनियों में मुस्लिमों के घर से गोचरी लेने की परम्परा ही नहीं थी।

इस जाँच पड़ताल से स्पष्ट हो गया कि पूज्यश्री के जीवन का अन्त करने में यतियों का ही हाथ है। तब श्रावकों के क्रोध का पार न रहा। उन्होंने सोचा कि इन दुष्टों ने पूज्यश्री को अनेक उपसर्ग देकर आखिर उनके प्राण भी ले लिये हैं; अतएव इसका बदला लेना ही चाहिए। पर पं॰ मुनिश्री सोमजी ऋषिजी महाराज ने उत्तेजित लोगों को समझाया कि पूज्यश्री तो स्वर्गवासी हुए। वे वापिस लौटकर आने वाले नहीं। होनहार टलती नहीं। अब इन यतियों से द्वेष करने से कर्मबन्ध के सिवाय और कोई लाभ होने वाला नहीं। अतएव शान्ति रखिए। पूज्यश्री ने आपको जो मार्ग बतलाया है, उस पर दृढ़ता के साथ अग्रसर होना चाहिए और धर्म के नाम पर प्रचलित पाखण्ड को नष्ट करने का प्रयत्न कीजिए। यही पूज्यश्री की सच्ची सेवा है। पूज्यश्री का शरीर नहीं रहा, परन्तु उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग हमारे सामने है। उसी पर चलने से स्व-पर का हित होगा।

क्रियोद्धारक परम पूज्यश्री लवजी ऋषिजी महाराज

(तर्ज—क्या भूलिया दिवाने-)

लवजी मुनीन्द्र ! तुमने, जिनधर्म को सुधारा।
भूलेंगे ना कदापि उपकार यह तुम्हारा ॥ लव० ॥ध्रुव०॥

श्रुतज्ञान के अभ्यासी, जग से परम उदासी।
क्रोडों की छोड़ दौलत, संयम विशुद्ध धारा ॥लव०॥१॥

छठ-छठ अखंड तपस्या, ग्रीष्मे आताप तप के।
जाड़े में शीत सहके, उपशम कठिन करारा ॥लव०॥२॥

हिंसा धर्म हटाया, रास्ता सरल बताया।
उद्धार कर क्रिया का, सावद्य कर्म टारा ॥लव०॥३॥

मुद्दत से छूट गई थी, मुख-वस्त्रिका जो मुख से।
बाँधी है खुद बँधाई, जग में क्रिया पसारा ॥लव॥४॥

मुनि धर्म की जो नैया, भंवर में पड़ रही थी।
बन के खिवैया तुमने, जग डूबते को तारा ॥लव०॥५॥

सब वैर उपशमावें, जिनधर्म को दिपावें।
दिल में 'अमी' के यह है, टुक दीजिए सहारा ॥लव०॥६॥

पूज्यश्री के जीवन की विशेष बातें !

१—करीब सात वर्ष की स्वल्प वय में ही आपने अपनी माता श्रीमती फूलाबाई के समीप बैठे-बैठे, सामायिक-प्रतिक्रमण के पाठ सुनकर ही कंठस्थ कर लिये थे। इससे आपकी बुद्धि और मेधा शक्ति की तीव्रता का सहज ही परिचय मिल जाता है।

२—आपश्री ने श्रीबजरङ्गजी से अल्पकाल में ही शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त कर लिया और चिन्तन मनन करके उसे खूब विकसित किया। शास्त्रों को कंठस्थ करके आप धर्म के रंग में रङ्ग गये। शास्त्र के मर्मज्ञ होने से आपको स्वयं ही वैराग्य की प्राप्ति हुई।

३—दीक्षा लेने से पहले आपने बहुत सोच-विचार किया। साधुहुंडी लिख कर सच्चे साधुओं का अन्वेषण किया। जब कोई सुयोग्य गुरु न मिला तो अपने ज्ञानदाता गुरु श्रीबजरङ्गजी ऋषि के पास ही दीक्षा ले ली; परन्तु दो वर्ष का प्रतिज्ञापत्र लिखवा लिया। इससे आपकी परीक्षा प्रधान मनोवृत्ति का और दीर्घदर्शिता का परिचय मिलता है। सं० १६६९ में सूरत मे आपकी दीक्षा हुई।

४—दो वर्ष समाप्त होने पर आपने गुरुजी से शास्त्रानुकूल चारित्र पालने की प्रार्थना की। वृद्धावस्था आदि के कारण गुरुजी तैयार न हुए। तब आपने उनसे क्रिया का उद्धार करने की अनुमति माँगी। अनुमति मिल गई। आप तीन ठाणे से उग्र आचार पालन के लिए कटिबद्ध हुए। इससे आपके त्यागशीलता, उग्र संयमपरायणता, अनासक्ति और विरक्ति आदि अनेक गुणों का परिचय मिलता है।

५—सं० १६९४ में खंभात में पुनः स्वयं शुद्ध दीक्षा धारण की और क्रिया का उद्धार किया।

६—खंभात के नवाब ने आपश्री के नानाजी श्री वीरजी वोरा की प्रेरणा से आपको ठा० ३ से नजर कैद कर लिया। आप की तपश्चर्या और संयमनिष्ठा का बेगम पर प्रभाव पड़ा। फलतः आपका छुटकारा हो गया और नवाब ने क्षमायाचना की।

७—जब आप अहमदाबाद पधारे तब श्रीधर्मसिंहजी लौंकागच्छ में थे। आपने उन्हें प्रेरणा की कि आप विद्वान् और

शास्त्रज्ञाता होकर भी शिथिलाचारी गच्छ मे क्यों पड़े हैं ? शूर-वीरता धारण करके क्रिया का उद्धार कीजिए । आपके इस सद्बोध से श्री धर्मसिहजी म० ने क्रिया का उद्धार किया । मुख पर मुख-वस्त्रिका बाँध ली ।

८—आपने गुजरात, काठियावाड़, मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ आदि प्रान्तो में विचरण करके अत्यन्त विषम और प्रतिकूल परिस्थितियो मे धर्म का प्रचार किया। अनेकानेक उपसर्गों को सहन किया और यतियों की दलबन्दी को छिन्न-भिन्न कर दिया । इससे पता चलता है कि आप अत्यन्त शूरवीर, निर्भय, दृढ़संकल्पी और क्रान्तिकारी महात्मा थे ।

९—आपकी महान् क्रियापात्रता का ही यह परिणाम था कि प्रारंभ मे यतियो द्वारा बहकाये हुए और कट्टर विरोधी बने हुए आपके नानाजी भी आपके परम भक्त बन गये ।

१०—दोबारा अहमदाबाद पधारने पर आपके साथी मुनिश्री भानुऋषिजी म. को यतियों ने जब कत्ल कर दिया तब श्रावको में बेहद उत्तेजना फैल गई । वे उनके विरुद्ध सख्त कार्रवाई करने के लिए तैयार हुए । किन्तु आपने शान्ति रख कर उन्हे समझाया और शान्त किया । इससे स्पष्ट हो जाता है कि आपका हृदय अत्यन्त सदय था । संतजनोचित क्षमा, करुणा, उपशम और सहिष्णुता आपमे कूट-कूट कर भरी थी । ऐसी वीतराग-भावना आप जैसी ऋषियो मे ही संभव है !

११—आपके पास सूरत-निवासी श्रीसखिया ऋषिजी म. की तथा अहमदाबाद-निवासी श्रीसोमजी ऋषिजी म. की दीक्षा का उल्लेख मिलता है । परन्तु पट्टावली मे इनके अतिरिक्त दो शिष्यों के नाम और मिलते हैं—श्रीहरजी ऋषिजी और श्रीलालजी ऋषिजी ।

मगर इनकी दीक्षा का संवत् आदि नहीं मिल सका। मुनिवृत्त में भी आप दोनो सन्तो के नामों का उल्लेख है।

१२—पूज्यश्री अपनी दीक्षा के पश्चात् निरन्तर शुद्ध जिन मार्ग के धुंआधार प्रचार मे लीन रहे। इसी प्रचार के कारण आप यतिवर्ग के कोप भाजन बने। अन्त में यतियों के षड्यंत्र से, विष के कारण आपके जीवन का अन्त हो गया।

१३—आपश्री ने पं. मुनिश्री सोमजी ऋषिजी म. को क्रियोद्धार का भार सौंप कर गुजरात में विचरने की सूचना दी थी।

१४—पूज्यश्री ने अपने जीवन के अन्त तक जिनधर्म के अनुकूल साधु-संस्था के चारित्र के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया। अपनी आत्मा का कल्याण करते हुए जगत् को सन्मार्ग दिखलाया। आज भी श्रमण-वर्ग की जो प्रतिष्ठा है, उसका श्रेय आपको ही है। आपने सुन्दर आदर्श उपस्थित न किया होता तो यह वर्ग न जाने कितना नीचे गिर गया होता। अतएव श्रमण वर्ग आपको आद्य क्रियोद्धारक के रूप मे सदैव स्मरण करेगा और आपका कृतज्ञ होगा।

आद्य क्रियोद्धारक

श्रीमान् लौंकाशाह के पश्चात् साधुओं में जो शिथिलता आ घुसी थी, उसमे सुधार करने वाले अनेक महापुरुष हुए हैं; जिनमे पूज्य श्रीलवजीऋषिजी म० पूज्यश्री धर्मसिंहजी म० पूज्यश्री धर्मदासजी म० आदि मुख्य हैं। अनेक पट्टावलियों और ग्रन्थों के अवलोकन से विदित होता है कि यह सब महाभाग सन्त सत्तरहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण मे ही प्रादुर्भूत हुए हैं। पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म. का पूज्यश्री धर्मसिंहजी म. के साथ और पूज्यश्री

धर्मसिंहजी म० का पूज्यश्री धर्मदासजी म० के साथ परस्पर मिलन हुआ है, वार्त्तालाप भी हुआ है और एक को दूसरे से प्रेरणा भी मिली है। अतएव यह स्पष्ट है कि यह सब महात्मा समकालीन थे। फिर भी एक बात मे कुछ मत भेद पाया जाता है। वह यह कि इन सब मे आद्य क्रियोद्धारक कौन थे?

यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इस प्रश्न का सम्बन्ध सिर्फ इतिहास से ही है, उन पुरुषों की महत्ता की न्यूनाधिकता से नहीं। हमारे लिए वे सभी महात्मा वन्दनीय और अभिनन्दनीय हैं जिन्होने वीरशासन मे आये हुए विकार और शिथिलाचार को दूर करने के लिए घोर परिश्रम किया है। तथापि केवल इतिहास के दृष्टिकोण से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० ही प्रथम क्रियोद्धारक हैं। इस बात को पुष्टि के लिए अनेक प्रमाण मिलते हैं:—

सहज बुद्धि से जाना जा सकता है कि जो महापुरुष सर्वप्रथम सुधारक होता है, उसी को सब से अधिक कष्ट सहन करने पड़ते हैं। वही विरोधियों का सब से अधिक कोप भोजन होता है। इस कसौटी पर कसें तो पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० ही प्रथम क्रियोद्धारक सिद्ध होते है। आपको क्रियोद्धार के पुरस्कार स्वरूप कारागार में भी बन्द रहना पड़ा। आपके एक शिष्य को कत्ल होना पड़ा और अन्त में आपको भी विरोधियो ने विष दे दिया। अगर आपसे पहले किसी दूसरे महात्मा ने कियोद्धार किया होता तो विरोधी उसी से बदला लेते, आपसे नहीं। खास तौर से जब अहमदाबाद में ही पूज्यश्री धर्मसिंहजी म० गच्छ से अलग हुए और वहीं पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० के शिष्य कत्ल किये गये तो यह विचार महत्त्वपूर्ण हो जाता है। अतएव इतिहास का यह

घटना क्रम सिद्ध करता है कि पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० ही आद्य क्रियोद्धारक होने चाहिए।

आधुनिक युग के महान् विद्वान्, अनेक महत्त्व पूर्ण ग्रंथों के लेखक शतावधानी पं. र. मुनिश्री रत्नचन्द्रजी स्वामी ने पूज्यश्री अजरामर स्वामी के चरित्र की प्रस्तावना (पृ. १४) मे स्पष्ट लिखा है कि पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म. की दीक्षा १६९२ मे हुई। सं. १६९४ मे आपने क्रियोद्धार किया और पूज्यश्री धर्मसिंहजी ने क्रियोद्धार सं. १७०१ मे किया। शतावधानीजी म के उल्लेख से यही सिद्ध होता है कि आद्य क्रियोद्धारक पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म. ही हुए हैं।

पूज्यश्री धर्मसिंहजी म० के संबंध में एक दोहा प्रचलित है—

संवत सोल पचासिए, अमदाबाद मँझार।
शिवजी गुरु को छोड़ के, धर्मसिंह हुवा गच्छ बहार ॥

इस दोहे के अनुसार यह माना जाता है कि पूज्यश्री धर्मसिंहजी म. ने सं. १६८५ मे अपने गुरु शिवजी ऋषि को छोड़ कर क्रिया का उद्धार किया मगर व्यापक विचार करने से यह वृत्तान्त ठीक नहीं बैठता। सर्व प्रथम ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस दोहे मे क्रिया के उद्धार का कोई उल्लेख ही नहीं है; सिर्फ यही बतलाया गया है कि वे गच्छ से बाहर हुए। गच्छ से बाहर होना और क्रिया का उद्धार करना एक ही चीज़ नहीं है। बहुत बार क्रिया का उद्धार न करने वाले भी प्रकृति-वैषम्य और श्रद्धाभेद आदि के कारण गच्छ से पृथक् हो जाते है।

दूसरी दृष्टि से भी इस पर विचार करना चाहिए। पूज्यश्री धर्मसिंहजी म. शिवजी के शिष्य थे। शिवजी की दीक्षा सं. १६७०

में हुई और सं. १६८८ में वे पाट पर बैठे। इसी वर्ष अर्थात् १६८८ की विजयादशमी के दिन दिल्ली के बादशाह ने उन्हें पट्टा और पालकी का सन्मान दिया। यह तथ्य ऐतिहासिक नोंध तथा लूंका पट्टावली आदि अनेक प्रमाणो से सिद्ध है।

पं मुनिश्री मणिलालजी महाराज अपनी प्रभुवीर पट्टावली के पृष्ठ १८५ की टिप्पणी मे लिखते है–'श्रीशिवजी ऋषिना शिष्य श्री धर्मसिंहजीए पालखी वगैरेनी उपाधि जोइने सं. १६८५ मां लौंका गच्छ थी जुदा पड़ी क्रिया उद्धार करी नवो गच्छ चलाव्यो।'

यहाँ विचारणीय वात यह है कि श्रीशिवजी ऋषि को पालकी सं. १६८८ मे मिली तो उससे तीन वर्ष पहले पालकी की उपाधि कहाँ से आ गई ? मालूम होता है कि उल्लिखित दोहे ने ही जो भ्रम उत्पन्न कर दिया है, उसी के कारण यह परस्पर विरोधी उल्लेख कर दिया गया है।

प्रभु वीर पट्टावली के लेखक दरियापुरी सम्प्रदाय की पट्टावली का प्रमाण देते हुए पृ० २०८ पर लिखते है—' श्रीलवजी ऋषि श्रीधर्मसिंहजी मुनि ने अहमदाबादमां मल्या हता। तेओ बन्नेमां शास्त्रचर्चा थई हती।"

ऐतिहासिक नोंध तथा अनेक पट्टावलियों से सिद्ध है कि श्रीलवजी ऋषिजी म० ने सं० १६६४ मे खंभात मे क्रियोद्धार किया था और उसके पश्चात् ही वे अहमदाबाद पधारे थे। तब तक श्री धर्मसिंहजी म० ने क्रियोद्धार नहीं किया था।

पूज्य श्री धर्मसिंहजी महाराज के साथ पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म. की चर्चा हुई और श्रीलवजी ऋषिजी म. ने उन्हें क्रियोद्धार को प्रेरणा की, इस घटना के समर्थन मे अनेक पट्टावलियों के प्रमाण दिये जा सकते है। यथाः—

(क) 'तेहवे टाणे अहमदाबादमां गोचरी फरतां लुंकानो धरमसी जति मल्यो, लहुजी अणगार साथे केतलिक आचार-गोचारनी बात नी पूछा करी उत्तर पडउत्तर घणो हुवो तिवारे लहुजी अणगारे लुंकाना जती धर्मसी ने उपदेश दीधो, तुमें आवा जाणपणाने पाम्या छो तो गच्छ मांहीं कांई पडी रह्या छो तिवारे धर्मसी बोल्या अवसर हुम्ये तिहारे जणासे ।'

—पट्टावली पृ. ७.

(ख) 'ऐसे विचार के अमदाबाद पधारे धर्मोपदेश दे घणें ओसवाल जवेरियों को समझाए। पूज्यश्री गौचरी पधारे, रस्ते मे लोंकागच्छीय मुनि श्री शिवजी के शिष्य धरमसीजी मिले। कितनोक आचार-गौचर संबंधी बाते हुई। घणो प्रश्नोत्तर हुवे। पूज्यश्रीजी ने धर्मसी जी को उपदेश फरमाया। हे मुनी! आप इतने जाणपणे को प्राप्त कर फिर भी गच्छ मे पड़े रहना ठीक नहीं सिंह समान प्राक्रम धार क्रिया उद्धार करके धर्म को दीपावो और मुहपत्ती मुह पर बांधो मुंहपत्ती हाथ मे रखने की नहीं है, मुंह बांधने की है। इत्यादि पूज्यश्री के उपदेश ने काम कर दिया श्रीधर्मसीजी बोले अवसर होगा तो मेरा विचार भी हो गया है। यों कहे के उपाश्रय जाय डोरा डाल मुहपत्ती मुह पर बांधली और क्रिया उद्धार किया।'

—पट्टावली पृ. ८-६.

(ग) ऊपर लिखे अनुसार ही उल्लेख है।—पट्टावली पृ. ६

(घ) पट्टावली पृ. २ में उल्लिखित (क) वाली पट्टावली के समान ही उल्लेख है

(ङ) प्रान्तीय मन्त्री पं. रत्न मुनिश्री पन्नालालजी महाराज के पास को पट्टावली पृ. ६ मे भी हूबहू वही उल्लेख है जो ऊपर (क) वाली पट्टावली से उद्धृत किये गये है।

(च) 'दरियापुरी सम्प्रदाय को एक पट्टावली जाहिर करती है कि श्रीमान् लवजी ऋषिजी श्रीमान् धर्मसिंहजी से अहमदाबाद में मिले थे।'
—ऐतिहासिक नोध.

(छ) 'आ माटे बे मत छे. कोई-कोई पट्टावली वि.सं. १७०५ माँ दीक्षा लीधानुं जणावे छे, परन्तु लवजी ऋषि ने दरियापुरी सम्प्रदायना आद्य प्रवर्त्तक श्रीमान् धर्मसिंहजी साथे थयेल धार्मिक विधि-विधानो बाबतनी चर्चा अने बीजा केटलाक प्रसंगों परथी वि. सं. १६९२ नी साल होय, अे वधारे संभवित छे।'
—पूज्यश्री छगनलालजी म. जीवन चरित्र

(ज) 'एकदा सोमजी अनगार ने ऐसो विचार उपन्यो-जे लवजी ऋषिए बड़ा हुता, धर्मसिंहजी छोटा हुता। धर्मसिंहजी ऋषिए वंदना न करी, हवे हुं जाइने धर्मसिंह ऋषि ने पगे लागूं ए विनयमूल न्याय मार्ग छे!
—प्रा. म. पं. मुनिश्री पन्नालालजी म. के पास की पट्टावली,

जान पड़ता है सोमजी अनगार को यह जो विचार आया, वह दूसरी बार अहमदाबाद में पधारने के समय का विचार है। ऐसा न होता तो उन्हें ऋषि न कहा गया होता और न सोमजी अनगार उन्हे प्रणाम करने का ही विचार करते। कुछ भी हो, इस उल्लेख से यह तो स्पष्ट ही है कि श्री लवजी ऋषिजी म., श्री धर्मसिंहजी म. से बड़े थे।

(झ) प्रतापगढ़-भंडार में सुरक्षित पट्टावली के पृ. ६ में लिखा है-'तेहवा टाणे अहमदावादमां गोचरी फरतां लुंकाना धर्मसिंह जति मल्या'

(ञ) प्रतापगढ़-भंडार की ही दूसरी पट्टावली में भी ऐसा ही उल्लेख पाया जाता है।-पृ. ९

इन सब तथा इनके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों से यह बात भलीभाँति सिद्ध है कि श्रीधर्मसिंहजी म. यति–अवस्था में ही पूज्यश्री से अहमदाबाद में मिले थे। अतएव उनके क्रियोद्धार का काल सं. १६८४ न होकर १७०१ ही हो सकता है। इस बात का समर्थन पूर्वोक्त पालकी आदि उपाधि वाली घटना से भी होता है। सं. १६८८ मे श्री शिवजी-गद्दी पर बैठे। उसी वर्ष उन्हे पालकी–पट्टा मिला। उसे देख कर श्री धर्मसिंहजी म. को असन्तोष हुआ। उन्होने गुरुजी के समक्ष अपना असन्तोष प्रकट किया, और उच्च चारित्र पालने के लिए निवेदन किया। तब शिवजी गुरु बोले– 'तमारुं केहवुं यथार्थ छे, पण माराथी हाल आ पूज्य पदवी छोडी शकाय तेम नथी, पण तमे हमणा धीरज राखो, अने हजु शास्त्र ज्ञान मेलवो थोडा वर्ष पछी आपणे आ गच्छनी योग्य व्यवस्था करी फरी दीक्षा लेशुं' श्री धर्मसिंहजी, गुरु से यह आश्वासन पाकर सूत्रों पर टब्बा लिखने के कार्य मे लग गये। जान पड़ता है कि उन्होने तेरह वर्ष मे सत्ताईस सूत्रो पर टब्बा लिखे। सं. १७०१ में पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म. का समागम हुआ। गुरुजी के आश्वासन को भी काफी समय हो चुका था। वे अब तक पूज्य पदवी त्याग कर क्रियोद्धार को तैयार नहीं हुए थे। अतएव गुरुजी की ओर से अब निराशा पैदा हो जाना स्वाभाविक ही था। बस, उन्होने अपने गुरु को त्याग कर क्रिया का उद्धार किया।

यह घटनाक्रम सुसंगत और सुव्यवस्थित प्रतीत होता है। इसे स्वीकार कर लेने से घटनाओं में कोई विरोध नहीं रहता। आशा है निष्पक्ष विचारक विद्वान् अब अनेक प्रामाणिक पट्टावलियों और इतिहास के घटनाक्रम से विरुद्ध जाने वाले एक दोहे के आधार पर भ्रम में न पड़ेंगे।

हो सकता है कि श्रीशिवजी यति को पालकी आदि मिलने से पहले भी कोई मतभेद दोनो के बीच मे हुआ हो। मतभेद होना आश्चर्यजनक नहीं, क्योकि श्रीधर्मसिंहजी म० की प्रकृति यतिवर्ग से कुछ भिन्न थी। इस मतभेद के कारण उन्हे कुछ समय के लिए गच्छ से पृथक् किया गया हो और फिर सम्मिलित कर लिया गया हो। इस प्रकार की घटना १६८५ मे घटित हुई हो तो पूर्वोक्त दोहा ठीक हो सकता है। उसमे गच्छ से बाहर होने का ही उल्लेख भी है, क्रियोद्धार का नहीं। क्रियोद्धार के लिहाज़ से उक्त दोहा प्रामाणिक नहीं ठहरता। ऐसे विषय मे विरोधी पक्ष के उल्लेख बड़े काम के होते है। अतएव हम उन पर भी थोड़ा विचार करते है। हमे देखना है कि विरोध पक्षीय लेखक किस महा पुरुष को प्रथम क्रियोद्धारक कहते है ? यह देखने के लिए निम्न लिखित अवतरण पर्याप्त होंगे:—

स्थविर मुनिश्री शार्दूलसिंहजी म के शिष्य पं. कवि मुनिश्री रूपचंदजी से प्राप्त एक जीर्ण पन्ने मे लिखा है:—

"पूज्यश्री जसवन्तजीनो शिष्य ऋषि वजरांगजी, तेहना शिष्य लहुजी (लवजी) जाति नो दशो श्रीमाली, तेह थकी ढुंढ्या नीकल्या सं १७०४ वैशाख विदि १३ दिने बोल इक्वीस काढ्या गच्छवासी का अवगुण बोलवा लाग्या, ते लिखियै छे, अहमाबाद मध्ये थाप्या।"

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि विरोधी पक्ष वाले श्रीलवजी ऋषिजी म. को ही ढूंढ़िया मत का प्रवर्त्तक समझते है। इसका आशय यही है कि उन्होने सर्व प्रथम क्रियोद्धार किया।

मूर्त्तिपूजक मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी ने 'श्रीमान् लौंकाशाह' नामक पुस्तक मे क्रियोद्धारक महात्माओ के विषय में खूब ज़हर

उगला है। इस पुस्तक के कुछ अवतरण इस प्रकार हैं:—

(क) स्थानकमार्गियों की उत्पत्ति विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे लुङ्कागच्छ के यति बजरङ्गजी के शिष्य यति लवजी और यति शिवजी के शिष्य धर्मसिंहजी से हुई है। और लवजी के लिए लौंकागच्छ को पट्टावली में बहुत कुछ लिखा है कि लवजी उत्सूत्रप्ररूपक, गुरु निन्दक, मुँह पर मुहपत्ती बांध तीर्थंकरों की आज्ञाभंग कुलिंग धारण किये हुए है। —पृष्ठ ५

(ख) 'अनन्तर धर्मसिंहजी और लवजी नामक साधुओं ने लौंका का विरोध कर 'ढूँढिया पंथ' नाम से नया पंथ निकाला और जोरो से मूर्त्ति का विरोध करना शुरु किया।' —पृष्ठ ६५

(ग) 'यति लवजी को अयोग्य समझ कर श्रीपूज्य बजरंगजी ने उसको गच्छ बहार कर दिया था। बस उसी लवजी ने मुँह पर मुहपत्ती बांध कर अपना ढूंढिया नामक नया मत निकाला।' —पृष्ठ १२०

(घ) 'लौंकागच्छीय और स्थानकमार्गी विद्वानों का एक ही मत है कि डोरा डाल दिन भर मुँह पर मुहपत्ती बांधने की प्रवृत्ति लौंकाशाह से नहीं, पर स्वामी लवजी से प्रचलित हुई है।'—पृ १२२

(ङ) 'स्पष्ट पाया जाता है कि मुँह पर दिन भर मुहपत्ती बांधने की प्रथा को चलाने वाले स्वामी लवजी ही थे।' —पृ. २४१

इन उद्धरणों में कई बातें विवादग्रस्त हो सकती हैं, मगर जहाँ तक प्रथम क्रियोद्धार का प्रश्न है, वह इनसे हल हो जाना चाहिए। यह साक्षी, जिसका आधार लौंकागच्छ की पट्टावलियाँ बतलाया गया है, ऐसे लेखक की साक्षी हैं जिसके हृदय में न श्रीलवजी ऋषिजी म० के लिए अनुराग है और न श्री धर्मसिंहजी म० के

लिए। बल्कि उसे लवजी ऋषिजी महाराज के प्रति सब से अधिक द्वेष है। जब ऐसे लेखक के शब्दों से सिद्ध होता है कि श्रीलवजी ऋषिजी म० ही आद्य क्रियोद्धारक है तो अधिक उसमें संदेह के लिए अवकाश नहीं रहता।

कुछ सज्जन श्रीजीवराजजी म० को आद्य क्रियोद्धारक कहते हैं। बहुत कुछ खोज और जाँच-पड़ताल करने पर भी हमे ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिल सका, जिसके आधार पर पं. मुनिश्री मणि-लालजी म० के इस कथन को सिद्ध किया जा सके। क्रियोद्धारक के रूप मे श्रीजीवराजजी म० का किसी प्राचीन स्वपक्षी या विपक्षी विद्वान् ने उल्लेख तक नहीं किया है और न किसी पट्टावली से ही इसका समर्थन होता है।

हाँ, 'श्रीमान् लौंकाशाह' मे एक स्थल पर यह उल्लेख मिलता है-'वास्तविक क्रियोद्धार तो पंन्यास श्रीसत्य विजयजी गणी ने तथा लौंकागच्छीय यति जीवाजी ऋषिजी ने किया था। इन दोनो महापुरुषो ने अपने-अपने गुरु की परम्परा का पालन कर, शासन मे किसी भी प्रकार से न्यूनाधिक प्ररुपणा न कर केवल शिथिलाचार को ही दूर कर उग्र विहार द्वारा जैन जगत् पर अत्युत्तम प्रभाव डाला था।'

इस उद्धरण से पता चलता है कि यह श्रीजीवाजी ऋषिजी और श्रीजीवराजजी म. एक नहीं हो सकते। इस उद्धरण के 'जीवाजी' गुरु की परम्परा का पालन करने वाले हैं और गुरु की परम्परा का पालन करने वाला क्रिया का उद्धारक नहीं हो सकता था, क्योकि उस समय की परम्परा में शिथिलाचार की ही प्रधानता थी।

हम अत्यन्त विनम्र भाव से फिर दोहरा देना चाहते है कि

हमारे लिए सभी शुद्ध जिनमार्गी क्रियोद्धारक प्रशंसनीय हैं। सबके प्रति हमारा आदरभाव है। तथापि इतिहास के दृष्टिकोण से ही यह उल्लेख किया गया है। जिस निष्पक्ष भाव से यह लिखा गया है, उसी निष्पक्ष भाव से इसे पढ़ना चाहिए।

पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी महाराज

१—पूर्व परिचय

आपश्री कालूपुरा, अहमदाबाद के निवासी थे। पोरवाल जाति मे आपका जन्म हुआ। आप पूर्व जन्म के धार्मिक संस्कार लेकर जनमें थे, यही कारण था कि बचपन से ही आपके अन्तः करण मे धर्म के प्रति विशेष प्रीति थी।

अहमदाबाद व्यापार का केन्द्र और गुजरात प्रान्त का प्रमुख नगर उस समय भी था। उसकी भौगोलिक स्थिति भी विशेष प्रकार की है। अतएव सन्तों का आवागमन वहाँ होता ही रहता था। गुणी और ज्ञानी सन्त महात्मा पधारे तो उनकी उपासना करना और ज्ञान उपार्जन करना आपकी विशेष अभिरुचि थी। इस रुचि ने आपके दबे हुए संस्कारों को विकसित करने में विशेष सहायता पहुँचाई आपने गृहस्थावस्था में श्रावक के व्रत अंगीकार किये थे और आगम ज्ञान भी अच्छा प्राप्त कर लिया था। ज्ञानवान् और क्रियावान् सन्तो के प्रति आपके हृदय मे प्रबल आदर भाव और गंभीर श्रद्धाभाव रहता था।

क्रियोद्धारक परम पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म जब-जब अहमदाबाद पधारे तब-तब आपने उनकी सेवा मे उपस्थित होकर भक्ति का लाभ उठाया था। पूज्यश्री के साथ शास्त्र-चर्चा करके और उनके मुखारविन्द से निकले हुए वचनों को धारण करके ज्ञान की अच्छी खासी वृद्धि की थी। वास्तव में आप तत्त्वज्ञान के बड़े प्यासे रहते थे।

२—दीक्षा

वि. सं. १७१० का सूरत-चातुर्मास सम्पन्न करके परम पुरुष पूज्य श्रीलवजी ऋषिजी म. ठा. ४ से अहमदाबाद पधारे थे। आपने पूज्यश्री के व्याख्यान सुने। पूज्यश्री के मुखारविन्द से जिनेश्वर प्रणीत कल्याणी वाणी सुन कर आपके अन्तःकरण में वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब एक दिन आपने निवेदन किया—भगवन्! इस असार संसार-कान्तार में भटकते हुए अनन्त जीव विविध प्रकार के दुःखों से व्याकुल होकर साता, शान्ति और सुख की अभिलाषा करते हैं। किन्तु निवृत्तिमार्ग का अवलम्बन किये बिना शान्ति या सुख प्राप्त होना संभव नहीं है। अतएव मैंने इस मार्ग पर चलने का संकल्प किया है। इस नूतन और अपरिचित मार्ग पर चलने और सकुशल अग्रसर होने के लिए मुझे पथप्रदर्शक चाहिए। आप सदृश महान् पुरुष ही मेरा पथप्रदर्शन कर सकते हैं। अतः मै आपकी शरण ग्रहण करना चाहता हूँ। अनुग्रह कीजिए और संयम-रत्न प्रदान कर कृतार्थ कीजिए।

श्रीसोमजी के इन विनय-विवेक से विभूषित वचनों को सुनकर पूज्यश्री ने श्रीसंघ की सम्मति से सं० १७१० मे आपको निर्ग्रन्थ दीक्षा दी। उस समय से आप श्रीसोमजी ऋषि कहलाए। दीक्षा के समय आपकी उम्र २३ वर्ष की थी।

३—पूज्य पदवी

श्रीसोमजी ऋषिजी म० की बुद्धि बहुत तीव्र और निर्मल थी। पूज्य गुरुदेव की कृपा, पूर्वोपार्जित पुण्य और ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की तीव्रता के कारण आप अल्पकाल में ही शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् हुए। गुरुदेव के साथ आपने भी मालवा मेवाड़ आदि अनेक क्षेत्रो को पावन किया। सर्वत्र जैनधर्म का दुन्दुभीनाद गुञ्जाते हुए आप पूज्यश्री के साथ बरहानपुर पधारे। बरहानपुर में यतियो ने किस प्रकार षड्यन्त्र करके भावसार रंगारिन बाई के हाथों से विषमिश्रित लड्डू दिलवाया और किस प्रकार पूज्यश्री का यकायक शरीरान्त हुआ यह सब घटना पहले लिखी जा चुकी है।* उस समय भी आप पूज्यश्री की सेवा मे ही थे। अपने अन्तिम समय मे पूज्यश्री ने अपना क्रियोद्धार आदि का भार आपके समर्थ कंधों पर रक्खा। उस समय आप ही सब से योग्य उत्तराधिकारी थे।

इन्दलपुरा में शेपकाल पूर्ण करके बरहानपुर श्रीसंघ की चातुर्मास की प्रार्थना स्वीकार कर आप वहाँ पधारे। ठाणा ३ से वहीं चौमासा हुआ। अनेक सुलभबोधि मनुष्यों को प्रतिबोध की प्राप्ति हुई और वे आपके परम अनुरागी और कट्टर भक्त बन गये। खूब धर्मध्यान और तपश्चरण हुआ।

चातुर्मास के पश्चात् आपने गुजरात की ओर विहार किया। मार्ग में शुद्ध मार्ग का उपदेश करते हुए आप सूरत पधारे। यहाँ आपके सदुपदेश से श्रीमान कहानजी भाई नामक एक श्रावक को वैराग्य हुआ। उत्कृष्ट भावना से, श्रीसंघ को अनुमति पूर्वक,

---

* देखो पृष्ठ ३८-४१।

उनकी दीक्षा हुई। उनका नाम श्रीकहानजी ऋषि रक्खा गया। उस समय उनकी उम्र लगभग २३ वर्ष की थी।

४---अहमदाबाद में पूज्यश्री धर्मसिंहजी म० का समागम

पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० ठां० ४ से सूरत से विहार कर रास्ते मे छोटे-मोटे अनेक क्षेत्रो का स्पर्श करते हुए अहमदाबाद पधारे। पूज्यश्री धर्मसिंहजी म० वहीं विराजमान थे। उन महा: पुरुष से आज्ञा लेकर पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० ठाणा ४ उसी स्थान पर विराजे जहाँ वे विराजमान थे।

पूज्यश्री धर्मसिंहजी महाराज को पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० ने वन्दना नमस्कार कर सुख शान्ति की पृच्छा की। प्रेमपूर्वक पारस्परिक वार्त्तालाप हुआ। पूज्यश्री धर्मसिंहजी म. ने जब सम्मिलित आहार-पानी करने की इच्छा दर्शाई तो पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. ने फरमाया-कोई प्रतिबन्ध नहीं है, परन्तु एक बात सुनकर मुझे शंका उत्पन्न हुई है। उसके विषय मे वार्त्तालाप करने के पश्चात् आहार-पानी सम्मिलित किया जाय तो उचित होगा। आपकी क्या सम्मति है?

आखिर यही निर्णय हुआ। दोनो महानुभावों ने अलग-अलग आहार किया।

अहमदाबाद में पूज्यश्री के पदार्पण का समाचार पाकर अनेक श्रावक और श्राविकाएँ दर्शनार्थ उपस्थित हुए। उस समय बहुत से श्रावको ने आपसे आयुष्य के संबंध मे प्रश्न किया।

५---आयुष्य संबंधी प्रश्न का उत्तर

पूज्यश्री धर्मसिंहजी म. की यह धारणा थी कि अकाल में

आयुष्य नहीं टूटता। यह धारणा शास्त्रों से भी और परम्परा से भी प्रतिकूल थी। अतएव अहमदाबाद के श्रावको ने पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. से आयु संबंधी प्रश्न करके समाधान प्राप्त करना चाहा। पूज्यश्री ने श्रीभगवतीसूत्र का ७२ आलापक (निधत्त, निकाचित आयुष्य कर्म आश्रित) निकाल कर श्रावकों को दिखलाया। श्री समवायांग सूत्र के अनुसार आयु कर्म का आकर्षण बतलाया। इसी प्रकार प्रज्ञापना सूत्र और अन्तकृत् दशांग सूत्र के प्रमाण देकर आयुष्य कर्म टूटने संबंधी प्रश्न का समाधान किया। पूज्यश्री के समाधान से श्रावको को सन्तोष हुआ और उनकी शंका दूर हो गई।

६---आठ कोटि--छह कोटि सामायिक--चर्चा

श्रावकों ने पूज्यश्री से दूसरा प्रश्न सामायिक के विषय में किया। श्रावक की सामायिक आठ कोटि से होती है या छह कोटि से ? यह प्रश्न भी मतभेद का विषय बना हुआ था। इस विषय में पूज्यश्री ने फरमाया कि श्रीभगवती सूत्र में ४९ भांगो में से २३ वें भांगे से, अर्थात् दो करण तीन योग से श्रावक को सामायिक करने का कथन है। अतीत काल के अनन्त तीर्थंकरों ने ऐसा ही बतलाया है वर्त्तमान मे संख्यात तीर्थंकर बतलाते हैं और आगामी काल में अनन्त तीर्थंकर बतलाएँगे। दो करण से अधिक से श्रावक सामायिक नहीं कर सकता और न तीन योग से कम-बढ़से ही कर सकता है। यह विधिवाद सूत्र है।

पूज्यश्री के इस उत्तर से श्रावक संदेह में पड़ गये।

दूसरे दिन श्रावकों ने पूज्यश्री धर्मसिंहजी महाराज से प्रश्न किया—पूज्यश्री ! भगवान् महावीर स्वामी के एक लाख, उनसठ हजार श्रावक हुए। आलंभिया नगरी के, तुङ्गिया नगरी के और

श्रावस्ती नगरी के श्रावकों का शास्त्र मे वर्णन आया है। उनमें से किसी भी श्रावक ने आठ कोटि से सामायिक की, ऐसा किसी भी शास्त्र मे उल्लेख है? भगवान् महावीर स्वामी ने आनन्द आदि दस श्रावको को उपदेश फर्माया है। उसमे कहीं आठ कोटि से सामायिक करने का उपदेश है? हो तो कृपा कर शास्त्र का पाठ बतलाइए।

यह प्रश्न सुनकर पूज्यश्री धर्मसिंहजी महाराज विचार में पड़ गये। श्रावकों को कोई समुचित उत्तर नहीं मिला। वे वन्दना नमस्कार किये बिना ही अपने-अपने स्थान पर चले गये।

७—पूज्य युगल का वार्त्तालाप

इसी अवसर पर दोनों पूज्य महानुभावो के बीच भी इन्हीं दो विषयो पर वार्त्तालाप हुआ। पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० ने प्रश्न किया—किसी भी प्रमाणभूत आगम में ऐसा उल्लेख हो तो बतलाइए कि जो आयुष्य का टूटना न माने वह सम्यग्दृष्टि है और टूटना मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है? तथा जो आठ भांगो से श्रावक की सामायिक मानता है, वही सम्यग्दृष्टि है और जो छह भांगों से मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है?

उस समय पूज्यश्री धर्मसिंहजी म० के एक शिष्य मुनिश्री अमीपालजी ने कहा—'सिद्धान्त मे ऐसा पाठ कहीं नहीं है।'

तब पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. ने फर्माया—तो ऐसा मानना और प्ररूपणा करना दोष ठहराइए।

पूज्यश्री धर्मसिंहजी म. उस समय भी विचार में ही पड़े रहे। बहुत रात्रि व्यतीत हो गई। आखिर तक कोई उत्तर न मिला। तब प्रभात काल मे प्रतिक्रमण और प्रतिलेखन करके पूज्य श्री सोमजी

ऋषिजी म. ने प्रस्थान करने के लिए कमर बाँधी और फर्माया-'इतना उद्यम किया सो सब निष्फल हुआ। (सघलो पलिमंथन थयो.) मैंने आपश्री को वन्दना की, वह भी निरर्थक गई।' इसके पश्चात् पूज्य श्री वहाँ से रवाना होकर दूसरे स्थानक में जाकर उतरे।

पूज्य श्री धर्मसिंहजी म के गुरुभ्राता मुनि श्री अमीपालजी और श्रीपालजी के चित्त पर इस चर्चा का गहरा प्रभाव पड़ा। दोनो ने परस्पर में विचार-विनिमय किया और पूज्यश्री से कहा—स्वामिन्! हम आपसे एक वचन माँगते हैं। आप देना स्वीकार करें तो पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० को यहाँ बुला लावें।

पूज्यश्री-आप क्या कहना चाहते है ?

श्री अमीपालजी-पूज्य सोमजी ऋषिजी म. कहते हैं कि आगम मे ऐसे पाठ कहीं नहीं हैं। अतएव आपश्री अतीत काल की प्ररूपणा के लिए मिच्छा मि दुक्कडं' दें और आगामी काल में ऐसी प्ररूपणा न करने का वचन दें। इससे आपकी शोभा बढ़ेगी।

पूज्यश्री—ऐसा कौन मूर्ख होगा जो थूक कर निगलेगा ?

यह उत्तर सुनकर उक्त दोनों मुनियों को घोर निराशा हुई। परिणाम स्वरूप दोनो मुनि पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. की सेवा मे पहुँचे और बोले-स्वामिन्! हमें आपकी प्ररूपणा शास्त्र सम्मत प्रतीत हुई है।

पूज्यश्री—आपने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है, जो खोटी वस्तु त्याग कर अलग हो गए।

दोनों मुनि—स्वामिन्! अब हम आपके शिष्य है और आप हमारे गुरु है।

पूज्यश्री—यह जिन-मार्ग की रीति है। आपको न्यायमार्ग प्रगम्या अर्थात् जँच गया।

८—प्रभाव में वृद्धि

मुनिश्री अमीपालजी और श्रीपालजी, पूज्यश्री धर्मसिंहजी से पृथक् होकर पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. के शिष्य बन गए। इस घटना से पूज्यश्री धर्मसिंहजी म. की प्रतिष्ठा को काफी धक्का लगा। इसके विपरीत पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. की प्रतिष्ठा में और प्रभाव मे वृद्धि हुई। बहुत से श्रावक भी इसी पक्ष मे आ मिले। अतएव श्रावको मे आपस मे फूट उत्पन्न हो गई। प्रायः गुजराती श्रावकों ने ग्रहण किया हुआ पक्ष नहीं छोड़ा। उन्होंने यही कहा—हमारे गुरुजी जो कहते है, वह सत्य है।

बात यहीं समाप्त नहीं हुई। इसके बाद कुंवरजी गच्छ से, जो लौंकागच्छ की ही एक शाखा थी, निकले हुए ऋषि प्रेमजी, बड़े हरजी और छोटे हरजी म. भी पूज्यश्री धर्मसिंहजी म. को छोड़ कर पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. की आज्ञा मे विचरने लगे। यह तीनो मुनि पूज्यश्री धर्मसिंहजी म. के गुरुभाई थे।

श्रीजीवाजी ऋषि भी मारवाड़ के नागौरी लौंकागच्छ का परित्याग करके और पुनः संयम अंगीकार करके पूज्यश्री की आज्ञा में विचरने लगे। मेड़ता (मारवाड़) निवासी, वीसा पोरवाड़ जातीय श्रीलालचंदजी ने श्रीजीवाजी ऋषि से संयम ग्रहण किया। मुनिश्री लालचंदजी म. जब पढ़ कर तैय्यार हुए तो श्रीजीवाजी म. ने कहा—तुम गुजरात मे जाओ और पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. की आज्ञा प्राप्त करो। मुनिश्री लालचंदजी साधुजी के साथ विहार करके पूज्य सोमजी ऋषिजी म. की सेवा मे पहुँचे और उन्हीं की आज्ञा मे विचरने लगे।

श्रीहरदासजी म. लाहौर में उत्तरार्द्ध लौंकागच्छ का परित्याग करके पृथक् हुए। उन्होने पुनः दीक्षा ग्रहण की। उन्होने सुना कि गुजरात में शुद्ध संयम मार्ग मे प्रवृत्ति करने वाले सन्त मुनिराज विचरते हैं। उन्हें भी महापुरुषों की सेवा में रह कर विचरने की अभिलाषा हुई। अतएव वे भी गुजरात की ओर पधारे और अहमदाबाद पहुँचे। पहले पूज्य श्री धर्मसिंहजी महाराज के स्थानक में ठहरे; किन्तु श्रद्धा संबंधो विचार भेद होने के कारण वहाँ से अलग होकर पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी म. के समीप आये। चित्त का समाधान हुआ। तब पूज्य श्री की आज्ञा अंगीकार करके बोले-स्वामिन्! आप हमारे गुरुजी है, मैं आपका शिष्य हूँ। ❀

उन्हीं दिनों श्री गोधाजी म. गच्छ का त्याग कर और पुनः संयम धारण करके निकले और पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित होकर आपश्री की आज्ञा मे ही विचरने लगे। उनके शिष्य श्रीपरशुरामजी भी आप श्री की सेवा मे आ पहुँचे। आहार-पानी शामिल हुआ। आप दोनो ने पूज्य श्री की आज्ञा लेकर विहार किया।

६—व्यापक प्रचार

इन घटनाओं से जान पड़ता है कि परम पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म. की घोर तपश्चर्या और बलि अपना काम करने लगी थी। पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी म. की विद्वत्ता और उत्कृष्ट चारित्र-निष्ठा की प्रख्याति दूर-दूर तक फैल गई थो। राजस्थान और सुदूर पंजाब तक आपके यश का सौरभ व्याप्त हो चुका था। यही कारण है कि अब आपकी आज्ञा मे विचरने वाले मुनियों की संख्या में

❀ कहीं-कहीं ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि श्रीहरदासजी म. ने पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी म. के पास पुनः दीक्षा ग्रहण की थी।

पर्याप्त वृद्धि हो चुकी थी। आप के नेतृत्व में एक नवीन युग का निर्माण हो रहा था। पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म. का बोया हुआ बीज, वृक्ष का रूप धारण करके अपने फल देने लगा था। पूज्य सोमजी ऋषिजी म. क्रियोद्धारक सन्तों के केन्द्र बन गए थे। आपसे बहुतों को प्रेरणा मिल रही थी। आपके नेतृत्व मे क्रियोद्धारक सन्तों का बल और प्रभाव बढ़ता ही चला जा रहा था।

इस प्रकार जब पूज्य श्री की आज्ञा में बहुसंख्यक सन्त आ गये तो दीर्घदृष्टि पूज्य श्री ने अपने मिशन का फैलाव करने का विचार किया और विद्वान् सन्तों को विभिन्न प्रान्तों एवं विभिन्न क्षेत्रों में भेजकर जिनशासन की प्रभावना करने की योजना बनाई।

इस योजना के अनुसार पं० मुनिश्री अमीपालजी और श्रीपालजी को दिल्ली और आगरा की ओर विहार करने का आदेश दिया। शास्त्रवेत्ता पं० मुनिश्री कहानजी ऋषिजी म० को मालवा प्रान्त मे विचरने की आज्ञा दी।

मुनिश्री गिरधरलालजी और श्रीमाणकचन्दजी म० भी फ़ेंटावन्द एक पात्र से निकले तथा स्वतः संयम ग्रहण करके विचरने लगे। श्रीगिरधरलालजी म० ने पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० से बहुत से शास्त्र पढ़े, वांचन किया और व्याकरण सीखा। तत्पश्चात् आपने भी पूज्यश्री की आज्ञा लेकर विहार किया।

१०—अन्य मुनियों का आगमन

जिन त्यागप्रिय महात्माओं की संयम के प्रति विशेष अभिरुचि थी और जो आत्मकल्याण के लिए जिन प्ररूपित शुद्ध संयम मार्ग का अवलम्बन करना चाहते थे, उनमे अधिकांश ऐसे थे जो यतियो के प्रबल वर्चस्व का सामना करने मे हिचकते थे। यतियों

के पास बड़ी शक्ति थी। इसके अतिरिक्त वे जघन्य अत्याचार करने में भी संकोच नहीं करते थे। यतियों के विरुद्ध धर्म की प्ररूपणा करना सिंह की माद में घुसकर उससे लड़ने के समान खतरनाक था। ऐसी स्थिति में अनेक महात्मा मन ही मन में क्रियोद्धार की बात सोच कर रह जाते थे। सामने आने की हिम्मत नहीं करते थे। परन्तु पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० ने भयानक से भयानक से खतरे उठाने का निश्चय करके क्रियोद्धार का बीड़ा उठाया। यद्यपि उन्हे इस पावन उद्देश्य के लिए प्राणों का भी परित्याग करना पड़ा, उनके शिष्य को तलवार के घाट उतरना पड़ा, कारागार भोगना पड़ा, फिर भी 'प्रारभ्य उत्तमजना न परित्यजन्ति' अर्थात् उत्तम पुरुष प्रारम्भ किये हुए शुभ कार्य को विघ्नो के भय से कदापि नहीं त्यागते, इस कथन के अनुसार वे अपनी अन्तिम श्वास तक अपने पवित्र उद्देश्य की सफलता के लिए कार्य करते ही रहे। उनके पश्चात् सौभाग्य से पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी म. भी उन्हीं के चरण- चिह्नो पर निर्भीकता के साथ अग्रसर होते गये। आपने क्रियोद्धार के कंटकाकीर्ण पथ को निष्कंटक बना दिया। यतियों के अत्याचारी वर्चस्व को कम कर दिया। जो महात्मा हिचक रहे थे, उनकी हिचक हट गई। उनमें नवीन साहस का उदय हुआ। वहुसंख्यक और प्रभावशाली श्रावक प्रतिवोध पाकर आपके अनुयायी बन गये। अतएव एक के वाद अनेक महात्मा पूज्यश्री की चरण--शरण मे आने लगे और पूज्यश्री को ही अपना अनन्य धर्मनेता स्वीकार करके उनकी आज्ञा में विचरने लगे।

ऐसे ही संयम प्रेमी और आत्म कल्याण के अभिलाषी मुनियों मे श्रीमान् प्रेमजी, श्रीधरमसी, श्रीहरदासजी (दूसरे,) श्रीजीवोजी, श्रीशंकरजो, श्रीमनजी, श्रीकेशवजी, श्रीलघुजी श्रीहर-दासजी, श्रीसमरथजी, श्रीतोडरमलजी, श्रीमोघोजी, श्रीमोहनजी,

श्रीसदानन्दजी श्रीसंखजी थे। यह पन्द्रह महात्मा भी यति-गच्छ से निकल कर पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए। आपका उच्च और पवित्र आचार-विचार देख कर आपके शिष्य बने और आपकी आज्ञा में विचरने लगे। इन मुनियो के सम्मिलित होने से आपके सम्प्रदाय की और भी वृद्धि हो गई तथा शासन-प्रभावना के व्यापक बनते हुए उद्देश्य को अधिक वेग मिला।

११—तपश्चर्या

पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. भी अपने गुरु के समान निरन्तर बेले बेले की तपश्चर्या करते थे। सर्दी और गर्मी की आतापना लेते थे। समय-समय पर प्रकीर्णक तपस्या भी करते थे। सच तो यह है कि आपका समग्र जीवन और जीवन का कार्य कलाप ही तपोमय था। शुद्ध संयम का पालन करने से तथा ज्ञान-ध्यान मे सतत लीन रहने से सर्वत्र आपकी कीर्त्ति का प्रसार हो गया था। अपने समय के आप ही शुद्धाचार के मेरुदंड बन गये थे। आपके प्रभाव से क्रियोद्धार का कार्य व्यापक बना और जैन समाज पर आपकी महनीयता की गहरी छाप लग गई।

१२—अन्तिम जीवन

तेईस वर्ष के नवयौवन-काल में भागवती दीक्षा ग्रहण करके और सत्ताईस वर्ष तक संयम का पालन करके. अनेकानेक कठिनाइयों तथा परीषहो को सहन करते हुए और जगत् को आत्महित का पथ प्रदर्शित करते हुए ५० वर्ष की आयु मे ही आप समाधि पूर्वक आयु को पूर्ण कर स्वर्ग वासी बने। आपके बाद पूज्य पदवी श्रीकहानजी ऋषिजी म. को प्रदान की गई।

पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० के आज्ञानुवर्त्ती

श्रीगोधाजी म० और उनकी परम्परा

श्रीकेशवजी यतिगच्छ में विचरने वाले श्रीगोधाजी गच्छ को छोड़ कर पृथक् हुए और पुनः संयम धारण करके पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० की आज्ञा में विचरने लगे। आपके शिष्यश्री परशरामजी म० भी गच्छ त्याग करके पूज्यश्री की सेवा में आ गये। आपने भी पूज्यश्री का शिष्यत्व स्वीकार किया और उनकी आज्ञा में विचरने लगे।

पूज्यश्री परशरामजी म० की परम्परा

आपके तीन शिष्य हुए—श्रीखेतसीजी, श्रीखेमसीजी और श्रीलोकमलजी म०। वि० सं० १८१० की वैशाख शु० ५, मंगलवार को पंचेवर ग्राम में चार सम्प्रदायों का जो संगठन हुआ था, उसमें पूज्यश्री परशरामजी म० की परम्परा में से श्रीखेतसीजी म० तथा श्रीखेमसीजी म० पधारे थे। महासती श्रीकेसरजी म० भी उपस्थित थे। वहाँ सम्मिलित हुए मुनिराजों ने कतिपय बोलों की मर्यादा कायम की थी।

कोटा—सम्प्रदाय की परम्परा

श्रीलोकमलजी म० से श्रीनाहरमलजी म० श्रीदौलतरामजी म०
श्रीमयारामजी म० श्रीलालचन्द्रजी म०

श्रीमयारामजी म०	श्रीलालचन्द्रजी म०
१ श्रीफतेचंदजी म०	१ पू० श्रीहुक्मीचंदजी म०
२ पू. श्रीछगनलालजी म०	२ ,, श्रीशिवलालजी म०
३ श्रीरोड़मलजी म०	३ ,, श्रीउदयसागरजी म०
४ श्रीप्रेमराजजी म०	४ ,, श्रीचौथमलजी म०
५ श्रीतपस्वी गणेशलालजी म.	

१ पू. श्रीश्रीलालजी म.	१ पू. श्रीमन्नालालजी म०
२ पू. श्रीजवाहरलालजी म.	२ पू. श्रीखूबचन्दजी म०
३ पू. श्रीगणेशलालजी म. (वर्त्तमान मे श्रमणसंघ के उपाचार्यजी महाराज)	३ पू. श्रीसहस्रमलजी म०

पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. की पंजाबशाखा

पूज्यश्री हरदास ऋषिजी म. और उनकी परम्परा

श्रीहरदासजी म. ने लाहौरी उत्तरार्द्ध लौकागच्छीय यतियों मे दीक्षा धारण की थी। मगर आप सच्चे मुमुक्षु थे। यतियों के आचार--विचार मे घोर शिथिलता व्याप्त थी और उस आचार--विचार से मोक्ष की आराधना का कुछ भी संबंध नही रह गया था। श्रीहरदासजी म. आगमों के तलस्पर्शी विद्वान् थे। अतएव आपको

विचार हुआ कि मैंने ज्ञानोपार्जन किया है और गृहस्थी का परित्याग भी किया है, परन्तु जिनप्ररूपित शुद्ध संयम का पालन किये बिना यह सब निरर्थक है। इस प्रकार विचार करके आप गच्छ से पृथक् हो गए। तत्पश्चात् आपको पता लगा कि गुजरात में शुद्ध संयम-मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले सन्त विचर रहे हैं, अतएव मुझे भी उन्हीं की आज्ञा, मे विचरना चाहिए। यह सोचकर आप अहम.-दाबाद पधारे और पूज्यश्री धर्मसिंहजी म के स्थान पर ठहरे। मगर आचार--गोचर संबंधी समाधान न होने से आप पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. की सेवा मे आ गये। आपने पूज्यश्री की क्रिया देखी और आचार-विचार संबंधी पृच्छा की। आपके चित्त का पूर्ण रूप से समाधान हो गया। तब आप पूज्यश्री की आज्ञा मे विचरने लगे।*

---

*सोमजी ऋषिनी समागम थयो। बन्ने माहोमाहे खूब धर्म चर्चा थई। तेमां हरदासजी ने खूब संतोष थवाथी तेओ तेमना शिष्य थया, अर्थात् तेमने शुद्ध दीक्षा लीधी। केटलाक बखत गुरु साथे रही ज्ञान ग्रहण कर्या, पछी तेओ पंजाब तरफ गया।—प्रभुवीर पट्टावली पृष्ठ २०८

पहिला धरमसी रिखने स्थानक आवि उतरचा। केतलाक दिन तिहां रहा। पछे सोमजी अणगारने स्थानक आवी उतरचा। तिवारे लोके विचार कीधो जो पारसी नवेसपुरा छे, तथा व्याकरणना जाण छे, सिद्धान्तना पारगामी छे, वरती (वृत्ति) टीका, भास, चूरण, निरजुक्तिना जाण छे, ए पारखो करसे ते आपणे एक बोल पछे माहोमाहि विहुनी आचार-गोचरनी पृषा करीने कहेवा लाग्यातमे गच्छ छोडयो पण गच्छनी रूढ छांडी नथी। इत्यादि घणा बोलनो आचार-गोचरमा फेर देखाडीने धरमसी रख (ऋषि) ने वोसरावीने सोमजी अणगारनी आगन्या अंगीकार करी। हस्त लिखित पट्टावली पृष्ठ ११

श्रीहरदासजी महाराज ने यति-अवस्था में ही संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। शास्त्रीय ज्ञान भी अच्छा था। कुछ काल तक आप पूज्यश्री की सेवा में रहे। तदनन्तर पूज्यश्री की आज्ञा प्राप्त करके आपने पंजाब की ओर विहार किया।

पंजाब पहुँच कर आपने शुद्ध संयम की आराधना करते हुए और जैनधर्म के शुद्ध स्वरूप का प्रचार करते हुए ऋषि सम्प्रदाय के महापुरुष पूज्यश्रीलवजी ऋषिजी म तथा अपने गुरुवर्य पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. के यश-सौरभ को चारो ओर प्रसारित किया। क्रमशः आपके सम्प्रदाय का विस्तार होता चला गया। ऋषिसम्प्रदाय की इस पंजाबी शाखा मे अनेक महान् विभूतियाँ चमकीं और आज भी चमक रही हैं। उन सब मे एक महान् विभूति है-पूज्यश्री आत्मारामजी महाराज। आप वर्त्तमान श्रमणसंघ के आचार्य पद पर आसीन हैं। शास्त्र--ज्ञान के सागर है। आपने जैन साहित्य की महत्त्वपूर्ण सेवा की है।

पूज्यश्री हरदासजी म. की परम्परा

पूज्यश्री हरदासजी महाराज के पश्चात् श्रीवृन्दावनलालजी महाराज आपके पाट पर विराजे थे। तत्पश्चात् श्रीभवानीदासजी म. ने उस पाट को सुशोभित किया। आपके अनन्तर पूज्यश्री मलुकचंदजी म. बड़े प्रसिद्ध महापुरुष हुए। सं. १८१० की वैशाख शुक्ला ५ मंगलवार के दिन पंचेवर ग्राम में चार सम्प्रदायो का जो संगठन हुआ था, उस समय श्रीहरदासजी म. के परिवार मे से आप और श्रीमनसारामजी म. तथा महासती श्रीपूलाजी म उपस्थित थे। वहाँ कई बोलों की मर्यादा बाँधी गई और सब का आहार-पानी सम्मिलित हुआ।

पूज्यश्री मलुकचंदजी म. के पाट पर पूज्यश्री महासिंहजी म. विराजमान हुए। गृहास्थावस्था में आप ऋद्धिसम्पन्न और बड़े परिवार के धनी थे। संयम ग्रहण करके तप और ज्ञान की आराधना में पराक्रम करते हुए आप आचार्य पद पर आरूढ़ हुए। पंजाब प्रान्त के सन्तों और सतियों में आपने सुन्दर अनुशासन स्थापित करके निभाया। आप वि. सं. १८६१ में संथारा ग्रहण करके स्वर्गवासी हुए।

आपश्री के पाट पर पूज्यश्री कुशालचंदजी म. आसीन हुए। तत्पश्चात् तपस्वी श्रीछजमलजी म. विराजे। तपस्वीजी के स्वर्गवास के बाद पण्डितरत्न ऋषि श्रीरामलालजी म. ने पाट को अलंकृत किया। आप अच्छे पंडित और उच्च कोटि के विद्वान् थे।

प्रतापी पूज्यश्री अमरसिंहजी महाराज

आप अमृतसर-निवासी, तातेड़ गोत्रीय ओसवाल थे। आपने वैशाख कृष्णा द्वितीया, सं. १८९८ मे दीक्षा अंगीकार की। आप अत्यन्त भाग्यवान् सन्त थे। तपस्वी थे। शास्त्रीय ज्ञान तथा अनेक भाषाओं और विद्याओं के ज्ञाता थे। आपके समय में संतों और सतियों का अच्छा खासा परिवार था। भारत की राजधानी दिल्ली में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये गये थे। सं. १९१३ की मिति वैशाख विदि ८ के दिन, मध्याह्न मे, करीब सात प्रहर का संथारा करके, अमृतसर मे आप स्वर्गवासी हुए।

पूज्यश्री रामबक्षजी महाराज

आप अलवर-निवासी थे। ओसवाल जाति के लोहड़ा (लोढ़ा) गोत्र मे आपका जन्म हुआ था। आपके वैराग्य की उग्रता का इसीसे अनुमान लगाया जा सकता है कि आपने भर

यौवन में, पच्चीस वर्ष की उम्र में, सजोड़ दीक्षा ली थी। अर्थात् आपकी और आपकी पत्नी की दीक्षा साथ ही हुई। दीक्षा जयपुर में और आचार्यपदवी मलेरकोटले में हुई। संयम की आराधना करते हुए, ३१ वर्ष जितने दीर्घकाल तक आचार्य पद पर विराजमान रह कर आपने ज्येष्ठ कृ. ३ सं. १६३६ के प्रथम प्रहर में संथारा किया। उस अवसर पर करीब ३०-३२ साधु-साध्वियो की उपस्थिति थी। ज्येष्ठ कृ. ६ शुक्रवार के दिन आप स्वर्गवासी हो गए। श्रीमोतीरामजी म. भी उस समय वहीं विराजमान थे।

पूज्यश्री मोतीरामजी महाराज

आप पंजाब प्रान्त के निवासी थे। सं० १६३६ में आचार्य-पद पर विराजमान हुए। आपके समय में अनेक विद्वान् सन्त विचरते थे। महासतियो में श्रीपार्वतीजी म० बड़ी विदुषी थी। आपने अनेक स्थानों पर आर्यसमाजियों आदि से शास्त्रार्थ करके जिनशासन की प्रभावना की थी। सन्त-सतियो का परिवार भी खूब विशाल था। आपका स्वर्गवास सं० १६५८ मे हुआ।

पूज्यश्री सोहनलालजी महाराज

आप गादिया गोत्रीय ओसवाल जाति के महामूल्य रत्न थे। पसरूर में रहते थे। उत्कृष्ट वैराग्य से प्रेरित होकर, अमृतसर में पूज्यश्री अमरसिंहजी म० के समीप सं० १६३३ की मार्गशीर्ष शुक्ला ५ के दिन आपने अपने तीन साथियों के साथ दीक्षा ग्रहण की। श्रीधर्मचन्द्रजी म० की नेश्राय में शिष्य हुए। सं० १६५१ की चैत्र कृष्णा ११ के दिन लुधियाना से करीब ४० सन्तों और २६ सतियों की उपस्थिति में आप युवाचार्य बनाये गये। सात वर्ष बाद सं० १६५८ में, सि. मार्गशीर्ष शु० ६ गुरुवार को पटियाला में श्री

लालचन्दजी म० श्रीगणपतरायजी म० आदि ३१ के लगभग साधु-साध्वियों की उपस्थिति मे. चतुर्विध संघ ने आपको आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया। ज्योतिर्विद् पं. मुनि श्रीदौलतऋषिजी म. और आपके बीच शास्त्रीय वीतराग चर्चा और प्रश्नोत्तर बहुत होते रहते थे। दोनों महापुरुष इन प्रश्नोत्तरों से बहुत सन्तुष्ट हुए। आपकी ओर से पं. मुनि श्रीदौलतऋषिजी म. को पंजाब मे पधारने की सूचना भी प्राप्त हुई। पं. मुनिश्री की भावना भी उधर पधारने की थी, परन्तु काल परिपक्व न होने से पधारना और समागम न हो सका। पूज्यश्री ने अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर और दुर्व्यसनों से छुड़ा कर धर्म मे दृढ़ बनाया। आपके समय मे ७२ मुनियों और ६३ सतियो का परिवार था। आप बड़े ही गंभीर सरलस्वभाव और तपस्वी थे। आपका स्वर्गवास मि. आषाढ़ शु० ६ सं. १६६२ में अमृतसर मे हुआ।

पूज्यश्री काशीरामजी महाराज

जन्मस्थान पसरूर (स्यालकोट) था। सं. १६६० की मार्गशीर्ष कृ. ७ को कांधला मे पूज्यश्री सोहनलालजी म. के मुखारविन्द से दीक्षा हुई। आपके साथ दो वैरागी और थे। तीनो की साथ-साथ दीक्षा हुई। दीक्षा के समय आपकी उम्र २८ वर्ष की थी। फाल्गुन शुक्ला षष्ठी सं. १६६६ मे आप युवाचार्यपद से सुशोभित किये गये। सं. १६६२ मे फाल्गुन शुक्ला द्वितीया के दिन होशयारपुर नगर में आचार्यपद प्रदान किया गया। पदवीदान समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ। उस समय करीब ४५ मुख्य-मुख्य सन्तों एवं सतियों की उपस्थिति थी। पंजाब और देहली प्रान्त तो आपके मुख्य विहारक्षेत्र थे ही, आपने मारवाड़, मेवाड़, मालवा, दक्षिण, बम्बई आदि प्रान्तों में भी पदार्पण किया और धर्म का प्रचार

किया। आपका स्वतंत्र जीवनचरित प्रकाशित हो चुका है। विशेष जिज्ञासु उसे पढ़कर पूज्यश्री के जीवन की ब्यौरेवार घटनाएँ जान सकते है। संघ की एकता के लिए आप निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे। अजमेर के साधुसम्मेलन मे तथा घाटकोपर (बम्बई) में आपने संघ ऐक्य पर विशेष बल दिया था। आपके सदुपदेश से अनेक भव्य जीव धर्मनिष्ठ बने।

ज्येष्ठ कृ० अष्टमी सं० २००२ के दिन अम्बाला में आप इस नश्वर देह का त्याग करके स्वर्गवासी हुए। आपका समग्र संयम-जीवन बड़ा ही प्रेरणाप्रद रहा।

जैनधर्म दिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीवर्द्धमान स्थानकवासी श्रमणसंघ के आचार्य श्रीआत्मारामजी महाराज

क्षत्रिय कुलोत्पन्न चौपड़ा गोत्रीय श्रीमनसारामजी की भाग्यशालिनी धर्मपत्नी श्रीमती परमेश्वरीजी की कुक्षि से आपका प्रादुर्भाव हुआ। बनूड़ नगर में स्थविर पदविभूषित श्री गणपतरायजी म. ने संवत् १९५१ में आपको भागवती दीक्षा प्रदान करके श्री शालिग्रामजी म. की नेश्राय मे शिष्य किया। आपने आचार्य श्री मोतीरामजी म. द्वारा शास्त्रों का अभ्यास किया। थोड़े ही दिनों में आप जैनागमों के पारंगत ज्ञाता बन गये। आपने जैनेतर शास्त्रों का भी अध्ययन किया। उर्दू, फारसी, संस्कृत और प्राकृत भाषाओं पर अच्छा अधिकार प्राप्त किया। इस प्रकार आप व्यापक पाण्डित्य प्राप्त करके प्रकाण्ड विद्वान् बन गये।

उच्च श्रेणी की सर्वतोमुखी विद्वत्ता देख कर श्रीसंघ ने आपको उपाध्याय पद से विभूषित किया। आपने अनेक जैनागमो का

अनुवाद किया है और उन पर हिन्दी भाषा में टीकाएँ लिखी हैं। करीब ६० स्वतंत्र ग्रंथो के भी आप लेखक हैं।

सं. १९९३ में पूज्य श्रीलालचंदजी म. की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर आप 'साहित्यरत्न' पदवी से अलंकृत किये गये। आपकी वाक् शक्ति दिव्य और अनिर्वचनीय चमत्कार से युक्त है। इस प्रकार आप उच्च कोटि के वक्ता और उच्च कोटि के लेखक हैं। आपके प्रवचन शास्त्र संगत और मार्मिक होते है।

आपके असाधारण व्यक्तित्व, गंभीर ज्ञान एवं संयम आदि सद्गुणों से आकृष्ट होकर भारत के मुख्य-मुख्य नेता आपके दर्शनार्थ उपस्थित हो चुके हैं। पं. जवाहरलालजी नेहरू अपने प्रश्नों का संतोषजनक समाधान पाकर बड़े प्रसन्न हुए थे।

सं. २००९ में एक आन्दोलन ने जोर पकड़ा। आन्दोलन यह था कि भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों मे बिखरे हुए स्थानकवासी जैन संघों का संगठन किया जाय, विभिन्न सम्प्रदायों का एकीकरण किया जाय और एक ही आचार्य की आज्ञा मे समस्त स्थानक. जैन मुनि रहे। एक दिन यह आन्दोलन सफल हो गया। मारवाड़ के सादड़ी नगर में अखिल भारतीय स्था० जैन साधु सम्मेलन हुआ। सभी महान् सन्तों ने एकीकरण की भावना को मूर्त्त स्वरूप प्रदान किया। जब आचार्य के निर्वाचन का प्रश्न उपस्थित हुआ तो सब की दृष्टि आपकी ओर आकर्षित हुई। आप श्रमण संघ के आचार्य चुने गये। वास्तव मे आप महान् आत्मा हैं। श्रमण संघ के मुकट मणि हैं। इस समय आप लुधियाना (पंजाब) मे स्थिरवास से विराजमान है।

पूज्यश्री कहानजी ऋषिजी महाराज

आपकी जन्मभूमि सूरत थी। विक्रम की सत्तरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे आपश्री का जन्म हुआ। आपका नाम श्रीकानजी रक्खा गया।

१—धार्मिक वृत्ति

पूर्वोपार्जित प्रबल पुण्य के उदय से बाल्यावस्था में भी आपका धर्म की ओर विशेष झुकाव था। आपने गृहस्थावस्था में श्रावक के व्रत अंगीकार किये थे। आपको सन्त-समागम की प्रबल रुचि थी। सन्त समागम की अभिरुचि के परिणाम स्वरूप आपको शास्त्रीय ज्ञान की अच्छी प्राप्ति हो गई। आपकी बुद्धि भी निर्मल और विशुद्ध थी। पानी मे तैलबिन्दु के समान विस्तरणशील थी। मेधाशक्ति से सम्पन्न थे। अतएव श्रावक-अवस्था में भी आपने ज्ञानाभ्यास में अच्छा पराक्रम प्रकट किया था। प्रकृति से आप शान्त और गम्भीर थे।

२—वैराग्य का बीज

क्रियोद्धारक महापुरुष पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० ने सं० १७१० मे सूरत मे चातुर्मास किया। उस समय श्रीकानजी व्याख्यान वाणी सुनने के लिए आया करते थे। महापुरुष के मुखारविन्द से जिनवाणी सुनने से और सद्बोध प्राप्त करने से आपको धर्मभावना और अधिक बढ़ गई। उस समय आपने श्रावक के व्रत अंगीकार किये। चातुर्मास भर में आपने धर्मध्यान भी खूब प्राप्त किया। चित्त में विरक्ति उत्पन्न हो गई; किन्तु प्रत्याख्यानावरण कषाय-चारित्र मोहनीय कर्म का उदय होने से संयम ग्रहण करने की सद्भावना सफल न हो सकी।

३—पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० का पदार्पण

पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० बरहानपुर का चौमासा समाप्त करके गुजरात की ओर पधारे तो सूरत में भी आपका पदार्पण हो गया। पूज्यश्री के समागम से चित्त में पड़ा हुआ वैराग्य का बीज विकसित होकर अंकुर के रूप में परिणत हो गया। तब आपने पूज्यश्री से निवेदन किया—गृहस्थी से विमुख होकर और मुनि दीक्षा अंगीकार करके मैं संयम की आराधना करना चाहता हूँ। आपका अनुग्रह हो जाय तो मेरा उद्धार हो जाय मैं जगत् के जंजाल से पृथक् होना चाहता हूँ। आपकी यह कल्याणकर भावना जानकर पूज्यश्री ने फर्माया—हे भव्य, तुम्हारा मनोरथ प्रशस्त है। प्राप्त ज्ञान की यही सफलता है। जब इच्छा हो जिनमार्ग की आराधना कर सकते हो।

४—दीक्षा

काल का परिपाक हो गया। सं. १७१३ के करीब सूरत बंदर में पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. जैसे महापुरुष के मुखारविन्द से श्रीसंघ की उपस्थिति में बहुत समारोह के साथ आपकी दीक्षाविधि सम्पन्न हुई। उस समय आपके शान्त और गंभीर आनन पर वैराग्य की अनूठी आभा दमक रही थी चिरकाल से पोषित वैराग्य भावना को सफल देख कर आपका चित्त भी अत्यन्त प्रफुल्लित हो रहा था।

५—ज्ञानाभ्यास

पूज्यश्री ने देखा कि श्रीकहानजी ऋषि अत्यन्त जिज्ञासु हैं। उनकी ज्ञान की प्यास कभी शान्त ही नहीं होती। साथ ही उनकी बुद्धि भी बहुत निर्मल है और धारणा शक्ति भी अच्छी है। ऐसे

सुपात्र को ज्ञान दान मिलना चाहिए। अतएव पूज्यश्री ने नवदीक्षित मुनिश्री को आगमों का अभ्यास कराना आरंभ कर दिया। मुनिश्री की बुद्धि ऐसी चमत्कारिणी थी कि पूज्यश्री के श्रीमुख से आगम का पाठ या गाथा सुनते ही आप कंठस्थ कर लेते थे। आपके विषय मे परम्परा से यह सुना जाता है कि आपको करीब ४०००० गाथाएँ कंठस्थ थीं। यद्यपि आप व्याकरण, न्याय आदि के भी विद्वान् थे, तथापि आगमों की ओर आपका विशेष झुकाव था।

६—गुरुदेव के साथ अहमदाबाद में

सं. १७१६ में आप पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म. के साथ अहमदाबाद पधारे। उस समय आपका व्याख्यान बहुत प्रभावशाली होता था। व्याख्यान मे बहुसंख्यक जनता उपस्थित होती थी। श्रावक-श्राविकाओ की संख्या हजारो में होती थी।

अहमदाबाद के निकटवर्त्ती सरखेज ग्राम मे श्रीजीवन भाई कालीदास भावसार के सुपुत्र धर्मदासजी थे। वह सदैव पूज्यश्री का और आपका व्याख्यान सुनने आया करते थे। आपश्री के मुखारविन्द से निरयावलिका सूत्र के तीसरे वर्ग का व्याख्यान सुन कर श्रीमान् धरमदासजी के चित्त में वैराग्य भावना जागृत हुई। धरमदासजी ने आपके निकट दीक्षा लेने के भाव दर्शाये; परन्तु आपके और उनके बीच कुछ विचारभेद रहने से दीक्षा न दी जा सकी। तब श्रीधरमदासजी ने सं. १७१६ की आश्विन शु ११ सोमवार के दिन स्वयं ही भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली।

७—मालवा जनपद की ओर विहार

पाठक देख ही चुके हैं कि पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म. का आरंभ किया हुआ क्रियोद्धार का प्रशस्त कार्य पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी

म. के नेतृत्व में पर्याप्त विकास प्राप्त कर चुका था आपकी आज्ञा में विचरने वाले सन्तों की संख्या भी पर्याप्त हो गई थी। उन सन्तों में वहुत-से अत्यन्त योग्य विद्वान्, अनुभवी और चारित्रपरायण थे। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही था कि पूज्यश्री एक सन्त को नेता वनाकर और उनके साथ कुछ सन्त देकर उन्हे विभिन्न प्रान्तों में अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए भेजते, जिससे क्रियोद्धार का कार्य देशव्यापी वन सके। पूज्यश्री ने ऐसा ही किया। पंजाब और संयुक्त-प्रदेश आदि मे ऐसे सन्त भेजे जा चुके थे। मालवा मे प्रचार करने के लिए पण्डितप्रवर मुनिश्री कहानजी ऋषिजी म. चुने गये। आपके साथ कतिपय सन्त देकर पूज्यश्री ने आपको मालवा की ओर विहार करने का आदेश दिया। गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य करके आपने गुजरात से मालवा की तरफ विहार किया।

श्रीमाणकचन्दजी म. भी जिनका उल्लेख पू. श्रीसोमजी ऋषिजी म. के परिचय में किया गया है, आपश्री की सेवा में उपस्थित हो गए। सम्मिलित आहार-पानी करके तथा आपश्री की आज्ञा लेकर मुनिश्री माणकचंदजी ने विहार किया।

पं. र. मुनिश्री कहानजी ऋषिजी म. मालवा में पधार गये। आपने मालवा और मेवाड़ के छोटे-वड़े सभी प्रकार के क्षेत्रों में विचर कर शुद्ध जैनधर्म की खूब प्रभावना की। आप ज्ञान और चारित्र-दोनो के धनी थे। निरन्तर वेले-वेले की तपस्या करते थे। सर्दी-गर्मी की आतापना भी लेते थे।

शुद्ध मार्ग का प्रचार करना उस समय भी सरल नहीं था। तथापि आप अपने गुरुदेवों के आदर्श को सामने रख कर अनेक प्रकार के उपसर्गों और परीषहों को सहन करते हुए निर्भीक भाव से प्रचार करने में अग्रसर हुए। आपने परमपुरुष पूज्य श्रीलवजी ऋषिजी म के कार्य को मध्यभारत में खूब प्रचारित किया।

आप उच्च कोटि के चारित्रसम्पन्न, ज्ञानसम्पन्न, तपोधन और अनुभवी थे। इन गुणों से प्रभावित होकर श्रीसंघ ने पूज्य श्रीलवजी ऋषिजी म. के तीसरे पाट पर आपको ही आसीन किया। वर्त्तमान मे भी मालवा में पूज्य श्रीकहानजी ऋषिजी म. के नाम पर ही ऋषिसम्प्रदाय की ख्याति है। रतलाम, जावरा, मन्दसौर, प्रतापगढ़, इन्दौर, उज्जैन शाजापुर, शुजालपुर, भोपाल आदि क्षेत्रो मे आज भी आपश्री का ही नाम प्रसिद्ध है। ऋषिसम्प्रदाय के सन्तों और सतियो को लोग पूज्य श्रीकहानजीऋषिजी म. के सम्प्रदाय के ही कहते हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आपका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली रहा होगा।

आपके शिष्यों की उपलब्ध नामावली इस प्रकार है:—

(१) श्रीताराऋषिजी म० (२) श्रीरणछोड़ऋषिजी म० (३) श्रीगिरधरऋषिजी म० (४) श्रीमाणकऋषिजी म० (५) श्रीकालू-ऋषिजी म०।

प्रयत्न करने पर भी इन पाँच सन्तों के अतिरिक्त आपके अन्य शिष्यों के नाम नहीं मिल सके। इनमे से श्रीताराऋषिजी म० आपके साथ मालवा प्रान्त में विचरते थे। और श्रीरणछोड़-ऋषिजी म० गुजरात काठियावाड़ में। पूज्यश्री के पश्चात् आप दोनो महानुभावो को भिन्न २ प्रान्तों में पूज्य पदवी प्रदान की गई।

८— अन्तिम-जीवन

पूज्यश्री ने २३ वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा धारण करने के पश्चात् आप अप्रमत्त भाव से ज्ञान और चारित्र की उपासना में संलग्न रहे। आपने परम-पुरुष पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० के प्रारब्ध कार्य को काफी विस्तार दिया और उनके

उत्तराधिकारी-पद का योग्यता के साथ निर्वाह किया। मालवा जैसे दूरवर्त्ती प्रान्त में, जहाँ की भाषा भिन्न थी और रहन-सहन आदि भी भिन्न था, पदार्पण करके अपने सद्गुणों के ही प्रभाव से प्रभूत प्रतिष्ठा उपार्जित की। वीरवाणी की विजय का डंका बजाया और धर्मप्रेमी जनों के हृदय-सिंहासन पर अपना स्थायी स्थान बना लिया। सत्ताईस वर्ष तक संयम का पालन करके और आयु का अन्त सन्निकट आया जानकर समाधि मे मग्न होकर संथारा ग्रहण करके मालवा प्रान्त में ही देहोत्सर्ग किया। काल ने अकाल में ही आपको उठा लिया, पर आपके महान् गुणों की जो महक जन-साधारण के अन्तस्तल तक पहुँच चुकी थी, वह न मिटी, न मिट सकी और मालवा का अतीत का वह महारथी आज भी धर्मप्राण जनों की श्रद्धा का भाजन बना हुआ है।

पूज्यश्री कहानजीऋषिजी महाराज की परम्परा में

पूज्यश्री रणछोड़ऋषिजी म.

आपका उल्लेख पहले किया जा चुका है। आपने पूज्यश्री कहानजी ऋषिजी म. के पावन चरण-कमलों में जैनेन्द्री दीक्षा अंगीकार की थी। आप प्रकृति से विनम्र, गंभोर सरल हृदय सन्त थे। गुरुवर्य की सेवा मे रह कर गंभीर शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया था। आपके वचनामृत का अबाध प्रवाह बहा। उसमें अनेक भव्यजीवों ने अपने सन्ताप का प्रशमन किया और विरक्त होकर संयमी जीवन अंगीकार किया। गुजरात और मालवा आदि प्रान्तों में विचरण करके आपने धर्मप्रचार के कार्य को अग्रसर किया। अनेक जीवों

को कुव्यसनों से छुड़ाकर सन्मार्ग की ओर उन्मुख किया। आपकी शिष्य-सन्तान इस प्रकार है:—

(१) श्रीजुग (जोग) राजऋषिजी म. (२) श्रीरूपऋषिजी म. (३) श्रीधर्मऋषिजी म. (४) श्रीगोविन्दऋषिजी म. (५) श्रीमूलाऋषिजी म. (६) श्रीधर्मदासजी म. (७) पूज्यश्रीतिलोक-ऋषिजी म. (८) पूज्यश्रीमीठाऋषिजी म. (९) श्रीकृष्णाऋषिजी म. (१०) श्रीशामजीऋषिजी म. (११) श्रीशंकरऋषिजी म. (१२) श्रीमोहनऋषिजी म. (१३) श्रीकीकाऋषिजी म. और (१४) श्रीभक्तिऋषिजी महाराज।

सं. १८१० मे पंचेवर ग्राम मे चार सम्प्रदायो का जो संगठन हुआ था, उसमे पूज्यश्रीताराऋषिजी म. के साथ श्रीजोगराजजी (ऋषिजी) श्रीमीठाऋषिजी और श्रीतिलोकऋषिजी महाराज उपस्थित थे।

पूज्यश्री तिलोकऋषिजी म. पूज्यश्रीरणछोड़जी म. के समीप दीक्षित हुए थे। आपके तीन शिष्य हुए–श्रीनाथाऋषिजी म., श्रीदौलत ऋषिजी महाराज, श्रीरणछोड़ऋषिजी म.।

पूज्यश्रीमीठाऋषिजी म. की दीक्षा भी पू.श्रीरणछोड़ऋषिजी म. की सेवा मे हुई थी। आपके चार शिष्य हुए—श्रीकालाऋषिजी म., श्रीशंभुऋषिजी म , श्रीरतनऋषिजी म., श्रीजेठाऋषिजी म.। संभव है. ऊपर की नामावलो परिपूर्ण न हो और कुछ नाम छूट गये हो, जो हमें उपलब्ध नहीं हो सके है।

पूज्यश्री ताराऋषिजी महाराज

(खम्भात-शाखा)

आपने शास्त्रवेत्ता पूज्यश्री कहानजी ऋषिजी म० के मुख-चन्द्र से झरे हुए उपदेशामृत का पान करके संसार को असार समझा। विरक्त भाव से दीक्षित हुए। तत्पश्चात् ज्ञान, ध्यान और तप के अभ्यास मे आप लीन रहने लगे। अल्पकाल मे अच्छा आगमज्ञान सम्पादित कर लिया। सन्तजनोचित गम्भीरंता, नम्रता और भद्रता आपकी प्रकृति में थी।

पूज्यश्री कहानजी ऋपिजी म० के स्वर्गारोहण के अनन्तर श्रीसंघ ने आपको सुयोग्य समझकर पूज्य-पदवी प्रदान की। आपने मालवा, मेवाड़ और गुजरात काठियावाड़ में अनेक परी-षहों एवं उपसर्गों को सहन करके विहार किया और जनता को कल्याणकर धर्म का मर्म समझाया। तत्पश्चात् प्रथम क्रियोद्धारक पूज्यश्री लवजी ऋपिजी महाराज ने जहाँ क्रियोद्धार का आरम्भ किया था, उस क्षेत्र में अर्थात खम्भात में पधारे। उधर के अनेक क्षेत्रों मे विचरण करके आपने धर्म की खूब प्रभा वना की। और पूज्यश्री लवजी ऋपिजी म० द्वारा रोपे हुए कल्पवृक्ष को हरा-भरा रक्खा।

आपकी वाणी मे अद्भुत आकर्पण-शक्ति थी। अनूठा प्रभाव था। उसे सुनकर श्रोताओ की आत्मा जाग उठती थी। यही कारण था कि आपके करीव २२ शिष्य हुए। आपकी शिष्य-मण्डली में दो महानुभाव तो विशेप रूप से विद्वान् और महा-प्रभावक हुए। उनमे एक थे श्रीकालाऋपिजी म०, जिन्होने मालवा प्रान्त मे पूज्यश्री कहानजी ऋपिजी म० का शुभ नाम चहुं ओर

प्रसारित किया। दूसरे शिष्य पूज्यश्री मंगलऋषिजी म० थे। आपने भी अपने पूर्वज महात्माओं के यश की वृद्धि में महत्त्वपूर्ण योग दिया। मालवा शाखा और खम्भात शाखा को इन महापुरुषों ने खूब दिपाया है।

पूज्यश्री ताराऋषिजी म० पचेवर सम्मेलन मे उपस्थित थे, यह पहले ही बतलाया जा चुका है। प्रतापगढ़ भंडार से प्राप्त एक प्राचीन पन्ने से विदित होता है कि इस सम्मेलन में निम्न लिखित चार सम्प्रदायो की उपस्थिति थी और कुछ मर्यादाएँ स्थापित की गई थीः—

(१) पूज्यश्री ताराऋषिजी म०, तथा श्रीजोगऋषिजी म०, श्रीतिलोकऋषिजी म०, आर्याश्री राधाजी म० आदि। यह पूज्यश्री कहानजी ऋषिजी म० का परिवार था।

(२) पूज्यश्री अमरसिंहजी म०, तथा श्रीदीपचन्दजी, श्री काहनजी और ...... आर्याजी श्रीभागाजी, श्रीवीराजी। यह पूज्यश्री लालचन्दजी म० का परिवार था।

(३) श्रीमनसारामजी म. और श्रीमलूकचंदजी महाराज; आर्या श्री फूलाजी म. आदि। यह पूज्यश्री हरदासजी म. का परिवार था।

(४) पूज्यश्री खेमसिंहजी म. और खेतसीजी म.; आर्याजी श्री केसरजी म.; यह पूज्यश्री परशरामजी म. का परिवार था।

इस प्रकार पूज्यश्री ने धर्मप्रचार और क्रियोद्धार का कार्य करते हुए संगठन का सराहनीय कार्य भी किया। अनेक भव्य जीवों को निर्वाण की ओर अभिमुख किया। जैनसंघ का महान् उपकार

करके आपने अपना आयुष्य समाधिपूर्वक समाप्त कर स्वर्ग की ओर प्रयाण किया। आपका शिष्य-परिवार इस प्रकार था:—

(१) श्रीवीरभानजी ऋषिजी म.
(२) ,, लक्ष्मी ,, ,,
(३) ,, मोहन ,, ,,
(४) ,, जीवन ,, ,,
(५) ,, सौभाग्य ,, ,,
(६) ,, चूना ,, ,,
(७) ,, रतन ,, ,,
(८) ,, भानजी ,, ,,
(९) ,, मंगल ,, ,,
(१०) ,, काला ,, ,,
(११) ,, भूला ,, ,,
(१२) ,, मांडल ऋषिजी म.
(१३) ,, धर्म ,, ,,
(१४) ,, केवल ,, ,,
(१५) ,, श्याम ,, ,,
(१६) ,, बाला ,, ,,
(१७) ,, भगा ,, ,,
(१८) ,, प्रताप ,, ,,
(१९) ,, संतोष ,, ,,
(२०) ,, शंकर ,, ,,
(२१) ,, बाल ,, ,,
(२२) ,, वीरभान ,, ,,

खंभात-शाखा

पाठकों को विदित हो चुका है कि महापुरुष पूज्यश्री १००८ श्रीलवजी ऋषिजी महाराज जब अन्तःकरण की धर्म प्रेरणा के वशीभूत होकर क्रियोद्धार के हेतु गच्छ से पृथक् हुए थे तो सिर्फ तीन सन्त थे। उस समय आपको अपना ही बल था। किसी ने कल्पना भी न की होगी कि आगे चल कर शीघ्र ही आपका तप, त्याग और बलिदान यह रूप धारण करेगा। अब तक की घटनाओं का सरसरा अवलोकन किया जाय तो मालूम होता है कि उस परम पुरुष ने ऐसे मंगल-मुहूर्त्त में क्रियोद्धार-कार्य आरंभ किया था कि वह बड़ी ही तीव्र गति से फैलता गया और कुछ ही वर्षों में

भारत व्यापी हो गया । गुजरात से लेकर ठेठ पंजाब तक आपके सुयोग्य शिष्यो ने अपूर्व धर्म-क्रान्ति कर दी । एक के बाद एक जो उत्तराधिकारी हुए, वे अपने आद्य पुरुष के मिशन को आगे ही बढ़ाते चले गये । सन्त मण्डली का विस्मयजनक विस्तार हुआ । और उन्होने अलग-अलग क्षेत्र संभाल कर वहीं प्रचार कार्य जारी रक्खा । एक मूल से अनेक शाखाएं और प्रशाखाएँ फूटने लगीं और ऋषि सम्प्रदाय रूपी तरु विशालता धारण करने लगा ।

पज्यश्री कहानजी ऋषिजी म० के शिष्यरत्न पूज्यश्री तारा-ऋषिजी म० मालवा से गुजरात की ओर पधारे । आपके २२ शिष्यो में दो महान् प्रभावशाली हुए—पू० श्रीकालाऋषिजी म० और पूज्यश्री मगलऋषिजी म० । इन दोनों महापुरुषों का परिवार दो शाखाओ मे विभाजित हुआः—मालवा शाखा और खम्भात शाखा ।

ऋषि सम्प्रदाय की खम्भात शाखा की परम्परा

पूज्यश्री मंगलजी ऋषिजी म० और उनकी परम्परा

पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० ने खम्भात मे जो क्रियोद्धार किया था, उस कार्य मे शिथिलता न आने पावे, इस अभिप्राय से आपके चौथे पाट पर विराजित पूज्यश्री ताराऋषिजी म० ने तथा श्रीकालाऋषिजी म० और श्रीमंगलऋषिजी म० ने गुजरात की तरफ विहार करके अपने महान् प्रयत्नों से खूब धर्म का उद्योत किया । आपने भलीभांति जान लिया था कि यह कार्य एक व्यक्ति से नहीं हो सकता । इसमें अनेकों को अपनी शक्ति लगाने की

आवश्यकता है। जैसे श्रीमान् लौंकाशाह के पश्चात् पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म०, पूज्यश्री धर्मसिंहजी म० और पूज्यश्री धर्मदासजी म० की त्रिपुटी ने विविध क्षेत्रों में धर्म का प्रचार किया, उसी प्रकार हमें भी अपना समस्त बल लगाकर इस पवित्र कार्य को करना है।

पूज्यश्री मंगलऋषिजी म. खंभात-शाखा के पांचवें पाट पर विराजे। आपने अनेक क्षेत्रों में विचरण करके धर्म-मार्ग में जो शिथिलता आने लगी थी, उसे अपने प्रभावशाली प्रवचनों द्वारा दूर करके पुनः गुजरात में धर्म-चेतना का संचार किया।

छठे पाट आपके शिष्यरत्न श्री रणछोड़जी महाराज विराजे। सातवें पाट पर पू श्रीनाथाऋषिजी म. आसीन हुए। आपके समय में अनेक भव्य जीवों ने प्रतिबोध पाकर दीक्षा स्वीकार की और सन्तों तथा सतियों के परिवार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। आपके सात शिष्यों में से आठवें पाट पर पूज्यश्री बेचरदासजी ऋषि विराजमान हुए।

पूज्यश्री लवजी ऋषिजी महाराज के ९ वें पाट पर

पूज्यश्री माणकऋषिजी महाराज

आप इन्दौर के निवासी थे। संयम ग्रहण करके आप महा प्रतापशाली और विद्वान् हुए। आपके समय में खम्भात क्षेत्र की कीर्त्ति में खूब वृद्धि हुई। सन्तों-सतियों की संख्या में भी अच्छी वृद्धि हुई। सं० १९२८ में आप खेड़ा (गुजरात) में स्वर्गवासी हुए।

१० वें पाट पर पूज्यश्री हरखचन्दजी महाराज

आप सिरसा (पंजाब) के निवासी थे। आपका जन्मनाम हुशानचन्दजी था। पांच भाई थे। पारिवारिक दृष्टि से और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न परिवार मे आपका जन्म हुआ। बड़े हुए तो व्यापार-व्यवसाय मे लग गये। परन्तु आपकी अन्तरात्मा मे अनासक्ति और विरक्ति के संस्कार आरम्भ से ही थे। अतएव व्यवसाय मे आपका जी नहीं रमा। आप लाहौर, अमृतसर, लुधियाना और करांची आदि अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए बम्बई आये। वहाँ एक कोठरी किराये पर लेकर रहने लगे। एक दिन मांस की टोकरी सिर पर रखकर जाते हुए एक मनुष्य को देखकर आपके हृदय को चोट पहुँची। यद्यपि बम्बई जैसे शहर में यह घटना असाधारण नहीं थी; तथापि महापुरुषो के लिए कभी-कभी साधारण घटना भी असाधारण महत्त्व की बन जाती है। जब काललब्धि का परिपाक होता है तो सामान्य निमित्त भी उनके चित्त को झकझोर देता है। महात्मा बुद्ध जैसे एक जरा जीर्ण पुरुष को देखकर विरक्त हो उठे थे, उसी प्रकार आप भी मांस की टोकरी देखकर जगत् से उदासीन हो गए। उसी समय से आपने व्यवसाय को समेटना आरम्भ कर दिया और सद्गुरु की खोज मे लग गये। व्यवसाय बन्द कर दिया और बाहर निकल पड़े। घर पर पत्र लिख दिया कि मै अब घर नहीं आऊँगा। मेरा शेष जीवन धर्म की साधना के लिए किसी सुयोग्य जैन मुनिराज की सेवा मे समर्पित होगा।

आप अहमदाबाद पधारे। उस समय वहाँ पूज्यश्री माणकचन्दजी म० विराजमान थे। पूज्यश्री की सेवा मे रहकर आपने धर्मशास्त्र का अध्ययन आरम्भ कर दिया और कुछ दिन बाद वहीं

दीक्षा भी धारण कर ली। दीक्षित होने पर आपका नाम श्रीहर्ष ऋषिजी (हरखचन्दजी) रक्खा गया।

पूज्यश्री माणकचन्दजी (ऋषिजी) म० का स्वर्गवास होने के पश्चात् अत्यन्त योग्य विद्वान आप ही थे। अतः ग्यारहवें पाट पर आप ही आचार्य पदवी पर अलंकृत किये गये। आपके सदुपदेश से प्रभावित और विरक्त होकर अनेक भव्य जीवों ने आपके चरण कमलों में दीक्षा अंगीकार की। श्रीभानजी श्रीलल्लुजी श्रीदेवकरणजी, तपस्वी श्रीफतेचन्दजी, श्रीगिरधरलालजी म० आदि लगभग २० शिष्य हुए, जिनमे से १२ के नाम आज भी उपलब्ध है। आपने खम्भात शाखा के ऋषि सम्प्रदाय रूपी वृक्ष को खूब पल्लवित किया। अपनी ५९ वर्ष की उम्र मे सं० १९४९ में खंभात मे आयु पूर्ण कर आपने देहोत्सर्ग किया।

१२ वें पाट पर पूज्यश्री भानजी ऋषिजी महाराज

पूज्यश्री हर्ष ऋषिजी म० के पश्चात् आपश्री को श्रीसंघ ने पूज्य पदवी प्रदान की। आप 'यथानाम तथागुणः' की कहावत चरितार्थ करते थे। भानु के समान ही महान् प्रतापी और चमकीले सन्त थे। अज्ञानान्धकार को दूर करके आपने लोकोत्तर प्रकाश की किरणे विकीर्ण की। गुजरात आदि प्रान्तो में विचरण करके शासन का उत्थान किया। आपके भी अनेक शिष्य हुए, जिनमे दो शिष्यों के ही नाम ज्ञात हो सके है। दो प्रशिष्यों के नाम भी ऋषि-कल्पद्रुम में उपलब्ध हैं।

१३ वें पाट पर कविवर्य पूज्यश्री गिरधारीलालजी म०

आपने खंभात में पूज्यश्री हर्ष ऋषिजी (हरखचन्दजी) महाराज के समीप सं० १९४० में छोटी उम्र में आर्हती दीक्षा

अंगीकार की थी। बाल ब्रह्मचारी थे। आपका दीक्षा महोत्सव शाह देवचन्द खुशाल भाई के घर से हुआ था। गुरुवर्य की सेवा में रह कर शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। आप वैराग्य और भक्तिरस की कविताएँ करते थे। विविध बोध चिन्तामणि, प्रश्नोत्तर माला काव्यमाला, आदि कई कविता-ग्रन्थो की रचना की है। ज्योतिष शास्त्र के अच्छे वेत्ता थे। गुजरात, काठियावाड़ और कच्छ आदि प्रदेशो मे विहार करके आपने जैनधर्म का खूब प्रचार किया।

पं मुनिश्री सुखाऋषिजी म. कविवर्य पं. मुनिश्री अमोऋषिजी म. आदि ठा. ३ जब सूरत पधारे थे, तब आप खंभात में थे। आप स्वय अस्वस्थ होने के कारण नहीं पधार सके थे, परन्तु आपने अपने आज्ञानुवर्त्ती श्री लल्लूजी म. आदि चार सन्तो को सूरत भेजा था। यह दोनो शाखाओ के सन्तों का मधुर मिलन अत्यन्त आनन्दप्रद रहा। सब का आहारपानी साथ ही हुआ। इससे प्रतीत होता है कि आप स्वभाव के अत्यन्त उदार, हृदय के विशाल संगठन के प्रेमी महानुभाव थे। आपके दो शिष्य हुए। सं. १९८३ मे आप स्वर्गधाम पधार गये।

१४ वें पाट पर पूज्यश्री छगनलालजी महाराज

आप खंभात के निवासी राजपूत वंश के रत्न थे। पिताजी का नाम अवलसंगजी और माताजी का नाम रेवाबाई था। बाल्यावस्था मे सुसंस्कारों और सुन्दर वातावरण में रहने के कारण तथा क्षयोपशम की विशिष्टता के प्रभाव से महान् विचारक, बुद्धिशाली और प्रतिभासम्पन्न थे। अन्य जनो की अपेक्षा क्षत्रियों का विशिष्ट तेज प्रसिद्ध ही है। वह तेज आपको प्राप्त था। जब राजदरबार में या बाजार आदि में कहीं बाहर जाने का अवसर आता तो आपकी तेजस्विता देखकर जनसमूह प्रभावित होता था।

आपके दो वणिक्‌जातीय मित्र थे-श्री सुन्दरलाल माणकचंद और श्री अम्बालाल लालचंद। इन मित्रों की बदौलत आप भी सन्तों के सम्पर्क में आए। सन्तो की वाणी सुनकर छगनलालजी के कोमल हृदय पर संसार की अनित्यता का चित्र अंकित हो गया। एक ही व्याख्यान सुनकर आप वैराग्य के रंग मे रंग गये। बाल्य-काल और किशोरकाल व्यतीत होने पर जब आप विशिष्ट सार-असार-विवेक की शक्ति से सम्पन्न हुए तो चित्त में सन्तों की वाणी सुनने की उत्कंठा और अन्तःप्रेरणा बढ़ी। धर्म का ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा भी जागृत हुई। अतएव आपने मुनिराज के पास जाकर सामायिक, प्रतिक्रमण और नव तत्त्वो का ज्ञान प्राप्त किया। कुछ समय तक आप धार्मिक पाठशाला मे अवैतनिक शिक्षक का कार्य करते रहे। सन्त-समागम का क्रम चलता ही रहा और वैराग्य के बीज का भी विकास होता रहा।

कुछ समय के पश्चात् आपने माता--पिता से दीक्षित होने की अनुमति माँगी। किन्तु अनुमति मिली नहीं तो अपने मित्रो के साथ मारवाड़ की तरफ प्रस्थान कर दिया। पाली में उस समय तपस्वी श्री बेनीलालजी म. विराजमान थे। उनके समीप दीक्षा लेने की अभिलाषा व्यक्त की। किन्तु तपस्वीजी महाराज ने समझाया कि संरक्षकों की अनुमति लिये बिना दीक्षा लेना और देना अनुचित है। तब आप मित्रों के साथ अहमदाबाद लौट आये। आपके मित्र सुन्दरलाल के पिता अहमदाबाद आये हुए थे। उसे अपने साथ खंभात ले गये और उसका विवाह कर दिया। यह समाचार जान कर आपने विचार किया—मेरा मित्र संयम-मार्ग पर चलने मे सफल न हो सका। मगर मेरे लिए तो जीवन का यही एक मात्र साध्य है। कुछ समय बाद फिर अपने काका, काकी और पत्नी से अनुमति मांगी। उस समय भी रोकने

के अनेक प्रयत्न किये गये, किन्तु आपने स्पष्ट कह दिया—रोकने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। संयम लेना ही मेरा एकान्त निर्णय है। 'धर्मस्य त्वरिता गतिः।' धर्म कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

दृढ़ और अटल निश्चय अन्ततः सफल ही होता है। आपके कटुम्बी जनों को झुकना पड़ा और अनुमति देनी पड़ी। सं. १९४४ के पौष शु. १० के दिन आपने सूरत में पूज्यश्री हर्षचन्द्रजी म. के समीप दीक्षा धारण कर ली। गुरुवर्य का सहयोग आपको पाँच वर्ष तक ही प्राप्त हो सका। तदनन्तर आप आपने गुरुभ्राता के साथ रह कर आत्म कल्याण करने लगे और धर्म एवं सम्प्रदाय के उत्थान के कार्य में लगे रहे।

आपकी विद्वत्ता, गंभीरता और कार्य कुशलता सराहनीय थी। इन गुणो से प्रेरित होकर आपके अनेक शिष्य हुए। उनमे श्रीरत्नचंद्रजी और श्रीछोटालालजी म बड़े ही विनीत और घोर तपस्वी थे। इनके अतिरिक्त श्रीआत्मारामजी, खोडाजी और तपस्वी श्रीफूलचंदजी आदि भी आपके योग्य शिष्य थे।

पूज्यश्री भानजी ऋषिजी म. का स्वर्गवास होने पर सं. १९८२ मे आपको पूज्य पदवी से विभूषित किया गया। अपनी विद्वत्ता का जनता को स्थायी लाभ देने के लिए आपश्री ने साहित्य-निर्माण का उपयोगी कार्य किया। आपके द्वारा अनुवादित उत्तराध्ययनसूत्र, दशवैकालिकसूत्र, व्यवहारसूत्र, उपासकदशांग और बृहत् कल्पसूत्र शब्दार्थ एवं भावार्थ के साथ प्रकाशित हो चुके है। उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, बृहत्कल्प मूल और श्रीठाणांगसूत्र छाया सहित प्रकाश मे आये है। सामायिक-प्रतिक्रमण विवेचन सहित प्रकाशित हुए है। सर्वसाधारण जनता के लिए उपयोगी अनेक तात्त्विक एवं ज्योतिष संबंधी साहित्य के विकास मे भी अच्छा भाग लिया। आपके पृथक् प्रकाशित जीवन चरित से विशेष व्यौरा जाना जा सकता है।

आपने गुजरात-काठियावाड़ बम्बई आदि प्रान्तों में, मुख्य-मुख्य क्षेत्रो मे चातुर्मास करके और छोटे-छोटे क्षेत्रों में भी विचरण करके जैन धर्म का प्रचार करते हुए समाज संगठन तथा धार्मिक संस्थाओं के निर्माण की प्रेरणा की और उसमे पर्याप्त सफलता पाई।

सं १९८९ में बृहत् साधु सम्मेलन अजमेर में वृद्धावस्था होने पर भी आप लंबा विहार करके अपने शिष्य-परिवार के साथ पधारे थे। वहाँ अनेक आचार्यो का समागम हुआ। पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म. के उत्तराधिकारी पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म. के साथ अत्यन्त प्रेममय सम्मिलन हुआ और पूज्यश्री लवजीऋषिजी म. की परम्परा की इस शाखा की जानकारी प्राप्त करके आप गुजरात की तरफ पधारे।

सन्त -सतियो का परिवार अधिक न होने से आप दूरवर्त्ती अन्य प्रदेशों में अधिक नहीं विचरते थे। आपने सं. १९९४ का चातुर्मास अहमदाबाद में किया था। सं. ९५ का चातुर्मास खंभात मे नियत हुआ था। परन्तु शारीरिक परिस्थिति के कारण विहार नहीं हो सका। आखिर सं. १९९५ की वैशाख कृष्णा १० के दिन अहमदाबाद मे ही आप स्वर्गवासी हो गये। आपके स्वर्गवास के अवसर पर लींबड़ी सम्प्रदाय के तपस्वी पं. श्री शामजी स्वामी वहाँ विराजमान थे। आपने ५१ वर्ष तक अखंड संयम का पालन करके जैनशासन और जैनसंघ की सराहनीय सेवा की।
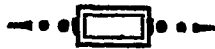
पूज्यश्री काला ऋषिजी महाराज

पूज्यश्री तारा ऋषिजी महाराज के समय ऋषि सम्प्रदाय दो शाखाओं में विभक्त हो गया था—(१) खंभात संघाड़ा और (२) मालवीय शाखा। इनमें से मालवा प्रान्तीय शाखा के नायक पूज्य श्रीकालाऋषिजी महाराज ही थे।

आपने पूज्यश्री तारा ऋषिजी म. के समीप उत्कृष्ट वैराग्य भाव से दीक्षा ग्रहण की थी। आपकी बुद्धि अतिशय निर्मल और तीक्ष्ण तथा स्मरण-शक्ति प्रगाढ़ थी। पूज्यश्री की सेवा में रह कर आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् पूज्यश्री की आज्ञा से मालवा जनपद मे पधार कर रतलाम, जावरा, मन्दसौर, भोपाल, शुजालपुर, शाजापुर आदि क्षेत्रो मे विचरण करके शुद्ध जैनधर्म की खूब प्रभावना की। मालवा मे पधार कर आपने अनेक क्षेत्रों को खोला। पूज्यश्री कहानजी ऋषिजी म. के शुभ नाम को आपने अपने उज्ज्वल और उच्च चरित्र तथा उत्कृष्ट और विशुद्ध ज्ञान से खूब दिपाया। आपने उनकी प्रख्याति मे चार चांद लगाए। आपका स्वभाव सरल, शान्त और गंभीर था। आपकी गंभीरता, सरलता, शुचिता, विद्वत्ता, दक्षता और उत्कृष्ट संयमनिष्ठा देख चतुर्विध श्रीसंघ ने आपको आचार्य पदवी से अलंकृत किया।

आपश्री के महान् व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर अनेक भव्य जीवो ने आपके चरणो की शरण ग्रहण की। अनेक शिष्य बने। किन्तु आज निम्नलिखित चार नाम ही उपलब्ध है—(१) श्री (बड़े) लालजी ऋषिजी म. (२) पण्डित मुनिश्री बच्छु ऋषिजी म. (३) श्रीदौलत ऋषिजी म. और (४) श्री (छोटे) लालजी ऋषिजी म.। इनमे से पण्डितरत्न श्रीबच्छु ऋषिजी महाराज उच्चकोटि के विद्वान्

और आगमवेत्ता थे। श्री बड़े लालजी ऋषिजी महाराज बड़े तपस्वी और सेवाभावी थे।

पूज्यश्री बक्षुऋषिजी महाराज

मालवा में विचरण करने वाले पूज्यश्री कालाऋषिजी म० के सदुपदेश से आपके अन्तःकरण मे विरक्ति की दिव्य ज्योति प्रकट हुई। संसार के समस्त पदार्थों को असार जानकर तथा पर-पदार्थों के संयोग एवं ममत्व को भवभ्रमण का प्रधान कारण मान कर आपने पूज्यश्री कालाऋषिजी म० के समीप उत्कृष्ट वैराग्य भाव से दीक्षा अंगीकार की। तत्पश्चात् पूज्यश्री की सेवा मे निरन्तर रह कर गम्भीर शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया और संयम, तप, ध्यान आदि की वृद्धि की। आपने मालवा एवं बागड़ प्रान्त में विचरण करके जिनशासन का उद्योत किया है। आप अतिशय शान्त स्वभाव, गम्भीर, दक्ष, अवसर के ज्ञाता और शास्त्रवेत्ता थे। आपका धर्मोपदेश अत्यन्त रोचक और प्रभावक होता था। विरक्त अन्तःकरण से निकले हुए एक--एक शब्द में अनोखा आकर्षण था। आपके इन सब सद्गुणो से प्रभावित होकर चतुर्विध श्रीसंघ ने पूज्यश्री कालाऋषिजी म. के पश्चात् आपको ही आचार्यपद प्रदान किया और आपने भी अपने पूर्ववर्त्ती महानुभाव आचार्यों की परम्परा को दक्षता के साथ निभाया। आपके अनेक शिष्य हुए, किन्तु आज दो के नाम ही ज्ञात हैं-पण्डित मुनिश्री पृथ्वीऋषिजी म. तथा पूज्यश्री धनाजीऋषिजी महाराज।

शास्त्र विशारद श्रीपृथ्वीऋषिजी महाराज

आपका जन्म मालवा प्रान्त में हुआ था। पूज्यश्री वक्षु ऋषिजी म. के सन्निकट आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की थी।

पूज्यश्री के सान्निध्य में रह कर आपने आगमो का तलस्पर्शी अभ्यास किया। संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं में आप पूर्ण निष्णात थे। आपके विशेष प्रभाव से ऋषि सम्प्रदाय में सन्तों और सतियों की संख्या मे पर्याप्त वृद्धि हुई और ज्ञान की निर्मल धारा बही। आपके समय मे ज्ञान और चारित्र के पात्र बहुसंख्यक सन्त थे और सतियाँ भी थीं। पूज्यश्री धनजी ऋषिजी म. आपके गुरु भ्राता थे। वे भी शास्त्र के ज्ञाता और पण्डित थे।

उक्त दोनों महाभाग सन्त ऋषि सम्प्रदाय की मालवा-शाखा के गगन में चन्द्र-सूर्य के सदृश चमकते थे; मगर काल का प्रभाव ही समझिए कि दोनो में किसी बात को लेकर मतभेद हो गया; जिसके कारण उन्नति के उच्च शिखर पर आरूढ़ यह सम्प्रदाय दो भागो मे विभक्त हो गया। कुछ सन्तो एवं सतियों ने आपका साथ दिया और कुछ ने पूज्यश्री धनजी ऋषिजी महाराज का। किन्तु यह मतभेद व्यक्तिगत मनोमालिन्य या पदवी की प्रतिस्पर्द्धा को लेकर नहीं था। ऐसा होता तो दोनो ही महानुभाव आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो जाते और दोनो विभागो पर स्थायी भेद की मुहर लग जाती। मतभेद होने पर भी दोनो महात्मा उदार, गंभीर और दीर्घदर्शी थे। उन्होने भविष्य पर दृष्टि रख कर कार्य किया। वैमनस्य नहीं होने दिया। दोनो पृथक्-पृथक् विचरते रहे, किन्तु पृथक्-पृथक् आचार्य नहीं बनाये।

दो छद्मस्थो मे वैमत्य हो जाना असंभव नही, अस्वाभाविक भी नहीं-बल्कि स्वाभाविक ही है; किन्तु वैमत्य होने पर भी जहाँ वैमनस्य नही होता, वहाँ वैमत्य हानिजनक नहीं होता। उक्त दोनों महाभाग मुनि, सन्त थे, वैरागी थे, संयमी थे। अतएव उनके मन मे वैमनस्य की मलीनता प्रवेश नही कर सकी। उन्होने सम्प्रदाय

को छिन्नभिन्न नहीं होने दिया। उनका यह सजीव आदर्श भविष्य की पीढ़ियों के लिए सजीव बोधपाठ है। पंडित रत्न श्रीपृथ्वी ऋषिजी म. का मुख्य विहार क्षेत्र मालवा, मेवाड़ आदि प्रदेश रहे। आपने अपने प्रभावशाली उपदेश से जैनेतरों को भी प्रभावित किया। अनेक राजा, राणा, जागीरदार आदि अजैनों को प्रतिबोध देकर मांस भक्षण, मदिरापान, शिकार आदि दुर्व्यसनों से छुड़ाया। आपके मुख-चन्द्र से मानों अमी-रस झरता था। श्रोता मंत्र मुग्ध से हो जाते थे। आपके सरल और शुद्ध हृदय से निकले शब्द श्रोताओ के हृदय तक पहुँचते थे और श्रोता मुक्त कंठ से आपकी प्रशंसा करने लगते थे। इस प्रकार आपने जैनधर्म का खूब उद्योत किया और सम्प्रदाय का भी महान् गौरव बढ़ाया। आपके पाँच शिष्य हुए:—(१) श्रीजीवाजी ऋषिजी म० (२) श्रीसोमजी ऋषिजी म० (३) श्रीभीमजी ऋषिजी म० (४) श्रीटेकाजी ऋषिजी म० और (५) श्रीचीमनाजी ऋषिजी म०

महाभाग मुनिश्री सोमजीऋषिजी महाराज

आपश्री ने शास्त्रवेत्ता पण्डितरत्न श्रीपृथ्वी ऋषिजी म. के सदुपदेश से प्रतिबोध प्राप्त कर उत्कृष्ट वैराग्यपूर्वक दीक्षा धारण की। पूज्य गुरुवर्य के चरण-कमलो की उपासना करके आगमों का तथा विविध शास्त्रों का विशद बोध प्राप्त किया। आप विशिष्ट प्रतिभा के धनी और प्रभावशाली धर्मोपदेशक थे। आपके प्रवचन जनसमूह पर गहरी छाप डालते थे। कितने ही भव्य जीवो ने आपके उपदेश से प्रतिबोध पाकर और सन्मार्ग अंगीकार करके अपना जीवन सफल बनाया। आप प्रायः मालवा,मेवाड़ और गुजरात में विचरण करते रहे। तत्कालीन मुख्य-मुख्य मुनिराजों का समागम करके आपने पारस्परिक प्रेम की वृद्धि की। मुनिजीवन की साधना का

सार ज्ञान और चारित्र की वृद्धि करना है और इस ओर आपका विशेष लक्ष्य रहता था।

आपके पाँच शिष्यों के नाम उपलब्ध हैं—(१) श्रीहीरा-ऋषिजी म. (२) श्री स्वरूपऋषिजी म. (३) श्री डूँगाऋषिजी म. (४) श्री टेकाऋषिजी म. और (५) शान्तिमूर्त्ति श्री हरखाऋषिजी म। इन महापुरुषो का शिष्यपरिवार बराबर वृद्धिगंत होता चला गया।

उग्रतपस्वी श्री भीमजीऋषिजी महाराज

मालवा प्रान्त मे ऋषिसम्प्रदायी पण्डित मुनिश्री पृथ्वी-ऋषिजी म. के समीप आपने दीक्षा धारण की थी। आप उत्कृष्ट क्रियापात्र और घोर तपस्वी थे। तपश्चरण की निर्मलता और प्रकृष्टता के प्रभाव से आपको 'खेलोसहि' लब्धि की प्राप्ति हुई थी। आप वचन-सिद्ध महान् सन्त थे। कितने ही लोगों ने आपकी इन सिद्धियो का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त किया था।

पिपलोदा मे एक श्रावक गलित कुष्ठ की व्याधि से पीड़ित था। श्रावक अत्यन्त श्रद्धावान् और संतो का भक्त था। तपोधन श्रीभीमजी ऋषिजी म. के परठाये हुए श्लेष्म (कफ) को उसने औषध के रूप मे प्रयुक्त किया। लोगो को यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि केवल तीन ही दिनो के प्रयोग से कुष्ठ व्याधि समूल नष्ट हो गई।

इन तपोमूर्त्ति सन्त के तपःप्रभाव को प्रकट करने वाली एक घटना और प्रसिद्ध है। जावरा मे एक सतीजी लोच करने बैठीं, किन्तु पहली चुटकी भरते ही उनके सिर की चमड़ी हाथ में आ गई; जैसे किसी ने टोपी पहनी हो और हाथ लगाते ही वह

अलग हो गई हो। उस समय आप वहीं विराजमान थे। सतीजी यह अद्भुत घटना देखकर चकित थीं और दूसरे दर्शक भी विस्मित थे। तपस्वीजी ने कहा—चिन्ता मत करो सतीजी, इस चमड़ी को पुनः मस्तक पर रख लो। सतीजी ने ऐसा ही किया और फिर सिर ज्यों का त्यों हो गया!

तपोधन ने उन्हीं सतीजी को एक माला दी। कहा—इसे अपने पास रहने दीजिए। सतीजी के पास एक दो महीने तक माला रही आई; किन्तु एक दिन वह आप ही आप लुप्त हो गई।

प्रतापगढ़ के अनेक वयोवृद्ध श्रावकों और सन्तों के मुख से इन तपस्वी महाराज की तपोलब्धि सम्बन्धी अनेक घटनाएँ सुनी गई थीं। तपोमूर्त्ति इन सन्त ने मालवा के अनेक क्षेत्रों में विचर कर शुद्ध धर्म का प्रचार किया। आपके दो शिष्य हुए—श्रीटेका ऋषिजी म० और श्रीकुंवर ऋषिजी म० आपश्री मालवा मे ही दीक्षित हुए, प्रायः मालवा मे ही विचरे और मालवा मे ही समाधिमरण करके स्वर्गवासी हुए।

तपस्वी श्रीकुंवरऋषिजी महाराज

तपोलब्धिधारी श्रीभीमजी ऋषिजी म० से आपने भागवती दीक्षा अंगीकार की। जैसे गुरु वैसे ही चेला। आप अपने गुरु महाराज के चरण चिह्नों पर दृढ़ता के साथ चले। सदैव तपस्या करना आपका आचार था। आप अत्यन्त कड़क क्रियाकाण्ड के पालक थे। उपधि बहुत ही कम—अनिवार्य ही-रखते थे। आप मुख्य रूप से सुजालपुर, शाजापुर और भोपाल आदि क्षेत्रों में विचरण करते रहे।

अन्त समय सन्निकट जानकर आपने सुजालपुर मे संथारा लिया। स्थानीय राज्याधिकारियों को पता चला तो दौड़े आए। जीवन की कला तो बहुत से लोग जानते हैं; पर मृत्यु की महान् कला को कोई विरले ही जानते हैं। बेचारे राज्याधिकारियों को इस महान् कला का क्या पता था ? उन्हे क्या मालूम था कि हाय-हाय करते हुए कुत्ते की मौत मरना जैनधर्म का विधान नहीं है। जैन-धर्म तो वीरतापूर्वक, सिंह की मृत्यु का विधान करता है। जब शरीर साधना के योग्य नहीं रहता और साधना मे विघ्न बन जाता है तो अनासक्त साधक स्वेच्छापूर्वक उसका परित्याग कर देता है। वह जीते जी उससे अपना नाता तोड़ लेता है।

तो राज्याधिकारियो ने आपकी अनेक प्रकार से परीक्षा ली। तरह-तरह के प्रश्न किये। मगर तपस्वीजी की शान्तिमयी समाधि, दृढ़ता और साहस देखकर विस्मित हो गये। वे आपके चरणो मे गिर पड़े और बोले -भगवन्, आप धन्य हैं ! जाते-जाते भी जगत् को जीवन का महान् आदर्श समझा कर जा रहे है।

आपका संथारा करीब एक मास तक चालू रहा। इस अवधि मे आप पूर्ण रूप से समाधि मे लीन रहे।

श्री टेकाऋषिजी महाराज

ऋषि-सम्प्रदाय में इस नाम के कई सन्त हुए हैं; किन्तु जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है वे तपस्वीराज श्री भीमजी ऋषिजी म. के शिष्य थे। आपने गुरु महाराज की सेवा मे रह कर तन, मन और वचन से संयम एव तप की आराधना की। आप बड़े ही सेवाभावी सन्त थे। गुरु महाराज की सेवा करने मे आपको बड़ा ही आह्लाद होता था। आप गुरुजी के साथ मालवा आदि प्रान्तो में ही विचरे और मालवा के ही किसी क्षेत्र में स्वर्गवासी हुए।

शासन प्रभावक श्रीहरखा ऋषिजी महाराज

सुखेड़ा (मालवा) ग्राम में, ओसवाल बोहरा गोत्र में, आपका जन्म हुआ था। आप आगम वेत्ता पण्डितरत्न श्रीपृथ्वी ऋषिजी महाराज से दीक्षा अगीकार करके पंडित रत्न श्रीसोम ऋषिजी म० की नेश्राय मे शिष्य हुए। आप बड़े ही शान्त स्वभाव महात्मा थे। सब प्रकार की प्रकृति वाले संतों के साथ प्रेम पूर्वक रहते थे। सभी के साथ आपकी पटती थी और आप सभी को स्नेह के साथ निभाते थे। आपने गहरा शास्त्रीय ज्ञान भी उपार्जन किया था। आपकी विहार भूमि प्रायः मालवा रही। आपके प्रवचन बड़े ही प्रभावक और रोचक होते थे। राजा, राणा, उमराव जागीरदार और ठाकुर आपके सम्पर्क में आये। उन्हे आपने प्रतिबोध प्रदान करके अनेक पापो से बचाया। कइयों ने मांस-मदिरा--सेवन का त्याग किया, कई शिकार के नाम पर की जाने वाली निरपराध पशुओ की हिंसा से वचे। आपने अपने ओजस्वी प्रवचनों से धर्म के नाम पर होने वाले मूक पशुओं के बलिदान को बंद करा कर लोगो को अहिंसा धर्म की महत्ता समझाई। इस प्रकार आपके द्वारा धर्म का महान् प्रचार हुआ।

वि० संवत् १९३१ में श्रीसुखा ऋषिजी म० की दीक्षा पिपलोदा में हुई थी। उस समय उनकी उम्र ८ वर्ष की थी। जब श्रीसुखा ऋषिजी म० चातुर्मास के लिए बम्बई पधारे, तब आप मालवा प्रान्त मे विचरते थे। सं. १९५१ में आपने श्रीसुखा ऋषिजी म०, पंडित श्रीअमी ऋषिजी म० आदि के साथ ठा. ११ से भोपाल मे चातुर्मास किया। वि. सं. १९५४ मे पुनः भोपाल मे ही सम्मिलित चौमासा किया। इस चौमासे के पश्चात् पंडित रत्न श्रीअमी ऋषिजी म० को साथ लेकर आपने पृथक् विहार किया। संवत् १९५८ का

चौमासा पिपलोदा मे किया । इसी समय, श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन श्रीकालू ऋषिजी म० की दीक्षा हुई । आपश्री के पाँच शिष्य हुए:—(१) श्रीवरजलाल ऋषिजी म० (२) पंडित रत्न श्रीसुखा ऋषिजी म० (३) श्रीहीरा ऋषिजी म० (४) श्रीभैरव ऋषिजी म० और (५) श्रीकालू ऋषिजी महाराज ।

आपश्री मालवा और मेवाड़ के अतिरिक्त झांसी तक पधारे और वहाँ धर्म का खूब प्रचार करने मे सफल हुए । अन्त में आप बड़वानी (धार) मे स्वर्गवासी हुए ।

आपश्री के एक शिष्य स्थविर पण्डित मुनिश्री कालूऋषिजी म० कवर्धा (मध्यप्रदेश) मे विराजमान है ।

स्थविर मुनिश्री कालूऋषिजी महाराज

आपका जन्म प्रतापगढ़ (मालवा) जिला के नागधी ग्राम में हुआ । पिताजी का नाम श्री पूरणमल्लजी और माताजी का नाम प्यारीबाई था । सं० १६३७ की श्रावण शुक्ला प्रतिपद् के दिन आपका जन्म हुआ । आपकी जन्म -जाति क्षत्रिय है । जैनधर्म के सभी तीर्थंकर क्षत्रिय थे । आपने जैनधर्म को अंगीकार करके अपने पूज्य पुरखाओ की परम्परा को पुनर्जीवित किया है ।

सं० १६५८ में स्थविर मुनिश्री हरखाऋषिजी म० ने प्रतापगढ़ में चौमासा किया । उन महापुरुष की सुधास्राविणी वाणी को श्रवण करके आपने संसार के असार स्वरूप को समझा । आपके अंतःकरण मे विरक्ति की प्रशस्त भावना जागृत हुई । उस समय आपकी उम्र २१ वर्ष की थी । नवयौवन का सुनहरा समय था । इस उम्र मे साधारण जन विषय -वासना की भट्ठी मे कूदने में ही अपने जीवन की सार्थकता अनुभव करते है, तब आपने विपय--वासना के समूल

उन्मूलन में ही अपने जीवन का परम श्रेय समझा। वैराग्य -भाव जागृत होने पर आपने अधिक समय व्यतीत करना उचित नहीं समझा और उसी वर्ष श्रावण शुक्ला ५ के दिन मुनिश्री हरखा ऋषिजी म. के मुखारविन्द से भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली।

आपका सांसारिक परिवार बहुत विशाल था। आपको शास्त्रीय भाषा मे गाथापति कहा जा सकता था। स्त्री, पुरुष और बालबच्चे--सब मिलकर करीब ७२ व्यक्तियो का परिवार था। इतने बड़े और भरे--पूरे परिवार को त्याग कर अनगार--जीवन को अपनाना कोई साधारण त्याग नहीं है। पूर्वोपार्जित प्रखर पुण्य के उदय से ही किसी को ऐसी सद्‌बुद्धि उपज सकती है।

गुरु महाराज के अन्तेवासी होकर आपने शक्ति के अनुसार संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, फारसी, गुजराती और मरहठी भाषाओं का तथा धर्मशास्त्र आदि विषयो का ज्ञान प्राप्त किया है। आप लगातार चौथाई शताब्दी तक अपने गुरुदेव के ही साथ विचरण करते रहे।

आपके व्याख्यान मधुर और रोचक होते हैं। आपके देहली-चातुर्मास मे ५१ गायो को अभयदान दिया गया और पर्युषण पर्व के पावन प्रसंग पर नगर के समस्त कसाई खाने बन्द रक्खे गये। आपने मालवा, मेवाड़, मारवाड़, देहली, कोटा, गुजरात, काठियावाड़, दक्षिण महाराष्ट्र, निजाम स्टेट, खानदेश, मध्यप्रदेश, बरार आदि सुदूरवर्त्ती प्रान्तो को भी अपने चरणो से पवित्र बनाया है। नीचे दिये जाने वाले चातुर्मास-विवरण से विदित होगा कि आप कितने उग्र विहारी रहे है और किस प्रकार आपने महाप्रभु महावीर के पवित्र संदेश का प्रसार किया है। चातुर्मास विवरण इस प्रकार है:—

स्थान	चातुर्मास संख्या	स्थान	चातुर्मास संख्या
प्रतापगढ़	५	जालना	३
सुखेड़ा	१	राहुपिंपलगांव	१
काहनोर	१	वोरी	२
सुजालपुर	१	कान्हूर पठार	१
उज्जैन	२	सोनई	१
खाचरौद	१	करमाला	१
रतलाम	२	औरंगाबाद	१
थांदला	१	बड़नेरा	१
भोपाल	१	वणी (बरार)	१
पिपलौदा	५	राजनांदगांव	१
देहली (चाँदनी चौक)	२	रायपुर (म. प्र.)	१
खम्भात	१	कवर्धा	२
राजकोट	१		

इस प्रकार करीब चालीस वर्ष तक भारत के विभिन्न प्रान्तों में आपने विहार किया है। अन्तिम चातुर्मास के समय, जब आप कवर्धा में विराजमान थे, तब आपके पैर में तकलीफ हो गई। आपकी उम्र भी साठ वर्ष से ऊपर पहुँच चुकी थी। परिणाम-स्वरूप आप कवर्धा में ही स्थिरवासी हो गये। आपके एक शिष्य श्रीचम्पकऋषिजी हुए। वे उग्र तपस्वी और सेवाभावी थे।

स्थविर महाराज की सेवा में लगभग ८-९ वर्षों तक मुनि श्रीरामऋषिजी म० रहे। कुछ दिनों मुनिश्री मिश्रीऋषिजी म० भी रहे। वर्तमान में भी श्रीमिश्रीऋषिजी म० और श्रीजसवंतऋषिजी म० आपकी सेवा में विराजते हैं।

मुनिश्री चम्पकऋषिजी महाराज

आप काठियावाड़ के निवासी थे। स्थविर मुनिश्री कालूऋषिजी म० के सत्सग से आपकी अन्तरात्मा मे वैराग्य को भावना उत्पन्न हुई। वि. संवत् १९९१ मे अपने प्रतिबोधदाता मुनिराज के समीप ही दीक्षा ग्रहण की। आप अत्यन्त सरल, भद्रहृदय, सेवापरायण और तपस्वी सन्त थे। आप गुरु महाराज के साथ अनेक प्रान्तों मे विचरे। प्रायः प्रत्येक चातुर्मास मे लम्बी अनशन-तपस्या किया करते थे। कभी-कभी मासखमण और कभी-कभी उससे भी ज्यादा ४०-४५ दिन आदि की तपश्चर्या की थी। विक्रम संवत् २००० में, कवर्धा मे, गुरु महाराज के चरणों में रहते हुए ही आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनिश्री हीराऋषिजी महाराज

स्थविर मुनिश्री हरखाऋषिजी म० के समीप आपकी दीक्षा हुई। आपने अतिशय विनम्र भाव से, गुरु म० की सेवामें रह कर शास्त्रीय ज्ञान उपार्जन किया। आप वैयावृत्य तप के रसिक सन्त थे। सं० १९४९ मे पं० रत्न श्रीसुखाऋषिजी म० और सुप्रसिद्ध पं रत्न श्रीअमीऋषिजी म० के साथ आप भी बम्बई चातुर्मास के लिए पधारे थे। इस चातुर्मास मे मुनि श्रीसुखाऋषिजी म० के सदुपदेश से विरक्त होकर श्रीमान् खेतसी भाई ने दीक्षा अंगीकार की। वे आपश्री की नेश्राय मे शिष्य बने।

आपने पंडित रत्न श्रीसुखा ऋषिजी म० के साथ सं. १९५० में धूलिया में चातुर्मास किया। सं. १९५१ मे गुरुवर्य स्थविर मुनिश्री हरखा ऋषजी म० ने ठा. ११ से भोपाल मे जो चातुर्मास किया था, उसमे आप भी सम्मिलित थे। आपश्री मालवा, महाराष्ट्र और

गुजरात आदि प्रान्तों मे विचर कर पुनः मालवा मे पधारे। आपश्री की नेश्राय मे दो शिष्य और हुए—(१) श्रीमोती ऋषिजी म० और (२) श्री अमी ऋषिजी म० । आप अपने जीवन के सन्ध्याकाल मे मालवा जनपद मे ही विचरण करते रहे और वहीं आप स्वर्गवासी हुए।

मुनिश्री भैरव ऋषिजी महाराज

मालवा प्रान्त के अन्तर्गत दलोट ग्राम में आपका जन्म हुआ। पं. मुनिश्री सुखा ऋषिजी म० के सदुपदेश से वैराग्य हुआ। उत्कृष्ट वैराग्य भाव से चैत्र शुक्ला ५, सं. १९४५ मे पं. मुनिवर श्रीसुखा ऋषिजी म. के मुखारविन्द से दीक्षा अंगीकार की और स्थविर मुनिश्री हरखा ऋषिजी म० की नेश्राय मे शिष्य बने।

आप प्रकृति से अतिशय भद्र थे। स्वभाव की सरलता असाधारण थी। गुरु महाराज से शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया और उन्हीं की सेवा में विचरते रहे। मालवा और वागड़ प्रान्त के उन छोटे-छोटे ग्रामों मे, जहाँ पहुँचना बहुत कठिन है, जहाँ के पथ कांटो और भाटो (पत्थरो) से पथिक का स्वागत करते है, और इस कारण प्रायः साधु-सन्त जाने का साहस नहीं करते, आप प्रायः विचरते रहे। वहाँ की जिज्ञासु जनता को प्रतिबोध देकर शुद्ध धर्म का स्वरूप समझाया और जो समझे हुए थे उन्हे दृढ़ बनाया।

काव्य-रचना करने मे भी आपकी रुचि थी। आपने अनेक सन्तो एवं महासतियो के स्तवनो की रचना की है। इस प्रकार दुर्गम प्रदेशो मे भी धर्म का प्रचार करके, २८ वर्ष तक संयम की आराधना करके आप सं. १९७३ मे स्वर्गवासी हुए।

आपके तीन शिष्य हुए—(१) श्रीस्वरूप ऋषिजी म० (२) श्रीसदा ऋषिजी म० (३) श्री (छोटे) दौलत ऋषिजी म०।

मुनिश्री (छोटे) दौलत ऋषिजी महाराज

संवत् १९७९ में. सरल स्वभावी मुनिश्री भैरव ऋषिजी म० के सदुपदेश से बोधित और विरक्त होकर, उत्कृष्ट वैराग्य भाव से, सोहागपुरा, जिला प्रतापगढ़ मे आपने दीक्षा अंगीकार की। अपने गुरु महाराज से तथा पंडित रत्न मुनिश्री अमीऋषिजी म. से आपने शास्त्राध्ययन करके ज्ञान की प्राप्त की। आप भी शान्त और सरल प्रकृति के सन्त थे। सेवा परायण और सुवक्ता थे। आप मालवा मे अधिक विचरे और धर्म का उद्योत करते रहे।

शारीरिक अस्वस्थता के कारण आप प्रतापगढ़ में विराजमान हुए। सुलेखक और वयोवृद्ध मुनिश्री माणकऋषिजी महाराज आपकी सेवा में थे। सं० १९८९ में ऋषिसम्प्रदाय के सन्तो और सतियो ने एकत्र होकर इन्दौर मे आगमोद्धारक पं० मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० को पूज्य पद पर प्रतिष्ठित किया, उस समय श्रावकों के साथ प्रतापगढ़ से समाचार आये कि मुनिश्री माणकऋषिजी को सेवा में रहते दस मास हो चुके है। ऋषिसम्प्रदाय का संगठन हो रहा है। यहाँ मुनिराज की सेवा में सन्तो की आवश्यकता है। इस सूचना को ध्यान मे रखकर पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० की आज्ञा से प्रसिद्धवक्ता पण्डितरत्न मुनिश्री आनन्दऋषिजी महाराज और महात्मा श्री उत्तमऋषिजी म० ने ठा० २ से प्रतापगढ़ की ओर विहार किया और उग्र विहार करके वहाँ पधारे। पण्डितरत्नजो के पदार्पण से आपको असीम प्रसन्नता हुई। हर्षातिरेक से विह्वल होकर बोले- मेरी आधी बीमारी हट गई।' किन्तु इन मुनिराजों के पधारने के दो-तीन दिन पश्चात् ही, आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी, सं० १९८९ को ही आपकी आयु पूर्ण हो गई। आपने सेवा के लिए पधारे हुए सन्तों से विशेष सेवा नहीं ली।

प्रिय व्याख्यानी पं० मुनिश्री सुखाऋषिजी म०

मारवाड़ प्रदेश के अन्तर्गत गुड़ामोगरा नामक ग्राम के निवासी श्रीस्वरूपचंदजी जाट के घर, वि. सं० १९२३ की श्रावणी पूर्णिमा के दिन आपका शुभ जन्म हुआ। श्रावणी पूर्णिमा रक्षा-बन्धन का पवित्र दिन माना जाता है। इसी दिन आप इस धरा-धाम पर अवतरित हुए। इस घटना में प्रकृति का क्या संकेत निहित था, यह आगे चल कर स्पष्ट हो गया। रक्षाबन्धन के दिन जन्म लेने वाले इस बालक ने बाल्यावस्था में ही जगत् के समस्त चराचर प्राणियो को अपनी ओर से रक्षा प्रदान की-निर्भय बना दिया। शासनप्रभावक स्थविर पण्डितरत्न मुनिश्री हरखाऋषिजी म. के समीप सं० १९३१ मे ही वैराग्य से प्रेरित होकर दीक्षा अंगीकार कर ली। श्रीसुखाऋषिजी पूर्वजन्म के कुछ विशिष्ट सस्कार लेकर उत्पन्न हुए थे। अन्यथा अजैन कुल मे जन्म लेकर इतनी अल्प वय में संयममय उच्च जीवन व्यतीत करने की अन्तःप्रेरणा उत्पन्न होना कोई साधारण बात नहीं।

आपकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल और मेधाशक्ति बड़ी प्रबल थी। गहन से गहन तत्त्व को अनायास ही हृदयंगम कर लेना और हृदयंगम किये विषय को विस्मृति की गुफा मे न जाने देना आपकी एक बड़ी विशेषता थी। इस विशेषता के साथ आप परिश्रमशील भी थे। अतः सोने मे सुगंध की कहावत चरितार्थ हो गई। अल्प काल मे ही आप शास्त्रीय विषयो के विशेषज्ञ बन गये। आपके व्याख्यान मधुर, प्रभावजनक और चित्ताकर्षक होने लगे। आपका कोकिलवत् सुस्वर कंठ था और गायनकला प्रशंसनीय थी।

सं० १९४९ में आपने चिंचपोकली (बम्बई) मे ठा० ३ से

चातुर्मास किया । आपश्री के प्रवचनों को श्रवण करने के लिए हजारों की संख्या मे जैन और जैनेतर उपस्थित होते थे । श्रोता मंत्र-मुग्ध की तरह आपके अन्तरतर से उद्भूत वचनामृत का पान करते थे । आपके उपदेश से प्रभावित होकर श्रीदेवजी भाई नामक एक सज्जन को वैराग्य की प्राप्ति हुई । वह आपकी सेवा में रह कर ज्ञानाभ्यास करने लगे ।

चातुर्मास समाप्त होने पर आप इगतपुरी होते हुए नासिक पधारे । वैरागी देवजी भाई भी आपके साथ ही थे । यहाँ चिंचपोकली धर्मस्थानक के मंत्री श्रीप्रेमचंद भाई मारफतिया, जो चातुर्मास मे आपकी अगाध योग्यता और उच्च संयमपरायणता देखकर अत्यन्त प्रभावित थे, आपके दर्शनार्थ नासिक आये । आपने महाराजश्री से प्रार्थना की—गुरुदेव, आप दुर्गम पथ और दुर्लंघ्य पहाड़ो को पार करके इधर पधारे है तो थोड़ा-सा कष्ट और सहन कर सूरत तक पधारिये । आपके पूर्वज क्रियोद्धारक पूज्यश्री लवजी ऋषिजी महाराज का प्रधान क्षेत्र खंभात है । खंभात-संघाड़े के सन्त सतियाँ अपने आपको वर्त्तमान मे भी ऋषिसम्प्रदायी ही समझते है और खंभात संघाड़े को ऋषिसम्प्रदाय की एक शाखा के रूप मे मानते हैं । आप सूरत होकर पधारेंगे तो उधर से भी सन्त सेवा में आकर मिल जाएँगे । इससे दीर्घकाल से टूटा हुआ संबंध फिर जुड़ जायगा । परस्पर मे प्रेमभाव की अभिवृद्धि होगी और संगठन की नींव लग जायगी । ऐसा होने पर संघ का बड़ा हित होगा ।

मारफतियाजी का सुझाव समयानुकूल और दूरदर्शितापूर्ण था । महाराजश्री ने सहर्ष उसे मान्य किया और यथासमय सूरत की ओर विहार कर दिया । कष्टकर पहाड़ी रास्ते को पार करते हुए और शीत आदि परीषहों को सहन करते हुए आप सूरत पधार गए ।

मारफतियाजी ने खंभात में विराजमान पूज्य श्रीगिरधरलालजी म० को भी इसी आशय का समाचार भेजकर सूरत पधारने के लिए निवेदन किया। परन्तु अपनी शारीरिक निर्बलता के कारण पूज्यश्री स्वयं सूरत तक नहीं पधार सकते थे, अतएव आपने पं० मुनि श्रीलल्लुऋषिजी म० आदि चार सन्तो को सूरत की तरफ विहार करवा दिया।

दोनों ओर से सन्तों का वात्सल्यपूर्ण मधुर मिलन हुआ आहार आदि एकत्रित ही हुआ। सन्तो मे पारस्परिक प्रेम की वृद्धि हुई। इस स्नेह मिलन के उपलक्ष्य मे वैरागी श्रीदेवजी भाई की दीक्षा चैत्र कृष्णा ३ के दिन बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुई। वैरागी देवजी भाई अब मुनि श्रीदेवऋषिजी म० हो गये।

महाराजश्री का अगला, संवत् १९५० का चातुर्मास धूलिया मे हुआ। वहाँ श्रीपाँचू ऋषिजी म० की दीक्षा हुई। धूलिया से मालवा की ओर विहार कर आप भोपाल पधारे। स्थविर मुनिश्री हरखाऋषिजी म० ठा० ६ और आप ठा० ५, इस प्रकार ठा० ११ का सं० १९५१ का चातुर्मास भोपाल मे हुआ। तत्पश्चात् आपने सं० १९५२ मे मन्दसौर, १९५३ मे इन्दौर और १९५४ मे फिर भोपाल मे चातुर्मास किया।

आपकी शारीरिक स्थिति दुर्बल हो चुकी थी। अतः चातुर्मास के बाद आपने अपने सुपात्र शिष्य श्री देवऋषिजी म० को साथ लेकर पृथक् विहार किया। मुनिश्री हरखाऋषिजी म० और पं० मुनिश्री अमीऋषिजी म० ने भी अलग अलग विहार किया। वि० सं० १९५५-५६ के चातुर्मास आपश्री ने देवास और धार में व्यतीत किये। चातुर्मास के बाद आप इच्छावर पधारे। वहाँ

आपकी तबियत बहुत नाजुक हो गई। तब आपके विनीत, सेवा-भावी और सुपात्र शिष्य श्रीदेवऋषिजी म० ने २६ कोस का मार्ग पीठ पर बिठला कर तय किया और इस प्रकार आप भोपाल पधार गए। सं० १९५७ का चौमासा भोपाल मे हुआ और शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाने के कारण आप वहीं स्थिरवास अंगीकार करके विराजमान हो गए। अनेकानेक औषधों का उपचार करने पर भी कोई सुपरिणाम नहीं निकला और दुर्बलता बढ़ती ही चली गई। अन्त में आपने संथारा धारण कर लिया और समतापूर्वक अन्तिम आराधना करके शरीर का त्यागकर स्वर्ग की ओर प्रयाण किया। एक बात, जिसकी ओर अनायास ही ध्यान आकर्षित हो जाता है, यह है कि जिस श्रावणी पूर्णिमा के दिन आपका जन्म हुआ था, उसी श्रावणी पूर्णिमा के दिन ३५ वर्ष के बाद संवत् १९५८ में आपने स्वर्ग-गमन किया! इस अद्भुत घटना का रहस्य क्या है, यह ज्ञानी ही जानें।

उस समय मुनिश्री हरखा ऋषिजी महाराज दूसरे क्षेत्र में विराजमान थे। आपकी आज्ञा से श्रीसखा ऋषिजी म० तथा श्रीकालू ऋषिजी म० भोपाल पधारे और मुनिश्री देव ऋषिजी म० को श्रीहरखा ऋषिजी महाराज की सेवा मे ले आए।

पंडित रत्न मुनिश्री सुखा ऋषिजी म. ने मालवा, गुजरात, बम्बई, दक्षिण, खानदेश आदि विभिन्न प्रान्तों मे विचर कर शुद्ध जैन धर्म का प्रचार किया। अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर धर्म मे दृढ़ किया। आपश्रीजी के समान शान्त, दान्त, गंभीर, शास्त्रज्ञ, संघ हितैषी और संगठन प्रेमी सन्त मुनिराज जैन संघ में

उत्पन्न हों और स्थानकवासी जैन समाज का उत्थान हो, यह मनो कामना है !

आपके ७ शिष्य हुए। उनकी शुभ नामावली। १ श्रीसूरज ऋषिजी म० २ श्रीप्रेम ऋषिजी म० ३ कविवर्य पंडित रत्न श्रीअमी ऋषिजी म० ४ तपस्वी पूज्यश्री देवजी ऋषिजी म० ५ श्रीमिश्री ऋषिजी म० ६ श्रीपासू ऋषिजी म० ७ श्रीमगन ऋषिजी महाराज।

कविवर्य पं. र. मुनिश्री अमी ऋषिजी महाराज

आपके पिता श्रीभैरूलालजी दलोट (मालवा) के निवासी थे। आपकी धर्मपत्नी श्रीप्याराबाई की कूंख से वि. सं. १६३० में आपका शुभ जन्म हुआ। तेरह वर्ष की उम्र में पं. र. श्रीसुखा ऋषिजी म० से, मार्गशीर्ष कृष्णा ३, सं० १६४३ में आपने दीक्षा अंगीकार की। मगरदा (भोपाल) मे दीक्षा की विधि सम्पन्न हुई। आपकी बुद्धि बड़ी ही तीक्ष्ण थी और धारणा शक्ति भी गजब की थी। इन दोनो अनुकूल निमित्तो के साथ अध्येता की रुचि और श्रम का सम्मिश्रण हो जाय तो विद्या का विकास आश्चर्यजनक हो जाता है। सौभाग्य से आपको यह सब चीजें प्राप्त थीं। अतएव आप जैनागमों में तो प्रवीण हुए ही, साथ ही प्रत्येक प्रचलित मत के मन्तव्यों के भी अच्छे ज्ञाता हो गए। इतिहास की ओर भी आपकी गहरी रुचि थी। शास्त्रीय एवं दार्शनिक चर्चा मे आप अत्यन्त विचक्षण थे। इस विषय मे आपने बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। कई स्थानों पर मूर्त्तिपूजक सन्तों के साथ शास्त्रार्थ करके आपने विजय प्राप्त की थी। एक बार दिगम्बरो से शास्त्रार्थ करने के लिए आप बागड़ प्रान्त में पधारे थे। वहाँ आहार-पानी का सुयोग न मिलने के कारण आपको घोर परीषह सहन करने पड़े। लगातार आठ-आठ दिन तक छाछ में आटा घोल कर पिया और

उसी के आधार पर रहे। वही आपका भोजन और वही पानी था। इस परिस्थिति मे आप शान्त, संतुष्ट और प्रसन्न थे। ऐसे विकट और प्रतिकूल प्रसंगों पर आपका धैर्य देखने योग्य होता था। कितना और कैसा भी संकट क्यों न आ जाय, आप कभी पल भर के लिए भी विचलित न होते और अपने निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर ही होते जाते थे। आपने जैन धर्म के जिस स्वरूप को वास्तविक रूपसे समझा था, उसी को समझाना और जन साधारण के जीवन को उच्च स्तर पर ले जाना और इसी मार्ग से अपनी आत्मा का कल्याण करना आपका लक्ष्य था। यही लक्ष्य सदा आपके समक्ष रहता था।

कई लोगों की धारणा है कि दार्शनिक कवि और कवि दार्शनिक नहीं हो सकता। कवि कमनीय कल्पना का उपासक होता है, और दार्शनिक वास्तविकता का मीमांसक। दोनों की दो विरोधी दिशाएँ हैं। मगर प० मुनिश्री अमीऋषिजी महाराज ने उक्त धारणा को अपने ही उदाहरण से भ्रान्त सिद्ध कर दिया था। मानो उन्होने अपने जीवन से ही अनेकान्त का प्रतिपादन और समर्थन कर दिया हो! वे उच्च कोटि के कवि भी थे और श्रेष्ठ दार्शनिक भी थे। पं० मुनिश्री द्वारा रचित निम्नलिखित ग्रन्थ आज भी सन्तों और सतियों के पास उपलब्ध है:—

(१) स्थानक निर्णय
(२) मुखवस्त्रिका निर्णय
(३) मुखवस्त्रिका चर्चा
(४) श्री महावीरप्रभु के छव्वीस भव
(५) श्री प्रद्युम्न चरित
(६) श्री पार्श्वनाथ चरित
(७) श्री सीता चरित
(८) सम्यक्त्व महिमा
(९) सम्यक्त्व निर्णय
(१०) श्री भावनासार
(११) प्रश्नोत्तरमाला

(१२) समाज स्थिति दिग्दर्शन
(१३) कषाय कुटुम्बछह-ढालिया
(१४) जिनसुन्दरी चरित
(१५) श्रीमती सती चरित
(१६) अभयकुमारजी की नवरंगी लावणी
(१७) भरत-बाहुबलीचौढालिया
(१८) अयवंता कुमार मुनि-छह ढालिया
(१९) विविध बावनी
(२०) शिक्षा बावनी
(२१) सुबोध शतक
(२२) मुनिराजों की ८४ उपमाएँ
(२३) अम्बड संन्यासी चौढालिया
(२४) सत्य घोष चरित
(२५) कीर्त्तिध्वज राजा चौढालिया
(२६) अरणक चरित
(२७) मेघरथ राजा का चरित
(२८) धारदेव चरित

साहित्यिक दृष्टि से आपने खड्गबंध, कपाटबंध, कदलीबंध, मेरुबंध, कमलबंध, चमरबंध, एकाक्षर त्रिपदीबंध, चटाईबंध, गोमूत्रिकाबंध, छत्रबंध, वृक्षाकारबंध, धनुबंध, नागपाशबंध, कटारबंध, चौपटबंध, चौकीबंध, स्वस्तिकबंध, आदि-आदि बहुत-से चित्रकाव्यों की रचना की है। इनमें से कुछ काव्य श्रीअमोल जैन ज्ञानालय, धूलिया से प्रकाशित भी हो चुके हैं। आपने काव्यमय 'जयकुंजर' की बड़ी ही सुन्दर कृति रची है, जो अवलोकनीय है और आपकी कवित्व प्रतिभा का परिचय देती है।

आपश्री का उदयपुर, सीतामऊ, उन्हेल आदि ऐसे क्षेत्रों में भी पदार्पण हुआ था, जहाँ कविमण्डली थी। उन कवियों ने आपको जो समस्याएं दीं, उनकी आपने अत्यन्त भावपूर्ण, हृदयस्पर्शी, अनुभूतिमय और साथ ही शिक्षाप्रद पूर्त्ति की है। इन सब काव्यों को देख कर निस्संकोच कहा जा सकता है कि आप श्रेष्ठ प्रतिभा-शाली कवि थे। सन्त-साहित्य में आपकी रचनाएँ महत्त्वपूर्ण

स्थान रखती हैं। आपकी कविता की भाषा सरल, सुबोध और प्रसाद गुण युक्त है। आपने छन्दः शास्त्र पर भी बराबर ध्यान रक्खा है और अपनी रचनाओं को छन्दोभंग के दोष से पूरी तरह बचाया है। इन सब दृष्टियों से पंडित मुनिश्री अमीऋषिजी महाराज स्थानकवासी परम्परा के सर्वोत्तम कवि हैं। आपकी तुलना में ठहरने योग्य कवि इस परम्परा मे विरले ही मिल सकते हैं।*

आपश्री को सुलेखन कला के प्रति भी बड़ा अनुराग था। आपके अक्षर अत्यन्त सुन्दर थे। आपने शास्त्रीय लिपि में, अपने स्वाध्याय के लिए स्वयं ही श्रीवृहत्कल्प, प्रश्नव्याकरण, सूत्रकृतांग, अनुयोग द्वार आदि शास्त्र लिखे है। तेरह आगम आपको कंठस्थ याद थे।

सं० १९४९ में गुरुवर्य श्रीसुखाऋषिजी म० ने बम्बई में चातुर्मास किया था, तब आप भी साथ थे। सूरत-सम्मिलन के अवसर पर आप मौजूद थे।

आपश्री के शिष्य श्रीओंकरऋषिजी तथा श्रीदयाऋषिजी म. संसारपक्ष के बन्धु थे। श्रीदयाऋषिजी म. की प्रज्ञा अत्यन्त निर्मल थी। कोई भी श्लोक या गाथा दो तीन बार देख लेने से ही उन्हें कण्ठस्थ हो जाती थी। उनमें भी कवित्व शक्ति का अच्छा विकास हुआ था।

---

*आपकी रचनाओं का एक बड़ा संग्रह शीघ्र ही प्रकाश में आने वाला है। श्रमण संघ के प्रधान मंत्री और इसी परम्परा के भूत पूर्व आचार्य पंडित रत्न मुनिश्री आनन्द ऋषिजी म० उसका परिश्रम पूर्वक संग्रह कर रहे हैं।

मालवा, मेवाड मेरवाड़ा, मारवाड़, गुजरात, काठियावाड़, देहली तथा महाराष्ट्र आदि प्रान्तों को आपने विहार करके पावन किया और जिनशासन का उद्योत किया।

सं० १९८२ में दक्षिण महाराष्ट्र में पदार्पण करके आपने ऋषि-सम्प्रदाय के संगठन के लिए बहुत प्रयत्न किया। अहमदनगर में विराजित सन्तों और सतियों ने आपको ही पूज्य पदवी प्रदान करने का विचार किया, किन्तु उस समय काललब्धि न आने से प्रयत्न सफल न हो सका। आप दक्षिण से मालवा की ओर पधारे और अनेक क्षेत्रों में विचरते तथा धर्म प्रभावना करते रहे। ४५ वर्ष तक संयम पर्याय में व्यतीत करके, मिती वैशाख शुक्ला १४, सं० १९८८ को सुजालपुर (मालवा) में स्वर्गवासी हो गए। उस समय आपकी आयु ५८ वर्ष की थी।

पं० रत्न मुनिश्री अमोऋषिजी म० एक वरिष्ठ विभूति थे। आपने अपने जीवन मे चतुर्विध श्रीसंघ का और संसार का महान् उपकार किया। जिनशासन की शोभा बढ़ाई। आपके सदृश शास्त्र-वेत्ता, सुलेखक, सुकवि और धर्मोपदेशक उत्पन्न होकर जगत् के जीवो का कल्याण करे, यही मनोकामना है।

कवि मुनिश्री दयाऋषिजी महाराज

दलोट (मालवा) निवासी श्रीभेरुलालजी के आप सुपुत्र थे। आपकी माताजी का नाम प्याराबाई था। आपके परिवार में धार्मिकता का वायुमंडल रहा। आपके पिताजी ने भी संयम धारण किया था और ज्येष्ठ भ्राता ने भी। वादीमानमर्दक पण्डितरत्न श्री

अमीऋषिजी म० आपके संसार-पक्ष के भाई थे। जिस परिवार मे धर्म के गहरे संस्कार होते हैं, उस परिवार के लोगों में अनायास ही धर्मप्रेम जागृत रहता है। तिस पर आपको सत्संगति का भी लाभ हुआ और सदुपदेश-श्रवण का भी। अतएव आपके चित्त में वैराग्य का आविर्भाव हो गया।

आपने पं० र. मुनिश्री अमीऋषिजी महाराज के समीप भागवती दीक्षा अंगीकार की। उस समय आपकी आयु दस वर्ष की थी। आपका शुभ नाम श्रीदयाऋषिजी रक्खा गया। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, आपकी बुद्धि अतीव निर्मल थी। आप एक दिन मे १०० श्लोक अनायास ही कण्ठस्थ कर लेते थे। आपके ज्ञानावरण कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि आपश्री दशवैकालिक सूत्र १५ दिन में, आचारांगसूत्र २१ दिन में, सूत्रकृतांगसूत्र २५ दिन मे, बृहत्कल्पसूत्र ६ दिन मे, नन्दीसूत्र २२ दिन में, उत्तराध्ययनसूत्र ४५ दिन में, अनुत्तरोववाई सूत्र ३ दिन में और सुखविपाक सूत्र १ दिन में ही कण्ठस्थ याद करने में समर्थ हो सके थे।

कैसी अनोखी स्मरणशक्ति है! कितनी विशदतर बुद्धि है! अतिशय पुण्यप्रभाव से ही ऐसा सुयोग प्राप्त होता है।

आपने कंठस्थ किये हुए शास्त्रों के अतिरिक्त शेष शास्त्रों का वाचन गुरुवर्य पं० र. मुनिश्री अमीऋषिजी म० के मुखारविन्द से किया था। आपको संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और उर्दू भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। साहित्यशास्त्र का अभ्यास उच्चकोटि का था।

आपश्री निरंतर ज्ञानोपार्जन में संलग्न रहते थे। सदैव किसी न किसी शास्त्र का स्वाध्याय करना, ग्रन्थों का पठन करना, काव्य की रचना करना या लेखनकार्य करना आपका व्यसन था।

स्वभाव में शिशु की सी सरलता थी । प्रकृति से अत्यन्त शान्त थे । सुस्वर नामकर्म के उदय से आपका स्वर अत्यन्त मनोज्ञ, मुग्धकारी और प्रशस्त था । आपका व्याख्यान प्रभावक और रोचक था, जिसे सुनकर श्रोतागण चित्रलिखित-से रह जाते थे । आपके बनाये सवैया और इतर काव्य बड़े ही हृदयस्पर्शी हैं । त्वरा के साथ आननफानन पद्य-रचना करने में आपको कमाल हासिल था । इतने सब सद्गुणों के होने पर भी आपका विनम्रभाव आदर्श था । आपका हृदय समुद्र की तरह गंभीर और उदार था ।

मालवा, मेवाड़, बागड़ आदि प्रान्तों को आपसे लाभ उठाने का विशेष सौभाग्य प्राप्त हुआ । यही आपकी प्रधान विहारभूमि रही । आपने खूब धर्म का प्रचार किया । अपनी विमल वाणी की सुधा से भव्य जीवों को अजर--अमर बनने का पथ प्रदर्शित किया ।

वि. सं. १९६० में आप निम्बाहेड़ा में चातुर्मास करने के लिए पधारे । पर वहाँ प्लेग फैल जाने के कारण लोग इधर -उधर चले गये । श्रीसंघ के आग्रह से आपको भी बड़ीसादड़ी जाना पड़ा । चातुर्मास का शेष समय वहीं पूर्ण हुआ । बड़ीसादड़ी से विहार करके आप भूरक्या गाँव में पधारे । वहाँ यकायक ही आपका स्वर्गवास हो गया । मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् के दिन आपने शरीर त्याग दिया ।

आप उदीयमान महान् प्रतिभासम्पन्न अनगार थे । आशा थी कि आपके द्वारा दीर्घकाल तक वीरशासन की महत्वपूर्ण सेवा होगी । किन्तु आप अल्पायु में ही स्वर्गवासी हो गये !

मुनिश्री रामऋषिजी महाराज

पंचेड़ (मालवा) के आप निवासी थे । आपके पिताजी

को नाम श्रीमान् गुलाबचन्दजी गूगलिया था। संसार-अवस्था में आपका नाम रामलालजी था।

श्रीरामलालजी को एक पुत्र की प्राप्ति हुई। नाम था उसका सूरजमल। लड़का बड़ा हुआ। विवाह हो गया। किन्तु एक वर्ष ही बीतने पाया था कि अचानक उसका वियोग हो गया। 'सूरज' के वियोग से रामलालजी के नेत्रों के आगे घोर अन्धकार छा गया। पर वह अन्धकार प्रखर प्रकाश का पूर्वरूप था। आपको संसार का सच्चा स्वरूप दिखाई देने लगा। सूरज ने अस्त होकर भी राम-लालजी के सामने प्रकाश की चमकती किरणों का प्रसार कर दिया। आपकी पुत्रवधू 'सूरजबाई' ने भी उसमें योग दिया। उस प्रकाश में रामलालजी और पुत्रवधू ने अपना सही रास्ता खोज निकाला। विरक्त होकर धर्मध्यान करने लगे। संतो का समागम करना और शास्त्रीय ज्ञान की प्राप्ति करना ही आपका प्रधान व्यवसाय बन गया।

उन्हीं दिनों सौभाग्य से आपको पं० र. मुनिश्री अमीऋषिजी म० के सत्समागम का सुयोग मिल गया। इतने दिनों तक वैराग्य का जो पोषण किया था, मुनिश्री की वाणी से उसका परिपाक हो गया। आपने गृहत्याग कर अनगारवृत्ति धारण करने का निश्चय कर लिया।

गृहस्थ के घर में क्या नहीं होता? फिर रामलालजी तो महाजन थे। उनका घर गृहस्थी के योग्य पदार्थों से भरा-पूरा था। मगर विरक्त जनों के लिए बहु मूल्य मणियाँ भी पत्थर के टुकड़ों से अधिक मूल्य नहीं रखतीं। श्रीरामलालजी ने अपने रहने का घर धर्मध्यान करने के लिए पंचो को सौंप दिया और उसे खुला छोड़ कर, वैशाख शुक्ला ५, सं. १९७४ में पंडित रत्न मुनिश्री अमी

ऋषिजी म० से जिन-दीक्षा अंगीकार कर ली। आपकी अनुमति लेकर सूरज बाई भी अपना जीवन सफल बनाने के लिए दीक्षित हो गई। उस समय रामलालजी ५४ वर्ष के थे तथा आपकी पुत्रवधू २४ वर्ष की थी।

दीक्षित होने पर आप श्रीरामऋषिजी महाराज कहलाए। आपने अनेक थोकड़े कंठस्थ किये। शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। क्रिया की ओर आपकी विशेष अभिरुचि थी।

आप मालवा आदि प्रान्तो में अपने गुरुवर्य के साथ विचरते रहे। संवत् १९८५ का चातुर्मास पिपलोदा में था। चातुर्मास के उत्तरार्द्ध काल में, कार्तिक कृष्णा १३, शनिवार की रात्रि मे, लगभग १० बजे आपने समाधि पूर्वक संथार ग्रहण करके स्वर्ग की ओर प्रयाण किया। स्वर्गवास के समय आपकी उम्र ६५ वर्ष की थी। लगभग ११ वर्ष तक आपकी संयम पर्याय रही। शास्त्र में कहा है:—

पच्छा वि ते पयाया, खिप्पं गच्छन्ति अमरभवणाइं।
जेसिं पिओ तवो संजमो य खती य बंभचेरं च॥

जिन्हे तपश्चरण, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय हैं, वे भले ही अपने जीवन के संध्या काल मे धर्म की शरण में आए हों, फिर भी उन्हे अमरत्व की प्राप्ति होती है।

श्रीराम ऋषिजी म. ने शास्त्र के इस कथन की सचाई अपने उदाहरण द्वारा प्रत्यक्ष दिखला दी।

आप भद्रहृदय और अत्यन्त सेवा प्रेमी सन्त थे। अपने महान् गुरुदेव के चरणो मे रहते हुए ही आपने देहोत्सर्ग किया।

मुनिश्री ओंकार ऋषिजी महाराज

आप भी दलोट (मालवा) निवासी श्री भैरुलालजी के सुपुत्र और पंडित रत्न श्रीअमी ऋषिजी म. के संसार-पक्ष के भ्राता थे। आपकी प्रकृति मे सहज शान्ति और सरलता थी। पिताजी और दो भाइयों ने संयम अंगीकार किया तो आप भी पीछे रहने वाले नहीं थे। परिवार के उसी धर्ममय वातावरण में आपने भी सांसें ली थी अतएव आपके चित्त में विरक्ति का उद्भव हुआ और आप भी पंडित रत्न मुनिश्री अमी ऋषिजी म० से दीक्षा अंगीकार करके अनगार बने।

आप सेवाभावी सन्त थे। गुरुवर्य की सेवा में रह कर मालवा आदि प्रान्तों मे विचरते रहे। आपके एक शिष्य श्रीमाणक ऋषिजी म० हुए। मनमाड़ (दक्षिण) मे सं. १६८२ के चैत्रमास मे आप देवलोकवासी हुए।

मुनिश्री छोगाऋषिजी महाराज

पं० र. मुनिश्री अमीऋषिजी महाराज की अमृत-वाणी सुनकर आपके अन्तःकरण मे वैराग्यभाव उत्पन्न हुआ। उन्हीं महापुरुष से दीक्षा लेकर संयमी बने। गुरु महाराज के साथ ही साथ कुछ दिन तक विचरे। संयमी जीवन के योग्य ज्ञान प्राप्त किया। परन्तु अपनी हठीली प्रकृतिके कारण संयम-रत्न को निभा न सके।

मुनिश्री देवऋषिजी महाराज

आप भी पं० र० मुनिश्री अमीऋषिजी म० के हृदयस्पर्शी उपदेश से प्रतिबोधित होकर संसार से उदास हुए। उत्कृष्ट वैराग्य--भाव से आपने अपने प्रतिबोधदाता मुनिश्री से दीक्षा धारण की।

प्रकृति शान्त और स्वभाव सरल था। गुरुदेव की सेवा में निरंतर तत्पर रहकर शास्त्रज्ञान प्राप्त किया। मालवा मेवाड़ आदि प्रान्तों मे विचरते हुए तथा शुद्ध भाव से संयम की आराधना करते हुए आपने अन्त में समाधि के साथ देहोत्सर्ग किया।

सुलेखक स्थविर मुनिश्री माणकऋषिजी महाराज

जन्मकाल-फाल्गुण, वि. सं. १९३८ जन्मस्थान- सुहागपुर, जिला प्रतापगढ़ (मालवा)। पिताश्री का नाम-श्रीतुलसीदासजी और माताजी श्रीमती केशरबाई। जन्मजाति-नरसिंहपुरा।

संसार-अवस्था में आपका शुभ नाम श्रीमाणकचंदजी था। पं० र० मुनिश्री अमीऋषिजी म. के सदुपदेशो से आपके चित्त में इस असार संसार से उपराम हो गया। मोह-समता की जंजीरें टूट गईं। तब आपने उक्त मुनिश्री के चरण-कमलों का अवलम्बन लिया। संसार के सन्ताप से छुटकारा दिलाने की प्रार्थना की। आपको प्रार्थना स्वीकृत हुई। ज्येष्ठ शुक्ला १०, सं० १९७० के मंगल-मुहूर्त्त मे खाचरौद (मालवा) मे पं० र० मुनिश्री अमी- ऋषिजी म० के मुखारविन्द से आपने साधुजीवन की पवित्र प्रतिज्ञाएँ सुनी और उन्हें स्वीकार करके साधु बने। आप मुनिश्री ओंकार- ऋषिजी म० की नेश्राय में शिष्य हुए। दीक्षा के समय आपकी उम्र ३२ वर्ष की थी। वह समय आपके जीवन का तेजोमय मध्याह्नकाल था। उसे आपने संयम की आराधना मे व्यतीत करना आरंभ करके मोह-माया के पंक मे लिप्त मानवो के समक्ष एक स्पृहणीय आदर्श उपस्थित किया। आपने बतला दिया कि मानवजीवन का सर्वोत्तम समय सर्वोत्तम साध्य की साधना में लगा देना ही मानवीय बुद्धि की वास्तविक सफलता है।

दीक्षा अंगीकार करने पर साधक का एक मात्र मुख्य कर्त्तव्य आत्मिक विकारों पर विजय प्राप्त करना होता है। इस कर्त्तव्य को पूर्ण करने के साधन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र हैं। यह सोच कर मुनिश्री माणक ऋषिजी म० ने पंडित रत्न मुनिश्री अमी ऋषिजी म० के मुखारविन्द से २५ आगमो का अध्ययन किया और श्रीदश-वैकालिक सूत्र तथा श्रीउत्तराध्ययन सूत्र कण्ठस्थ कर लिये। इस प्रकार अपने ज्ञान का विकास किया। चारित्र में तत्पर तो थे ही।

आपका व्याख्यान मधुर और रोचक होता है। स्वभाव आपका अत्यन्त शान्त है। प्रकृति की सरलता प्रशंसनीय है।

आपके हस्ताक्षर मोती के समान सुन्दर हैं। आपने स्वयं कई शास्त्र लिखे हैं। शास्त्रीय लिपि मे लिखे गये उन शास्त्रों की सुन्दरता आपके लेखन-कौशल की छटा दिखलाती है।

मालवा में विचरते-विचरते आप दक्षिण की ओर पधारे। सं. १९९३ के चातुर्मास में आप पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी महाराज की सेवा में धूलिया में विराजमान थे। तत्पश्चात् पंडित मुनिश्री कल्याण ऋषिजी म० के साथ रहते हुए खानदेश मे विचरे। फिर कवि श्रीहरि ऋषिजी म. को साथ लेकर आपने पृथक् विहार किया। लगभग ७-८ वर्षों तक आप विभिन्न क्षेत्रों के जिज्ञासु जनों को धर्म-बोध देते रहे। शारीरिक अस्वस्थता के कारण अब आप धूलिया (पश्चिम खानदेश) मे स्थविरवास अंगीकार करके विराजमान हैं। इस समय आपकी सेवा में दो मुनि है-श्रीकान्ति ऋषिजी म० और श्रीभक्ति ऋषिजी महाराज।

आपके पास एक दीक्षा हुई थी। आपके उन शिष्य का शुभ नाम था—श्रीउम्मेद ऋषिजी महाराज।

तपस्वीराज पूज्यश्री देव ऋषिजी महाराज

कच्छ प्रान्त के पुनड़ो नामक ग्राम के निवासी, मूर्त्तिपूजक सम्प्रदाय के अनुयायी, श्रीमान् जेठाजी सिघवी व्यापार के लिए बम्बई आ गये थे। आपकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती मीरा बाई था। इन्हीं महाभागा मीराबाई के उदर से एक शिशु ने उस समय जन्म धारण किया जब कार्तिकी अमावस्या के घने अन्धकार को चीरती हुई दीपमालिका की प्रखर ज्योति जगमग–जगमग कर रही थी। भारतीय इतिहास के अनेक महत्त्वपूर्ण पन्ने आर्यजाति के इस परमपवित्र माने जाने वाले पर्व से संकलित हैं। उन्हीं पन्नो के साथ वि. सं. १९२९ मे एक और स्वर्णपृष्ठ जुड़ गया।

एक बार, करीब अढ़ाई हजार वर्ष पहले, इसी दिन चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर के जीवन–प्रदीप का निर्वाण हुआ था। तब संसार भाव–अंधकार में विलुप्त हो गया था। मगर वि० सं० १९२९ की दीपमालिका ने एक नवजात शिशु के रूप मे संसार को एक नवीन दिव्य ज्योति प्रदान की; मानो अपने पुराने पाप का आंशिक परिमार्जन कर लिया। शिशु का नाम 'देवजी' रक्खा गया। कच्छ प्रदेश मे नाम के आगे 'जी' लगाने की साधारण प्रथा है। अतः बालक का असली नाम देव' ही था। बालक को यह सार्थक नाम देने वाला चाहे कोई ज्योतिषी हो, चाहे कोई और; उसकी सूझ की प्रशंसा की जानी चाहिए। सं० १९२९ का शिशु देव सचमुच ही आगे चलकर 'गुरुदेव' और फिर 'आचार्यदेव' के प्रतिष्ठित पद पर आसीन हुआ।

महापुरुष के निर्माण मे जैसे दृश्य शक्तियाँ कुछ काम करती हैं, उसी प्रकार अदृश्य शक्ति भी अदृश्य रूप मे अपना काम करती रहती है। उसी अदृश्य शक्ति ने अपना कार्य आरंभ कर दिया। जब

आप ग्यारह वर्ष के हुए तो आपकी माता का शरीरान्त हो गया और आप अनायास ही एक बंधन से छूट गये । बाल्यावस्था से ही धर्म के प्रति आपकी गहरी अभिरुचि थी। आपके अन्तर में संयम के अनपनपे बीज विद्यमान थे। फिर भी आप अपने पैत्रिक व्यवसाय मे लग गये और सन्तोष के साथ अपना कर्त्तव्य पालन करने लगे।

वि० सं० १९४५ में कांदावाड़ी (बम्बई) में देवजी जेठा नाम से एक स्वतंत्र दुकान खोली। सं० १९४९ मे जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, बालब्रह्मचारी महात्मा श्रीसुखाऋषिजी म. श्रीहीराऋषिजी म. और पण्डितप्रवर श्रीअमीऋषिजी म. का चिचपोकली (बम्बई) में चातुर्मास हुआ। इन सन्तों के रूप में बम्बई की धर्मप्रेमी जनता को मानो रत्नत्रय की प्राप्ति हुई। अबाध गति से सन्तों की वाणी का निर्मल निर्झर प्रवाहित होने लगा और उसकी शीतल धवल धारा में अवगाहन करके पुण्यशाली नर--नारी अपने वाह्याभ्यन्तर संताप का उपशमन करने लगे। उन्हीं पुण्य--शाली पुरुषो में देवजी भाई भी थे। मन्दिरमार्गी परिवार में जन्म लेकर और उसी सम्प्रदाय के संस्कारो से युक्त होने पर भी मुक्ति--मार्ग एवं आत्मिक शान्ति की जिज्ञासा ने आपको उक्त महापुरुषों के सान्निध्य मे लाकर खड़ा कर दियो। आप प्रतिदिन व्याख्यान सुनने आते और व्याख्यान के शब्दो को अन्तःकरण तक ले जाकर पचाते थे ।

इस प्रकार व्याख्यानश्रवण और सन्तसमागम से वैराग्य का वीज अंकुरित हो उठा। ज्यो-ज्यों आप सन्तो की उपासना करने लगे, त्यों-त्यों वह वैराग्य का अकुर प्रौढ़ता प्राप्त करता चला गया।

देवजी भाई को आशा नहीं थी कि उन्हे पिताजी के द्वारा संयम ग्रहण करने की आज्ञा मिल सकेगी। अतएव चातुर्मास समाप्त करके सन्तो ने जब नाशिक की ओर विहार किया तो आप भी उनके साथ पैदल चल पड़े। नाशिक तक पैदल ही पैदल चले।

जहाँ प्रबलतर इच्छा होती है, वहाँ कोई न कोई मार्ग निकल ही आता है और सफलता मिल जाती है। श्रीदेवजी भाई की अभिलाषा अटल थी। अतएव विवश होकर भी पिताजी को दीक्षा लेने की अनुमति देनी पड़ी। कुछ श्रावको ने बीच मे पड़ कर जेठाजी भाई को समझाया और उन्होने आज्ञा प्रदान कर दी।

श्रीदेवजी भाई की दीक्षा का उल्लेख पहले किया जा चुका है। ऋषि सम्प्रदाय की खंभात-शाखा के मुनियो के मधुर मिलन के मंगल-अवसर पर सूरत मे भारी समारोह के साथ आपकी दीक्षा हुई। आपकी यह दीक्षा दोनो शाखाओ को वात्सल्य के बंधन मे जोड़ने वाली एक सुन्दर कड़ी थी। दीक्षा के पश्चात् आप श्रीदेव ऋषिजी महाराज कहलाने लगे।

अपने गुरुवर्य पडित रत्न मुनिश्री सुखा ऋषिजी महाराज के साथ संवत् १९५० का चातुर्मास धूलिया मे, सं. १९५१ का भोपाल मे, सं. १९५२ का मन्दसौर मे, सं. १९५३ का इन्दौर मे, सं. १९५४ का भोपाल मे, सं. १९५५ का सुजालपुर मे, सं. १९५६ का देवास मे और सं. १९५७ का धार मे किया।

इस चातुर्मास के पश्चात् आप गुरु म० के साथ इच्छावर पधारे उस समय आप दो ठाणा ही थे। वहाँ हवा-पानी अनुकूल न होने से पंडित मुनिराज श्रीसुखाऋषिजी म. का स्वास्थ्य बिगड़ गया। विहार करने की भी शक्ति नहीं रही। उस समय आपने सेवाव्रती मुनि श्रीनंदिषेण के प्राचीन आदर्श का स्मरण और अनु-

सरण किया। आप अपने गुरु महाराज को अपनी पीठ पर बिठला कर भोपाल की ओर ले चले। इच्छावर से भोपाल २६ कोस दूर पड़ता है। इतनी दूरी तक गुरु महाराज को उठाकर ले जाना कोई साधारण बात नहीं है। ऐसा करने मे आपको घोर कष्ट का सामना करना पड़ा होगा। मगर गुरुभक्ति की प्रबल प्रेरणा से आपमें अदम्य साहस और उत्साह उमड़ पड़ा और अनेक कष्ट सहन करते हुए भी आप गुरुदेव को भोपाल पहुंचा देने मे कृतकार्य हुए। मगर खेद का विषय है कि भोपाल पहुँच जाने पर और अनेक प्रकार का औषधोपचार करने पर भी गुरुवर्य महाराज श्री की अस्वस्थता हट न सकी। श्रीदेवऋषिजी म० को गुरु-वियोग की व्यथा सहनी पड़ी। भोपाल मे आप एकाकी रह गये। समाचार पाकर स्थविर मुनि श्रीहरखाऋषिजी म. ने दो सन्तो को भेज कर आपको अपनी सेवा मे बुला लिया।

संसार की अनित्यता का अनुभव करते हुए आपने मालवा में विचरण किया। क्रमशः पीपलोदा, आगर, भोपाल, उज्जैन, आगर, शाजापुर, सारंगपुर, गंगधार, बड़ोदा, शाजापुर, भोपाल और गंगधार मे प्रभावशाली चातुर्मास व्यतीत करके और बीच--बीच के शेष काल मे विभिन्न क्षेत्रो में विचरण करके दक्षिण की ओर प्रस्थान किया।

दक्षिण और बरार प्रान्त मे भुसावल, हींगनघाट, बरोरा, अमरावती. सोनई तथा बम्बई आदि क्षेत्रों मे चातुर्मास किये और धर्म की खूब प्रभावना की।

सं० १९७८ में नाशिक तथा १९७९ में जलगांव में चातुर्मास व्यतीत करके आप भुसावल पधारे। यहाँ फ़ैजपुर-- निवासी तारण-पंथी श्रीतोलारामजी की दीक्षा हुई। उनकी उम्र ३० वर्ष की थी।

उनका नाम श्रीतुलाऋषिजी रक्खा गया। सं० १६८० का चातुर्मास सांदूरबाजार मे हुआ। इसी वर्ष नागपुर मे श्रीवृद्धिऋषिजी की दीक्षा हुई। आपने दीक्षा देकर उन्हे अपने प्रिय सहचर पं० सखाऋषिजी म० की नेश्राय मे शिष्य बनाया। सं० १६८१ का चातुर्मास नागपुर में व्यतीत हुआ।

आपश्रीजी के द्वारा जैनधर्म का अच्छा प्रचार हुआ। जो लोग धर्म से अनभिज्ञ थे, उदासीन थे विमुख थे, उन्हे आपने सदुपदेश देकर धर्म की ओर आकर्षित किया, धर्मानुरागी बनाया और धर्म मे दृढ़ भी किया। आपकी शासनसेवा आदर के साथ उल्लेखनीय है।

मुनिश्री देवऋषिजी महाराज महान् तपस्वी थे। आपका संयमजीवन एक प्रकार से तपस्या का जीवन है। सं० १६५८ से लगाकर सं० १६८१ तक, २३ वर्षों मे आपने निम्नलिखित तपश्चर्या की है:—

१–२–३–४–५–६–७–८,–३८, ४१; फिर ८–६–११–१२–१३–१३–१४–१५–१५–१६–१७–१८–१६ २०–२१–२२–२३–२४.

इस प्रकार की कड़ी और बहुसंख्यक प्रकीर्णक तपस्या करते हुए भी आपके दैनिक कार्य-क्रम मे किसी प्रकार का व्याघात नही होता था। व्याख्यान देना और प्रतिदिन एक घंटा खड़े रह कर ध्यान करना आदि सभी कार्य नियमित करते थे।

सं. १६८२ का चातुर्मास आपने अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता पं. रत्न श्रीअमीऋषिजी म० के साथ अहमदनगर में किया। यहाँ ३६ दिनो की तपश्चर्या की। सं १६८३ में स्थविरपदालंकृत महात्मा श्रीरत्न ऋषिजी म० के साथ भुसावल में चातुर्मास किया। इस चातुर्मास में ४० दिन की तपस्या करते हुए भी आप प्रतिदिन

व्याख्यान फरमाते थे। तदनन्तर सं. १९८४ से ८८ तक आपने बरोरा, नागपुर, राजनांदगांव, रायपुर और पुनः नागपुर में चातुर्मास किये।

आप बरार और मध्य प्रदेश के गोंदिया, बालाघाट, द्रुग और रायपुर आदि जिलों के अनेक ऐसे स्थानों पर पधारे, जहाँ पहले कोई संत कभी पधारे ही नहीं थे। वहाँ विहार करने में आप को कठिन उपसर्ग और कठोर परीषह सहन करने पड़े; मगर आपने सभी कुछ सहन करके नये क्षेत्र खोले और वहाँ धर्म का प्रचार किया। आपश्री के सदुपदेश से कितने ही लोगो ने मांस-मदिरा का त्याग किया; कइयो ने मादक द्रव्यों का सेवन छोड़ दिया और तपश्चर्या द्वारा इन्द्रियों का दमन करना सीखा।

सं. १९८९ में ऋषि सम्प्रदाय के संगठन और आचार्य पद्वी महोत्सव के निमित्त आप इन्दौर पधारे। इस प्रसंग पर आपको उपस्थिति अत्यन्त उपयोगो और महत्त्वपूर्ण रही। आगमोद्धारक पंडित रत्न मुनिश्री अमोलक ऋषिजी म० को आपके ही कर-कमलो से आचार्य--चादर ओढ़ाई गई।

सं १९८९ मे आपने सुजालपुर में चातुर्मास किया। तदनन्तर मार्गशीर्ष शुक्ला १३ के दिन शाहपुरा निवासी श्रीदलेल सिहजी डांगी और उनके सुपुत्र श्रीअक्षयचन्द्रजी को दीक्षा प्रदान की। श्रीदलेलसिंहजी को श्रीसखा ऋषिजी म० की नेश्राय में और श्री अक्षयचंद्रजी को अपनी नेश्राय मे शिष्य बनाया। नवदीक्षित मुनियों के नाम क्रमशः श्रीकान्ति ऋषिजी और श्रीअक्षय ऋषिजी रक्खे गये।

उन्हीं दिनों प्रतापगढ़ में मालवा प्रान्तीय ऋषि संप्रदायी सतियों का सम्मेलन होना निश्चित हो चुका था। आपश्री तथा पं.

रत्न श्रीआनंद ऋषिजी म० और पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी महाराज ने प्रतापगढ़ पधार कर सम्मेलन को सफल बनाया। वहाँ से विहार करके सं. १९९०--९१- ९२ और ९३ का चातुर्मास क्रमशः भोपाल, इन्दौर भुसावल और नागपुर मे किया।

इस चातुर्मास के मध्य भाग में, भाद्रपद कृष्णा १४ के दिन धूलिया में पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० का स्वर्गवास हो गया। पूज्यश्री पंजाब एवं देहली आदि प्रान्तों मे विहार करके शीघ्रता के साथ खानदेश पधारे थें। आप अपना साम्प्रदायिक भार हल्कां करना चाहते थे। आपकी भावना थी कि युवाचार्य पद पं. रत्न श्रीआनन्दऋषिजी म० को देकर मैं भार-मुक्त हो जाऊँ, किन्तु काल की गति बड़ी विचित्र है। मनुष्य कुछ सोचता है और कुछ हो जाता है। युवाचार्य पद प्रदान करने की भावना मन मे ही रह गई और आप स्वर्ग सिधार गए।

वि. सं. १९९३ की माघ कृष्णा ५ के दिन तपस्वीराज श्रीदेव ऋषिजी म० को भुसावल मे पूज्य-पदवी की चादर ओढ़ाई गई। वृद्ध एव सरल हृदय तपस्वीराज ने उपस्थित जनता से उसी समय कह दियां—मै इस गुरुतर भार को वहन करने मे असमर्थ हूँ। अतः सम्प्रदाय संचालन का उत्तरदायित्व पं. रत्न श्रीआनन्दऋषिजो म० को सौपा जाता है और उन्हें युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है। साम्प्रदायिक कार्यों का समस्त भार उन्हीं पर है।

इस पूज्य पदवी और युवाचार्यपदवो समारोह के अवसर पर ६३ संतो और सतियों की उपस्थिति थी। ३००० के लगभग श्रावक-श्राविकाओं का समूह था। यह समारोह भुसावल में श्रीमान् दानवीर सेठजी श्रीपन्नालालजी बंब के औषधालय के सामने विशाल मण्डप में सानन्द सम्पन्न हुआ। इसी शुभ अवसर पर

पं. प्रवर्त्तिनीजी श्रीरत्नकुंवरजी म० के समीप शाजापुर निवासिनी श्रीपानकुंवरजी की दीक्षा हुई।

तपस्वीराज पूज्यश्री ने सं० १९९४ का चातुर्मास हींगनघाट मे किया। चातुर्मास के बाद वहां ही मार्गशीर्ष शुक्ल १५ के शुभ दिन श्रीमिश्रीऋषिजी की दीक्षा हुई। इस दीक्षा--प्रसंग पर उपस्थित सन्त--सतियों की सख्या ३६ थी। सं० १९९५ का चातुर्मास रायपुर (म० प्र०) में हुआ। चौमासे के अनन्तर छत्तीसगढ़ प्रान्त के पहाड़ी क्षेत्रों में अनेकानेक परीषहों को सहन करते हुए आपश्री ने धर्म का प्रचार किया। अनेक भव्य जीवो को कुव्यसनो से छुड़ा कर धर्म के मार्ग पर लगाया। जब आप कुसुम कासा (द्रुग) में विराजमान थे। तो चैत्र शु. ८ के दिन होनहार लघुमुनिश्री अक्षय-ऋषिजी म० का स्वर्गवास हो गया। इस वियोग-व्यथा के संताप को ज्ञान से उपशान्त करते हुए आप विचरने लगे। सं. १९९६ का चौमासा राजनांद गांव मे किया।

इस समय पूज्यश्री काफी वृद्ध हो चुके थे। विशेष विहार करने में शरीर अशक्त-सा हो गया था। तथापि आपका विहार क्रम जारी रहा और आप नागपुर पधारे। सं. १९९७-९८ के चातुर्मास नागपुर (इतवारी) मे व्यतीत किये। सं. १९९९ के आषाढ़-कृष्ण ४ के रोज श्रीराम ऋषिजी की दीक्षा हुई। आपश्री के परम भक्त सुश्रावक दानवीर सेठजी श्री सरदारमलजी पुंगलिया ने अपनी उदार भावना से दीक्षा सबंधी अर्थ-व्यय करके सेवा का लाभ लिया था। सं. १९९९ का चातुर्मास करने के लिए पूज्यश्री ठा० ३ से सदरबाजार से इतवारी की ओर पधारे थे। आषाढ़ शुक्ला प्रतिपद् का दिन था। पूज्यश्री की तबियत मे किसी प्रकार की अशान्ति नहीं थी। किन्तु दूसरे दिन से ही अशान्ति आरम्भ

हो गई। यहाँ तक कि उठना-बैठना भी कठिन हो गया। श्रीमान् सरदारमलजी पुंगलिया की प्रेरणा से डाक्टर ने देखकर बतलाया कि आपको लकवा की शिकायत है। तब आयुर्वेदज्ञ सुश्रावक श्रीचम्पालालजी वैद चांदेवाले से चिकित्सा करवाई गई। तबियत में कुछ सुधार दिखाई दिया।

इसी समय इतवारी बाजार मे हिन्दू मुस्लिम दंगा आरम्भ हो गया। कितने ही श्रावक नागपुर छोड़ कर बाहर चले गये। तब सदरबाजार के श्रावको की प्रार्थना स्वीकार करके आप वहाँ पधारे। सदरबाजार मे दंगे का वातावरण नही था। चातुर्मास के समय तबियत कुछ यो ही चलती रही। तत्पश्चात् मार्ग शीर्ष कृष्णा ४ के दिन बहुत घबराहट बढ़ गई। आपने सुश्रावक भैरोदानजी बद्धाणी आदि प्रमुख श्रावको को बुलाकर सूचित किया कि युवाचार्य जी को संदेश दे दीजिए—"अब सम्प्रदाय का सम्पूर्ण भार आपके ऊपर ही है। आप सब सन्तो और सतियो को निभा लीजिएगा।" साथ ही सब संतो तथा सतियो को संदेश भिजवा दिया कि— "आप जैसे मुझे मानते थे, उसी प्रकार युवाचार्यश्री को मानते हुए उनकी आज्ञा मे चलना।"

दिनोदिन घबराहट बढ़ती ही चली जाती थी। आप निरन्तर यह सोचा करते थे कि अन्तिम समय मे समाधियुक्त मृत्यु का आलिंगन करने का अवसर मिले। आपश्री ने मार्गशीर्ष कृ. ७ के दिन तिविहार उपवास किया और पुनः युवाचार्यश्री, आत्मार्थी श्रीमोहनऋषिजी म० तथा पं. श्रीकल्याणऋषिजी म० के पास पूर्वोक्त आशय के संदेश भिजवाये। अगले दिन दूसरा उपवास किया और नवमी के दिन यावज्जीवन, संलेखना सहित चौविहार प्रत्याख्यान कर लिया। दिन में ११ बजे से ही श्वास में मन्दता आ गई। रात्रि के समय आपने इस नश्वर शरीर का परित्याग कर

दिया। विशेष जानकारी आपके स्वतन्त्र प्रकाशित जीवन चरित्र से हो सकती है।

पूज्यश्री का दीर्घकालीन संयम जीवन अत्यन्त स्पृहणीय और आदर्श रहा। आपके वियोग से जैनसमाज को करारी चोट पहुँची। आपके पश्चात् पं. रत्न युवाचार्य श्रीआनन्दऋषिजी म० पर आचार्य-पद का पूरा भार आ गया।

मुनिश्री प्रतापऋषिजी महाराज

आपका जन्म संवत् १६४७ में अजैन गुर्जर परिवार में हुआ था। गृहस्थावस्था में आपका नाम प्रतापचंदजी था। तेईस वर्ष के उभरते यौवनकाल में, सं० १६७० के मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष में, आपने तपस्वीराज मुनिश्री देवऋषिजी म० से जैन--मुनि की दीक्षा अंगीकार की। आप सेवाभावी सन्त थे और प्रकीर्णक तपस्या करते थे। सात वर्ष तक संयमी-पर्याय में रह कर सं० १६७७ की पौष कृष्णा तृतीया के दिन दादर (बम्बई) मे आपने देहोत्सर्ग किया।

उग्रतपस्वी मुनिश्री तुलाऋषिजी महाराज

आपका जन्म सं० १६४६ मे फैजपुर (खानदेश) में हुआ था। आपका गृहस्थावस्था का नाम श्रीतुलारामजी था। तीस वर्ष के यौवन--काल मे मि० ज्येष्ठ शु० १२ सं० १६७६ के दिन भुसावल मे तपस्वी मुनिश्री देवऋषिजी म० के समीप निर्ग्रन्थ--दीक्षा धारण करके आप संयमी बने। दीक्षा-महोत्सव का सारा व्यय प्रसिद्ध धर्मनिष्ठ श्रावक श्रीमान् सागरमलजी ओस्तवाल के काका श्रीमान्

देवीचंदजी ने बहुत उत्साह के साथ किया। संयम की ओर आपकी विशेष प्रीति थी। आप सेवाभावी और घोर तपस्वी सन्त थे, किन्तु प्रकृति के कुछ तेज और आग्रहशील मनोवृत्ति के थे। अपनी इस प्रकृति के कारण आप गुरुवर्य से भी पृथक् होकर अकेले ही विचरते थे। आप गुरुवर्य की अन्तिम सेवा से भी वंचित रहे।

आपने एकान्तर, बेला, तेला पंचोला, अठाई, ग्यारह, पन्द्रह आदि की बड़ी तपश्चर्या भी की थी। पारणा के दिन छाछ आदि सादा आहार लेते थे। कतिपय विगयो के त्यागी थे। आप बरार प्रान्त के छोटे-छोटे ग्रामो मे अकसर विचरते थे। जहाँ कही पधारते, आरंभ के कुछ दिनो तक, २५ दया पालने की प्रतिज्ञा लेने वाले गृहस्थ के घर ही आहार-पानी ग्रहण करते थे। कुछ दिनों बाद ५० और फिर १०० दया पालने की प्रतिज्ञा लिवाते थे। इस प्रकार क्रम से दया-संख्या बढ़ाते ही जाते थे। दया का प्रत्याख्यान करने पर ही आहार लेने का अभिग्रह कर लेते। अभिग्रह पूर्ण न होता तो अपनी तपस्या चालू ही रखते थे। तपस्यामय जीवन-यापन करने के कारण एकाकी-विहारी होने पर भी जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता था।

सं० २००५ का चातुर्मास बरार प्रान्त के टीटवा ग्राम में था। चातुर्मास-काल मे शारीरिक व्याधि उत्पन्न हुई। दुस्सह वेदना सहते हुए समभाव के साथ चातुर्मास-काल में ही आप स्वर्गवासी हो गए। वहीं महासतीजी श्रीफूलकुंवरजी म० ठा० २ का चौमासा था। आपने तन-मन से तपस्वीजी म० की सेवा का लाभ लिया इसी तरह श्रावकजनोचित सेवा का लाभ स्थानीय श्रीमान् पीरचंदजी छाजेड़ ने उत्साह पूर्वक लिया था।

पं० मुनिश्री अक्षयऋषिजी महाराज

आपका जन्म शाहपुरा (मेवाड़-राजस्थान) में सं. १९८० के साल में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्रीदलेलसिंहजी था। गोत्र डांगी था। गृहस्थावस्था मे आप अखेचंदजी या अक्षयचंद्रजी कहलाते थे। पिताजी के साथ-साथ आपने तपस्वीराज श्रीदेवऋषिजी म० की सेवा में रह कर धार्मिक अभ्यास किया था। सं० १९८९ की मार्गशीर्ष शु० १३ के दिन सुजालपुर मे पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण करके तपस्वीराजजी की नेश्राय मे शिष्य बने। दीक्षा के समय आपकी उम्र ९ वर्ष की थी। धारणा-शक्ति प्रबल और बुद्धि निर्मल होने से आपने संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का अध्ययन किया। दानवीर सेठ सरदारमलजी पूंगलिया नागपुर-निवासी की ओर से अध्यापक की व्यवस्था हो जाने से आपको अभ्यास करने की विशेष सुविधा हो गई। आपने आगम-ज्ञान के अतिरिक्त हिन्दी और उर्दू भाषा का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अल्पकाल में ही परिश्रम करके आप अच्छे विद्वान बन गये। तपस्वीजी महाराज के लिए तो आधार--स्वरूप ही थे। बड़े ही होनहार थे। स्वभाव सरल, शान्त और गंभीर था।

आप गुरुवर्य के साथ मालवा, बरार और खानदेश में विचरे। पं० र० मुनिश्री अमीऋषिजी म० द्वारा विरचित काव्य, स्तवन, पद्य आदि साहित्य का संग्रह किया। वह संग्रह प्रकाशित हो चुका है। आपकी उम्र तो न कुछ-सी थी, पर काल तो समदर्शी कहलाता है। उसके लिए वृद्ध, युवा, बालक, राजा, रंक योगी, भोगी आदि सब समान है। अचानक ही यमराज का आक्रमण हुआ और कुसुमकासा (द्रुग-मध्यप्रदेश) मे सं० १९९६ चैत्र शु० ८ को आपका स्वर्गवास हो गया।

ऋषि-सम्प्रदाय के गगन का एक प्रकाशमय और उदीयमान नक्षत्र सहसा विलीन हो गया। इस घटना से तपस्वीराज जैसे प्रौढ़ योगी के चित्त को भी व्यथा हुई। आपसे जिनशासन की प्रभावना की बड़ी आशा थी। परन्तु—

कालगति टारी नाहिं टरै।

मुनिश्री मिश्रीऋषिजी महाराज

लूसरा (मारवाड़) निवासी श्रीजेठमलजी सुराणा की धर्मपत्नी श्रीमती आशाबाई की कुक्षि से, सं. १९५२ में आपका जन्म हुआ। आपका नाम मिश्रीलालजी था। ४२ वर्ष की अवस्था में, मार्गशीर्ष शु० १५ के दिन हींगनघाट (मध्यप्रदेश) में पूज्य श्रीदेवऋषिजी म० के समीप आपकी दीक्षा हुई। दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात् आप गुरु महाराज की सेवा में रहते हुए बरार मध्यप्रदेश आदि प्रदेशो मे विचरते रहे। शारीरिक अस्वस्थता के कारण पूज्यश्री जब नागपुर मे विराजते थे, तब आप भी उनकी सेवा में थे। आपने तन-मन से गुरुदेव पूज्यश्री की रुग्णावस्था में सेवा की और अन्तिम समय तक सहयोग दिया।

पूज्यश्री का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् आपने तथा श्रीरामऋषिजी म० ने नागपुर से विहार किया। उस समय पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० खरवंडी कासार (दक्षिण) मे विराजमान थे। दोनो मुनि आपकी सेवा में पहुँचे। यही आपका प्रथम वार समागम हुआ। सं. २००० का चातुर्मास आपने पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० की सेवा मे चांदा में किया।

इस चातुर्मास के समय पाथर्डी (अहमदनगर) मे विराजमान वय स्थविर मुनिश्री प्रेमऋषिजी म० अस्वस्थ हो गये।

उनकी सेवा के लिए सन्तों की आवश्यकता हुई। तब पूज्यश्री ने आपको पाथर्डी जाने का आदेश दिया। आप उत्साहपूर्वक चाँदा से रवाना होकर बीच में एक रात्रि मुकाम करके दूसरे दिन ही पाथर्डी पधार गये। आप उनके अन्तिम काल तक यथोचित सहयोग देते रहे।

सं २००० के फाल्गुन मास में मुनिश्री जसवन्तऋषिजी म. की दीक्षा हुई। आपश्री, श्रीरामऋषिजी म० तथा श्रीजसवन्तऋषिजी म० ठा० ३ आंबा चकला से विहार करके वार्शी पधारे। वहाँ आपने पूज्यश्रीजी के दर्शन किये। तत्पश्चात् ठा० २ ने लातूर में चातुर्मास किया।* नवदीक्षित श्रीजसवन्तऋषिजी म० पूज्यश्री की सेवा में रहे। जालना, देवलगाँव किनगांव जट्टु (में आपके पैर में सोजन और फोड़ा होने से औषधोपचार के लिए यहां पर २७ दिन तक रुकना पड़ा। उस समय मुनिश्री मोतीऋषिजी म० तथा श्रीरामऋषिजी म० सेवा मे विराजमान थे) सेलू, कारंजा, दारवा, बोरी आदि क्षेत्रों में धर्मोपदेश करते हुए पूज्यश्री के साथ दीक्षा-प्रीत्यर्थ यवतमाल पधारे। वहाँ से आप नागपुर पधारे और नागपुर से कवर्धा में विराजमान स्थविर मुनिश्री कालूऋषिजी म० की सेवा में ठा० २ से पधार गये।

सं० २००२ में आपने ठा० २ से राजनादगाँव में चौमासा किया था। आपके सदुपदेश से वहाँ 'श्रीदेव आनन्द जैन विद्यालय' स्थापित हुआ। यह संस्था वर्त्तमान में व्यावहारिक एवं धार्मिक शिक्षण के क्षेत्र मे सुन्दर प्रगति कर रही है। इस समय आप स्थविर मुनिश्री की सेवा मे कवर्धा मे विराजमान है।

** संयम मार्ग में बड़ा दोष लग जाने के कारण आपने शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार प्रायश्चित लेकर अपनी शुद्धि कर ली।*

मुनिश्री रामऋषिजी महाराज

पुनड़ो (कच्छ) निवासी सुश्रावक श्रीमान् पुनसी भाइ संघवी की धर्मपत्नी श्रीडमरबाई की कूंख से आपका जन्म सं० १६७४ मे हुआ। आपका नाम श्रीरामजी भाई था। आप पूज्यश्री देवऋषिजी म० के संसार-पक्ष के भतीजे होते हैं। सं० १६६६ की आषाढ़ कृष्णा ४ के दिन नागपुर मे पूज्यश्री के सन्निकट आप दीक्षित हुए। अपनी शक्ति के अनुसार ज्ञानोपार्जन कर रहे है। आपने गुरुदेव की प्रशंसनीय सेवा की है। नागपुर मे पूज्यश्री का स्वर्गवास हो जाने पर आप मुनिश्री मिश्रीऋषिजी म० के साथ दक्षिण प्रान्त में पधारे और सं० २००० का चातुर्मास चांदा (अहमदनगर) मे पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० को सेवा मे रह कर किया। इसी वर्ष आपके ज्येष्ठ बन्धु पूज्यश्री के मुखारविन्द से दीक्षित होकर आपके शिष्य बने।

लातूर-चातुर्मास के पश्चात् आप पूज्यश्री के साथ नागपुर पधारे और वहाँ से मुनिश्री मिश्रीऋषिजी म० के साथ विहार कर कवर्धा में विराजमान स्थविर मुनिश्री कालूऋषिजी म० की सेवा में पधार गये। तन-मन से स्थविर म० की ८-६ वर्षों तक सेवा की। जब कवि मुनिश्री हरिऋषिजी म० तथा मुनिश्री जसवन्तऋषिजी म० कवर्धा पधारे तो आपके साथ ही आपने भी वहाँ से विहार किया और सं० २०११ का चातुर्मास रायपुर (म० प्र०) में किया। तत्पश्चात् मुनिश्री हरिऋषिजी म० के साथ सी० पी० में विचरते रहे। आपने सं० २०१२ का चातुर्मास बालाघाट में किया है।

मुनिश्री जसवन्तऋषिजी महाराज

आप मुनिश्री रामऋषिजी म० के ससार पक्ष के ज्येष्ठ भ्राता हैं। आपका नाम श्रीजक्खु भाई था। बम्बई से आप सं० २००० में

पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० की सेवा में चांदा (अहमदनगर) आये। करीब तीन मास तक साथ रहे। तत्पश्चात् बालमटाकली (अहमदननगर) में फाल्गुन शु० ४ के दिन पूज्यश्री से संयम-दीक्षा अंगीकार की और अपने लघुभ्राता श्री रामऋषिजी म० के शिष्य बने। आपकी दीक्षा का व्यय श्रीमान् दीपचंदजी छाजेड़ बालमटाकली-निवासी तथा श्रीपन्नालालजी छाजेड़ ब्यावमंडला वालों ने सहर्ष किया था। दीक्षा के शुभ प्रसंग पर ६ मुनिराज तथा कोटा-सम्प्रदाय की महासतीजी श्रीदयाकुंवरजी म० ठा० ३ से विराजमान थे।

आप भद्र प्रकृति के सन्त हैं। सरल और सेवाभावी हैं। यथाशक्ति अभ्यास करते रहते हैं। करीब आठ वर्ष तक पूज्यश्री की सेवा में रहे। वृहत्साधुसम्मेलन सादड़ी के पश्चात् कवि मुनिश्री हरिऋषिजी म० के साथ कवर्धा पधारने के लिए विहार किया। बम्बई मे चातुर्मास करके सं० २०१० का चातुर्मास जलगांव में किया और उग्र विहार करके कवर्धा पधारे। कुछ दिन वहाँ विराजे। सं० २०११ मे रायपुर में चौमासा किया। सं० २०१२ का चातुर्मास कवि मुनिश्री हरिऋषिजी म० के साथ ही बालाघाट में किया है।

मधुर व्याख्यानी मुनिश्री सखाऋषिजी महाराज

आप नाशिक निवासी श्रीगणपतराव पटेल के सुपुत्र थे। आपकी माता का शुभ नाम सखूबाई था। आपके घर की स्थिति बहुत अच्छी थी। धन और जन से सम्पन्न परिवार में आपका जन्म हुआ।

सं० १६४६ में पं० मुनिश्री सुखाऋषिजी म० नाशिक पधारे थे। उनके सत्संग से आपके हृदय में वैराग्यभाव जागृत हुआ। दीक्षा अंगीकार करने की प्रबल भावना भी उत्पन्न हो गई। किन्तु

चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से वह भावना सफल न हो सकी। तब आप शिक्षण प्रीत्यर्थ पण्डित मुनिश्री के साथ रहने लगे। चार वर्षों तक मुनिश्री की सेवा मे रहकर आपने अभ्यास किया और साधु चर्या का ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् संवत् १९५४ मे मार्गशीर्ष शु० १३ के दिन सुजालपुर में ज्योतिर्विद पं० मुनिश्री दौलतऋषिजी म० के समीप दीक्षा अंगीकार की। उस समय आपकी उम्र २४ वर्ष की थी। आपका शुभ नाम श्रीसखाऋषिजी म० रक्खा गया।

तपस्वीराज श्रीदेवऋषिजी म० के साथ पूर्व-परिचय और विशेष प्रेम होने के कारण आपश्री गुरु महाराज की आज्ञा से तपस्वीराज के साथ-साथ ही विचरते थे। आप दोनों मे अत्यन्त उत्कट अनुराग था। उस अनुराग की तुलना राम और लक्ष्मण के पारस्परिक अनुराग के साथ की जा सकती है। आपका अनुराग अत्यन्त सात्विक और प्रशस्त था तथा संयम की आराधना में सहायक था।

आपके कंठ की मधुरता और गायन कला की कुशलता उच्चकोटि की थी। इन सब कारणो से आप चुम्बक की तरह श्रोताओ के चित्त को आकर्षित कर लेते थे। तपस्वीराज के साथ मालवा, मेवाड़, खानदेश, बरार, मध्यप्रदेश आदि प्रान्तो में विचरण करके आपने धर्म की खूब प्रभावना की है।

वि. सं. १९९२ में आपने भुसावल में चातुर्मास किया। श्रावण मास चल रहा था। शुक्लपक्ष की त्रयोदशी का मनहूस प्रभात आया और सूर्योदय के समय ही आप इस अनित्य देह को त्याग कर स्वर्गवासी हो गए। उधर एक सूर्य का उदय हुआ और इधर एक सूर्य अस्त हो गया।

आपश्री के तीन शिष्य हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं:—

(१) श्रीवृद्धि ऋषिजी म० (२) श्रीसमर्थ ऋषिजी म० (३) श्री कान्तिऋषिजी म०।

तपस्वी मुनिश्री वृद्धिऋषिजी महाराज

आप ग्राम वाकोद (खानदेश) के निवासी थे। आपका नाम बिरदीचंदजी था। गोलेछा गोत्र में जन्म हुआ था। तपस्वी-राज श्रीदेवऋषिजी म० के सदुपदेश से वैराग्य भाव की जागृति हुई। फलस्वरूप ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी, सं० १९८१ के शुभ दिन आपने अपने प्रतिबोधक गुरुवर्य से भागवती दीक्षा अंगीकार की। नागपुर में दीक्षा--उत्सव मनाया गया। आप मुनिश्री सखाऋषिजी म० की नेश्राय में शिष्य बने। आपका नाम--संस्कार किया गया -श्रीवृद्धि-ऋषिजी महाराज। दीक्षा संबंधी समस्त व्यय दानवीर सेठ सरदार-मलजी पूंगलिया ने करके अपना अहोभाग्य समझा। दीक्षा के समय अपकी उम्र ४० वर्ष की थी।

श्रीवृद्धिऋषिजी म० उग्र तपस्वी थे। कभी २ बेले-तेले पारणा करते थे। प्रकीर्णक तपस्या भी की और ३-४ मासखमण भी किये। सिर्फ छाछ के आधार पर एक मास, दो मास, तीन मास, चार मास और छह मास तक की तपश्चर्या की थी। पहुणा (बरार) में आपने छह मास की तपस्या की थी। पारणा के दिन आपने अभिग्रह कर लिया। परन्तु तपश्चर्या के प्रबल प्रभाव से आपका अभिग्रह पूर्ण हुआ और सकुशल पारणा हो गई। इस शुभ प्रसंग पर तपस्वीजी की भावना और पहुना श्रीसंघ का आग्रह देखकर हिंगणघाट का सं० १९८४ का चातुर्मास पूर्ण करके पं. रत्न श्री आनन्दऋषिजी म० महात्मा श्री उत्तमऋषिजी म० ठाणे २ से पधारे थे जिससे संघ में विशेष उत्साह बढ़ा।

मुनिश्री अनशन-तपस्या ही नहीं करते थे, बल्कि इन्द्रिय-विजय के हेतु अन्यान्य प्रकार के तपःप्रयोग भी किया करते थे। ग्रीष्म काल मे तवे की तरह तपते हुए प्रखर दिनकर की धूप में, ठीक मध्याह्न समय मे, १२ से ३ बजे तक जमीन पर लेट कर आतापना लेते थे। आप अजमेर में बृहत् साधुसम्मेलन के प्रसंग पर पधारे थे और वहाँ मासखमण की तपस्या की थी। अजमेर से लौटते समय आप विजयनगर पधारे। वहीं आषाढ़ कृष्ण पक्ष में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके स्वर्गवास से एक ऐसे सन्त का वियोग हो गया जो भगवान् महावीर को तपःप्रधान परम्परा की, अपने आचरण से, स्मृति कराते थे और प्राचीनकालीन तपोधन मुनियों का कल्पना-चित्र संघ के सामने उपस्थित कर देते थे।

तपस्वीश्री समर्थऋषिजी महाराज

आप मूलतः खिचन (मारवाड़) के निवासी थे परन्तु व्यापार के निमित्त पार सिवनी (मध्यप्रदेश) मे रहने लगे थे। लौकिक व्यापार करते-करते आपके प्रकृष्ट पुण्य का ऐसा उदय आया कि आप लोकोत्तर व्यापार के क्षेत्र में, जहाँ पहुँचने पर जड़ धन तुच्छतर प्रतीत होने लगता है, अवतीर्ण हो गये। तपस्वीराज श्रीदेवऋषिजी म० के उपदेश का आपके चित्त पर गंभीर प्रभाव पड़ा और आपने दीक्षा अंगीकार कर ली। सं० १९८५ मे आपकी दीक्षा हुई। आप मुनिश्री सखाऋषिजी म० की नेश्राय में शिष्य हुए। आपको श्रीसमर्थऋषिजी नाम दिया गया। दीक्षा के समय आप ३० वर्ष के युवक थे। आपके लघुभ्राता श्रीमान् समीरमलजी बोथरा ने बड़े उत्साह के साथ दीक्षा का समस्त भार वहन किया।

तपश्चर्या की ओर आपकी विशेष अभिरुचि थी। एकान्तर, बेला, तेला, पंचोला, अट्ठाई. ग्यारह, पन्द्रह आदि-आदि की

तपस्या प्रायः करते ही रहते थे। आपकी प्रकृतिभद्रता अत्यन्त सराहनीय थी। सेवा भाव कूट-कूट भरा था।

अजमेर सम्मेलन के बाद आप पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० की सेवा में रहकर मारवाड़, संयुक्त प्रान्त, देहली और पंजाब आदि प्रान्तो मे विचरे और धूलिया पधारे। धूलिया में ही द्वितीय भाद्रपद शुक्ला ६ के दिन (संवत् १६६३ में) आपका स्वर्गवास हो गया।

मुनिश्री कान्तिऋषिजी महाराज

रियासतों के विलीनीकरण के पहले मेवाड़ में शाहपुरा एक छोटी-सी रियासत थी। आप वहीं के निवासी थे। गृहस्थावस्था में आपका नाम दलेलसिंहजी था। डांगी गोत्र था। सं. १६८५ के चातुर्मास मे आप अपने पुत्र के साथ तपस्वी श्रीदेवऋषिजी म० की सेवा मे पहुंचे। पिता-पुत्र दोनो ही चार वर्ष तक विरक्त अवस्था में रहे। साधु जीवन सम्बन्धी आचार का अध्ययन एवं अभ्यास किया।

तपस्वीजी का स० १६८६ का चौमासा सुजालपुर में था। वहां आपके दीक्षा लेने के भाव अति उत्कट हो गए। तब मार्गशीर्ष शुक्ला १२ के दिन सुजालपुर में शास्त्रोद्धारक पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० के मुखारविन्द से पिता पुत्र के इस भाग्यशाली युगल ने आर्हती दीक्षा धारण की। आप मुनिश्री सखाऋषिजी म. की नेश्राय मे शिष्य बनाये गये और आपके पुत्र तपस्वीराज श्रीदेवजीऋषिजी म० की नेश्राय में। आपका नाम मुनिश्री कान्तिऋषिजी म० रक्खा गया। आपके सुपुत्र श्रीअक्षयऋषिजी म० कहलाए, जिनका परिचय अन्यत्र दिया गया है।

आप बड़े ही सरल हृदय और भद्र परिणामी-सन्त हैं। संत-सेवा मे आपको सुख का अनुभव होता है। आप गुरुवर्य के साथ मालवा, बरार और मध्यप्रदेश मे विचरे हैं। मुनिश्री माणक ऋषिजी म० तथा श्रीहरिऋषिजी म० के साथ दक्षिण और खान-देश में भी आपने विहार किया था। वर्त्तमान में आप धूलिया में विराजित स्थविर मुनिश्री माणकऋषिजी म० की सेवा मे करीब ७ वर्ष से विराजमान है और वैयावृत्य धर्म का पालन कर रहे हैं।

पूज्यश्री धन्नजीऋषिजी महाराज

पूज्यश्री बहुऋषिजी म० के मुख्य दो शिष्य हुए—पण्डित मुनिश्री धन्नजी ऋषिजी म० और पं० मुनिश्री पृथ्वीऋषिजी म०। दोनो ही विद्वान् और शास्त्र के ज्ञाता थे।

ऋषि-सम्प्रदाय का भार वहन करने के लिए श्रीधन्नजी ऋषिजी म० को समर्थ, सब प्रकार से सुयोग्य और गम्भीर जान कर चतुर्विध श्रीसघ ने पूज्य पदवी से सुशोभित किया। आपश्री के समय मे, वृद्धो के मुख से सुना जाता है कि सन्तों की संख्या १०५ और सतियो की सख्या १५० थी।

समय परिवर्त्तनशील है। एक समय वह था जब ऋषि-सम्प्रदायी सन्तो को बड़ी भारी कठिनाइयाँ झेलकर विचरना पड़ता था। अनेक कष्ट उठाकर उन महानुभाव सन्तो ने मालवा, के मन्दसौर, प्रतापगढ़, रतलाम, जावरा, भोपाल, सुजालपुर, शाजा-पुर, उज्जैन, इन्दौर आदि क्षेत्रो मे धर्म का बीज बोया था। प्रारंभ मे इनमें से कई स्थलो पर सन्तों को ठहरने के लिए स्थान भी नही मिलता था। प्रतिस्पर्द्धी प्रयत्न करते थे कि उन्हे स्थान न मिलने

पावे। आहार-पानी न मिलने की स्थिति में कभी-कभी उन्हे तीन-तीन दिन तक निराहार रहना पड़ा। इस प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों मे सन्तो ने मालवा में विचर कर धर्म का प्रचार किया धन्य हैं अपनी धुन के पक्के वे महाभाग पुरुषोत्तम, जो जगत् के कल्याण और शासन के उद्योत के लिए अपनी सुख सुविधा की तनिक भी चिन्ता न करते हुए धर्मप्रचार के उद्देश्य को सफल बनाने मे लगे रहे। धीरे-धीरे अवस्था बदली। लोगों का ध्यान इन सन्तों की उत्कृष्ट तपस्या और क्रिया देखकर आकर्षित हुआ और ऋषि सम्प्रदाय की जाहोजलाली बढ़ती ही चली गई।

पूज्यश्री धन्नजी ऋषिजी म० के समय तक वह परिस्थिति बदल चुकी थी। आपका व्याख्यान बड़ा प्रभावशाली होता था। श्रोतागण आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। आपके समय मे मालवा धर्म एवं सम्प्रदाय के लिहाज से काफी उन्नत हो चुका था। मगर समय के फेर से जैसे अवनति के बाद उन्नति होती है उसी प्रकार उन्नति से अवनति भी होती है। जहाँ उत्थान होता है वहाँ पतन भी अनिवार्य है। सूर्य सरीखे तेजःपुंज ज्योतिष्क देव को भी दिन मे तीन अवस्थाएँ होती है तो मानव-समुदाय मे अवस्थान्तर हो, इसमे आश्चर्य ही क्या? कलिकाल के प्रभाव से ऋषि-सम्प्रदाय के दो विभाग हो गए। एक पक्ष पूज्यश्री धन्नजी ऋषिजी म० का और दूसरा पं० मुनिश्री पृथ्वीऋषिजी महाराज का। सन्तों और सतियो में भी दो पक्ष पड़ गये। न्यूनाधिक परिणाम मे दोनो पक्षो मे सन्त-सतियां विभाजित हुए।

पुण्य की प्रबलता मे कमी होने से मतभेद आदि कोई अनिष्टकर निमित्त मिल जाता है। मतभेद कलह को जन्म देता है और जहाँ कलह आया वहाँ पाप का प्रवेश हुआ। जैन शास्त्रों में कलह बारहवाँ पाप माना गया है। जहाँ भी कलह का बोल बाला

होता है, वहीं उन्नति का क्रम अवरुद्ध होकर अवनति का आरंभ हो जाता है।

इतिहास के पन्ने पलटने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि किसी भी देश, जाति या सम्प्रदाय की अवनति का बीज पारस्परिक वैमनस्य एवं तज्जनित फूट और कलह मे ही निहित है। उदाहरण के लिए भारतवर्ष को ही लीजिए। यहाँ जो आपस मे वैमनस्य फैला उसी का यह फल आया कि देश पराधीन होकर अवनति के गड्हे मे गिर गया। पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द्र के वैमनस्य ने देश को गुलाम बना दिया। यवनो और अंगरेजो को जो भी सफलता मिली, वह भारतीयो की आपसी फूट का ही फल था। पेशवाई और मरहठा-राज्य भी फूट के कारण नष्ट हुआ जैन संघ मे भी दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरहपन्थी आदि भेद प्रभेद होने से अशक्तता आ गई। उसका वह महान् प्रभाव नहीं रह गया। जैनधर्म तात्त्विक, वैज्ञानिक, प्रत्येक परिस्थिति और प्रत्येक युग मे अनुकूल होने पर भी आज उसके अनुयायियो में संगठन न होने से उतना तेजस्वी दिखाई नही दे रहा है।

ऋषि-सम्प्रदायी सन्तो मे भी इस समय मतभेद पैदा हो गया। किन्तु वे महापुरुष विवेकशाली और व्यवहार कुशल थे। अतएव उन्होंने संघर्ष से बचते हुए यह निश्चय किया कि जब तक हमारे आपस के मतभेद समाप्त न हो जाएँ तब तक हम पृथक्-पृथक् विचरें किन्तु वैमनस्य न उत्पन्न होने दें। इस सद्बुद्धि और सद्भाव के कारण योग्यता और सामर्थ्य होने पर भी पृथक्-पृथक् पूज्य स्थापित नही किये। वास्तव में यह उनकी बड़ी दीर्घदर्शिता और समय सूचकता थी।

प्रभावक स्थविर मुनिश्री खूबाऋषिजी मं०

आपकी दीक्षा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पूज्यश्री धन्नजी ऋषिजी म० के समीप हुई थी। आपश्री अत्यन्त सरलचित्त, शांत, दान्त और गम्भीर थे। शास्त्रों का गहरा अनुभव प्राप्त किया था। आपने मालवा प्रान्त में विचर कर और विविध परीषहों को सहन करके कई नये क्षेत्र खोले। जैनधर्म की खूब प्रभावना की।

सं० १९४३ में आप भोपाल में विराजमान थे। भोपाल क्षेत्र में ऋषि-सम्प्रदायी सन्तों ने ही अनेक कष्ट सहन करके स्थानकवासी जैनधर्म के बीज बोये और उन्हे विकसित किया है। चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन पं मुनि श्रीपूनमऋषिजी म० के मुखारविन्द से श्रीमान् केवलचन्दजी कांसटिया ने दीक्षा अंगीकार की, तब श्री खूबाऋषिजी म० सुजालपुर मे विराजमान थे। श्रीपूनमऋषिजी म० नवदीक्षित सन्त को साथ लेकर आपकी सेवा मे पधारे और उन्हें आपकी नेश्राय में शिष्य बनाये।

वास्तव में आपने मालवा प्रान्त में अपूर्व धर्मजागृति उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया है। शारीरिक दशा के कारण आपकी मुख्य विहारभूमि मालवा ही रही और उसमें भी भोपाल, सुजालपुर और शाजापुर आदि क्षेत्रों में आप खूब विचरे।

सं. १९४६ का चातुर्मास सुजालपुर में था। चौमासे में ही आपकी तबियत नाजुक हो गई। तब श्रीसंघ की ओर से शाजापुर मे विराजित मुनिश्री हरखाऋषिजी म० की सेवा में समाचार विदित किये गये। आप दोनों महामुनियो में इतना अधिक धर्मप्रेम था कि समाचार सुनते ही आपने विहार कर दिया। एक रात्रि बीच

मे मुकाम करके प्रातःकाल शीघ्र ही आप सुजालपुर पहुँच गये। स्थविर मुनिश्री हरखाऋषिजी म० के पधारने से आपके चित्त में बहुत संतोष हुआ। आपने अपने नेश्राय के सन्तो और सतियों को यथोचित सूचनाएँ दीं और संथारा लेने की भावना प्रकट की। परिस्थिति देख कर स्थविर मुनिश्री हरखाऋषिजी म० ने चतुर्विध संघ की साक्षी से संथारे का प्रत्याख्यान करा दिया। भाद्रपद शु. २ सं० १६४६ के दिन संथारा सीझ गया। परम समभाव मे रमण करते हुए आपने अपने जीवन की अन्तिम साधना की और स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

आपश्री के आठ शिष्यों के नाम उपलब्ध हैं—(१) श्रीचेनाऋषिजी म० (२) श्रीलालजी ऋषिजी म० (३ श्रीअमीचन्द ऋषिजी म० (४) श्रीनाथाऋषिजी म० (५) श्रीभानऋषिजी म० (६) श्रीकेवलऋषिजी म० (७) श्रीखेचरऋषिजी म० (८) श्रीजालमऋषिजो महाराज।

स्थविर मुनिश्री चेनाऋषिजी महाराज

आपश्री की दीक्षा पूज्यपाद श्रीखूबाऋषिजी म० के मुखारविन्द से हुई थी। गुरुवर्य की सेवा मे रह कर आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। तपश्चर्या की ओर आपकी विशेष रुचि थी, अतएव आप प्रकीर्णक और थोक तपस्या किया करते थे। आपने मासखमण अर्द्धमास, दो मास और तीन मास आदि की बड़ी-बड़ी तपश्चर्याएँ की। आप सदैव स्वाध्याय मे निरत रहते थे। आपमे शिशुओ की सी सरलता और भद्रता थी। आड़ा आसन बहुत कम करते थे। तप और संयम की साधना ही मे दत्तचित्त रहते थे। आपश्री को तपःप्रभाव से कुछ लब्धि भी प्राप्त हुई थी।

गुरुवर्य के साथ आप प्रायः मालवा प्रान्त में ही विचरते रहे। सं० १६४४ मे आप पं० मुनिश्री खूबाऋषिजी म० की सेवा में विराजते थे। पूज्यपाद श्रीरत्नऋषिजी म० और तपस्वी मुनिश्री केवलऋषिजी म० ठा० २ ने इच्छावर मे वैरागी श्री अमोलकचंदजी को दीक्षा दी। दोनो सन्त सीहोर होते हुए सुजालपुर में विराजित पं० मुनिश्री खूबाऋषिजी म० की सेवा में पधारे। पं० मुनिश्री ने आपश्री की वृद्धावस्था देखकर और आपकी नेश्राय मे काई दूसरा शिष्य न होने के कारण श्रीअमोलकऋषिजी को आपका ही शिष्य नियत्त किया।

सं० १६४५ में सुजालपुर में आपने संथारापूर्वक आयुष्य पूर्ण किया। स्थविर मुनिश्री चेनाऋषिजी म० अत्यन्त निस्पृह और सरल एवं दयालु महान् सन्त थे। आत्मिक साधना ही एक मात्र आपका परम लक्ष्य था। आपने मुनि-जीवन अंगीकार करके तत्कालीन मुनियों के सामने तप, त्याग एवं अनासक्तिभाव का उच्च आदर्श उपस्थित किया।

उग्रतपस्वी श्रीकेवलऋषिजी महाराज

मरुधर प्रान्त के अन्तर्गत मेड़ता ग्राम में श्रीकस्तूरचंदजी कांसटिया की धर्मपत्नी श्रीमती जवरा बाई की रत्नकुक्षि से आपका जन्म हुआ। आपका शुभ नाम 'केवलचंद' रक्खा गया। आप चार भाई थे। पिताजी ज्येष्ठ बन्धु और दादीजी के आकस्मिक वियोग से आपके हृदय को गहरी चोट पहुँची और संसार का नग्न स्वरूप आपके सामने मूर्तिमान हो उठा। आपकी माताजी और भौजाईजी ने महासती श्रीगुलाबकुंवरजी म० की सेवा में दीक्षा धारण कर ली।

कुछ दिनों बाद आप आपने काकाजी के साथ भोपाल आये। वहाँ एक दिन किसी संवेगी मुनि से आपने प्रश्न किया-मन्दिर मे पूजा का आरंभ-समारंभ होता है और त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा होती है। इस विषय मे आपका क्या दृष्टिकोण है ?

संवेगी मुनि ने उत्तर दिया-धर्मरक्षा के निमित्त जो हिंसा होती है वह हिंसा नहीं गिनी जाती।

इस उत्तर से श्रीकेवलचंदजी को सन्तोष नहीं हुआ। बल्कि कहना चाहिए कि असन्तोष हुआ। उसी समय आपने मन्दिर मे न जाने का निश्चय कर लिया।

उन्हीं दिनो पूज्यश्री कहानजीऋषिजी म० के सम्प्रदाय के तपस्वीराज श्रीकुंवरऋषिजी म० जो कि पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म० के संसार पक्षीय सहोदर ज्येष्ठ बंधु थे, वे भोपाल पधारे। यह ऋषिजी म० सदैव एकान्तर तपस्या करते थे। एक चोलपट्टा, चादर रखते थे। क्रियाकांड मे बड़े कड़क थे। श्रीफूलचंदजी धाड़ीवाल नामक एक सज्जन के साथ केवलचंदजी भी ऋषिजी का व्याख्यान सुनने आये। व्याख्यान में निम्नलिखित गथा की विवेचना चल रही थी:—

एवं खु नाणिणो सारं, ज न हिंसइ किंचणं।
अहिंसा समयं चेव, एयावत वियाहिया ॥

मुनिश्री के मुखारविन्द से इसकी व्यापक और विशद व्याख्या सुन कर आपके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। ज्ञान का सार अहिसा है-किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना ! किन्तु गृहस्थी के जंजाल मे पड़ा रह कर कोई भी मनुष्य कैसे पूर्ण अहिंसा का पालन कर सकता है ? तो फिर क्यो न गृहस्थी का भार उतार कर निरा-

कुलतामय निवृत्त-जीवन अंगीकार किया जाय ? क्या मनुष्यभव और वीतराग-वाणी के श्रवण का यह सौभाग्य पुनः मिल सकता है ? जो अवसर मिला है, उसका सदुपयोग कर लेना ही श्रेयस्कर है। भगवान् ने तो समय मात्र भी प्रमाद न करने की चेतावनी दे रक्खी है। वह चेतावनी उपेक्षा करने के लिए नहीं है।

इस मनोमन्थन के फल स्वरूप आप स्वयं ही साधु का वेष पहन कर स्थानक मे आ बैठे। परन्तु आपके लिए संयम की काल-लब्धि नहीं आई थी। जब आपके परिवार वालो को इस घटना का पता लगा तो वे दौड़े-दौड़े आये और आपको घर ले गये आपको मोह जाल मे फँसाने मे समर्थ हो गए। आपका विवाह हुआ। श्रीअमोलकचंदजी और श्रीअमोचंदजी नामक आपके दो पुत्र हुए।

कुछ समय बाद आपकी पत्नी का देहान्त हो गया और दूसरी सगाई भी हो गई। आप होशंगाबाद से मारवाड़ की तरफ जा रहे थे कि बीच मे रतलाम उतर गये। वहाँ पूज्यश्री उदय-सागरजी म० विराजमान थे। पूज्यश्री स प्रतिबोध पाकर आपने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत अंगीकार कर लिया। विवाह के लिए जा रहे थे, मगर ब्रह्मचर्य व्रत लेकर वापिस लौट गये। विवाह करने का अब प्रश्न ही समाप्त हो गया। पहले के संस्कार दबे-दबे अपना काम कर रहे थे। अब धर्म की ओर आपकी प्रवृत्ति विशेष रूप से रहने लगी।

पूज्यश्री कहानजी ऋषिजी म० के सम्प्रदाय के शास्त्रज्ञ श्री पूनमऋषिजी म० तथा श्रीनाथाऋषिजी म० ठा० २ से भोपाल पधारे। आप भी उनका व्याख्यान सुनने गये। दशार्णभद्र राजा की जीवनी पर विवेचन चल रहा था। मुनिश्री के वैराग्यमय उप-

देश को सुनकर आप पुनः वैराग्य रस में डूब गये। इधर आप वैराग्य-रस का आनन्द ले रहे थे, उधर जो खिचड़ी पकने के लिए चूल्हे पर चढ़ा आये थे, वह पक चुकी थी। भोजन का समय भी हो चुका था। बालक अमोलक चन्द प्रतीक्षा करके ऊब गया था तो बुलाने के लिए आया। आपने उससे कह दिया—बस, मैं अब घर नहीं आऊँगा। और सचमुच ही आप घर नहीं गये। मोड़ों के घर से गोचरी ले आये और स्थानक मे ही भोजन किया। इस बार परिवार की अनुमति मिल गइ। भोगावली कर्म भोगा जा चुका था। उत्कृष्ट वैराग्य के साथ चैत्र शु. ५ सं. १९४३ के दिन समारोह के साथ आपने श्रीपूनमऋषिजी म० से दीक्षा अंगीकार की। तत्पश्चात् आप दीक्षादाता मुनिश्री के साथ सुजालपुर में विराजित स्थविर मुनिश्री खूबाऋषिजी म० की सेवा मे पहुँचे और उन्हीं की नेश्राय से शिष्य किये गये।

सं० १९४४ में आप पं. रत्न श्रीरत्नऋषिजी म० के साथ इच्छावर पधारे। वहाँ आपके गृहस्थावस्था के सुपुत्र श्रीअमोलक चन्दजी को दीक्षा हुई। आप संयम ग्रहण करने के पश्चात् विशेष रूप से तपश्चरण की ओर प्रवृत्त हुए; किन्तु पित्तप्रधान प्रकृति होने के कारण स्वास्थ्य में गड़बड़ होने लगा एक बार पारणा के दिन छाछ का सेवन किया। उससे प्रकृति शान्त रही। तब आपने छाछ का आगार रख कर तपश्चरण करने को भावना गुरु महाराज के समक्ष प्रकट की। गुरु महाराज ने फर्माया—'जहा-सुहं देवाणुप्पिया!'

गुरु महाराज की सेवा मे रह कर आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। श्रीविजयऋषिजी म० के साथ खाचरौद मे चौमासा किया। इस चौमासे मे ३० दिन की तपस्या की। तपस्या की मात्रा

बढ़ती ही गई। प्रतापगढ़ में ६० दिन की, बगड़ी-चातुर्मास में ६० दिन की और नागौर-चातुर्मास में ८१ दिन की तपस्या की। नीमच-चातुर्मास में आपकी १०१ दिनों की तपस्या के अवसर पर ५४ खंध के प्रत्याख्यान हुए। भावनगर-चातुर्मास में आपने १११ दिन की तपस्या की। बड़िया के ठाकुर साहब से मांस-मदिरा का त्याग करवा कर आपने चातुर्मास किया।

आपके निकट उज्जैन में एक दीक्षा हुई। नवदीक्षित मुनि को आपने श्रीदौलतऋषिजी म० की सेवा मे समर्पित कर दिया और आप मगरदा पधारे। यहाँ फिर एक वैरागी सुखलालजी की दीक्षा हुई। आपका नाम सुखा ऋषिजी रक्खा गया।

आस्टा-चातुर्मास मे आपने ५१ दिन की तपश्चर्या की। आगर-चातुर्मास में एकान्तर तप करते रहे।

आप पंजाब की ओर भी पधारे। पूज्यश्री मोतीरामजी म० के साथ प्रेमपूर्ण सम्मिलन हुआ। लाहौर, सियालकोट, अमृतसर होते हुए जम्मू तक पधारे। वहीं चातुर्मास किया। माधवपुर-नरेश को उपदेश देकर हिंसा के पाप से छुड़ाया। ३१ दिन की तपस्या की। उधर से जब वापिस पधारे तो लश्कर में चातुर्मास किया और ११० दिन की तपस्या की। आपको समाचार मिले कि गुरुवर्य श्री रत्नऋषिजी म० और श्रीअमोलकऋषिजी म० दक्षिण की तरफ पधारे हैं तो आप भी चातुर्मास समाप्त होने पर वाम्बोरी (अहमदनगर) पधार गये। वहीं दोनों का सम्मिलन हुआ। बम्बई में चातुर्मास काल में विराजे और ८४ दिन की तपस्या की। अगला चातुर्मास इगतपुरी में करके हैदराबाद (निजाम) की तरफ विहार किया। मार्ग की भीषण कठिनाइयों को सहन करते हुए आप हैदराबाद पधार गये। आश्विन मास में मुनिश्री सुखाऋषिजी म० का वहाँ

स्वर्गवास हो गया। चातुर्मास-काल में आप स्वयं अस्वस्थ हो गये। संथारा लेने के विचार से आपने ११ दिन की तपस्या की, जिससे बीमारी दूर हो गई। उसी साल हैदराबाद की मुसा नदी में प्रचंड पूर आया, जिसमे बहुत-से लोगो को बहुत क्षति हुई, किन्तु आपश्री के प्रभाव से जैन भाइयों को ज्यादा नुकसान नहीं हुआ। शहर में प्लेग की बीमारी फैल गई। लोग इधर-उधर चले गये। उस वक्त भी आपको अनेक परीषह सहने पड़े। आप सं० १९६३ के चैत्रमास में हैदराबाद पधारे थे और आठ चातुर्मास हैदराबाद मे ही हुए। सं० १९७१ (चैत्र शुक्ला प्रतिपद) मे आपको रक्तातिसार की बीमारी हुई। उसको भी आपने अत्यन्त शान्ति के साथ सहन कर लिया। मगर आपकी आत्मा जितनी सबल थी, शरीर उतना सबल नहीं रहा। दुर्बलता बढ़ती ही चली गई। राजाबहादुर लाला सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसादजी ने वैद्यराजो की औषधों का उपचार करवाया, किन्तु उनसे कोई विशेष लाभ न हुआ। श्रावण मास में शरीर की क्षीणता बढ़ने लगी और रुग्णता भी बढ़ती गई। तब आपने फर्माया कि अब इस नश्वर शरीर का भरोसा नहीं है। अन्तिम आराधना में किसी प्रकार का व्याघात न हो, इसलिए आप निरन्तर सावधान रहते थे। आपका आभास सही निकला। अन्तिम समय सन्निकट आ पहुँचा। श्रावण कृ. १२ के दिन १०। बजे आपने संथारा ग्रहण किया। १॥ बजे अन्तिम श्वास लिया। समभाव के प्रशान्त सरोवर मे अवगाहन करते हुए आपकी निर्मल आत्मा ने उपाधि रूप बने हुए जराजीर्ण शरीर का परित्याग कर दिया।

तपश्चर्या का ब्यौरा

तपस्वीजी ने केवल छाछ के आधार पर इस प्रकार तपस्या की—१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१५-१६ १७-१८-१९-२०-२१-३१-३३-४१-५१-६१-६३-७१-८४-८१-

९१-१०१-१११ और १२१। इसके अतिरिक्त छह महीने तक एकान्तर उपवास और अन्य फुटकल तपस्या भी की।

पंजाब, मालवा, मेवाड़, मारवाड़, गुजरात, काठियावाड़, ढुंढार, झालावाड़, दक्षिण, निजामस्टेट, बम्बई, तैलंगाना आदि प्रदेशों मे अप्रतिबन्ध विहार करके आपने जैनधर्म की खूब प्रभावना की और अपने जीवन के ८८ वर्षों तक संयम एवं तप की आराधना करके उत्कृष्ट मानव जीवन को और अधिक उत्कृष्ट बनाया। आपके जीवन से सन्तों को युग-युग मे प्रेरणा मिलती रहेगी।

शास्त्रोद्धारक पूज्यश्री अमोलकऋषिजी महाराज

मेड़ता (मारवाड़) में कांसटिया गोत्रीय ओसवाल श्रीकस्तूरचन्दजी के सुपुत्र श्रीकेवलचन्दजी मन्दिर मार्गी आम्नाय के श्रावक थे। मेड़ता छोड़कर आप भोपाल मे रहने लगे थे। आपके दूसरे विवाह की धर्मपत्नी श्रीमती हुलासा बाई की कुक्षि से सं० १९३४ मे आपका जन्म हुआ। आपका नाम अमोलक चन्द रक्खा गया। आपके एक छोटे भाई थे, जिनका नाम अमीचन्द था। बाल्यावस्था मे ही आपको मातृ वियोग की व्यथा सहनी पड़ी।

कविवर श्रीतिलोक ऋषिजी म० के श्रेष्ठ सहोदर तथा गुरुभ्राता तपस्वी श्रीकुंवर ऋषिजी म० भोपाल पधारे। आपके सदुपदेश से श्रीकेवलचन्दजी को वैराग्य भावना हुई परन्तु कुछ वर्षों के बाद पं. मुनिश्री पूनमऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षित

होकर स्थविरपदविभूषित श्रीसुखाऋषिजी म० की नेश्राय मे शिष्य हुए। बाल्यावस्था के कारण अमोलकचन्द और अमीचन्द दोनों भाई अपने मामाजी के पास रहने लगे।

पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म० के पाटवी शिष्य श्रीरत्न-ऋषिजी म० तथा श्रीकेवऋषिजी म०, स्थविर श्रीखूबाऋषिजी म० की आज्ञा से मालवा प्रान्त मे विचरण कर रहे थे। विचरते हुए इच्छावर पधारे। खेड़ी ग्राम से अपने मामाजी के मुनीम के साथ श्रीअमोलकचन्दजी पिताजो श्रीकेवलऋषिजी म०) के दर्शनार्थ आये। अमोलकचन्दजी बाल्यकाल से ही प्रियधर्मा थे। पिताजो को साधु वेष में देखकर आपको धार्मिकता को अधिक उत्तेजना मिलो और आपने भी दीक्षा ग्रहण कर लेने का निश्चय कर लिया।

दोनों मुनिराजो ने विचारणा करके और अमोलकचन्दजी की बलवती भावना जानकर दीक्षा देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सं० १९४४ की फाल्गुन कृ० २ गुरुवार को शुभ मुहुर्त्त में श्रीरत्नऋषिजी म० ने आपको दीक्षित कर लिया। जब यह समाचार आपके रिश्तेदारो को मिला तो उन्होने न्यायाधीश के सामने फरियाद की। श्रीअमोलकचन्दजी को वापिस ले जाना चाहा। किन्तु न्यायाधीश ने यह निर्णय दे दिया कि पुत्र पिता के साथ जाता है तो कोई हर्ज की बात नहीं।

तीनो मुनि इच्छावर से विहार कर भोपाल पधारे। स्थविर मुनिश्री खूबाऋषिजी म० यहीं विराजमान थे। स्थविर मुनिश्री ने नवदीक्षित मुनि को अपने शिष्य श्रीचेनाऋषिजी म० की नेश्राय में कर दिया। मुनि का नाम श्रीअमोलक ऋषिजी रक्खा गया।

मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० तीन वर्ष तक श्रीकेवलऋषिजी म. तथा दो वर्ष तक श्रीभैंरवऋषिजी म. के साथ विचरे। इन्हीं दिनो

आप बोरखेड़ा पधारे। वहाँ पन्नालालजी नामक एक श्रावक ने दीक्षित होने की भावना व्यक्त की। माताजी से आज्ञा भी प्राप्त कर ली। उन्हे प्रतिक्रमण आता था और सब तरह दीक्षा के योग्यपात्र थे। अतएव सं० १९४८ के फाल्गुन में उन्हें दीक्षा दी गई। तत्पश्चात् आप गुरुवर्य के साथ जावरा पधारे। मुनिश्री रूपचंदजी के साथ समागम हुआ। वार्त्तालाप होने पर वृद्धावस्था में मुनिश्री की सेवा के लिए शिष्य की आवश्यकता देखकर आपने नव-दीक्षित श्रीपन्नाऋषिजी म० को रूपचदजी म० की सेवा मे अर्पित कर दिया। अपने शिष्य को इस प्रकार दूसरो को सौंप देना एक सराहनीय और आदर्श उदारता है। शिष्य लोलुपता के विरुद्ध जबर्दस्त क्रान्ति है।

आपश्री पं० रत्न श्रीरत्नऋषिजी म० की सेवा में पधार गये। पं० र० जी ने आपकी विनम्रता, प्रबल जिज्ञासा और योग्यता देखकर आपको जैनआगमों का अभ्यास कराया। बाद में श्रीरत्नऋषिजी म० गुजरात आदि अनेक प्रदेशो मे विचरे। आप भी साथ रहे। आपने लगातार सात चौमासे साथ-साथ किये। यद्यपि श्री अमोलकऋषिजी म० आपके नेश्राय के शिष्य नहीं थे, फिर भी दोनों में गुरु-शिष्य के समान ही व्यवहार था।

श्रीरत्नऋषिजी म० दक्षिण पधारे तो आप भी साथ ही थे। सं० १९६० में आपके संसारपक्षीय पिता श्रीकेवलऋषिजी म० भी दक्षिण मे पधार गये। तब आप उनके साथ हो गये। सं० १९५६ मे आपके पास श्रीमोतीऋषिजी म० की दीक्षा हुई थी। अतएव ठा० ३ से सं. १९६१ का चातुर्मास करने के लिए आप बम्बई पधारे। आपके सदुपदेश से वहां श्रीरत्न चिन्तामणि जैन पाठशाला की स्थापना हुई जो वर्त्तमान में भी अच्छी तरह चल रही है। बम्बई मे हैदराबाद संघ ने आप से हैदराबाद पधारने की प्रार्थना

की। अत्यन्त आग्रह को टाल न सकने के कारण आपश्री ने प्रार्थना स्वीकार करली। चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् इगतपुरी में सं० १९६२ का चौमासा करके सं० ६३ की चैत्र शु० १ के दिन आपने हैदराबाद मे प्रवेश किया। वहाँ तक पहुँचने में बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ थीं। प्रबल परीषह सहन करने पड़े। फिर भी अपने संयम की रक्षा करते हुए आपने हैदराबाद में पदार्पण किया।

तपस्वी श्रीकेवल ऋषिजी म० की अस्वस्थता के कारण आपको हैदराबाद मे लगातार नौ चौमासे व्यतीत करने पड़े। तपस्वीजी के स्वर्गवास के पश्चात् अनेक व्यक्तियों ने दीक्षा लेने की भावना प्रदर्शित की, पर उन्हे योग्य न समझ कर आपने दीक्षा देना स्वीकार नही किया। हाँ तीन मुमुक्षु दीक्षा के पात्र थे और उन्हें एक साथ दीक्षा दी गई। उनके नाम थे—श्रीदेवजी ऋषिजी श्रीराजऋषिजी और श्रीउदयऋषिजी। इन नवदीक्षित सन्तों के साथ आपश्री सिकन्दराबाद पधारे। वहाँ गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० की आज्ञा से तीन वर्ष तक विराज कर आपश्री ने बत्तीस शास्त्रो का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया। प्रतिदिन एकाशना की तपश्चर्या करते हुए, सात-सात घण्टे तक आप अबाध गति से अपनी लेखनी चलाते थे। बत्तीस महान् सूत्र और समय सिर्फ तीन वर्ष! कितना अध्ययन, मनन, चिन्तन और लेखन करना पड़ा होगा, यह विचार कर आज भी चकित हो जाना पड़ता है। यह अनुवाद भी उस समय किया गया जब हिन्दी अनुवाद के शास्त्र उपलब्ध ही नहीं थे। आजकल के समान प्रचुर सहायक सामग्री भी सुलभ नहीं थी। वास्तव में आपने महान् श्रम करके एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी कार्य कर डाला। अर्द्धमागधी भाषा न जानने वाली जनता को शास्त्रों का अध्ययन करने का सौभाग्य आपने प्रदान किया। यह आगम राजा बहादुर दानवीर लाला सुखदेव सहायजी

ज्वालाप्रसादजी की भव्य उदारता से प्रकाश में आये और भारत के विभिन्न श्रीसंघों को बिना मूल्य ही वितरित किये गये।

इसी तरह हैदराबाद निवासी श्रीमान् पन्नालालजी जमनालालजी रामलालजी कीमती, बेंगलोर वाले श्रीमान् गिरधरलालजी अनराजजी सांकला, यादगिरि वाले श्रीमान् नवलमलजी सूरजमलजी धोका, रायचूर श्रीसंघ, आदि दानवीर अनेक उदार श्रावको के सहयोग से पूज्यश्रीजी जैनधर्म के साहित्य का प्रसार करने मे सफल हुए।

सं० १९७२ में आपके समीप श्रीमोहनऋषिजी की दीक्षा हुई। यह युवक मुनि बड़े होनहार थे, प्रभावशाली थे, किन्तु सं० १९७६ से, अल्पायु में ही आपका स्वर्गवास हो गया।

शास्त्रोद्धार का कार्य समाप्त होने पर आप कर्णाटक प्रान्त में विचरते हुए रायचूर पधारे। वहीं चातुर्मास-काल व्यतीत किया। दो चौमासे बैंगलोर म किये। इस प्रदेश में पहले किसी भी प्रभावक सन्त या सती का पदार्पण नहीं हुआ था। अतएव सन्त-समागम के अभाव मे जिनमे शिथिलता आ गई थी उन्हे आपने धर्म में दृढ़ किया।

तत्पश्चात् गुरुदेव श्रीरत्नऋषिजी म० की सूचना पाकर आप महाराष्ट्र की ओर पधारे। मध्यवर्त्ती अनेक क्षेत्रों में धर्म की जागृति एवं प्रभावना करते हुए करमाला पहुँचे। यहाँ श्रीरत्नऋषिजी म० ठा० ३ से विराजमान थे। आप दोनों का भावपूर्ण समागम हुआ। बहुत समय के पश्चात् दर्शन होने के कारण सं० १९८१ का चातुर्मास ठा० ६ से करमाला में ही हुआ।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् आपका कड़ा क्षेत्र में पदार्पण हुआ। आपके सदुपदेश से वहाँ धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षा

देने के उद्देश्य से जैनपाठशाला की स्थापना हुई। इसी वर्ष कुड़गांव मे एक दीक्षा हुई। उन मुनिराज का नाम श्रीकल्याणऋषिजी म० रक्खा गया। मोरी मे श्रीसायरकुंवरजी म० को दीक्षा देकर घोड़-नदी पधारे। वहाँ श्रीमुलातानऋषिजी म० की दीक्षा हुई। तत्पश्चात् घोड़नदी, पूना एवं अहमदनगर चातुर्मास करके मनमाड़ मे चौमासा किया। तदनन्तर धूलिया पधार गये। कारण-विशेष से यहाँ तीन चौमासे किये।

बोदवड़ मे चातुर्मास-काल व्यतीत करके पं० रत्न श्रीआनन्द-ऋषिजी म० ठा० २ से धूलिया पधारे। दो महान् सन्तो के सम्मि-लन के फलस्वरूप ऋषिसम्प्रदाय के संगठन के विषय मे वार्त्तालाप हुआ। दोनों महामुनियो ने मिल कर एक समाचारी बनाई।

ज्येष्ठ शु० १२ गुरुवार सं० १९८९ मे, ऋषिसम्प्रदायी सन्तों एवं सतियो की उपस्थिति मे तथा अन्य सम्प्रदाय के सन्तो-सतियों के समक्ष इन्दौर मे आप पूज्यपदवी से अलंकृत किये गये। पिछले कई वर्षों से इस सम्प्रदाय मे आचार्य-पद नहीं दिया जा रहा था। अजमेर स्था० जैन वृहत् साधु सम्मेलन का निमित्त मिलने से ऋषि-सम्प्रदाय पुनः संगठित हो गया।

आपके संसार--पक्ष के लघुभ्राता श्रीअमीचंदजी कांसटिया के अत्यन्त आग्रह से सं० १९९० का चातुर्मास भोपाल में हुआ। चौमासे के बाद आप ऋषि-सम्प्रदायी महासतियो के सम्मेलन के अवसर पर प्रतापगढ़ पधारे। वहाँ से वृहत्साधुसम्मेलन मे सम्मि-लित होने के लिए अजमेर की ओर विहार किया। सम्मेलन को सफल बनाने के लिए आपने अथक परिश्रम किया। प्रभावशाली भाषण किये।

सम्मेलन के अवसर पर घाणेराव--सादड़ी के श्रीसंघ ने अनेक सन्तों से चातुर्मास करने की प्रार्थना। मगर श्रीसंघ को सफलता न मिली। वहाँ वालों की प्रबल भावना देखकर आपने चौमासा करने की स्वीकृति दी। सादड़ी में कई वर्षों से मन्दिरमार्गी और स्थानकवासी समाज़ में घोर अशान्तिमय वातावरण था। खूब राग--द्वेष चल रहा था। आपने चातुर्मास करके शान्ति का प्रसार करने का भरसक प्रयास किया। आपकी महानुभावता का विपक्षी जनों पर भी खासा प्रभाव पड़ा और बहुत अशों मे शान्ति हो गई।

सादड़ी–चातुर्मास के समय तक आप वृद्धावस्था में पहुँच चुके थे। फिर भी वृद्धावस्था की परवाह न करते हुए नवयुवक मुनि के समान उत्साह के साथ पंजाब की ओर विहार किया। पंचकूला, शिमला आदि–आदि पंजाबप्रान्तीय क्षेत्रो में विहार किया। दानवीर राजो बहादुर ला० सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी की निवास भूमि महेन्द्रगढ़ में चातुर्मास काल व्यतीत किया। तत्पश्चात् अनेक क्षेत्रों को पावन करते हुए पूज्यश्री दिल्ली पधारे और वहीं सं० १९९२ को चौमासा हुआ। पंजाब और दिल्ली प्रान्त में आपका अनेक प्रभावशाली सन्तों के साथ समागम हुआ। –

दिल्ली-चातुर्मास के अनन्तर अति उग्र विहार करके कोटा, बून्दी, रतलाम, इन्दौर आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए आप धूलिया (खानदेश) पधारे। सं. १९९३ का चातुर्मास यहीं किया। चातुर्मास काल में आपके कान मे वेदना हुई। अनेक उपचार करवाये गये; पर वेदना शान्त न हुई। अन्ततः प्रथम भाद्रपद कृष्णा १४ के दिन, संथारा लेकर, समताभाव के साथ, आपने देहोत्सर्ग कर दिया। पूज्यश्री का क्षर देह नष्ट हो गया, किन्तु अक्षर-देह को काल कवलित नहीं कर सका। वह युग-युग मे धर्म प्रेमी जनता को

आपके असीम उपकार का स्मरण दिलाता रहेगा। वास्तव में स्थानकवासी सम्प्रदाय मे आपने साहित्यिक दृष्टि से नवयुग का निर्माण किया। आपश्री द्वारा रचित बहुसंख्यक गद्य-पद्यमय ग्रंथ प्रकाश में आये और वे धर्मप्रिय श्रावकों द्वारा अमूल्य भेंट रूप में दिये गये।

संवत् १९९२ के माघ मास में भुसावल (खानदेश) में आचार्य-युवाचार्य-पद-महोत्सव के शुभ प्रसंग पर साधु-साध्वी श्रावक-श्राविकाओ को संस्कृत प्राकृत एवं शास्त्रीय उच्च शिक्षण प्राप्त होता रहे, इस सद्धेतु से पूज्यश्री के स्मारक स्वरूप "श्रीअमोल जैन सिद्धांत शाला पाथर्डी (अहमदनगर) में स्थापित करने का निश्चय हुआ। तत्पश्चात् कुछ समय के बाद उसकी शाखा अहमद-नगर एवं घोड़नदी में खोली गई। जिनसे अनेक संत सतियों का शिक्षण हुआ।

पूज्यश्री के शिष्य पं. मुनिश्री कल्याण ऋषिजी म० के सत्प्रयत्नों से धूलिया में 'श्रीअमोल जैन ज्ञानालय' की स्थापना की गई। है। यह संस्था आपश्री के साहित्य को नवीन शैली में संशोधित करवा कर प्रकाशित कर रही है।

पूज्यश्री द्वारा रचित एवं अनूदित गन्थों की नामावली इस प्रकार है:—

(१) जैनतत्त्व प्रकाश
(२) परमात्ममार्ग दर्शक
(३) मुक्तिसोपान (गुणस्थानग्रंथ)
(४) ध्यानकल्पतरु
(५) धर्मतत्त्व संग्रह
(६) सद्धर्म बोध
(७) सच्ची संवत्सरी
(८) शास्त्रोद्धार मीमांसा
(९) तत्त्व निर्णय
(१०) अघोद्धार कथागार
(११) जैन अमूल्यसुधा
(१२) श्रीकेवलऋषिजी-जीवन

(१३) श्रीऋषभदेव चरित
(१४) श्रीशान्तिनाथ चरित
(१५) श्रीमदनश्रेष्ठी चरित
(१६) चन्द्रसेन लीलावती चरित
(१७) जयसेन विजयसेन ,,
(१८) वीरसेन कुसुमश्री ,,
(१९) जिनदास सुगुणी ,,
(२०) भीमसेन हरिसेन ,,
(२१) लक्ष्मीपति सेठ ,,
(२२) सिंहल कुमार ,,
(२३) वीरांगद सुमित्र ,,
(२४) संवेग सुधा ,,
(२५) मंदिरा सती ,,
(२६) भुवन सुन्दरी ,,
(२७) मृगांकलेखा ,,
(२८) सार्थ आवश्यक
(२९) मूल आवश्यक
(३०) आत्महित बोध
(३१) सुबोध-संग्रह
(३२) पच्चीस बोल लघुदंडक
(३३) दान का थोकड़ा
(३४) चौवीस थाणा का थोकड़ा
(३५) श्रावक के बारह व्रत
(३६) धर्मफल प्रश्नोत्तर
(३७) जैन शिशुबोधिनी
(३८) सदा स्मरण
(३९) जैन मंगल पाठ
(४०) जैन प्रातःस्मरण
(४१) जैन प्रातःपाठ
(४२) नित्य-स्मरण
(४३) नित्य-पठन
(४४) शास्त्र स्वाध्याय
(४५) सार्थ भक्तामर
(४६) यूरोप में जैनधर्म
(४७) तीर्थङ्कर-पंच कल्याणक
(४८) बृहत् आलोयणा
(४९) केवलानन्द छन्दावली
(५०) मनोहर रत्न घन्नावली
(५१) जैन सुबोध हीरावली
(५२) जैन सुबोध रत्नावली
(५३) जैन सुबोध माला
(५४) श्रावक नित्य स्मरण
(५५) मल्लिनाथ चरित
(५६) श्रीपाल राजा चरित
(५७) श्रीमहावीर चरित
(५८) सुख-साधन
(५९) जैन साधु (मराठी)
(६०) श्रीनेमिनाथ चरित
(६१) श्रीशालिभद्र चरित
(६२) जैन गणेशबोध
(६३) गुलाबी प्रभा
(६४) स्वर्गस्थ मुनि-युगल

(६५) सफल घड़ी
(६६) छः काया के बोल
(६७) अनमोल मोती
(६८) सुवासित फूलडां
(६९) सज्जन सुगोष्ठी
(७०) धन्ना शालिभद्र

(१) इन सत्तर ग्रन्थों में ३२ आगमों को सम्मिलित कर देने पर पूज्यश्री की सब कृत्तियों की संख्या १०२ होती है।

(२) इनमे से कई ग्रन्थों की गुजराती, मराठी, कन्नड़ और उर्दू भाषा मे भी आवृत्तियाँ प्रकाशित हुई हैं।

(३) कुल ग्रंथों की प्रकाशित आवृत्तियों का जोड़ १८६३२५ होता है।

(४) पूज्यश्री ने सब मिलाकर लगभग ५० हजार पृष्ठों में साहित्य की रचना की, अनुवाद किया और संपादन किया है।

पूज्यश्रीजी के १२ शिष्य हुए। उनके जीवन चरित्र पृथक् २ आगे लिखे गये हैं।

मुनिश्री पन्नाऋषिजी महाराज

प्रतापगढ़ का चातुर्मास पूर्ण करके पं० मुनि श्रीअमोलक-ऋषिजी म० ऊंबरवाड़ा पधारे। व्याख्यान चल रहा था। समाप्त होने पर श्रावक श्रीपन्नालालजी ने महाराजश्री से कहा-मैं दो वर्षों तक मुनिश्री कृपारामजी म० के शिष्य मुनिश्री रूपचंदजी म० की सेवा मे रह चुका हूँ। उन्होंने मुझे प्रतिक्रमण सिखाया है। मै संसार के आरंभ-समारंभमय जीवन से निवृत्ति चाहता हूँ। मेरी उम्र १८ वर्ष की है। आपकी सेवा मे दीक्षित होने से ज्ञानाभ्यास का योग अच्छा रहेगा। कृपा कर मुझे संयम -दान देकर अनुगृहीत कीजिए।

महाराजश्री ने श्रावकजी की प्रार्थना स्वीकार कर ली। मुनिश्री भैरों--ऋषिजी म० द्वारा माताजी की आज्ञा प्राप्त होने से सं० १९४८ के फाल्गुन मास में श्रावक पन्नालालजी को दीक्षा दी गई। पं० श्रीअमोलकऋषिजी म० के साथ श्रीपन्नाऋषिजी भी जावरा पहुँचे। स्थविर मुनिश्री रूपचंदजी म० विराजमान थे। नवदीक्षित मुनि को देखकर मुनिश्री रूपचंदजी म० का दिल मुरझा--सा गया। पं० मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० जैसे कुशल महानुभाव की पैनी बुद्धि से यह बात छिपी न रही। अतएव आपने स्थविर महाराज से कहा–यह शिष्यभिक्षा आप स्वीकार कीजिए। इससे स्थविर मुनिश्री को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्रीपन्नाऋषिजी म० आपकी नेश्राय में शिष्य हो गए। पं० मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० के यह प्रथम शिष्य थे, फिर भी आपने दूसरे मुनि की सेवा में उन्हें सौंप दिया! महानुभावों के चरित भी महान् ही होते हैं।

मुनिश्री मोतीऋषिजी महाराज

चांपासनी (जोधपुर) निवासी श्रीमान् धूलचन्दजी संचेती ने फाल्गुन कृ० ३ सं० १९५६ के दिन कुड़गांव (अहमदनगर) में पं० मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० के पास दीक्षा अंगीकार की। दीक्षाप्रीत्यर्थ श्रीमान् भीमराजजी गूगलिया ने हर्षपूर्वक व्ययभार वहन किया। गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० के साथ आपने घोड़नदी, कुकाणा, अहमदनगर आदि क्षेत्रों में चातुर्मास करके तपस्वीश्री केवलऋषिजी म० के साथ सं० १९६१ का चातुर्मास बम्बई में किया। वहीं आश्विनमास में आपका स्वर्गवास हो गया। आप एक आत्मार्थी और सरल एवं शान्त प्रकृति के सन्त थे।

मुनिश्री देवऋषिजी महाराज

मालवा प्रान्त के अन्तर्गत प्रतापगढ़ में हूमड़जातीय श्रीमान् वच्छराजजी रामावत की धर्मपत्नी श्रीमती गुलाबबाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ था। आपका नाम दुवाचंदजी और आपके भाई का नाम रूपचंदजी था। आप दो भाई थे। आपकी पत्नी का नाम जड़ाव बाई था। आपको एक पुत्र की प्राप्ति हुई, जिसका नाम जवाहरलाल था। एक पुत्री भी थी।

जिन दिनो तपस्वी मुनिश्री केवलऋषिजी म० तथा पं० मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० हैदराबाद में विराजते थे, आप भी हैदराबाद मे ही थे। प्रतिदिन सन्तो का दर्शन करना और व्याख्यान सुनना आपका नियम सा बन गया था। हैदराबाद में प्लेग की बीमारी बढ़ रही थी। किसी नैमित्तिक ने आपको बतलाया कि फाल्गुन मास मे आपकी मृत्यु हो जायगी। अपनी मृत्यु की पूर्वसूचना मिलने पर धर्मसंस्कार से शून्य अज्ञानी जीव आर्त्तध्यान करता है, हाय-हाय करता है और व्याकुल हो उठता है, परन्तु विवेक से विभूषित धर्म-निष्ठ मनुष्य हर्ष मनाता है कि मुझे अपने जीवन को सार्थक करने की पहले ही चेतावनी मिल गई! श्रीदुवाचंदजी संस्कारी पुरुष थे, अतएव आप अपनी आत्मा को ऊँचा उठाने और जीवन को फल-वान् बनाने की चिन्ता मे पड़ गये। संयोग से धर्मपत्नी का भी वियोग हो गया। पूज्यश्री श्रीलालजी म० के समीप आप यावज्जी-वन ब्रह्मचर्यव्रत पहले ही धारण कर चुके थे।

सं० १९७१ के श्रावण मास मे तपस्वीजी म० का स्वर्गवास हो गया और पं० मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० अकेले रह गये। उस समय आपके मन मे आया-ऐसे महाभाग्यवान् सन्त की सेवा में रह कर जीवन व्यतीत करने का सुअवसर मिल जाय तो क्या ही

अच्छा हो ! इससे अधिक श्रेयस्कर और कुछ भी नहीं हो सकता। इस प्रकार विचार करके पौषधव्रत में आपने महाराजश्री के समक्ष भावना प्रकट कर दी। महाराजश्री ने फर्माया-आप सुखी, सम्पत्तिशाली और सुकुमार है, अतः संभव नहीं दीखता कि संयम की कठिनाइयों को सहन कर सकें। मगर दानवीर लालाजी साहब की प्रेरणा से तथा आपकी माताजी एवं भाइयों की ओर से पूर्णतया अनुमति होने स महाराजश्री ने दीक्षा न देने का विचार त्याग दिया मगर आपके पुत्र आज्ञा देने से इंकार हो गए। प्रतापगढ़ मे दीक्षा की वार्त्ता से हलचल मच गई। मगर आपका संकल्प अटल था। सबको समझा-बुझाकर आपने अन्त में आज्ञा प्राप्त कर ली।

फाल्गुन शुक्ला १३ शनिवार का दिन दीक्षा के लिए निश्चित हो गया। आपकी उत्कृष्ट भावना और मांगलिक कार्य का अवसर देखकर श्रीराजमलजी और श्रीउदयचंदजी भी दीक्षा ग्रहण करने के लिए उद्यत हो गये। इस प्रकार एक ही साथ तीन दीक्षाएँ हुई। आपका नाम श्रीदेवऋषिजी रक्खा गया।

गुरुदेव पं. मुनिश्री अमोलकऋषीजी म० की सेवा में रहकर आपने ज्ञान, ध्यान एवं तपश्चरण मे विशेष रूप से उद्यम किया। पाँच बार आठ-आठ दिन की तपस्या की। गुरुजी की आज्ञा से आपने अलबल मे चौमासा किया। चौमासे में ३९ दिनों का तप किया और शास्त्रों का भी वांचन किया। आपको १०-१२ थोकड़े कंठस्थ थे। २८ शास्त्रों का वाचन किया था। आपने निजाम रियासत और कर्णाटक प्रान्त मे विचर कर जैन धर्म की अच्छी प्रभावना की।

आपका मनोबल बड़ा प्रबल था। सैंतीस दिन की तपस्या करने पर भी दिन में तीन बार व्याख्यान वांचते थे और वह भी ललकार-ललकार कर फर्माते थे। आपके स्वर से यहीं नहीं जान पड़ता था कि आप इतने दिनों से निराहार हैं !

चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् गुरुदेव के मुखारविन्द से शास्त्राध्ययन करने के लिए पुनः शास्त्रोद्धारक मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० की सेवा मे उपस्थित हुए। उत्तराध्ययन का २६ वाँ अध्ययन चल रहा था। अन्तराय कर्म के उदय से अचानक तीव्र ज्वर का प्रकोप हो गया। ज्वर की अवस्था मे ६ दिन की तपस्या की। औषधोपचार भी बाद में किया गया, परन्तु रोग शान्त न हुआ। अन्त मे सं. १९७६ की चैत्र कृष्ण सप्तमी के दिन संध्या समय आपने संथारापूर्वक, समाधि के साथ स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।
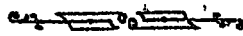
वयोवृद्ध श्रीराजऋषिजी महाराज

आप नागौर-निवासी समदड़िया गोत्रोत्पन्न ओसवाल थे। श्रीदेवऋषिजी म० के साथ ही आपने दीक्षा अङ्गीकार की। आपका नाम श्रीराजमलजी था। दीक्षित होने पर श्रीराजऋषिजी कहलाए। आप अत्यन्त ही भद्र, सरल और सेवाभावी सन्त थे। आपने गुरुदेव पं. मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० को बड़ेरे के समान समझते थे।

आप हैदराबाद रियासत से विहार करके गुरुदेव के साथ महाराष्ट्र में पधारे। करमाला घोड़नदी, पूना, अहमदनगर और मनमाड़ में चौमासा करके धूलिया पहुँचे। वयोवृद्धता एवं नेत्ररोग के कारण नजर कम हो गई, अतः आप धूलिया में स्थिरवासी हुए। सेवाभक्ति, स्वाध्याय और भगवतनामस्मरण आपका प्रिय कर्त्तव्य रहा। सं. १९८६ मे धूलिया मे ही आपका स्वर्गवास हुआ।

तपस्वी मुनिश्री उदयऋषिजी महाराज

पाली (मारवाड़) के निवासी श्रीमान् गंभीरमलजी के पुत्र थे। सुराणा गोत्रीय ओसवाल थे। उदयचंदजी नाम था। हैदराबाद मे व्यवसाय करते थे। हैदराबाद में जब पं. मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० अकेले रह गये तो आपकी भावना दीक्षा लेने की हुई। तीनों दीक्षाएँ साथ ही हुईं। आपका नाम श्रीउदयऋषिजी नियत हुआ। दीक्षित होकर आप तपस्या की तरफ विशेष रूप से उन्मुख हुए। अठाई, पन्द्रह, इक्कीस तथा ५१ दिन की और कई मासखमण की तपस्या की थी। व्यावहारिक कार्यों में आप बहुत कुशल थे। गुरुदेव के चातुर्मास आदि कार्यों में आप सलाहकार रहते थे। आप भी गुरुदेव के साथ महाराष्ट्र का भ्रमण करते हुए धूलिया पधारे। कुछ दिन साथ रहकर पृथक् विचरने लगे और शारीरिक दुर्बलता के कारण हिंगोना (खानदेश) मे स्थिरवासी हुए।

संयम तथा तप की आराधना करते हुए हिंगोना में ही आपने शरीरोत्सर्ग किया।

पं. मुनिश्री मोहनऋषिजी महाराज

तेलकुडगांव (अहमदनगर) मे श्रीमान् बुधमलजी गूगलिया के पुत्र श्रीभीवराजजी थे। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सिणगार बाई की कुक्षि से श्रीमोहनलालजी का जन्म हुआ।

गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० तथा पं० मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० जब तेलकुडगांव पधारे तो इन महापुरुषो के सदुपदेश से प्रभावित होकर आपके माता-पिता ने यावज्जीवन ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार

कर लिया था। वैरागी श्रीधूलजी की दीक्षा आपके पिताजी ने ही अपनी ओर से करवाई थी, जिनका नाम श्रीमोतीऋषिजी म० रक्खा गया था।

श्रीभीवराजजी धर्मनिष्ठ पुरुष थे। आपने स्वयं पण्डित मुनिश्री की सेवा मे उपस्थित होकर निवेदन किया कि मैं अपने लघु-पुत्र को आपकी सेवा मे समर्पित करता हूँ! परन्तु पं. मुनिश्री ने स्वीकार नहीं किया। तब श्रीभीवराजजी लौट कर घर आये और आपको पं० र० मुनिश्रीरत्नऋषिजी महाराज की सेवा में शिक्षणप्रोत्यर्थ खरवंडी (अहमदनगर) भेज दिया। वहाँ पण्डितजी का संयोग होने से आपने संस्कृत-प्राकृत का अभ्यास किया और कुछ धार्मिक शिक्षण भी लिया।

आप शास्त्रोद्धारक मुनिश्री के दर्शनार्थ पिताजी के साथ हैदराबाद भी गये थे। वहाँ भी आपके पिताजी ने आपको दीक्षा देने की प्रार्थना की। किन्तु मुनिश्री के यह फर्माने पर कि अभी अवसर नहीं है, आप दोनों वापिस लौट आए। जब तपस्वी मुनिश्री केवलऋषिजी म० का स्वर्गवास हो गया और यह समाचार आपको तथा आपके पिताश्री को विदित हुआ तो पुनः पिता-पुत्र हैदराबाद पहुँचे और दीक्षा के लिए प्रार्थना की। शास्त्रोद्धारक महाराजश्री ने फर्माया-शास्त्रोद्धार का कार्य चल रहा है। इस कार्य में करीब ५ वर्ष लग जाने की संभावना है। तबतक आप शान्ति रक्खें और धर्मध्यान में समय लगावें। परन्तु आपकी तथा आपके पिताश्री की विशेष भावना देखकर तथा गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० की सम्मति मिलने से अन्ततः आपको दीक्षा देना स्वीकार कर लिया गया। तदनुसार सं० १९७२ मि. फाल्गुन शु. ३ के दिन बड़े समारोह के साथ आपको दीक्षा हैदराबाद मे सम्पन्न हुई। आपका शुभ नाम श्रीमोहनऋषिजी रक्खा गया।

आपने दशवैकालिक तथा उत्तराध्ययन सूत्र कंठस्थ किये थे। प्रतिदिन शास्त्र की पाँच गाथाएँ कण्ठस्थ करते थे। एक घण्टा थोकड़ों का अभ्यास करते और शेष समय संस्कृत शिक्षा तथा दैनिक मुनिचर्या में व्यतीत करते थे। लघुकौमुदी, प्राकृत मार्गोपदेशिका, रघुवंश, प्रमाण नयतत्त्वालोक और स्याद्वादमञ्जरी आदि ग्रन्थों का आपने वाचन किया था। धार्मिक छन्द, स्तोत्र आदि भी कंठस्थ किये थे। करीब चार वर्ष मे इतना अभ्यास कर लिया था। आपके विषय में जनता की धारणा बड़ी ऊँची थी। सब आपको होनहार महान् संत के रूप में देखते थे। परन्तु 'जिसकी यहाँ चाहना है, उसकी वहाँ चाहना है' इस उक्ति के अनुसार आप अधिक समय जीवित न रहे। सं० १९७६ मे आप एक भक्तभोजी बन गये। अपने हिस्से का सब आहार पानी में इकट्ठा घोल कर पी लेते थे। इस प्रकार आप जिह्वेन्द्रिय पर विजय प्राप्त कर चुके थे।

फाल्गुन शु. ७ के दिन अकस्मात् ज्वर का आक्रमण हुआ। फाल्गुनी चौमासी वेदना में ही व्यतीत हुई। औषधोपचार करने पर भी कोई लाभ दिखाई नही दिया। तब शास्त्रोद्धारक महाराज ने फर्माया—मुनि मोहन! चेतो! कोई इच्छा हो तो कहो।

रुग्ण मुनि ने शान्त स्वर में कहा—मुझे कुछ नहीं चाहिए। आपकी कृपा है ही, समाधि बनी रहे; बस यही कामना है।

आलोचना और निंदा-गर्हा करके आपने विशुद्धि प्राप्त की। और आठ दिन तक आयु न टूटे तो यावज्जीवन १० द्रव्य के उपरान्त का त्याग कर दिया। 'असिआउसाय नमः' का जाप करते रहे। चैत्र वदि ७ के दिन तपस्वीराज श्रीदेवऋषिजी म० का स्वर्गवास हुआ। उसी दिन सायंकाल प्रतिक्रमण करने के पश्चात

आपको तिविहार सागारी संथारे का प्रत्याख्यान कराया गया; किन्तु आपने अपने मुख से चारों आहारों का प्रत्याख्यान कर लिया। तत्पश्चात् शीत ज्वर का प्रकोप बढ़ गया। बोलने का सामर्थ्य नहीं रहा। पं. मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० चार शरण, णमोकार मंत्र, नमुत्थुणं, आदि पाठ सुनाते रहे। प्रातः चार बजे ब्राह्म मुहुर्त्त मे आपने विनाशशील शरीर का त्याग कर दिया। तीन प्रहर का संथारा आया।

वास्तव मे आप उदीयमान नक्षत्र थे। समाज आशा भरी दृष्टि से आपको देखती थी। आपके स्वर्गवास से एक महान् क्षति हुई। संस्कार के अवसर पर आपके स्मरणार्थ श्रावको ने कुछ चन्दा भी एकत्र किया था।

मुनिश्री मुलतानऋषिजी महाराज

आपका जन्म सं० १९५२ में मीरी (अहमदनगर) में हुआ। पिताजी का नाम श्रीखुशालचंदजी मेहर और मातजी का नाम श्रीमती सदा बाई था। आपश्री मुलतानमलजी के नाम से प्रसिद्ध थे।

शास्त्रोद्धारक पं० मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० के मुखारविंद से प्रतिबोध पाकर आप सं० १९८१ की मार्गशीर्ष शु० १५ के दिन घोड़नदी मे दीक्षित हुए। दीक्षाप्रीत्यर्थ दीक्षामहोत्सव का सभी व्यय राजाबहादुर दानवीर ला० सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी ने बड़े हर्ष के साथ वहन किया। आप अत्यन्त व्यवहार कुशल और विचक्षण सन्त है। स्वभाव की सरलता, शान्तता और गंभीरता अजनवी को भी आकर्षित कर लेती है। आपने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। साधु-आचार का निरूपक दशवैकालिकसूत्र कंठस्थ है।

आपने गुरुवर्य के साथ दक्षिण, मालवा, मारवाड़, और पंजाब आदि प्रान्तों में उग्र विहार किया है। पूज्यश्री के आन्तरिक और प्रमुख परामर्शदाता रहे हैं। पूज्यश्री के स्वर्गप्रयाण के पश्चात् अपने गुरुबन्धु पं० मुनिश्री कल्याणऋषिजी म० के साथ विचरते हैं। श्रीअमोल जैन ज्ञानालय के आप निर्माता के समान हैं। उस संस्था की ओर आपका विशेष ध्यान रहता है। पं० मुनिश्री कल्याण ऋषिजी म० के साथ आपने चांदूरबाजार में पं. रत्न मुनिश्री आनन्दऋषिजी म० की सेवा में रह कर चातुर्मास किया है।

गुरुबन्धुओं के साथ आप दक्षिण, निजाम स्टेट बैंगलोर, मद्रास आदि क्षेत्रों मे विचरे हैं। आपकी प्रेरणा और सहयोग पाकर श्रीअमोल जैन ज्ञानालय जैसी उपयोगी सस्था की नींव मजबूत हो सकी है। वर्त्तमान मे आप पं० मुनिश्री कल्याणऋषिजी म० के कार्यकुशल, अनुभवी और दूरदर्शी परामर्शदाता है। आपकी धर्म-पत्नी भी दीक्षित हुई है। वे पण्डिता महासतीजी श्रीसायरकुंवरजी म० के समीप श्रीइन्दुकुंवरजी के नाम से प्रसिद्ध है। आपके पुत्र भी संयम ग्रहण कर चुके है, जो पं० मुनिश्री कल्याणऋषिजी म० के समीप श्री० चन्द्रऋषिजी म० के नाम से विख्यात हैं।

आपश्री बड़े ही सेवाभावी और कुशल सन्त हैं। यद्यपि आप पर उदररोग समय-समय पर आक्रमण करता है, तथापि आप समता पूर्वक उसे सहन करते है और जिनशासन के उत्थान मे सदैव संलग्न रहते हैं।

मुनिश्री जयवन्तऋषिजी और शान्तिऋषिजी महाराज

आप दोनों पिता-पुत्र हैं। दलोट (मालवा) के निवासी थे। सं. १९८८ के धूलिया-चातुर्मास के अवसर पर शास्त्रोद्धारक पं. मुनिश्री अमोलकऋषिजी म. की सेवा मे दोनों महानुभाव उपस्थित

हुए और दीक्षा ग्रहण करने के भाव दर्शाए। कुछ समय तक प्रतिक्रमण आदि सीखा। पश्चात् मार्गशीर्ष कृष्ण ५ के दिन दोनों वैरागियो ने हर्ष और उत्साह के साथ दीक्षा ली। धूलिया मे ही दीक्षोत्सव सम्पन्न हुआ। क्रमशः-दोनों के नाम श्रीजयवन्तऋषिजी और श्रीशान्तिऋषिजी रक्खे गये।

मुनिश्री शान्तिऋषिजी म० की बुद्धि और धारणाशक्ति विशेष थी। कुछ वर्षों तक दोनों ही सन्त पूज्यश्री के साथ विचरे। शास्त्रीयज्ञान भी प्राप्त किया। किन्तु बाद मे दोनो ही अपनी प्रकृति के वशीभूत होकर पूज्यश्री से पृथक् हो गये और मेवाड़ प्रान्तीय मुनिश्री मोतीलालजी म० की सेवा मे जाकर रह गये।

वर्त्तमान मे मुनिश्री शान्तिऋषिजी मेवाड़ मे मंत्री मुनिश्री मोतीलालजी म० की सेवा मे विचर रहे है। श्रीजयवन्तऋषिजी शारीरिक अवस्था और बीमारी आदि कारणो से सयम-पालन में समर्थन हो सके। वे आज कल दलोट के आसपास ही किसी ग्राम में रहते है।

मुनिश्री फतहऋषिजी महाराज

आप असलनेर (खानदेश) के निवासी थे। सं. १९८९ में भोपाल चातुर्मास मे पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० की सेवा में उपस्थित हुए। चातुर्मास-काल मे धर्मशास्त्र का अभ्यास किया। जब पूज्यश्री बिहार करके सुजालपुर पधारे तब आप वैरागी-अवस्था में थे। वहीं मार्गशीर्ष शु. ११ के दिन आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। पूज्य गुरुवर की सेवा में रहकर अनेक थोकड़े कंठस्थ किये। अच्छी जानकारी हासिल की। पंजाब, मारवाड़, मालवा, मेवाड़ आदि प्रान्तों में पूज्यश्री के साथ २ विचरे। हींगनघाट-चातुर्मास में पं.

मुनिश्री कल्याणऋषिजी म० के साथ थे। मगर चातुर्मास उतरने पर प्रकृति के वशीभूत होकर संयम से पतित हो गए। कर्मों की लीला बड़ी ही विचित्र है !
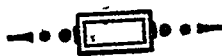
कवि मुनिश्री हरिऋषिजी महाराज

आपने खानदेश के मारोड़ ग्राम में, वैष्णव परिवार में सं. १९७० में जन्म लिया। पिताजी का नाम श्रीबारकु सेठ तथा माताजी का नाम श्रीमती काशीबाई था। धूलिया में विराजित शास्त्रोद्धारक पं. मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० के सदुपदेश से प्रतिबोध पाकर वैराग्य के रंग में रंग गये। कुछ दिनो तक वहीं धर्म-शिक्षण लेते रहे। सं० १९९० मे अजमेर-साधु सम्मेलन के अपूर्व अवसर पर उपस्थित हुए महान् सन्तो पूज्यश्री जवाहरलालजी म० पूज्यश्री मन्नालालजी म०, युवाचार्य श्रीकाशीरामजी म०, उपाध्याय श्री आत्मारामजी म० पूज्यश्री नागचन्द्रजी म०, प्र० श्रीताराचंदजी म० पूज्यश्री छगनलालजी म० खंभात संघाड़े वाले आदि सन्तों और बहुसंख्यक सतियो की उपस्थिति में तथा हजारों श्रावक-श्राविकाओं के समक्ष आपको पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० के निकट भागवती दीक्षा अंगीकार करने का अद्भुत सौभाग्य प्राप्त हुआ। राजाबहादुर दानवीर सेठ ज्वालाप्रसादजी, जो साधु सम्मेलन समिति के स्वागताध्यक्ष थे, ऐसे पवित्र अवसरो की खोज में ही रहते थे। दीक्षा का समस्त व्यय आपने ही ओढ़ा।

मुनिश्री ने धर्म शास्त्रों के अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य का अध्ययन किया है। काव्य-साहित्य में आपकी अच्छी योग्यता है। आपका व्याख्यान मधुर और रोचक होता है।

आप पूज्यश्री के साथ मारवाड़, पंजाब, संयुक्त प्रान्त, मेवाड़, मालवा आदि प्रान्तों में विचरे है। धूलिया में पूज्यश्री का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् भुसावल आदि क्षेत्रो का स्पर्श करते हुए आपने सं. १९९४ का चातुर्मास आत्मार्थी मुनिश्री मोहन ऋषिजी म० तथा पंडित मुनिश्री कल्याण ऋषिजी म. की सेवा मे रह कर हींगनघाट मे व्यतीत किया। फिर वयोवृद्ध श्रीमाणक ऋषिजी म० के साथ नागपुर होते हुए खानदेश पधारे। लासलगांव, घोटी, उंबराणा आदि मे चौमासे किये। सं. २००३ म औरगाबाद में चौमासा किया। तत्पश्चात् अमरावती (बरार) और बैतूल (मध्य प्रदेश) में चौमासे करके सादड़ी सम्मेलन मे सम्मिलित होने के लिए प्रधानाचार्यश्री आनन्द ऋषिजी म० की सेवा में पधारे। सम्मेलन के बाद आपने ठा २ से चिंचपोकली (बम्बई) में चातुर्मास किया। खानदेश में जलगांव मं चातुर्मास करके नागपुर होते हुए कवर्धा पधारे। वहाँ स्थविर मुनिश्री कालूऋषिजी म० की सेवा मे कुछ दिन रह कर रायपुर पधारे। सं २०११ का चातुर्मास वहीं व्यतोत किया। आपके द्वारा रचित और संग्रहीत साहित्य प्रकाश में आया है। यथा-(१) चुनिंदा कथानुयोग संगह (२) नूतन भानु संग्रह (३) सामायिक प्रतिक्रमण (४) आत्मस्मरण (५) सामूहिक प्रार्थना संग्रह (६) पद्मावती आदि आलोयणा (७) श्रीअमोल आत्मस्मरण (८) सती चन्दनबाला।

यह सब पुस्तकें धूलिया से प्राप्त होती है।

कवि मुनिश्री हरिऋषिजी म० ने मध्यप्रदेश में विचार कर धर्म का अच्छा प्रचार किया है और कर रहे हैं। सं० २०१२ का चातुर्मास ठा० ३ से बालाघाट मे किया है।

पं० मुनिश्री भानुऋषिजी महाराज

पूर्वखानदेश के अन्तर्गत तलाई नामक ग्राम आपके पिताजी श्रीसांडू सेठ का निवासस्थान है। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मंडू बाई की कुक्षि से सं० १९८५ में आपका जन्म हुआ। ज्ञाति स्वर्णकार और धर्म वैष्णव था। आपका नाम भगवानदासजी था।

आपका परिवार धूलिया में आ बसा था। यहाँ सत्संग के कारण आपके माता-पिताजी जैनधर्म के श्रद्धालु बने। कवि मुनिश्री हरिऋषिजी म० ने संयम ग्रहण किया था। इसी प्रकार आपने भी सन्त समागम से प्रतिबोध पाकर मुनिश्री हरिऋषिजी म० की नेश्राय में आर्हती दीक्षा धारण कर सयम ग्रहण किया। चौदह वर्ष की अल्प आयु मे, फाल्गुन शु० २ मंगलवार सं० १९९९ के दिन मनमाड़ में दीक्षा-उत्सव सम्पन्न हुआ। उस समय आपका नाम श्रीभानुऋषिजी रक्खा गया। दीक्षा का सब खर्च सहर्ष मनमाड़ श्रीसंघ ने किया। उत्साहपूर्वक दीक्षा-विधि सम्पन्न हुई।

कोमल बुद्धि होने से आपकी ज्ञानमार्ग में प्रवृत्ति हुई। करीब तीन वर्ष गुरुवर्य कविश्री हरिऋषिजी म० की सेवा मे रहे। फिर मलकापुर मे पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० की सेवा में रह कर अपने संस्कृत-प्राकृत का अभ्यास किया और शास्त्रों का वांचन किया। श्रीतिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की धर्म भूषण और सिद्धान्त प्रभाकर परीक्षाओं का अभ्यास करके उनमें उत्तीर्णता प्राप्त की। पंडितजी से लघुसिद्धान्त कौमुदी, प्रमाणनयतत्त्वालोक, मुक्तावली आदि का तथा हिन्दी उर्दू भाषाओ का शिक्षण लिया। आप पूज्यश्री की सेवा में प्रथम बार करीब ३ वर्ष तथा सं. २००९ में नाथद्वारा चौमासा सहित करीब एक वर्ष पुनः रहे।

सोजत की मंत्री-मंडल की बैठक के पश्चात् सिद्धान्त शास्त्री परीक्षा का अभ्यास करने के हेतु ब्यावर पधारे। वहाँ रा. ब. सेठ कुन्दनमलजी लालचंदजी कोठारी द्वारा सं० २००६ के चातुर्मास में पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० के सदुपदेश से संस्थापित श्रीकुन्दन जैन सिद्धान्तशाला में पण्डितजी श्रीभारिल्लजी के पास न्यायसाहित्य का तथा आगमों का उच्चकोटि का अध्ययन कर रहे है। ब्यावर में रह कर आपने सिद्धान्तशास्त्री परीक्षा के तीनों खंडो में उत्तीर्णता प्राप्त की है। सम्प्रति सिद्धान्ताचार्य परीक्षा का अभ्यास चालू है। इस प्रकार आप तन-मन लगाकर ज्ञान की आराधना में संलग्न हैं।

इसी बीच आपने लेखनकला का भी विकास किया है। आपके द्वारा सम्पादित 'श्रमणवाणी' और 'प्रभातपाठ' नामक दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

आप कलाकुशल, सेवाभावी, विनीत और दयालु सन्त हैं। उदीयमान नक्षत्र हैं। ब्यावर मे स्थविर मुनिश्री मोहनलालजी म० तथा स्थविर मुनिश्री मांगीलालजी म० के साथ रह कर शिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

पं. मुनिश्री कल्याणऋषिजी महाराज

बरखेड़ी (अहमदनगर) में वि सं. १९६६ मे आपने जन्म ग्रहण किया। पिताजी श्रीहजारीमलजी चौपड़ा और माता श्रीमती सोनीबाई। गृहस्थावस्था मे आपका नाम श्रीभानुचन्द्रजी था। सं. १९८१ में, पन्द्रह वर्ष की कुमारावस्था में, कुड़गांव में आगमोद्धारक पं. मुनिश्री अमोलक ऋषिजी म० के समीप आपने दीक्षा ग्रहण की। तब आपका नाम श्रीकल्याण ऋषिजी दिया गया।

आपने दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र कंठस्थ किये हैं। संस्कृत में व्याकरण और साहित्य का अध्ययन किया है। २२ सूत्रों का टीका के साथ वांचन किया है। इस प्रकार अच्छा परिश्रम करके आप योग्य विद्वान् बने हैं। प्रकृति से विनयशील, भद्रहृदय, व्यवहार विचक्षण और साहित्यानुरागी हैं।

गुरुवर्य के साथ पूना, घोड़नदी, अहमदनगर और मनमाड़ में चौमासा करके धूलिया पधारे। तत्पश्चात् आपश्री तथा श्रीमुलतान ऋषिजी म० ठाणा २ पं. रत्न श्रीआनन्द ऋषिजी म० की सेवा में पहुँचे और चाँदूर बाजार (बरार) मे चातुर्मास किया। फिर दक्षिण खानदेश, मालवा, मेवाड़ आदि में विचरते हुए पूज्यश्री के साथ पंजाब पधारे। महेन्द्रगढ़, मारवाड़-सादड़ी, भोपाल आदि मे चातुर्मास किये। सं. १९९२ में देहली-चातुर्मास पूज्यश्री के साथ व्यतीत करके, उग्र विहार करके धूलिया पधारे। वहीं चातुर्मास हुआ। किन्तु प्रथम भाद्रपद मास में ही पूज्यश्री को विकराल काल ने छीन लिया। पूज्यश्री के चरण-कमलों में रहकर सानन्द संयम-जीवन व्यतीत हो रहा था, परन्तु कर्म के आगे किसी की नहीं चलती!

चातुर्मास के अनन्तर साम्प्रदायिक कार्य के भार और उत्तरदायित्व को निभाने के लिए आचार्य की स्थापना आवश्यक थी। अतएव बहुत से संत नायक की स्थापना करने के लिए भुसावल पधारे और तपस्वी राजश्री देवजीऋषिजी म० को सं. १९९३ के माघ मास में आचार्य पदवी से अलंकृत किया गया।

तत्पश्चात् आप आत्मार्थी मुनिश्री मोहनऋषिजी म० के साथ पधारे। हींगनघाट में वर्षाकाल व्यतीत किया। तत्पश्चात् जलगांव, बोदवड़ आदि क्षेत्रों में चातुर्मास करके सं. १९९६ में

पाथर्डी पधारे। माघ कृष्णा षष्ठी के दिन यहीं आचार्य-पद महोत्सव होने वाला था। बालब्रह्मचारी प्रखरवक्ता पण्डित रत्न श्री आनन्दऋषिजी म० को आचार्य-पद की चादर आपश्री के कर-कमलों में द्वारा ओढ़ाई गई। फाल्गुन मास मे ऋषि-सम्प्रदायी सन्तो का जो सम्मेलन हुआ, उसमें भी आप उपस्थित थे। पाथर्डी में १६ संत उपस्थित थे। वहाँ कुछ नियमोपनियम बनाये गये।

सं० २००० का चातुर्मास पूना में व्यतीत करके आपने हैदराबाद की ओर विहार किया। हैदराबाद, रायचूर बैंगलौर और मद्रास आदि क्षेत्रों में चौमासे हुए। आपके प्रभावशाली उपदेशों का जैन-जैनेतर जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा।

शास्त्रोद्धारक पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० के स्मरणार्थ आपश्री के सदुपदेश से श्रीअमोलजैन ज्ञानालय नामक एक संस्था धूलिया मे सं० १९९९ में स्थापित हुई। आप जब कर्णाटक एवं मद्रास आदि प्रान्तों मे विचरे तो दानवीर साहित्यप्रेमियो की ओर से संस्था को अच्छा सहयोग प्राप्त हुआ। इस संस्था की आर्थिक नींव अच्छी सुदृढ़ है। एक लाख से कुछ अधिक स्थायी फंड है। आप स्वयं साहित्य के बड़े प्रेमी है। अतएव श्रीअमोलजैन ज्ञानालय द्वारा अनेक ग्रंथों का वर्त्तमान में प्रकाशन हो रहा है। लगभग ४६ पुष्प निकल चुके है। उनमें श्रीजैनतत्त्वप्रकाश, जैनतत्त्वदिग्दर्शन, सुबोधसंग्रह सोलह सतियो के पृथक्-पृथक् जीवनचरित्त की सोलह पुस्तकें, प्रद्युम्नचरित आदि-आदि उपयोगी और उपदेशप्रद साहित्य है। यह संस्था साहित्य का प्रचार और प्रसार कर रही है। सम्प्रति, सं० २०१२ मे आपका चौमासा लासलगांव मे है। जिनशासन की प्रभावना मे आप महत्त्वपूर्ण योग प्रदान कर रहे है।

मुनिश्री रामऋषिजी महाराज

आपका जन्म सं० १९८२ में गधनापुर-निवासी, वैष्णव-धर्मानुयायी श्रीछोटेलालजी संखवाल पटवा की धर्मपत्नी श्रीसुभद्रा-बाई के उदर से हुआ। आपका नाम रामचंद्रजी था। आपने पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० की सेवा में रह कर धार्मिक शिक्षा ग्रहण की और सं० १९९३ में धूलिया में पं० मुनिश्री कल्याणऋषिजी म० के समीप दीक्षा ली। पं० मुनिश्री की सेवा मे रहते हुए आपने श्रीदश-वैकालिक, श्रीउत्तराध्ययन तथा श्रीनन्दीसूत्र कंठस्थ किये। लघुकौमुदी, हितोपदेश, रघुवंश सुभाषितरत्नसन्दोह, प्राकृतमार्गोपदेशिका, अमर-कोष आदि आदि का भी अध्ययन किया। किन्तु इतना ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी वे अपने संस्कारों पर विजय न पा सके। सं० २००० के पूना-चातुर्मास में अपनी प्रकृति के वशीभूत होकर संयमरत्न की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध हुए। पूना में ही संयम से पतित हो गये।

सेवाभावी मुनिश्री रायऋषिजी महाराज

फागणा (धूलिया) निवासी श्रीटीकारामजी भावसार की धर्मपत्नी श्रीमती धन्या बाई की धन्य-कुक्षि से सं० १९४९ में आपका जन्म हुआ। पं० मुनिश्री कल्याणऋषिजी म० के सदुपदेश से आपके चित्त में विरक्तिभाव उत्पन्न हुआ। सं० १९९८ की आषाढ़ कृ० ६ के दिन वाघली (पूर्वखानदेश) में दीक्षा ग्रहण की। उस समय आपकी वय ४९ वर्ष की थी। आपका नाम श्रीरायऋषिजी रक्खा गया।

आपने संयमोपयोगी ज्ञान प्राप्त किया है। भद्रप्रकृति के सेवाभावी सन्त हैं। पं० मुनिश्री के साथ नाना प्रदेशों में विचरे हैं। इस समय आपके साथ ही लासलगांव में विराजमान हैं।

तपस्वी मुनिश्री भक्तिऋषिजी महाराज

आपकी जन्मभूमि पादू (मारवाड़) है । श्रीपूनमचंदजी रांका आपके पिताश्री और श्रोसुआ बाई माताश्री थे। पूना में पं० मुनिश्री कल्याणऋषिजी म० से प्रतिबोध पाकर सं० २००० में (मगसिर मास में) दीक्षित हुए। दीक्षा के समय आप ३० वर्ष के युवा थे। आपने सामान्य उपयोगी ज्ञान प्राप्त करके तपश्चर्या की ओर अपनी प्रवृत्ति बढ़ाई। प्रत्येक चातुर्मास मे कुछ न कुछ तपस्या करते है। नौ मासखमण किये है। वर्त्तमान में धूलिया में विराजित स्थविर मुनिश्री माणकऋषिजी म० की सेवा मे विराजमान है।

मुनिश्री चन्द्रऋषिजी महाराज

आप मुनिश्री मुलतान ऋषिजी म० के गृहस्थावस्था के सुपुत्र हैं। माता श्रीमती दगड़ी बाई के उदर से सं. १९७४ में आपका जन्म हुआ। चाँदमलजी आपका नाम था। आपके परिवार मे उच्चकोटि के धार्मिक संस्कार व्याप्त रहे है। आपके पुण्यशाली पिताश्री सं. १९८२ मे दीक्षित हो चुके थे! सं. २००० में माताजी ने भी उसी पथ का अनुसरण किया। माताजी के दीक्षित होने से आपके चित्त प्रदेश मे भी वैराग्य के अकुर फूट पड़े। सं. २००२ के फाल्गुन मास में २८ वर्ष की उभरती जवानी में आपने पं. रत्न मुनिश्री कल्याण ऋषिजी म० के निकट दक्षिण हैदराबाद में दीक्षा अंगोकार कर ली।

पं. मुनिश्री की सेवा में रहकर आपने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी का अभ्यास किया है। शास्त्रो का भी वांचन किया है। श्री ति० र० स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी की जैन सिद्धान्त विशारद परीक्षा देकर उत्तीर्णता प्रात की है। आप संगीत प्रेमी हैं

और व्याख्यान भी देते हैं। देश-देशान्तर में गुरुवर्य के साथ विहार करके इस समय आप पं. मुनिश्री की सेवा में, लासलगांव मे विराजते है।

महाभाग प्रभावशाली श्रीअयवंताऋषिजी म०

कुमार अवस्था में प्रतिबोध पाकर पूज्यश्री धनजीऋषिजी म० के मुखारविन्द से आपने आर्हती दीक्षा अङ्गीकार की। दीक्षा लेते ही आप ज्ञान और चारित्र की आराधना मे सर्वतोभावेन जुट गये। शास्त्रीयज्ञान तो प्राप्त किया ही, अन्य साहित्य-ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। स्वाध्यायशीलता के बल पर आप उच्चश्रेणी के ज्ञानी और तत्त्ववेत्ता हुए। आपके भीतर ज्ञान का विशाल भाण्डार था। आप प्रायः मालवा में ही विचरे और ग्रामों की भोली जनता का उपकार करने के लिए छोटे-छोटे क्षेत्रों पर ध्यान देते रहे।

सं० १९१४ में आपका पदार्पण रतलाम शहर में हुआ। आपके प्रभावशाली उपदेश का खूब प्रभाव पड़ा। एक ही दिन में चार दीक्षाएँ हुईं। उनमें से आपके समीप उग्रतपस्वी श्रीकुंवर-ऋषिजी म० और कविकुलभूषण श्रीतिलोकऋषिजी म०-इन दोनों भाइयो ने दीक्षित होकर एवं ज्ञान तथा क्रिया की आराधना करके अपना शुभ नाम जैन इतिहास में अमर किया है। रतलाम से विहार करके आप जावरा पधारे। आपके चातुर्मास इस प्रकार हुए:—

सं. १९१५-जावरा, १९१६ सुजालपुर, १९ ७ प्रतापगढ़, १९१८ सुजालपुर, १९१९ भोपाल, १९२० बरडावदा, सं. १९२१ सुजालपुर। तत्पश्चात् आप सारंगपुर, शाजापुर, देवास और इन्दौर

पधारे। वहाँ से देवास, नेवली, पीपरिया, मगरदा, आष्टा, सीहोर आदि क्षेत्रो को फरसते हुए भोपाल पधारे। वहीं फाल्गुनी चातुर्मास किया। फिर आसपास क्षेत्रों मे विचरते हुए सीहोर, सुजालपुर, भैंसरोज पधारे। यहाँ अपनी शारीरिक स्थिति का विचार करके अनशन व्रत अंगीकार किया। समाधियुक्त समभाव से अन्तिम समय मे आयु पूर्ण करके इस विरल विभूति ने स्वर्ग की ओर प्रयाण किया। आषाढ़ शु. ६ सं. १६२२ को आपका देहोत्सर्ग हुआ।

आपके सात शिष्य हुए हैं। उनमे कितनेक उग्र तपस्त्री हुए और कोई-कोई महान् वक्ता, प्रचण्ड पंडित तथा कविरत्न एवं एवं व्याख्याता हुए, जिन्होने जैन धर्म की सुगंध चारों ओर प्रसारित की। यथा—कवि कुल भूषण श्री तिलोक ऋषिजी म०, पं. श्री लाल ऋषिजी, म० उग्रतपस्वी श्री कुंवर ऋषिजी म० और श्री विजय ऋषिजी म०। श्री अभय ऋषिजी म०, श्री चुन्नाऋषिजी म० और श्री बाल ऋषिजी महाराज।

पं० मुनिश्री लालऋषिजी महाराज

बालब्रह्मचारी पं० मुनिश्री अयवन्ताऋषिजी म० से आपने दीक्षा ग्रहण की। गुरुदेव की सेवा मे रहते हुए शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। आपका व्याख्यान इतना प्रभावशाली होता था कि श्रोताओं के हृदय को एकदम मुग्ध कर देता था। मालवा प्रदेश में विचर कर आपने जिनधर्म का अच्छा प्रचार किया। छोटे-बड़े राजा-रईसों को प्रतिबोध देकर मांस-मदिरा आदि का त्याग करवाया। कइयों ने शिकार जैसे कायरतापूर्ण कृत्य का सदा के लिए परित्याग कर दिया। सं० १६४६ में आप भोपाल पधारे। वहाँ जावरा-निवासी श्रीदौलतरामजी की दीक्षा मार्गशीर्ष शु० १३ के दिन सानन्द सम्पन्न हुई।

आपश्री के दो शिष्यों के नाम उपलब्ध हैं-मुनिश्री मोती-ऋषिजी म० और ज्योतिर्विद् श्रीदौलतऋषिजी म० । इनके अतिरिक्त अन्य शिष्य भी हुए थे, मगर उनके नाम उपलब्ध नहीं हो सके।

मुनिश्री मोतीऋषिजी महाराज

आप पं० मुनिश्री लालऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षित होकर संयमी बने । गुरु की सेवा मे रहकर आगमों का ज्ञान प्राप्त किया । थोकड़ों के गंभीर ज्ञान से सम्पन्न थे । मालवा और मेवाड़ आदि प्रान्तो मे विचर कर धर्म का प्रचार और आत्मा का कल्याण किया । आप अत्यन्त सेवाभावी और विनयविभूषित सन्त थे ।

ज्योतिर्विद् पं० मुनिश्री दौलतऋषिजी महाराज

आसौज के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, सं० १९२०, इतवार के शुभ दिन जावरा (मालवा) मे आपका जन्म हुआ। महासती श्रीसिरेकुंवरजी म० के सदुपदेश से आपके अन्तरतल में वैराग्यभाव का आविर्भाव हुआ । २९ वर्ष के उभरते यौवन में, जब साधारण मनुष्य संसार के राग-रंगो मे मस्त बनता है, तब आप जगत् से विरक्त हुए । सुशीला और पतिपरायणा पत्नी थी, वैभव था. सुख की समस्त सामग्री सहज ही प्राप्त थी, किन्तु इनमे से किसी का भी प्रलोभन आपको न रोक सका। आत्मकल्याण के पथ पर चलने का आपने निश्चय कर लिया । सं० १९४९ की मार्गशीर्ष शु० १३ के दिन, भोपाल मे विराजित शास्त्रवेत्ता मुनिश्री लालऋषिजी म० के समीप आपने दीक्षा ग्रहण की । उसी समय से आप श्रीदौलत-ऋषिजी म० कहलाए । आपकी प्रज्ञा अतिशय निर्मल थी । मेधा-शक्ति प्रबल थी । अतएव आपने गुरुवर्य की सेवा में रह कर आगमों का गंभीर तत्त्वज्ञान प्राप्त किया । श्रीचन्द्रप्रज्ञप्ति और श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति

सूत्र तथा अन्य ज्योतिष शास्त्र संबंधी ग्रन्थों का खूब अध्ययन किया। आपने ज्योतिषशास्त्र मे अगाध विद्वत्ता प्राप्त कर ली।

आपश्री का व्याख्यान प्रभावपूर्ण और साथ ही बहुत रुचिकर होता था। आपके ज्ञान एव वैराग्य से परिपूर्ण अन्तरात्मा से निकले हुए वाक्यो का जैन और जैनेतर श्रोताओ पर अच्छा प्रभाव पड़ता था। मालवा प्रान्त में किसी भी सम्प्रदाय के सन्त मुनिराज पधारें, आप अभेदभाव से उनकी यथोचित् सेवा शुश्रूषा करते थे। वस्त्र, पात्र और शास्त्र आदि के लेन देन में हार्दिक प्रेम प्रकट करते थे।

जिस मकान के विषय मे जनता में भय या आशंका होती, उसमें भी आप निश्शंक, निश्चिन्त एवं निर्विकल्प भाव से विराजते थे और तब लोगो के हृदय से भय शंका का भाव दूर हो जाता था। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज फर्माते थे कि आपने मुझे तीन बार अच्छा सहयोग दिया है! आप जहाँ कहीं पधारते, दया (छह काया) व्रत बहुत करवाते थे। पाँचो तिथियो मे, कम या ज्यादा—जैसा अवसर होता, पर दया करवाते अवश्य थे।

अपने चरण-कमलों से अनेक ग्रामों एवं नगरों को पावन करते हुए आप मालवा से मेवाड़ मे पधारे। उदयपुर मे महाराणाजी ज्योतिष पारगामी मुनिराज का ज्योतिष चमत्कार देखकर चकित हो गये थे। आप मरुस्थल प्रदेश के सरदारशहर और चूरु आदि क्षेत्रों मे भी पधारे थे। वहाँ भी कुछ ऐसा चमत्कार हुआ कि उसे देखकर जैनेतर जनता भी विस्मित रह गई थी। जैनसमाज में तो आपकी प्रख्याति थी ही, अजैन जनता भी कहती थी कि इस समय जैनसमाज मे आपके समान ज्योतिषशास्त्र का ज्ञाता दूसरा कोई दृष्टिगोचर नहीं होता।

शास्त्रों के मर्म को आपने भलीभाँति पचाया था। इस कारण आप शास्त्रों की गूढ़ से गूढ़ बात भी ऐसे सरल ढंग से समझाते थे कि सब की समझ में आ जाय। रामपुरा के प्रसिद्ध शास्त्र ज्ञाता श्रावक श्री केसरीमलजी को सवत्सरी के विषय मे तथा मुनिराजों को वन्दना करने के विषय में एका बार शंका उत्पन्न हुई थी। उसका समाधान आपने ही किया था।

सुना जाता है कि आपका जब जोधपुर में पदार्पण हुआ तब वहाँ के सिंहपोल नामक स्थान में सर्व प्रथम आप ही ठहरे। आपके बाद ही दूसरे सन्त और महासतीजी वहाँ ठहरने लगे।

पंजाब केसरी पूज्यश्री सोहनलालजी म० के साथ कई महोनों तक पत्रों द्वारा शास्त्रार्थ–चर्चा चलती रही। आपकी विद्वत्ता और अभिज्ञता देख कर पूज्यश्री बहुत प्रमुदित हुए। कई बार पंजाब पधारने के लिए पत्र आये। पूज्यश्री ने समाचार भिजवाये थे कि वृद्धावस्था के कारण मै लाचार हूँ। उधर नहीं आ सकता। आप पधारेंगे तो बहुत प्रसन्नता होगी। आप भी पंजाब जाने की इच्छा रखते थे। परस्पर मिलने की दोनों ओर से इच्छा होने पर भी संयोगवशात् मिलन न हो पाया।

सन्तों को तकलीफ होने के कारण आपश्री इन्दौर में विराजमान थे। श्रीसंघ ने इन्दौर में ही चातुर्मास करने की प्रार्थना की। किन्तु आपने अपनी आयु का अन्त सन्निकट जान कर श्रीसंघ के मुखिया श्रावकों से स्पष्ट कह दिया कि आप लोग मेरे भरोसे न रहे। किसी अन्य सन्त या सतीजी से प्रार्थना करें। मेरा शरीर कारणिक है। पण्डिता श्रीरत्नकुंवरजी म. को श्रावकों ने निवेदन किया कि आपश्री चौमासे में यहीं विराजें। आपको गुरु महाराज की सेवा-भक्ति का लाभ मिलेगा और हम लोगों को आपसे लाभ

मिलेगा। यह बात जब आपको विदित हुई तो आपने सतीजी से कहा—यहाँ रहने से आपको लाभ मिलना तो दूर रहा, चातुर्मास पूर्ण करना भी कठिन हो जाएगा; अतः किसी दूसरे क्षेत्र में जाना ही ठीक है।

आपने समीपस्थ मुनियो से तथा महासतियों से फाल्गुन सुदि या चैत्र वदि मे ही कह दिया कि छह महीने से अधिक जीवित रहने का मुझे विश्वास नहीं !

आषाढ़ वदि १ को आपको ज्वर हो आया। आपने साथ के सन्तों से कह दिया—अब आप लोग सावधान रहें। यह ज्वर इस शरीर के लिए ठीक नहीं है। ज्वर के साथ हथेली में एक छाला भी हो गया था, जिसके कारण बीमारी बढ़ती ही चली गई। इन्दौर, शाजापुर और सुजालपुर के मुखिया श्रावकों ने डाक्टरों की चिकित्सा कराने की आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। मगर आपने स्पष्ट कह दिया—तुम्हारी तो सेवा होगी, पर मेरे संयम की विशुद्धता में धब्बा लग जाएगा। शरीर जाता है तो जाय, परन्तु संयम में बाधा नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार कह कर आपने डाक्टरों से इलाज कराना अस्वीकार कर दिया। जर्रा से लाया हुआ मलहम लगाते रहे। फोड़ा बिगड़ता गया और उसमें से खून बहना आरंभ हो गया। तीन दिन तक अखंड रक्त धारा प्रवाहित होती रही। परन्तु धन्य है उस योगीश्वर को जो दुस्सह वेदना की तनिक भी चिन्ता न करता हुआ और मुख से एक बार भी 'आह' न निकालता हुआ ज्ञान-श्रवण और आत्म ध्यान में ही लीन रहा ! देहाध्यास से अतीत वह वैराग्य मूर्त्ति महापुरुष आत्म स्वरूप में रमण करता हुआ मानो शरीर के अस्तित्व को भूल ही गया।

जब देहत्याग का समय एकदम सन्निकट आ गया तो आपने

सूचित कर दिया-मेरा अन्तकाल समीप है और मैं समाधिमरण का वरण करके इस जीवन की अन्तिम आराधना को अंगीकार करता हूँ। इस प्रकार कह कर आपने अपने ही श्री मुख से संथारा ग्रहण किया। प्राणी मात्र से क्षमायाचना की। फिर आत्माराम में मगन हो गए। श्रावण कृष्णा ११ गुरुवार के दिन-चौमासा आरंभ होने के ग्यारहवें दिन ही आपने देह को त्याग कर स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

आपश्री ने गुजरात, काठियावाड़, मारवाड़, मालवा, मेवाड़ आदि प्रान्तों में विचर कर धर्म का खूब प्रचार किया। आपके करीब २० शिष्य हुए। आत्मार्थी मुनिश्री मोहनऋषिजी म० और श्रीविनय-ऋषिजी म० आपके ही शिष्य है जो दक्षिण में विचरण करके आत्मसाधना एवं धर्म का प्रचार कर रहे हैं।

मुनिश्री प्रेमऋषिजी महाराज

आपने ज्योतिषशास्त्रपारगामी पं० मुनिश्री दौलतऋषिजी म० की सेवा मे दीक्षा ग्रहण की थी। प्रकृति के सरल और शान्त थे। गुरुवर्य की सेवा मे रह कर आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। थोकड़ो में और बोलो मे अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। व्याख्यान मधुर था। मालवा, मेवाड़, मारवाड़ आदि प्रान्तो में विचर कर जैनधर्म की प्रभावना की। आपके सदुपदेश से ही मुनिश्री चौथ-ऋषिजी और रत्नऋषिजी म० की दीक्षा हुई थी। आपश्री के तीन शिष्य हुए:—

(१) श्रीफत्तेऋषिजी म० (२) श्रीचौथऋषिजी (३) श्रीरत्न-ऋषिजी म०।

मुनिश्री फतहऋषिजी महाराज

मुनिश्री प्रेमऋषिजी म० के सदुपदेश से विरक्त होकर आपने उन्हीं की सेवा मे दीक्षा धारण की। गुरुवर्य की सेवा में रहते हुए आपने संयममार्ग का ज्ञान प्राप्त किया। संयम एवं तप की आराधना करते हुए आपने जीवन यात्रा पूर्ण की और स्वर्ग सिधारे।

मुनिश्री चौथऋषिजी महाराज

आपकी दीक्षा कोटा (राजपूताना) मे ज्योतिर्विद् पं० मुनिश्री दौलतऋषिजी म० के श्रीमुख से हुई थी। मुनिश्री प्रेमऋषिजी म० के नेश्राय में शिष्य हुए। ज्योतिर्विद मुनिश्री की सेवा मे रहते हुए मालवा आदि प्रान्तो में, छोटे-छोटे क्षेत्रों में बहुत विचरे। शास्त्रीय, थोकड़ा बोल आदि का ज्ञान प्राप्त किया था। सं० १६८२ में आप और छोटे मुनिश्री रत्नऋषिजी म० दक्षिण प्रान्त में पधारे और शास्त्रोद्धारक पं० मुनिश्री अमालकऋषिजी म० को सेवा में चिंचवड़ ग्राम मे उपस्थित हुए। दोनो सन्त उन्हीं की सेवा में रहे। सं० १६८३ का चातुर्मास पूना में साथ ही किया। चातुर्मास के पश्चात् घोड़नदी पधारे। वहाँ से दोनो सन्तो ने पृथक् विहार किया। निजाम स्टेट के क्षेत्रों में विहार करते हुए जालना पधारे । वही चौमासा हुआ।

अनेक प्रान्तों में विचर कर आपने सत्य जैनधर्म की अच्छी प्रभावना की। सं० १६६१ में आपका जालना में स्वर्गवास हुआ।

छोटे पं० मुनिश्री रत्नऋषिजी महाराज

बाल्यावस्था मे ही आपकी अन्तरात्मा में, सत्संग के प्रभाव से वैराग्यभाव जागृत हुआ। मुनिश्री प्रेमऋषिजी म० की नेश्राय

में, ज्योतिर्विद् पं० मुनिश्री दौलतऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की। गुरु की सेवा में रहकर आगमों का ज्ञान प्राप्त किया और संस्कृत-प्राकृत भाषा का साधारण अभ्यास किया। काव्यरचना करने की प्रतिभा प्राप्त की। आप सुन्दर, मधुर और प्रभावशाली व्याख्यान देते थे। गुरुदेव के साथ रह कर मालवा प्रान्त में धर्म का अच्छा प्रचार किया।

सं. १९८२ में मुनिश्री चौथ ऋषिजी म० के साथ दक्षिण महाराष्ट्र में पधारे। चिंचवड़ में शास्त्रोद्धारक पं. मुनिश्री की सेवा में पहुँचे। पूना में साथ ही चौमासा किया। चातुर्मास में आप चम्पक चरित वांचते थे। कण्ठ मधुर होने से जनता मग्ध हो जाती थी। आपने स्वयं चम्पक चरित की तथा अन्य चरितों की रचना की है! चातुर्मास के बाद घोडनदी से आप दोनों सन्तो ने पृथक् विहार करके औरंगाबाद में चौमासा किया। किन्तु कराल काल ने इसी चौमासे में इस उदीयमान प्रकाश पुंज नक्षत्र को छीन लिया। अल्प आयु में ही आपके जीवन की इति हो गई। वास्तव में आप बड़े ही होनहार सन्त थे। आपकी धारणा शक्ति तीव्र थी।

आत्मार्थी पं० मुनिश्री मोहनऋषिजी म०

कलोल (गुजरात) निवासी श्री मगनलाल भाई की धर्मपत्नी श्री दीवाली बाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ। बाल्यावस्था से ही आपका धार्मिक जीवन आरंभ हो गया। सं. १९५२ में आपने जन्म ग्रहण किया और १४ वर्ष की उम्र में ही रात्रि भोजन और हरी के त्यागी बन गये। इसी समय आपने ब्रह्मचर्य व्रत भी धारण कर लिया। राजकोट-हाईस्कूल में तथा जैन ट्रेनिंग कॉलेज रतलाम में अंगरेजी, संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, धर्म शास्त्र आदि का

उच्च कोटि का अभ्यास किया। गुजराती भाषा पर तो आपका पूरा अधिकार है ही। गुजराती के आप सिद्ध हस्त लेखक हैं।

आपने शिक्षण तथा साहित्य के प्रचार के लिए खूब प्रयत्न किया है और कर रहे हैं। आपश्री का मुख्य ध्येय आत्म शान्ति प्राप्त करना तथा जनता के जीवन स्तर को उन्नत बनाने के लिए शिक्षा एवं सत्साहित्य का प्रचार करना है। छात्रावस्था में ही आपने संसार से उदासीन होकर वि. सं. १९७५ मे ज्येष्ठ शु. १० के दिन ज्योतिर्वेत्ता शास्त्रज्ञ पं. मुनिश्री दौलत ऋषिजी म. के समीप इन्दौर में दीक्षा ग्रहण की।

प्रथमतः तीन वर्षों में श्री दशवैकालिक, श्री उत्तराध्ययन, श्री आचारांग, श्री सुखविपाक आदि शास्त्र कठस्थ किये। तत्पश्चात् गुरुवर्य के श्रीमुख से शास्त्रो की वाचना लो।

आपश्री का प्रवचन बड़ा ही प्राभाविक, ओजस्वी, गंभीर और सारपूर्ण होता है। आपके समागम और सदुपदेश से प्रेरित होकर १३ व्यक्तियो ने विभिन्न सम्प्रदायों मे जैन दीक्षा ग्रहण की है। आपने उग्र विहार करके गुजरात, काठियावाड़ मारवाड़, बम्बई, मध्यप्रान्त तथा खानदेशों की जनता को सौभाग्यवान् बनाया है और अपने उपदेशामृत का पान कराकर मुग्ध किया है। आपश्री के सदुपदेश से अनेक संस्थाएँ स्थापित हुई हैं यथाः—

(१) जैन गुरुकुल, ब्यावर
(२) जैन कन्याशाला, ,,
(३) महावीर जैन पाठशाला ,,
(४) जैन पाठशाला सेवाज
(५) जैन कन्याशाला पीपाड़
(६) जैन पाठशाला खिचन
(७) मूथा जैन विद्यालय बलुंदा
(८) लोंकाशाह जैन विद्यालय
(९) आत्मजागृति कार्यालय ब्यावर
(१०) जैन सस्तासाहित्य कार्यालय, कलोल

(११) जैन पाठशाला, बगड़ी
(१२) जैन कन्याशाला, ,,
(१३) हरिजन पाठशाला, ,,
(१४) जैन स्कूल, पालनपुर

आत्मार्थीजी महाराज इस प्रकार अनेक संस्थाओं के जनक हैं। आपश्री की सत्प्रेरणा से जैन साहित्य का भी प्रचुर प्रचार हुआ है। अभी तक आपके निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाश में आ चुके हैं:—

(१) जैनशिक्षा ६ भाग
(२) व्याख्यान वाटिका
(३) जैनतत्त्व का नूतन निरूपण
(४) अहिंसा का राजमार्ग
(५) अहिंसा पंथ
(६) तत्त्व संग्रह
(७) आत्म बोध भा. १-२-३
(८) साहित्य सागर के मोती
(९) जीवन सुधार की कुंजी

इसके अतिरिक्त अन्य सत्साहित्य के प्रचार में भी आपने खूब हस्तावलम्बन दिया है। आपके उपदेशों से देश और समाज को भारी लाभ पहुँचा है। ऋषिसम्प्रदाय की तो आपने अवर्णनीय सेवा बजाई है। इस सम्प्रदाय मे करीब ७५-८० वर्षों से पूज्य-पदवी नहीं थी इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए जो प्रमुख सन्त अग्रणी हुए, उनमें आप भी थे। आप अपने महान् व्यक्तित्व एवं प्रयत्नों से सफल भी हुए। भुसावल में आचार्य और युवाचार्य पदवी के अवसर पर भी आपकी सेवा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। अजमेर बृहत् साधु सम्मेलन की सफलता में भी आपका बड़ा योग रहा।

आपने अनेक प्रान्तों में विचर कर जैनधर्म की बड़ी प्रभावना की है। प्रवर्तिनीजी श्रीराजकुंवरजी महाराज ने अस्वस्थ अवस्था में आपके दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की। आप उस समय काफी दूरी पर विराजमान थे। फिर भी अनुग्रह की तीव्र भावना से आपने उग्र विहार किया और खामगाँव पहुँच कर प्रवर्त्तिनीजी

को दर्शन की अभिलाषा पूर्ण की। प्रवर्त्तिनीजी का स्वर्गवास हो जाने पर आपश्री के समक्ष ही उपस्थित महासतियों ने पंडिता श्रीउज्ज्वल कुमारीजी म० को प्रवर्त्तिनीपद से अलंकृत किया।

जालना-औरंगाबाद आदि क्षेत्रों मे विचरते हुए आप अहमदनगर पधारे। पूना मे श्री रंभाकुंवरजी प्रवर्त्तिनीजी के संथारे के समय भी आप उपस्थित थे। प्रवर्त्तिनीजी का संथारा सीझने के पश्चात् पण्डिता श्री इन्द्रकुंवरजी म. को उपस्थित महासतियो की तथा श्रीसंघ की सम्मति से आपके समक्ष ही प्रवर्त्तिनीपद प्रदान किया गया था।

आत्मार्थीजी म० वास्तव में आत्मरत महात्मा हैं। मार्मिक विचारक है। आपके उद्गार बड़े ही रहस्यमय, भावपूर्ण और अन्तरतर पर सीधा असर करने वाले होते हैं। आप थोड़े से शब्दो मे विपुल अर्थ भर देते है। सम्प्रति वृद्धावस्था और तबियत ठीक न रहने के कारण आपश्री तथा श्रीविनय ऋषिजी म ठा. २ से अहमदनगर मे विराजमान हैं।

पण्डित मुनिश्री विनयऋषिजी महाराज

आप भी कलोल (गुजरात) के निवासी थे। श्रीमान् मगनलाल भाई की धर्मपत्नी श्रीमती दीवाली बहिन की रत्न-कुक्षि से भाद्रपद कृ० ७, सं. १९७५ के दिन आप इस धराधाम पर प्रकट हुए। आपका नाम वाड़ीलाल भाई था। सं० १९७६ की बसन्त पंचमी के दिन, भारत की राजधानी दिल्ली मे पं० मुनिश्री दौलत-ऋषिजी म० की सेवा में भागवती दीक्षा अंगीकार की। श्रीविनय-ऋषिजी नाम रक्खा गया।

गुरुवर्य की सेवा में रहकर संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी-गुजराती आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। श्रीदशवै-

कालिक तथा श्रीउत्तराध्ययन सूत्र आपने कंठस्थ किये हैं। गुजराती भाषा के अधिकारी विद्वान् हैं। अंग्रेजी भाषा के भी ज्ञाता हैं। आगमों का भी वांचन किया है। दिगम्बर श्वेताम्बर आम्नाय के अनेकानेक ग्रंथों का तथा आधुनिक सत्साहित्य का अध्ययन किया है। आप उन सन्तों में से हैं जो अपने युग की विशेषताओं और विचारधाराओं से भलीभांति परिचित रहते हैं। अतएव आपके सार्वजनिक भाषणों का सर्वसाधारण जनता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आपकी भाषणशैली आधुनिक है। जनता आपके भाषणों की भूरि-भूरि प्रशंसा करती है।

अजमेर बृहत् साधु सम्मेलन के कार्य में आपने अच्छा सहयोग दिया। इन्दौर और भुसावल में हुए ऋषि-सम्प्रदाय के पदवी दान-समारोहो मे आप उपस्थित थे। गुरुवर्य ने आपको जो नाम दिया, आपने उसे पूरी तरह सार्थक करके दिखलाया है। सचमुच ही आप अत्यन्त विनीत सन्त हैं। अपने सहोदर और गुरुभ्राता आत्मार्थी पं. मुनिश्री मोहनऋषिजी म० की सेवा में ही आप विचरते है। पूज्यश्री जवाहरलालजी म० आदि के सन्तो के साथ आप दोनो मुनिराजो का घनिष्ठ प्रेम और सम्पर्क रहा है। आपकी विनम्रता और सेवाभावना अन्य के लिए आदर्श और प्रेरणा प्रदायिनी है।

गुजरात, काठियावाड़, मेवाड़, मारवाड़, मालवा, बरार, मध्यप्रदेश आदि विभिन्न प्रान्तो में विहार करके आपने जैन धर्म की अच्छी प्रभावना की है। बम्बई, पूना, अहमदनगर, घोड़नदी आदि क्षेत्रों में चौमासे किये हैं। वर्त्तमान में आत्मार्थीजी महाराज के समीप मे, अहमदनगर मे, गुरुबन्धु की सेवा का लाभ ले रहे है।

मुनिश्री मनसुख ऋषिजी महाराज

आत्मार्थी मुनिश्री मोहनऋषिजी म. के सदुपदेश से प्रतिबोध पाकर आपने दीक्षा ग्रहण की आप प्रकृति से कुछ तेज हैं। शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया है। कुछही दिन गुरु की सेवा मे रह कर पृथक् हो गए। कुछ समय तक पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म० की सेवा में तथा तपस्वीराज पूज्यश्री देवजी ऋषिजी म. की सेवा मे रहे। फिर मुनिश्री कान्तिऋषिजी म. को साथ लेकर मेवाड़ पधारे। एक चातुर्मास करके पुनः खानदेश मे पधारे। मुनिश्री कान्तिऋषिजी म० से भी आपकी प्रकृति का मेल नहीं बैठा तो अकेले ही पृथक् हुए। खानदेश और महाराष्ट्र के क्षेत्रो में विचरते रहे। आपके एक शिष्य हुए है, जिनका नाम है-श्रीमोतीऋषिजी म०।

मुनिश्री मोतीऋषिजी महाराज

खांबा (अहमदनगर) निवासी श्रीनिहालचंदजी पीतलिया की धर्म पत्नी श्री सखूबाई के आप सुपुत्र है। सं १९७४ में आपका जन्म हुआ। मुनिश्री मनसुख ऋषिजी म० के समीप सं. २०१० में फाल्गुन कृष्ण ११ के दिन येलदा (पू. खानदेश) मे दीक्षा ग्रहण की। मुनिश्री मनसुख ऋषिजी म० की प्रकृति के साथ मेल न खाने से आप कुछ समय तक उनके साथ रह कर पृथक् हो गए। वर्त्तमान मे आप पण्डित मुनिश्री कल्याण ऋषिजी म० की सेवा मे चातुर्मासार्थ विराज रहे हैं।

तपस्वी मुनिश्री कुंवरऋषिजी महाराज

आप रतलाम निवासी सुराणा गोत्रीय श्रीमान् दुलीचंदजी के आत्मज थे। माताजी का नाम श्रीनानू बाई था। सं. १९१४ में पूज्यपादश्री अयवन्ताऋषिजी म. के सदुपदेश से माताजी के हृदय

में विरक्ति की भावना उत्पन्न हुई। माताजी के वैराग्य ने अपने परिवार के वायुमण्डल को ही वैराग्यमय बना दिया। परिणाम स्वरूप माघ कृ. १ के दिन आपकी माताजी ने, वहन ने, छोटे भाई ने तथा स्वयं आपने भी उत्कृष्ट वैराग्यभाव से श्रीअयवन्ता ऋषिजी म. के समीप आर्हती दीक्षा अंगीकार कर ली।

गुरुजी की सेवा में रहकर संयमी जीवन के लिए उपयोगी ज्ञान प्राप्त किया और तपश्चर्या की तरफ उन्मुख हो गये। जीवन पर्यन्त एकान्तर तपस्या करने का संकल्प कर लिया। आप निवृत्तिपरायण महात्मा थे। कम से कम उपधि में निर्वाह करने की भावना वाले थे। सिर्फ एक चद्दर और एक ही चोलपट्टा रखते थे। धर्मस्थान में आये हुए गृहस्थों को संसार संबंधी कोई वार्त्तालाप नहीं करने देते थे। प्रायः आत्मचिन्तन और ज्ञानचर्चा में ही अपना समय व्यतीत करते थे।

गुरुवर्य का स्वर्गवास होने के पश्चात् आप मालवा प्रान्त में मुनिश्री नाथाऋषिजी तथा म. डूंगाऋषिजी म. के साथ विचरे। क्षेत्र स्पर्शते हुए आप भोपाल पधारे। आपकी तपश्चर्या का प्रभाव आचार विचार और उच्चतर त्यागभाव देखकर वहाँ की जैन एवं इतर जनता अत्यन्त ही प्रभावित हुई। वहाँ आपने चातुर्मास किया। व्याख्यान में आप श्रीसूत्र कृतांगसूत्र फरमाते थे।

भोपाल निवासी श्रीकेवलचन्दजी कांसटियाँ जो मूर्त्तिपूजक कुल में उत्पन्न हुए थे, भी व्याख्यान सुनने को आये। व्याख्यान सुनकर बहुत प्रभावित हुए। आपके चित्त में जो शंकाएँ उठीं, आपने मुनिश्री के समक्ष प्रकट की। सन्तोषजनक समाधान पाकर आप प्रसन्न हुए। यही केवलचन्दजी आगे चल कर तपस्वी श्री केवलऋषिजी म० के नाम से दीक्षित होकर विख्यात हुए, जिनका परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है।

तपस्वीजी मालवा, वागड़ आदि प्रान्तों मे विचरे। आपने छोटे-छोटे ग्रामों की जनता को धर्म का प्रतिबोध दिया। अजैनों को अनेक कुव्यसनो से बचाया और अनीति के मार्ग से हटा कर नीति के मार्ग पर अग्रसर किया। मालवा प्रान्त में आपका स्वर्गवास हुआ।

उग्रतपस्वी मुनिश्री विजयऋषिजी महाराज

आपने सुव्याख्यानी आगमवेत्ता पं० मुनिश्री अयवन्ता ऋषिजी म० के मुखारविन्द से सं. १६१२ में दीक्षा ग्रहण की थी। गुरु महाराज की सेवा में ही विचरते थे। आप उग्रतपस्वी, सेवाभावी और आत्महित निरत सन्त थे। निरन्तर एकान्तर तपश्चरण करते थे। प्रतिदिन छह वार दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययनो का और २५ वार सूयगडांग सूत्र के छठे अध्ययन पुच्छिस्सुणं का स्वाध्याय करते थे। प्रतिदिन ४०० लोगस्स का ध्यान किया करते थे।

सं. १६२२ मे गुरु महाराज का स्वर्गवास होने पर आपके साथ कुछ वर्षों तक कविकुल भूषण श्रीतिलोक ऋषिजी म० विचरे। कविकुल भूषणजी म० जब २-३ घंटे तक ध्यानस्थ होकर बैठते, उस समय उनके शरीर पर अगर डांस-मच्छर आदि बैठते तो आप यतनापूर्वक शरीर का प्रमार्जन कर देते थे। सेवा कार्य मे आपकी बहुत रुचि रहती थी।

आपके निकट एक सुयोग्य सत्पात्र की दीक्षा हुई। उनका नाम श्री पूनम ऋषिजी म० था। आप मालवा प्रान्त में बहुत विचरे है। जैनधम का खूब प्रचार किया है। अन्तिम समय मे वृद्धावस्था के कारण आप शाजापुर में स्थिरवासी हो गये थे। सं. १६४४ के चातुर्मास मे तपस्वो श्री केवल ऋषिजी म० आपकी सेवा में विराजे थे। आपका स्वर्गवास शाजापुर (मालवा) मे ही हुआ।

प्रिय व्याख्यानी मुनिश्री पूनमऋषिजी महाराज

आप उग्रतपस्वी, ज्ञानी, ध्यानी, सेवाभावी मुनिश्री विजय-ऋषिजी म० के सदुपदेश से प्रतिबोधित होकर उन्हीं की सेवा में उत्कृष्ट भाव से दीक्षित हुए। स्थविर सन्तों की सेवा मे रह कर शास्त्रीयज्ञान उपार्जन किया। संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का अभ्यास करके विद्वान् हुए। आपकी धारणाशक्ति प्रबल थी। स्वभाव सरल और गंभीर था। आपने मालवा प्रान्त के अनेक क्षेत्रों मे विचर कर शुद्ध जैनधर्म का प्रचार किया। अनेक राजा-रईसों आदि को मांसभक्षण मदिरापान तथा कुव्यसनों के सेवन का परित्याग कराया।

सं० १९४२ में आप भोपाल पधारे। वहीं तपस्वी श्रीकेवल-ऋषिजी म० को दीक्षा हुई जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। अपने निकट दीक्षित हुए सुयोग्य शिष्य को आपने स्थविर मुनिश्री खूबाऋषिजी म० की नेश्राय मे शिष्य कर दिया। आपकी यह उदारता सन्त जनो की निस्पृहता के अनुरूप और आदर्श थी।

आप विचरते-विचरते गुरुवर्य श्री विजयऋषिजी म. की सेवामे पधारे। गुरुवर्य शाजापुर म विराजमान थे। वहीं अकस्मात् आपका स्वर्गवास हो गया।

आपश्री में कवित्वशक्ति भी थो। सं० १९३६ में आपने मूर्त्तिपूजा विषयक प्रश्नोत्तर लिखे है। सं० १९४२ में लिखे हुए एक पाने में स्तवन मिले हैं। आप द्वारा रचित सरस, मार्मिक और अध्यात्मिक कुछ सवैया भी उपलब्ध है। कुछ एकाक्षरी सवैया भी लिखे है। खेद है कि आपकी सब रचनाएँ आज तक उपलब्ध नहीं हो सकी हैं।

कविकुल भूषण पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म०

जैनजगत् में रत्नपुरी के नाम से विख्यात रतलाम नगर आपकी जन्मभूमि थी। वि० सं० १६०४ की चैत्र कृ० ३ रविवार, चित्रानक्षत्र मे आपने इस धरातल को पावन किया। आपके पिताश्री दुलीचंदजी सुराणा थे। पुण्यश्लोका श्रीनानू बाई को आपको जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीदुलीचंदजी की चार सन्तान थी– तीन पुत्र और एक पुत्री, जिसका नाम श्रीमती हीराबाई था।

माता श्रीनानूबाई में जन्मजात धार्मिक भावना की प्रबलता थी। आपका अधिक समय सामायिक एवं व्रतोपवास आदि संवर–कार्यों मे ही व्यतीत होता था। सं० १६१४ मे पं० र० श्री अयवन्ता ऋषिजी म० रतलाम पधारे। आपका वैराग्यरस से परिपूर्ण उपदेश सुनकर माता नानूबाई का वैराग्यभाव जागृत हो उठा। माताजी ने दीक्षा लेने का विचार प्रकट किया। माताजी का भाव देखकर उनकी सुकन्या श्रीमती हीराबाई भी साथ ही दीक्षित होने को तैयार हुईं। इस प्रकार माता और बहिन का दीक्षा लेने का विचार देखकर तिलोकचंदजी को भी संसार से उदासीनता हुई। आपने विचार किया–जब माता और बहिन संसार को असार समझ कर आत्म–कल्याण के पथ पर चलने को उद्यत हुई है तो मुझे क्यों पीछे रहना चाहिए? मंगल–कार्य मं पिछड़ जाना बुद्धिमत्ता नहीं।

इस प्रकार श्रीतिलोकचंदजी ने भी दीक्षा लेने का विचार कर लिया। यह बात जब आपके ज्येष्ठ भ्राता श्रीकुंवरमलजी को विदित हुई तो वह भी सोचने लगे कि पवित्र कार्य में बड़े भाई को छोटे भाई से आगे रहना चाहिए। यह सुअवसर फिर न जाने कब मिलेगा? यह सोचकर आप भी दीक्षा ग्रहण करने को तत्पर हो गये।

माघ कृ. प्रतिपद, सं. १६१४ का दिवस इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा, जिसने एक अनूठा उदाहरण हमारे सामने उपस्थित किया। इसी दिन पं० रत्न श्रीअयवन्ता ऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ली। एक ही परिवार के चार मुमुक्षु भव्य जीवों ने इस दुःखमय संसार से विमुख होकर उस पंथ का अवलम्बन लिया, जिस पर बड़े-बड़े महात्मा और ज्ञानी चले हैं। श्रीकुंवर ऋषिजी और श्रीतिलोक ऋषिजी पूज्यपाद अयवन्ता ऋषिजी म० की नेश्राय में शिष्य हुए और श्रीनानू बाई तथा श्री हीरा बाई सती शिरोमणि श्रीदयाजी सरदार जी म० की नेश्राय में शिष्या बनी।

श्रीकुंवर ऋषिजी म० का परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है। श्रीतिलोक ऋषिजी म० ने गुरुवर्य की सेवा में रहकर विनीत भाव से ज्ञानार्जन की ओर लक्ष्य दिया। दीक्षा के समय आप दश वर्ष के सुकोमल बालक ही थे, फिर भी आपकी प्रतिभा विलक्षण थी। प्रथम वर्ष में ही आपने समग्र दशवैकालिक सूत्र कंठस्थ कर लिया। दूसरे वर्ष में ३६ अध्ययनों वाले उत्तराध्ययन सूत्र को याद कर लिया। अठारह वर्ष की उम्र में आपने अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर लिया और अच्छे आगम ज्ञाता बन गये। इसी समय आपके गुरु महाराज का सं. १६२२ में स्वर्गवास हो गया।

गुरुवियोग के पश्चात् सं. १६२२ का चौमासा सुजालपुर में व्यतीत किया। तदनन्तर क्रमशः मन्दसौर, जीवागंज, कोटा, सुजालपुर, रतलाम, साजापुर, घरियावद, मन्दसौर, साजापुर, सुजालपुर, सुजालपुर और रतलाम में चातुर्मास करके विभिन्न स्थानों मे विचरते हुए आप सं. १६३५ मे जावरा पधारे। वहीं चातुर्मास हुआ। वहाँ घोड़नदी निवासी श्रीमान् गम्भीरमलजी लोढ़ा सकुटुम्ब दर्शनार्थ आये। उन्होंने दक्षिण प्रान्त में पधारने

की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना पर लक्ष्य देकर चातुर्मास के अनन्तर आपने ठाणा ३ से दक्षिण प्रान्त की तरफ विहार किया। धार, इन्दौर खंडवा होते हुए बरहानपुर पधारे। वहाँ आसपास के प्रदेश में दिगम्बर सम्प्रदाय के अन्तर्गत तारन स्वामी का एक मत प्रचलित है। वह तारन पंथ कहलाता है। तारन पंथी शास्त्र को मानते और पूजते है। आपश्री ने उपदेश देकर उनमे से बहुतों को साधुमार्गी जैन बनाया।

फैजपुर में महासती श्रीहीराजी म० की सेवा में श्रीभूराजी को दीक्षा देकर आपश्री भुसावल होते हुए सं. १९३५ चैत्र वदि ९ के दिन घोड़नदी पधार गये।

घोड़नदी से आप अहमदनगर पधारे। उस समय अहमदनगर में समाज-विख्यात दृढ़धर्मी श्रीमती रंभाबाई पीतलिया थीं। आपको जिस पूनमचन्दजी नामक व्यक्ति ने पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म० के पधारने की बधाई दी, उसे इन बाईजी ने स्वर्ण का कंकण उतार कर दे दिया।

सं० १९३६ का आपका चातुर्मास घोड़नदी में हुआ। उससे पहले वहीं आषाढ़ शु० ९ के दिन श्रीस्वरूपचदजी और उनके पुत्र रतनचंदजी की आपकी सेवा मे दीक्षा हुई। श्रीचम्पाजी तथा रामकुंवरजी की दीक्षा महासतीजी श्रीहीराजी-की नेश्राय में हुई।

घोड़नदी के बाद क्रमशः अहमदनगर, वाम्बोरी और पुनः घोड़नदी चातुर्मास करके सं० १९४० का चातुर्मास करने के लिए आपश्री अहमदनगर पधारे। आपश्री की कीर्त्ति चारों ओर फैल रही थी। मानो विकराल काल उसे सहन न कर सका। श्रावण कृ० द्वितीया के दिन उसने पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म० को हमसे छीन लिया। आपके स्वर्गवास से जैन समाज को भारी क्षति पहुँची।

जहाँ-जहाँ यह दुस्संवाद पहुँचा, लोग स्तंभित और आहतचित्त हो गये। पूज्यश्री हुकमीचंदजी म० के सम्प्रदाय के तत्कालीन पूज्यश्री उदयसागरजी म० ने रतलाम-श्रीसंघ के समक्ष अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए फरमाया था कि आज जैनसमाज का सूर्य अस्त हो गया!

आपश्री ने संयम ग्रहण करके गंभीर ज्ञानोपार्जन किया। मालवा प्रान्त के छोटे-छोटे क्षेत्रों में भी विचरण किया। मेवाड़ के उदयपुर, सादड़ी भीलवाड़ा आदि क्षेत्रों में तथा मारवाड़ में भी विचर कर धर्म का प्रचार किया। दक्षिण में पधार कर भुसावल, अहमदनगर, घोड़नदी, पूना, जुन्नेर, मंचर तथा सतारा आदि क्षेत्रों तथा आसपास के ग्रामों को अपने चरण-रज से पावन बनाया। दक्षिण प्रान्त पर आपश्री का महान् उपकार है। सर्वप्रथम आपने ही उधर पधार कर शुद्ध स्था० जैनधर्म का प्रचार किया है और अनेक भव्य जीवों का उद्धार किया है। आपश्री के सदुपदेश से अनेकों ने साधुवृत्ति और श्रावकधर्म अंगीकार किया।

आपश्री में विलक्षण कवित्व शक्ति थी। अध्यात्म एवं वैराग्य रस की बड़ी उत्कृष्ट भावमय कृतियाँ आपके असाधारण काव्य कौशल का परिचय कराती हैं। अपनी कवित्वशक्ति से आपने जैनसमाज पर जो महान उपकार किया है, उसे समाज भूल नहीं सकता। इन रचनाओं के कारण प्रतिक्रमण सीखने वाला बच्चा-बच्चा आपके नाम से सुपरिचित है। 'कहत तिलोक रिख' की ध्वनि किसके कर्ण--कुहरों मे नहीं गूंजती? आपने ७० हजार पद्यों की रचना की है।

पूज्यपाद द्वारा प्रणीत काव्यग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं, जो आपके प्रशिष्य पं० र० वर्द्धमान श्रमणसंघ के प्रधानमंत्री श्रीआनन्द-ऋषिजी म० के पास अप्रकाशित रूप में सुरक्षित हैं:—

(१) श्री श्रेणिक चरित		(१४) श्रीतिलोक बावनी तृतीय
(२) श्री चंद्रकेवली ,,		(१५) श्री गजसुकुमाल चरित
(३) श्री समरादित्यकेवली ,,		(१६) श्री अमरकुमार ,,
(४) श्री सीता ,,		(१७) श्री नन्दन मणिहार ,,
(५) श्री हंसकेशव ,,		(१८) वीररसप्रधान श्रीमहावीर,,
(६) धर्मबुद्धि पापबुद्धि ,,		(१९) श्री सुदर्शन ,,
(७) अर्जुन माली ,,		(२०) श्री नन्दिषेण मुनि ,,
(८) धन्नाशालिभद्र ,,		(२१) श्री चन्दनबाला ,,
(९) भृगु पुरोहित ,,		(२२) पांच समिति तीन गुप्ति का अष्ट ढालिया
(१०) श्री हरिवंश काव्य		
(११) पंचवादी काव्य		(२३) श्री महावीर चरित
(१२) श्रीतिलोक बावनी प्रथम		(२४) श्री धर्मजय ,,
(१३) श्रीतिलोक बावनी द्वितीय		(२५) श्री महाबल मलया ,,

इन काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त श्री मरुधर केसरी पंडित मंत्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म० के द्वारा मालूम हुआ है कि पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० विरचित और उनके हस्त लिखित निम्न तीन चरित उनके पास हैं। १ श्री कुम्मो पुत्त चरित २ श्री धम्मिल कुमार चरित और श्री भुवन सुन्दरी चरित। आपकी प्रकीर्णक रचनाएँ बहुत सी हैं। इन ग्रन्थों के अवलोकन से आपश्री की प्रौढ़ प्रतिभा, काव्य कुशलता और अनूठी उड़ान का पता लगता है। आपकी कविता प्रसाद गुण से ओतप्रोत और सीधी अन्तस्तल को स्पर्श करती हुई भावमय बना देती है। कहावत प्रचलित है-'निरंकुशाः कवयः।' मगर आपने काव्य के क्षेत्र में भी निरंकुशता से काम नहीं लिया। कवि की निरंकुशता उसकी विवशता की द्योतक है। अगत्या उसे उच्छृङ्खलता का आश्रय लेना पड़ता है। पूज्यपाद के पास विशाल शब्द भाण्डार था और उसका प्रयोग करने की असाधारण

क्षमता थी। अतएव उन्हें निरंकुशता का आश्रय लेने की कहीं आवश्यकता नहीं पड़ी। किसी भी रचना को लीजिए, छन्द की कसौटी पर खरी उतरेगी और पिंगल के चौखटे में फिट होगी!

आपने ज्ञान-कुंजर और चित्रालंकार काव्य का निर्माण किया है। यह दोनों कृतियाँ बड़ी ही अद्भुत और आह्लाद जनक हैं। दस अध्यमनों के श्रीदशवैकालिक सूत्र को एक ही पत्र में, सुन्दर और सुवाच्य अक्षरो में लिख देना और सिर्फ डेढ़ इंच जितनी जगह में पूरी आनुपूर्वी लिख देना लेखन-कला कौशल की पराकाष्ठा है! आपके द्वारा रचित शीलरथ को देख कर चित्रकला की सीमा भी दृष्टिपथ में आ जाती है। वास्तव में आप जैसे उच्चकोटि के महात्मा थे, वैसे ही उच्चकोटि के कलाकार भी थे। मगर आपकी कला का लक्ष्य धर्म था। 'सव्वा कला धम्मकला जिणेइ' अर्थात् धर्म कला सभी कलाओं से श्रेष्ठ है यही विश्वास आपकी कला का मूल स्रोत था। यही कारण है कि आपकी कला की चरम परिणति धर्म में ही हुई है।

आपके जीवन में चारित्र शुद्धि, वाग्मिता, शान्तता, समय-सूचकता, निस्पृहता और विद्वत्ता आदि गुण विशेष रूप से विकसित हुए थे, जो मुमुक्षु जनों के लिए विशेष रूप से अनुकरणीय हैं।

आपश्री ने १७ शास्त्र कण्ठस्थ किये थे। ध्यान योग की अभिरुचि इतनी प्रबल थी कि कायोत्सर्ग मे सम्पूर्ण उत्तराध्ययनसूत्र का स्वाध्याय करते थे। जब और जहाँ भी अवकाश मिलता, आप काव्य की रचना करने में तत्पर हो जाते थे। आपके बनाये काव्यों के अन्त में अनेक ग्रामों का उल्लेख मिलता है।

सिर्फ ३६ वर्ष की उम्र में ही सं. १६४० श्रावण कृ० २ रविवार के दिन अहमदनगर में समाधि पूर्वक आप दिवंगत हो

गए। इस स्वल्प काल में आपने जो कार्य किया है, उस पर सरसरी निगाह डालने से भी विस्मय हुए बिना नहीं रहता। साधारण शक्ति वाला व्यक्ति हर्गिज इतना विराट कार्य इतने समय में नहीं कर सकता और विशेषतया जैन मुनि के आचार-विचार का पालन करता हुआ! निस्सन्देह कविकुल भूषण महाराज मे आश्चर्यजनक असाधारण क्षमता थी और वह योगजनित शक्ति ही हो सकती है।

आपश्री का जीवन चरित पृथक् प्रकाशित हो चुका है। विशेष जिज्ञासुओ को उसका अवलोकन करना चाहिए। ऐसे महापुरुषों से जैनसंघ गौरवान्वित है!

मुनिश्री भवानीऋषिजी महाराज

आपने कविरत्न पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म० की सेवा में, सं० १९३३ की मार्गशीर्ष कृष्णा १० के दिन रतलाम (मालवा) में दीक्षा ग्रहण की। सं. १९३४ और ३५ का चौमासा गुरुवर्य के साथ किया। साथ ही दक्षिण में गये। परन्तु अपनी प्रकृति के कारण गुरु म० के साथ न रह सके और स्वच्छंद भाव से पृथक् हो गए।

मुनिश्री प्याराऋषिजी महाराज

आप मालवा प्रान्त के निवासी थे। चैत्र शु० १२ सं. १९३४ के दिन मम्मट खेड़ा गांव मे पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म० के मुखारबिन्द से दीक्षित हुए। छह महीने बाद बड़ी दीक्षा हुई। अत्यन्त भद्रहृदय और सरल स्वभाव के सन्त थे। सेवाभावी होते हुए भी आपने अवस्थानुसार ज्ञान प्राप्त किया था। दक्षिण मे भी आप गुरुवर्य के साथ पधारे थे और तन-मन से गुरुसेवा मे निरत रहते थे।

सं. १९४० में पूज्यपाद महाराज का स्वर्गवास होने पर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् अपने लघु गुरुबन्धु श्रीरत्नऋषिजी म. को शिक्षण प्रीत्यर्थ साथ में लेकर मालवा में लौटे। आखिर अपने सम्प्रदायी सन्तों के साथ स्थविरवासी हुए। मालवा में ही आपका स्वर्गवास हुआ।

मुनिश्री कंचनऋषिजी महाराज

पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म० पूना को पुनीत कर सेल-पिंपल गांव पधारे तो वहीं सं. १९३९ की वसन्त पंचमी के दिन आपकी दीक्षा समाप्त हुई। सं. १९४० के अहमदनगर-चातुर्मास के पश्चात् आप भी मुनिश्री प्याराऋषिजी म० एवं श्रीरत्नऋषिजी म० के साथ मालवा मे पधार गये। कुछ काल साथ रहकर आपने श्रीप्याराऋषिजी म० के साथ पृथक् विहार किया और मालवा में ही आपका भी स्वर्गवास हुआ।

मुनिश्री स्वरूपऋषिजी महाराज

आप बोता (मारवाड़) के मूल निवासी थे परन्तु व्यापार के निमित्त अहमदनगर जिला के मानक दौंडी ग्राम में रहने लगे थे। आपकी धर्मपत्नी का वियोग हो गया। सिर्फ एक पुत्ररत्न था, जो वास्तव में ही रत्न था। उसने मराठी की चौथी कक्षा तक अभ्यास कर लिया था। परिवार में पिता-पुत्र-बस दो ही प्राणी थे।

आपके हृदय में धर्म के प्रति गहरी लगन थी,। छोटे-से गाँव में धर्म के साधनों को कमी आपको खटकती थी। न धर्म की चर्चा सुनने को मिलती, न सन्त-समागम का लाभ! आपने सोचा-ऐसे ग्राम में रहना और जंगल में रहना एक-सा ही है, जहाँ आत्मा को कुछ भी खुराक न मिलती हो। अतएव किसी ऐसे स्थान पर

रहना चाहिए, जहाँ धर्म का लाभ मिले और सन्तों के समागम से आत्मा को खुराक मिले।

आप इस प्रकार की विचार-तरंगों में बह ही रहे थे कि आपको पूज्यचरण श्रीतिलोकऋषिजी म० के घोड़नदी पहुँचने के समाचार मिले। इससे आपको बड़ा हर्ष हुआ। अपने पुत्र के साथ आप घोड़नदी (पूना) आ गये। घोड़नदी में जैनसमाज बहुसंख्या में है और धर्मश्रद्धा भी अच्छी है। वहीं अपना निवासस्थान बना कर आप धर्म-कार्य में समय बिताने लगे।

पूज्यचरण सं० १९३५ में घोड़नदी पधारे। आपके पदार्पण का समाचार विद्युत्-वेग की भाँति शीघ्र ही आसपास के ग्रामों में फैल गया। आपके पदार्पण से पहले ही आपकी सत्कीर्त्ति उधर पहुँच चुकी थी और फैल भी चुकी थी। अतएव जब आप पधारे तो आसपास की जनता आपकी उपासना के लिए आने लगी। आप जिनवाणी का अमृत पिलाने लगे। लोग सतृष्ण भाव से उस लोकोत्तर अमृत का पान करने लगे।

जिन श्रीमान् गंभीरमलजी लोढ़ा की प्रार्थना स्वीकार करके पूज्यपाद घोड़नदी में पधारे थे, उनकी पत्नी और पुत्री पर धर्मोपदेश का गंभीर प्रभाव पड़ा। दोनों विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण करने को तैयार हो गईं। दीक्षा निश्चित हो गई।

माता-पुत्री की दीक्षा का प्रसंग सन्निकट देखकर श्रीस्वरूपचंदजी की भावना भी जागृत हुई। हृदय ने कहा-माता-पुत्री की दीक्षा के साथ पिता-पुत्र की दीक्षा का योग कितना सुन्दर रहेगा! ऐसा सुअवसर बार-बार कहाँ मिलता है ? ऐसे महापुरुषों की चरणसेवा का अमूल्य लाभ जीवन मे प्राप्त हो सके तो जीवन धन्य हो जाय! आखिर आपने पूज्यपादजी म० के समक्ष अपनी भावना

व्यक्त कर दी। यह संवाद आपके संबंधी जनों को विदित हुआ तो उन्होंने अनेक प्रलोभन दिये और अनूठे-अनूठे उपाय भी किये; परन्तु आपने सभी को यही उत्तर दिया कि मैंने गृहस्थावस्था का अनुभव कर लिया है अब मेरे मन ने दीक्षा लेना ही निश्चित किया है।

आषाढ़ शु० नवमी, सं० १६३६ को पिता-पुत्र ने समारोह के साथ दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम श्रीस्वरूपऋषिजी म० और पुत्र का नाम श्रीरत्नऋषिजी म० रक्खा गया।

लगभग चार वर्ष तक गुरुदेव की छत्र-छाया आपके मस्तक पर रही। मगर जैसा कि पाठक पढ़ चुके हैं, गुरुदेव श्रीतिलोकऋषिजी म० सं० १६४० में स्वर्गवासी हो गए। इस आकस्मिक दुर्घटना से आप वज्राहत से हो गए। आपके बहुत-से संकल्प छिन्नभिन्न हो गए। मगर आप अनुभवी और दीर्घदर्शी थे। संसार के अनित्य स्वरूप को समझते थे, अतएव आप नवीन परिस्थिति में अपने कर्त्तव्य का निर्धारण करने लगे। कठिनाई यह थी कि आप वृद्ध थे, मालवा तक विहार करने में समर्थ नहीं थे। उस समय दक्षिण में दूसरे कोई विद्वान् सन्त नहीं थे। बालमुनि रत्नऋषिजी बड़े होनहार थे और गुरुदेव की तथा सम्प्रदाय की कीर्त्ति में चार चांद लगाने वाले प्रतीत होते थे। अब श्रीरत्नऋषिजी म० के भविष्य का निर्माण करे तो कौन करे ?

आपने महासतीजी श्रीहीराजी म० के सामने सारी समस्या रक्खी। महासतीजी ने आपकी इस विकट परिस्थिति का अनुभव करके फर्माया—'आप श्रीरत्नऋषिजी म० की चिन्ता न करें। मुझे उनकी चिन्ता नहीं, क्योंकि अब भी सम्प्रदाय में एक से एक बढ़कर ज्ञान-चारित्र के धनी सन्त हैं। उनका सहयोग इन्हें मिल जायगा।

हाँ, आपकी वृद्धावस्था की चिन्ता अवश्य है। इसके पश्चात् महासतीजी ने आगे कहा—'श्रीचम्पाजी महासतीजी पैर के कारण मालवा नहीं पधार सकतीं। अन्य सतियाँ भी उनकी सेवा में रहने वाली हैं। ऐसी स्थिति में आप यहाँ अकेले भी रह जाएँ तो कोई हानि नहीं। प्याराऋषिजी म० और कंचनऋषिजी म० आप की सेवा में रह जाएँ तो भी विशेष सहायक नहीं हो सकते।'

आखिर यही निश्चय हुआ। मुनिश्री रत्नऋषिजी म० से पूछा गया तो आपने फर्माया—जैसी आपकी आज्ञा हो। साधु-जीवन का धन रत्नत्रय ही है। उसे उपार्जन करने के लिए मालवा जाने को तैयार हूँ। आप मेरे लिए चिन्ता न करें।

महासतीजी श्रीहीराजी ने कहा—गुरुदेव श्रीतिलोक ऋषिजी म० के शुभ नाम को चिरस्थायी रखने का सामर्थ्य मैं इन्हीं में देखती हूँ। ऐसे सुपात्र मुनि को यथाशक्य सहयोग देना मैं अपना कर्त्तव्य समझती हूँ। मैंने स्वयं इसी उद्देश्य से मालवा में जाने का विचार किया है। आप विश्वास रक्खें, मुनिश्री का भविष्य उज्ज्वल बनाने में कुछ भी कसर नहीं रहेगी।

चातुर्मास पूर्ण होने पर मुनिश्री प्याराऋषिजी म०, श्रीकंचन ऋषिजी म० और श्रीरत्नऋषिजी म० ने अहमदनगर से विहार किया। श्रीस्वरूप ऋषिजी म० वहीं रह गये। वृद्धावस्था होने पर भी, अपने कष्टों की तनिक भी परवाह न करके एक संयमी आत्मा की उन्नति में इस प्रकार योग देना कोई साधारण बात नहीं है।

उधर महासतीजी ने भी मालवा की तरफ विहार कर दिया और मार्ग में यथायोग सहयोग देकर मुनिश्री को रतलाम में पहुँचा दिया।

मुनिश्री स्वरूप ऋषिजी म० दक्षिण में अकेले ही विराजे और महासतीजी म० के सहयोग से संयमी जीवन का पालन करते हुए स्वर्गवासी हुए।

पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीरत्न ऋषिजी महाराज

मुनिश्री स्वरूप ऋषिजी म० के परिचय के अन्तर्गत आपका प्रारंभिक परिचय आ चुका है। आपश्री की माताजी का नाम श्री धापूबाई था। उन्हीं की रत्न कुक्षि से सं. १९२४ में आपका जन्म हुआ। बाल्यावस्था में ही आपकी शरीर सम्पदा असाधारण थी। रमणीय सुन्दर कान्ति युक्त अनेक प्रशस्त लक्षणों से सम्पन्न और तेजस्वी शरीर देख कर ही जाना जा सकता कि यह कोई साधारण विभूति नहीं है, महान् आत्मा है और विशिष्ट पुण्य की पूंजी लेकर इस भूतल पर अवतरित हुई है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, सं. १९३६ मे पिताजी के साथ ही आप १२ वर्ष की उम्र में दीक्षित हो गये।

सं. १९४० में गुरुवर्य का वियोग होने पर आप रतलाम पधारे। वहाँ श्री वृद्धिचंदजी गादिया ने आपश्री के पास दीक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् ठाणे २ को वहां रख कर आप दोनों सुजालपुर में विराजमान स्थविर मुनिश्री खूबाऋषिजी म० की सेवा में पहुँचे। आपने शास्त्राभ्यास प्रारंभ कर दिया। शास्त्राभ्यास करने से आपकी व्याख्यान शैली सुन्दर हो गई।

तपस्वी श्री केवल ऋषिजी म० आदि सन्तों को साथ लेकर आपने मालवा के अनेक क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए इच्छावर में पदार्पण किया। वहीं श्रीकेवल ऋषिजी म० के संसार पक्ष के सुपुत्र श्री अमोलकचंदजी की दीक्षा सम्पन्न-हुई। पुनः श्री खूबाऋषिजी म० का दर्शन करके आपने रिंगनोद में ठा. २ से प्रथम स्वतंत्र-चौमासा

किया। तत्पश्चात् क्रमशः ताल, प्रतापगढ़ और मन्दसौर में चातुर्मास करके नीमच पधारे। वहाँ पर पूज्यश्री हुकमीचंदजी म० के सम्प्रदाय के वादिमान मर्दक श्रीनन्दलालजी म० विराजमान थे। आपश्री का शास्त्रीय व्याख्यान सुन कर उन्होंने सन्तोष और हर्ष व्यक्त किया। जावद में श्रीप्रतापमलजी म० के साथ समागम हुआ और प्रेममय वार्त्तालाप हुआ। भीलवाड़े में तपस्वी श्री वेणीरामजी म० का मिलाप हुआ। तपस्वीजी के आग्रह को मान्य करके कुछ दिनों तक वहाँ विराजे। कानौड़ में श्रीइन्द्रमलजी म० तथा पूज्यश्री श्रीलालजी म० विराजमान थे। उन सन्तो के साथ तत्त्व चर्चा हुई। तत्पश्चात् आप सादड़ी पधारे और वहीं चातुर्मास हुआ। आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर मन्दिरमार्गी श्री स्वरूपचंदजी ने साधुमार्गी धर्म स्वीकार किया।

अगला चातुर्मास प्रतापगढ़ में हुआ। तत्पश्चात् आप धरियावद पधारे। आपश्री का सदुपदेश सुनने के लिए कई बार रावजी साहब पधारे। रानीजी की प्रबल उत्कंठा के कारण राजमहल में भी आपका व्याख्यान हुआ। चातुर्मास भी यहीं हुआ।

चातुर्मास के अनन्तर मुनिश्री अमोलक ऋषिजी म० के आग्रह से आपने गुजरात की तरफ विहार किया। अनेक परीषहों को सहन करते हुए बोरसद (गुजरात) पधारे। वहाँ दरियापुरी सम्प्रदाय के बहुश्रुत स्थविर श्रीपुरुषोत्तमजी म० विराजमान थे। उनके साथ ज्ञान चर्चा का लाभ मिला। तारामण्डल संबंधी ज्ञान भी आपश्री ने प्राप्त किया। खंभात पहुँचने पर साणंद से विहार करके मुनिश्री छगनलालजी म. आपसे मिलने के लिए पधारे। अहमदाबाद में श्रीउत्तमचंदजी म० का समागम हुआ। सभी सन्तों के समागम के समय अच्छा प्रेम भाव रहा।

गुजरात के क्षेत्रों में विचरते हुए आप उग्र विहार करके नाशिक और मनमाड़ पधार गये। समीप ही कसूर ग्राम में गुरु भगिनी महासती श्रीनंदूजी म० विराजित थीं। आपके सुयोग से उनकी सेवा में तीन दीक्षाएँ हुई। इसी अवसर पर घोड़नदी के श्रावकों ने आपसे चौमासे की प्रार्थना की।

मनमाड से अहमदनगर पधारे। वहाँ सतीशिरोमणि श्री रामकुंवरजी म० विराजमान थीं। मगर जब आपने नगर में प्रवेश किया तो न किसी श्रावक ने सत्कार किया, न वन्दना की, न कोई सामने आया। कारण यह था कि उस समय दो धूर्त बनावटी वेष में आप दोनों संतों के नाम से ठगाई कर रहे थे। घोड़नदी-निवासी छोटमलजी बोथरा ने आपको पहचाना और लोगों को असलियत बतलाई। तब श्रावकों, श्राविकाओं और सतियों ने वन्दना की और अपने अविनय के लिए क्षमायाचना की।

सं. १९५५ में श्री सुलतान ऋषिजी म० की दीक्षा कड़ा (अहमदनगर) में हुई। सं. १९५६में अहमदनगर में चौमासा हुआ। इसी साल में श्रीदगडू ऋषिजी म० की दीक्षा वडोला (अहमद नगर) में हुई। चातुर्मास करमाला में हुआ। श्रीदगडू ऋषिजी बाद में प्रकृतिवश एकल विहारी हो गए। सं. ६१-६२-६३- का चातुर्मास क्रमशः आवलकुटी, पारनेर और पूना में व्यतीत किया। पूना चातुर्मासानंतर पहाडी प्रदेश में आए हुए भोवरी, बोपगाव, गराडा, सासवड सिसर्वा आदि क्षेत्रों में विचरे। आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर गराडा निवासी श्रीमान् दानवीर सेठजी नवल-मलजी खोवराजजी पारख ने सुकृत खाते एक मुश्त बीस हजार रुपये निकाले थे। वह रकम स्थायी रख कर उसके ब्याज में अनेक संत सतियों का उच्च शिक्षण होकर वर्त्तमान में पाथर्डी, चिंचवड़, कडा आदि जैन पाठशालाओं को वार्षिक सहायता प्राप्त हो

रही है। सं. ६४ का चातुर्मास राहु (पूना) में था। यहाँ यात्रा मे बहुत-से मूक प्राणियों का वध किया जाता था। आपके सदुपदेश से सैकड़ों जीवो को अभयदान मिला। इसके पश्चात् आप अनेक क्षेत्रों में विचरते रहे। सं. १९६५ में घोड़नदी में. ६६ में चिंचोड़ी पटेल, ६७ में मिरजगांव, ६८ में भानस हिवड़ा और ६९ में मीरी में चातुर्मास किया। यहीं आपको एक सुशिष्य की प्राप्ति हुई, जो आगे चलकर सम्प्रदाय के आचार्य हुए, फिर पाँच सम्प्रदायों के प्रधानाचार्य हुए और फिर श्रीवर्द्धमान श्रमण संघ के प्रधानमंत्री पद पर विराजमान हुए। वह हैं पं० रत्न श्रीआनन्दऋषिजी म०।

सं० १९७०-७१-७२-७३ का चौमासा क्रमशः खरवंडी, मनमाड़, लासलगाँव, वाघली में सानन्द पूर्ण करके ७४ का चातुर्मास करने के लिए घोड़नदी पधारे, किन्तु वहाँ प्लेग का जोर होने से यह चौमासा म्हसा गाँव में हुआ। यहाँ एक दिन एक भुंजग और दूसरे दिन एक हरिण का बचा महाराजश्री के समीप आया और थोड़ी देर मे अचानक अदृश्य हो गया। जनता यह विस्मयजनक घटनाएँ देखकर चकित रह गई।

सं० १९७५ का चातुर्मास बेलवंडी में किया। यहाँ से आपश्रीजी ने पूना की ओर विहार किया। पूना में मुनिश्री आनन्दऋषिजी म० के अध्ययन के लिए बनारस से पं० राजधारीजी त्रिपाठी बुलाये गये थे। पण्डितजी के आने पर मुनिश्री का संस्कृत अध्ययन व्यवस्थित रीति से चलने लगा।

सं. ७६ का चातुर्मास आवलकुटी करके आपश्री अहमदनगर पधारे। वहाँ पं० र० मुनिश्री आनन्दऋषिजी म० ने व्याख्यान फरमाना आरंभ किया। महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० का संदेश पाकर आप बाम्बोरी पधारे। वहाँ बड़े श्रीसुन्दरजी (प्रधानजी)

महासतीजी ने अनशन व्रत अंगीकार किया था। आपश्री के दर्शन करके सतीजी को बहुत सन्तोष मिला।

सं० ७७ का चौमासा अहमदनगर में हुआ। विहार करते हुए और धर्मजिज्ञासु जनता को ज्ञानामृत का पान कराते हुए पाथर्डी पधारे। इस प्रदेश में अन्धश्रद्धा, अशिक्षा और जैन बालको की बेकारी की ओर आपका ध्यान आकृष्ट हुआ। उसके प्रतीकार के लिए आपश्री ने जैनज्ञान-फंड की स्थापना के लिए लोगों का चित्त आकर्षित किया। ता० २१-२-२१ को स्थानीय तथा बाहर से आये हुए जनसमूह के समक्ष जैनज्ञानफंड की स्थापना हुई। ढाई वर्ष के पश्चात् सं० १९८० में श्रीतिलोक जैन पाठशाला प्रारंभ की गई, जो आजकल हाईस्कूल के रूप में श्रीतिलोक जैन विद्यालय के नाम से चल रही है। इस संस्था से समाज के असमर्थ अनेक छात्र व्याव--हारिक और धार्मिक शिक्षा लेकर निकले हैं।

सं. १९७८ का चौमासा पाथर्डी में हुआ। आपने विचार किया कि अधिकांश गृहस्थ दिन-रात अर्थार्जन में संलग्न रहते हैं, इसके लिए नीति-अनीति की भी चिन्ता नहीं करते और आर्त्तध्यान में ही अपना अधिक समय व्यतीत करते हैं। अर्थोपार्जन के निमित्त ही बहुत से पाप हो रहे हैं। जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक अन्न-वस्त्र तो अल्प व्यय से भी सुलभ हो सकते हैं; परन्तु लौकिक रीति-रिवाजों के लिए बहुत व्यय करना पड़ता है। अगर इनमें सादगी आ जाय तो व्यय कम हो। व्यय कम हो तो लोग आय के लिए किये जाने वाले पापों से एक सीमा तक बच सकते हैं। और धर्मकृत्य की ओर अधिक झुक सकते हैं। इस प्रकार विचार करके आपने इस चातुर्मास में जनता को कुरू-ढ़ियों के परित्याग का और समर्थ लोगों को विवाह आदि के अव-सर पर ज्ञानप्रचार के कार्यों में दान देने का उपदेश दिया। चौमासे

के बाद आपने आजू बाजू के अनेक क्षेत्रों को स्पर्शते हुए निजाम रियासत मे विहार किया। वहाँ से बीड़ पधारे। यहाँ आर्यसमाजी लोग एक स्नातक को साथ लेकर शास्त्रार्थ के लिए आये। स्नातकजी शास्त्रार्थ में बुरी तरह पराजित होकर गये। उसी दिन से वहाँ के काजीजी आपके पक्के अनुयायी बन गये।

बीड़ से आप नान्दूर पधारे। वहाँ के दो प्रमुख श्रावकों में करीब ३०-३२ वर्षों से विरोध चला आ रहा था। हजारों रुपये स्वाहा हो चुके थे। आपश्री के सदुपदेश से विरोध शान्त हो गया। 'अहिंसा-प्रतिष्ठायां वैरत्यागः' की सूक्ति प्रत्यक्ष सत्य सिद्ध हुई। स्थानीय श्रीभीकचन्दजी चुनीलालजी कोटेचा आदि नांदूर श्रीसंघ के द्वारा ज्येष्ठ शु. २ के दिन बड़े समारोह के साथ वैरागी श्रीउत्तम चन्दजी की दीक्षा सम्पन्न हुई।

सं. १९७९ का चातुर्मास श्रीमान् फतेचन्दजी लोढ़ा की प्रार्थना से कलम (निजाम स्टेट) में हुआ।

सं० १९८० का वर्षाकाल अहमदनगर में व्यतीत किया। वहाँ श्रीजीतमलजी म० ठा० ३ तथा तपस्विनी श्रीनन्दूजी म० तथा सती शिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० आदि ठाणे २० सब सन्त-सतियाँ ठाणा २७ से विराजते थे।

आपश्री की सूचना पाकर शास्त्रोद्धारक पं. मुनिश्री अमोलक ऋषिजी म० बैंगलोर से विहार करके करमाला पधारे। आपश्री भी अहमदनगर से वहाँ पधार गये। सं० ८१ का ठाणा ६ का चौमासा करमाला में हुआ। राजा बहादुर दानवीर सेठ ज्वाला-प्रसादजी हैदराबाद से दर्शनार्थ आये। आपने २२०९) रु० का दान पाथर्डी पाठशाला के लिए एक मुश्त दिया और अच्छा उदाहरण रक्खा।

चातुर्मास के बाद विहार करके आप कुकाना पधारे। उस समय शास्त्रोद्धारक पं. श्रीअमोलक ऋषिजी म० ठाणे ४, पं० मुनि श्रीअमीऋषिजी म० ठाणे ४ तथा तपस्वी श्रीदेवजी ऋषिजी म० ठाणे ४ और आपश्री ठाणे ३ आदि प्रमुख सन्त, महासतीजी श्री रामकुंवरजी म० तपस्विनीजी श्रीनन्दूजी म० पं. श्रीराजकुंवरजी म० आदि करीब ४० महासतियाँ ऋषि-सम्प्रदायी सम्मेलन के लिए अहमदनगर पधारे। सम्मेलन हुआ और पण्डितवर्य श्रीअमी-ऋषिजी म० को पूज्य पदवी देने का विचार हुआ; परन्तु समय परिपक्व नहीं हुआ था, अतएव वह शुभ विचार क्रियान्वित न हो सका।

सं० १९८२ का चातुर्मास चाँदा (अहमदनगर) में हुआ। चातुर्मास के पश्चात् आप अमलनेर (खानदेश) पधारे। वहाँ के श्रीप्रेमजी भाई पटेल आपके अनन्य भक्त बने। उन्होने यावज्जीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। वही पटेल साहेब आगे चलकर सं० १९९० में पं. रत्न श्रीआनन्द ऋषिजी म० के समीप बोदवड़ में दीक्षित हुए।

सं. १९८३ का चातुर्मास तपोधन श्री देवजी ऋषिजी म० के साथ भुसावल में हुआ। चातुर्मास के अनन्तर बरार की ओर विहार हुआ। बोदवड, मलकापुर खामगांव, आकोला मूर्त्तिजापुर बडनेरा, अमरावती, धामनगाव, रालेगांव आदि क्षेत्रो में साम्प्रदायिक भेदभाव--जनित झगड़ों को शान्त करते हुए और ज्ञानामृत की अविरल वर्षा करते हुए हींगनघाट की ओर पधारे। कानगांव में पहले रोज साधारण बुखार आया था दूसरे रोज ३ कोसका विहार कर अलीपुर नासक ग्राम में महाराजश्री के शरीर में यकायक दाह-ज्वर उत्पन्न हो गया। वहीं एक मन्दिर में सागारी संथारा लेकर समाधिपूर्वक, समभाव में रमण करते हुए, प्राणी मात्र से क्षमापणा

करके सं० १९८४ की ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी, सोमवार के दिन, मध्याह्न में जैनजगत् का रत्न सदा के लिए इस धराधाम से उठकर स्वर्गलोक को विभूषित करने के लिए चल दिया।

आपश्री के अतिशय तथा पुण्य प्रताप से उस अपरिचित क्षेत्र मे भी सब जातियों और सब धर्मों के लोगों ने मिल कर ठाठ के साथ अन्तिम संस्कार किया। हिंगणघाट श्रीसंघ का उस कार्य में पूर्ण सहयोग था।

आपश्री के शुभाशीर्वाद से आपके दोनों शिष्य पंडित रत्न श्रीआनंद ऋषिजी म० तथा महात्मा श्रीउत्तम ऋषिजी म० ज्ञान और चारित्र की आराधना करते हुए आपके यश का मनोरम सौरभ चहुँ ओर फैला रहे है और जैनसंघ का परम उपकार कर रहे हैं।

आपश्री ने अपनी दीर्घदृष्टि से अनुभव किया कि प्रत्येक का जीवन एक और अखण्ड है। उसके उत्थान का कार्य सर्वतोमुखी होना चाहिए। व्यावहारिक जीवन मे शुचिता आये बिना धार्मिक जीवन का उत्थान नहीं हो सकता। इस विचार के कारण आपने श्रावको के सामाजिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक उत्थान के लिए एक साथ उपदेश दिया। उत्थान का मूल ज्ञान है, यह सोच कर ज्ञान प्रचार के लिए भरसक अपनी मर्यादा के अनुसार प्रयास किया। और फल स्वरूप चिचोंडी पटेल, मिरजगाव, मांडवगण, पिंपलगांव पिसा, घोडनदी, खुंटेफल आदि गांवों में जैन धार्मिक पाठशालाएँ खोली गईं। कई बार ऐसा हुआ कि आपकी उपस्थिति में पाठशाला स्थापित हुई और कुछ काल तक चल कर विहार किया तो पाठ-शाला का भी विहार हो गया! किन्तु आपने इसकी परवाह नहीं की और अपने ध्येय की ओर अग्रसर ही होते चले गये। आखिर मे पाथर्डी पाठशाला की नींव सुदृढ़ हुई। इस दृष्टि से आपने एक

नवीन युग की प्रतिष्ठा की। अनेक सन्तों और सतियों को ज्ञान का दान दिया, विद्यार्थियों के लिए ज्ञान के साधन प्रस्तुत करने का उपदेश दिया और अपना नाम जैन इतिहास में अमर कर गये। पाठक गण विशेष जानकारी आपश्री के प्रकाशित जीवन चरित्र से प्राप्त कर सकते हैं।

मुनिश्री वृद्धिऋषिजी महाराज

गादियागोत्रोत्पन्न ओसवाल जाति के रत्न थे। रतलाम में आपका जन्म हुआ। जन्मनाम श्रीवृद्धिचंदजी। धर्मपत्नी श्रीमती माणक बाई। पति और पत्नी दोनों को धर्म के प्रति प्रीति उत्पन्न हो गई थी।

अनेक सन्तों का समागम करके आपने शास्त्रीय ज्ञान तथा बोलथोकड़ों का अच्छा अभ्यास कर लिया था। जिस समय मुनिश्री रत्नऋषिजी म० दक्षिण से रतलाम पधारे, उस समय आप संसार की असारता और अशाश्वतता का अनुभव करके उदासीन वृत्ति से जीवन व्यतीत कर रहे थे। आपकी भावना थी कि किसी अच्छे सन्त का सुयोग मिले तो हम दम्पती साथ-साथ दीक्षा ग्रहण करके अपने जीवन को सफल करें।

यह बात महासती शिरोमणि श्रीहीराजी म० के कानों तक जा पहुँची। उन्होंने श्रीवृद्धिचंदजी से पूछा-सुना है, आपका विचार दीक्षा लेने का है। क्या यह सत्य है?

श्रीवृद्धिचन्द्रजी बोले-महाराज, बात सत्य है। हम दोनों तैयार हैं। फरमाइए किसके पास दीक्षा लेनी चाहिए?

महासतीजी ने श्रीरत्नऋषिजी म० का नाम बतलाया और कहा- इससे दोनों को संयम-पालन में सहयोग मिलेगा।

महासतीजी के परामर्श को शिरोधार्य करके आपने सं० १६-४१ के चैत्रमास मे रतलाम मे ही दीक्षा धारण की और श्रीरत्न-ऋषिजी म० की नेश्राय में शिष्य हुए। आपकी धर्मपत्नी श्रीमाणक बाई महासती श्रीहीराजी म० की शिष्या हुईं। उस समय श्रीवृद्धि-चंदजी की उम्र सिर्फ ३० साल की थी। आप अपनी सम्पत्ति भाई को देकर दीक्षित हुए।

शास्त्रीय ज्ञान होने के कारण संयमी जीवन के उच्च आचार-विचार एवं क्रियानुष्ठान के प्रति आपकी विशेष अभिरुचि थी। थोकड़े करीब ४० कंठस्थ थे। मुनिश्रीरत्नऋषिजी म० को सुयोग्य शिष्य की प्राप्ति हो जाने से आपने ठा० २ से रतलाम से विहार किया। स्थविर मुनिश्री खूबाऋषिजी म० की सेवा में सुजालपुर पधारे। स्थविर म० से शास्त्रीय-ज्ञान प्राप्त करके और उनकी आज्ञा से कुछ समय तक अपने गुरुवर्य के साथ चौमासे किये। बाद में श्रीडूंगाऋषिजी म० के साथ भोपाल पधारे। सं० १६४६ के चातुर्मास के पश्चात् ऋषि-सम्प्रदायी सन्त साजापुर पधारे। उस अवसर पर आप भी उपस्थित थे। रतलाम मे पूज्यश्री उदयसागरजी म० की सेवा मे कुछ दिन विराजे। सं० ४७ का चौमासा रिंगनोद में किया। तत्पश्चात् अनेक क्षेत्रों में विचरते और धर्म की जागृति करते रहे। सं० १६५४ में आपको शिष्यरत्न की प्राप्ति हुई जो उग्रतपस्वी वेलजीऋषिजी म० के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपका स्वर्गवास अचानक ही हुआ। पिपलोदा-चातुर्मास के लिए पधार रहे थे। मार्ग में शरीर मे व्याधि उठी। कायोत्सर्ग कर रहे थे और कायोत्सर्ग मे ही आयु निश्शेष हो गई। आपने संयम लेकर अपना जीवन धन्य बनाया और संघ का महान् उपकार किया।

छाछ लेते और फिर क्रमशः दत्तियों की संख्या घटाते-घटाते एक दत्ति पर आ जाते थे। दिन में एक बार ही छाछ लेते, दूसरी बार नहीं।

आप जहाँ भी ठहरते, किवाड़ बंद नहीं करने देते थे तपस्वी-राज का दरबार दिन-रात खुला रहता था। गोचरी जाते समय किसी को साथ नहीं लेते थे। इतनी उग्र तपस्या करते हुए भी आपके चित्त में लेश मात्र भी अहंकार नहीं था। बड़े ही शान्तस्वभावी थे। आपके समान वृत्ति वाला कोई दूसरा सन्त नहीं था, अतएव आपके साथ किसी का निभाव नहीं हो सकता था। इसी कारण आप निर्भय सिंह के समान तपश्चर्या मे उत्कृष्ट पराक्रम करते हुए एकाकी विचरते थे।

अन्यसम्प्रदायी सन्तों ने आपको प्रशंसा और प्रतिष्ठा बढ़ाने के प्रलोभन दिये और अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित करने के प्रयास किये; परन्तु वह तो उन सन्तों मे से थे, जिनके लिए निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान, सब बराबर होते हैं। 'समो निंदापसंसासु' यह सूत्र उनके जीवन में स्वतः ओतप्रोत हो गया था। इन क्षुद्रताओं से उनकी आत्मा ऊँची उठ चुकी थो। वे विकारविजयी योगी थे।

उपधि अल्प से अल्प रखते थे-तीन पात्र, एक चादर, एक गाती और दो चोलपट्ट। बस, इन्हीं वस्त्रों के सहारे वे पौप-माघ की घोर शीतमयी रजनियाँ पार करते थे।

आपश्री का शिक्षण अधिक नहीं हुआ था, पर शिक्षण का फल आपने बहुत अधिक पाया था। आपश्री के मुखारविन्द से श्रीवीरस्तुति 'पुच्छिस्सु णं' प्रातःकाल मे सुनकर श्रावक-श्राविकावर्ग भाव विभोर हो जाते और अपना सौभाग्य समझते थे।

उग्रतपस्वी श्रीवेलजी ऋषिजी महाराज

कच्छ प्रान्तीय देसलपुर निवासी श्रीमान् देवराजजी आपके पिता थे। माताजी का नाम श्रीजेठा बाई था। आपका शुभ नाम श्रीवेलजी भाई था। मुनिश्री वृद्धिऋषिजी म० के सदुपदेश से आपको विरक्ति हुई और उन्हीं के मुखारविन्द से सं० १९५४ के माघ मास में दीक्षा सम्पन्न हुई।

संयमोपयोगी ज्ञान उपार्जन करके आपने तपश्चर्या की तरफ विशेष प्रवृत्ति बढ़ाई। आपश्री उत्कृष्ट क्रियापात्र और घोर तपस्वी सन्त थे। सं. १९५९ का चातुर्मास प्रतापगढ़ में गुरुवर्य के साथ किया। वहाँ आषाढ़ शु. ८ से पहले ९ दिन की तपश्चर्या की, फिर उसमें नौ मिला कर सतरह दिन का प्रत्याखान किया। फिर सतरह मिलाकर ३१ उपवास किये, तदनन्तर ३० और मिला कर ६१ दिन की तपश्चर्या की धारणा की। साथ ही अभिग्रह भी किया कि १०१ खंध (ब्रह्मचर्य, चौविहार, हरित काय का त्याग, और सचित्त जल का त्याग) होंगे तो पारणा करूँगा। संयोगवश पचपन खंध तक की गिनती पहुँची; तब आपने ६१ मिलाकर ९१ दिनों की तपश्चर्या अंगीकार करली। फिर भी अभिग्रह सफल न हुआ तो आपने अपने मन में किये हुए संकल्प के अनुसार जीवन भर के लिए अन्न पानी का त्याग कर दिया; सिर्फ छाछ का आगार रक्खा।

गुरुवर्य श्रीवृद्धि ऋषिजी म० का स्वर्गवास हो जाने पर आप अकेले विचरण करने लगे। सं० १९६५ की चैत्री पूर्णिमा के दिन आपने दिन में सोने, रात्रि में आड़ा आसन लगाने और औषध सेवन का त्याग कर दिया था। सिर्फ छाछ तो लेते ही थे, उसमे भी आपने विशेष नियम कर लिया था। एक मास एक दत्ति (दाँती), दूसरे मास दो दत्ति, इस प्रकार छठे मास में छह दत्ति

तपस्वीजी सोलह वर्ष तक केवल छाछ के आधार पर रहे। बीच में कभी-कभी छाछ का भी त्याग कर ८-१० दिन की पूर्ण अनशन तपश्चर्या कर लेते थे। आप यंत्र-मंत्र-तंत्र के आराधक नहीं थे; किन्तु आपकी तपश्चर्या के प्रभाव से अनेक आश्चर्यपूर्ण घटनाएँ घटी थीं।

एक बार की बात है। आप विहार करके मन्दसौर पधार रहे थे। तीन कोस के अन्तर पर मानपुरा ग्राम में एक नदी बहती थी। दूसरा कोई रास्ता नहीं था। आपने उस रात्रि में जंगल में ही विश्राम लिया। प्रातःकाल देखा तो जाने योग्य साफ रास्ता मिल गया।

एक बार तपस्वीजी ने मन्दसौर से प्रतापगढ़ की ओर विहार किया। श्रावक वस्ती से बाहर तक पहुँचाने आये। वहाँ आपने मांगलिक सुना कर आगे विहार किया। मन्दसौर के श्रावकों ने प्रतापगढ़ जाने वाले तांगे वालों के साथ प्रतापगढ़ के श्रावकों को समाचार भेज दिये कि आज तपस्वीजी ने यहाँ से प्रतापगढ़ के लिए विहार किया है। परन्तु आप तो उसी दिन २० मील दूर पर स्थित प्रतापगढ़ जा पहुँचे थे। तांगे वाले बाद में पहुँचे और उन्होंने समाचार कहे। तब श्रावकों ने कहा—तपस्वीराज तो कभी के पधार चुके हैं! यह सुन कर सभी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तांगे वाले भी चकित रह गये।

मालवा और बागड़ प्रान्त में आप अधिक विचरे। छोटे-छोटे ग्रामों को अपने चरणों से पवित्र किया और जैन धर्म की प्रभावना की। उन्नीस वर्ष कठिन और उग्र संयम का पालन करके पेटलावद में सं. १९७२ की चैत्र व. ३० के दिन अनशन पूर्वक आपका स्वर्गवास हुआ।

आपके तपश्चरण के प्रताप से अनेक कष्ट साध्य रोग वाले भी नीरोग हो गये। आपके प्रभाव से प्लेग भी शान्त हो जाता था। आपके अन्तिम संस्कार की भस्म प्रतापगढ़ के कई लोगों ने आज तक सँभाल रक्खी है। उस भस्म के प्रयोग से भूत-प्रेत की बाधा शान्त हो जाती है; ऐसा वहाँ के प्रामाणिक व्यक्तियों से सुना गया है।

मुनिश्री सुलतान ऋषिजी महाराज

आपका जन्म आवलकुटी (अहमदनगर) में हुआ था। चंगेरिया गोत्र और ओसवाल जाति थी। सुलतानचंदजी नाम था। गुरुवर्य श्रीरत्न ऋषिजी म० सं. १९५४ में कुकाणा (अहमदनगर) पधारे। वैरागी श्री सुलतानचंदजी ने दीक्षा लेने की भावना प्रकट की। प्रतिक्रमण आदि आपको याद था। गुरु महाराज ने फर्माया- कोई बाधा नहीं, पर भीतर से पूरी तैयारी तो है? आपने अपनी पूरी तैयारी बतलाई। उस समय कड़ा के सुश्रावक श्रीबुधमलजी कोठारी और श्रावक लोग दर्शनार्थ आये हुए थे। उनके अत्याग्रह से कड़ा में दीक्षा होने का निश्चय हुआ। गुरु महाराज विहार कर कड़ा (अहमदनगर) पधारे। वहीं वैसाख शु. १३ सं. १९५५ को समारोह के साथ आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा कार्य मे श्रीमान् गंभीरमलजी बुधमलजी कोठारी ने विशेष भाग लिया। गुरुवर्य के साथ कुछ दिन विचर कर, प्रकृति के वशीभूत होकर आप अकेले पृथक् हो गए। दक्षिण प्रान्त के छोटे-छोटे ग्रामों मे प्रायः विचरते थे। अहमदनगर मे आप स्वर्गवासी हुए। आपने कुछ लेखन-कार्य किया है।

मुनिश्री दगडू ऋषिजी महाराज

आप मानोर टाकली (अहमद नगर) में रहते थे। गुरुवर्य पंडित श्रीरत्न ऋषिजी म० की सेवा मे रह कर शिक्षण लेते थे। सन्त समागम से वैराग्य की प्राप्ति हुई । गुरु महाराज बड़ोले पधारे । श्रीदगडूरामजी लूणिया की दीक्षा के समाचार सुन कर पं० मुनिश्री अमोलक ऋषिजी म० भी एक वैरागी के साथ वहाँ पधारे। आपकी इच्छा थी कि दोनों दीक्षाएँ साथ-साथ हो जाएँ। परन्तु कुडगांव निवास श्री भींवराजजी आदि श्रावकों का आग्रह हुआ कि यह दीक्षा हमारे यहाँ होनी चाहिए । दोनों मुनिराजों ने श्रावकों का आग्रह स्वीकार कर लिया । श्री दगडूरामजी को दीक्षा माघ शु. १३ सं. १६५६ के दिन बड़ोले में सम्पन्न हुई । आप मुनिश्री रत्नऋषिजी म० की नेश्राय मे शिष्य हुए। सेवा में रह कर साधारण शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया; फिर प्रकृति के वशीभूत होकर अकेले पृथक् विचरने लगे ।

आप कर्नाटक, सोलापुर और अहमदनगर में विचरे हैं। जनता में अच्छा उपकार हुआ । आपके द्वारा संगृहीत 'श्रीरत्न अमोल मणि-प्रकाशिका' पुस्तक प्रकाशित हुई और उसका अच्छा प्रचार हुआ है । संग्रह अच्छा है। पुस्तक लोकप्रिय हुई है । अन्त में सोलापुर में ही आपका स्वर्गवास हुआ।

महात्मा मुनिश्री उत्तमऋषिजी महाराज

आपश्री का जन्म चिंचपुर (अहमदनगर) निवासी श्रीमान् कुन्दनमलजी गूगलिया की धर्मपत्नी श्रीमती चम्पाबाई की कुक्षि से सं. १६६४ मे हुआ। आपका शुभ नाम श्रीउत्तमचन्दजी था। अपने चार भाइयों में आप तृतीय भाई थे। बाल्यावस्था में आप पाथर्डी मे श्रीसाहेबलालजी गूगलियाजी की दुकान पर रहते थे।

सं. १९७७ में गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० ठा० २ पाथर्डी में विराजते थे। उन उत्तम पुरुषों के समागम से आपके अन्तस्तल मे विद्यमान वैराग्य की भावना प्रकट हो गई। यद्यपि उस समय आपकी उम्र सिर्फ तेरह वर्ष के लगभग थी, फिर भी आपने संसार के असार स्वरूप को समझ कर गुरु महाराज के समक्ष दीक्षित होने की भावना दर्शाई। गुरु महाराज ने फर्माया—अपने बड़े भाई की आज्ञा प्राप्त करके शिक्षण प्रीत्यर्थ साथ में रह सकते हो।

सौभाग्य से आपको बड़े भाई की आज्ञा मिल गई और आपने गुरुदेव की सेवा में रह कर धार्मिक शिक्षण ग्रहण करना आरम्भ किया। धर्म शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया, साधु प्रतिक्रमण सीखा, हिन्दी भाषा का अभ्यास किया और कुछ स्तवन थोकड़े आदि कंठस्थ किये।

गुरु महाराज जब विहार करते हुए बीड़ से नान्दूर पधारे तो वहाँ श्रावकों में चलते हुए ३०-३२ वर्ष पुराने कलह को आपके एक ही व्याख्यान ने शान्त कर दिया। धधकती हुई द्वेष की भट्टी शान्त हो गई। प्रेम का पीयूष बरसने लगा। वहीं वैरागी श्रीउत्तमचन्दजी ने दीक्षा लेने का पुनः भाव प्रकट किया और साथ ही आग्रह भी किया। आपकी भावना और प्रार्थना स्वीकार हुई। ज्येष्ठ शुक्ला २, सं० १९७९, रविवार के दिन बहुत ठाठ के साथ संघ ने दीक्षा का आयोजन किया। आपने उत्कृष्ट भाव से गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० तथा पं. श्रीआनन्द ऋषिजी म० ठा. २ की सेवा में भागवती दीक्षा अंगीकार की। आपका नाम श्रीउत्तमऋषिजी म० रखा गया। आपकी दीक्षा का व्यय श्रीमान् भीकमचन्दजी चुन्नीलाल कोटेचा तथा स्थानीय श्रीसंघ ने सहर्ष वहन किया।

श्रीउत्तमऋषिजी म० प्रकृति से बड़े ही उत्तम, सरल और

भद्र सन्त हैं। गुरु महाराज की सेवा अन्तिम समय तक गहरी लगन और अभिरुचि के साथ की। आपके हृदय की स्वच्छता, सरलता एवं भद्रता देख कर गुरु महाराज बड़े प्रेम से आपको 'महात्माजी' कह कर संबोधित करते थे। अतएव अब भी आप इसी प्रिय नाम से परिचित और प्रसिद्ध हैं।

दीक्षित होने के पश्चात् आपने शिक्षा के क्षेत्र में भी अच्छी प्रगति की है। संस्कृत-व्याकरण, साहित्य, न्याय और आगमों का ज्ञान प्राप्त किया है। आप विविध प्रकार के साहित्य का वाचन करते रहते हैं।

दीक्षा लेने के पश्चात् करीब पाँच वर्ष तक ही आप गुरु म० की सेवा कर सके। अलीपुर मे गुरु म० का अकस्मात् स्वर्गवास हो गया तो आप दोनों गुरुभाई ही रह गए। सं० १९८४ का चातुर्मास गुरुवन्धु पं० रत्न श्रीआनन्दऋषिजी म० के साथ हींगनघाट मे किया। तत्पश्चात् आप गुरुबन्धु की सेवा में ही विचरते हैं। दत्त-चित्त होकर आपने पण्डितरत्नजी म० की सेवा की है। उन दिनों आप संयममार्ग मे भी विशेष सहयोगी बने हैं। गुरुदेव द्वारा पाथर्डी में लगाया हुआ श्रीतिलोक जैन पाठशाला रूप वृक्ष-जो आज पर्याप्त विकास पा चुका है-आपकी कृपा का भाजन रहा है और अब भी है। उसकी ओर आपका पूर्ण लक्ष्य रहता है। श्रीवर्द्धमान श्र० सं० के प्रधानमंत्री, पं र० श्रीआनन्दऋषिजी म० की सेवा में रहते हुए आपने बरार, मध्यप्रदेश, खानदेश, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़, मारवाड़ आदि प्रान्तों में विचरण किया है।

'महात्माजी' वास्तव में महात्मा पुरुष हैं। आपका अन्तः-करण करुणा-से परिपूर्ण रहता है। मुखमण्डल पर सदैव प्रसन्न स्मित दिखाई देता है। स्वभाव की शुचिता अपरिचित को भी शीघ्र

ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। इस समय आप प्रधानमंत्रीजी म० की सेवा मे बदनौर में विराजमान है।

बालब्रह्मचारी, प्रसिद्धवक्ता, पं० रत्न, प्रधानमंत्री, श्रीआनन्दऋषिजी महाराज

अहमदनगर जिला के अन्तर्गत सिराल चिचोंड़ी नामक ग्राम में श्रीमान् देवीचंदजी गूगलिया श्रावक निवास करते थे। वही आपके पिताश्री हैं। आपकी माता का नाम श्रीमती हुलास बाई था। गूगलियाजी को दो पुत्र-रत्न प्राप्त हुए-श्रीउत्तमचंदजी और श्रीनेमिचन्द्रजी,जिनका दूसरा नाम गोटीरामजी था। नेमिचन्द्रजी का जन्म सं० १९५७ में हुआ। बाल्यावस्था मे ही आपको पितृवियोग का अनुभव करना पड़ा। घर की आर्थिक स्थिति मध्यमश्रेणी की थी। मगर आपकी माताजी अत्यन्त व्यवहारकुशल थीं। आत्म गौरव की मात्रा भी उनमें थी। अतएव किसी दूसरे का अवलम्बन न लेती हुई वे अपने व्यवहारकौशल से दोनो पुत्रो का पालन करतीं और अधिक समय धर्मध्यान मे व्यतीत करती थीं। पाँचो पर्वतिथियों में उपवास आदि करती थीं। प्रतिदिन सामायिक करने और आनुपूर्वी गुनने आदि का आपको नियम था।

सं. १९६९ में पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज के पाटवी शिष्य, गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० सिराल चिचोड़ी पधारे और कुछ दिनो तक विराजे। तब धर्मप्राण सुश्राविका श्रीमती हुलासा बाई ने अपने लघुपुत्र नेमिचन्द्रजी से कहा-पुत्र! मेरी वृद्धावस्था है। गाँव मे किसी को प्रतिक्रमण नहीं आता। तुम्हारी बुद्धि तीव्र और निर्मल है। अभ्यास करने योग्य उम्र भी है और पुण्ययोग से महाराजश्री भी पधार गये है इस अवसर से लाभ उठा लो। कुछ धार्मिक शिक्षण ले लो। इससे स्व-पर का कल्याण होगा।

श्रीनेमिचन्द्रजी ने माताजी का आदेश स्वीकार कर जिज्ञासा के साथ महाराजश्री से सामायिकसूत्र का पाठ सीख लिया। म०श्री का १९६९ का चौमासा मीरी में था। आप माताजी की आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण सीखने के हेतु मीरी (अहमदनगर) गये। अपनी तीव्र बुद्धि के कारण चौमासे में आपने प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल का थोकड़ा, सढ़सठ बोल का थोकड़ा और स्तवन संवाद आदि सीख लिये। ज्ञानाभ्यास के साथ धार्मिक कृत्यों का परिचय होने एवं सन्त-समागम के प्रभाव से धार्मिक भाव विशेष रूप से जागृत हो गया। चित्त में जगत् के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गई। तब आपने गुरुदेव के समक्ष अपनी भावना व्यक्त की। गुरुदेव ने उत्तर दिया-तुम्हारी माताजी की अनुमति के बिना दीक्षा होना संभव नहीं। तब आप माताजी की अनुमति प्राप्त करने के लिए उनके पास पहुंचे।

यद्यपि माताजी धार्मिक भावना से विभूषित थीं और जानती थीं कि संसार के समस्त संबंध कल्पना मात्र हैं। फिर भी वे पुत्र का मोह न त्याग सकीं। दीक्षा की अनुमति नहीं मिली। तब नेमिचन्द्रजी पुनः विद्याभ्यास करने के लिए गुरुवर्य की सेवामें आ गये। आपकी गहरी जिज्ञासा और धर्मप्रीति देख गुरुवर्य ने शास्त्रीय ज्ञान देना आरंभ कर दिया। आप बड़े चाव से अभ्यास करने लगे।

उन दिनों बाम्बोरी में सती शिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० के पास वैराग्यवती सुन्दरबाई की दीक्षा होने वाली थी। गुरुवर्य भी उस अवसर पर वहाँ पधारे। श्रीमती हुलासाबाई भी उस धार्मिक प्रसंग पर उपस्थित थीं। तब गुरुदेव ने श्रीहुलासाबाई से कहा—आपके दो पुत्र हैं। बड़ा लोक व्यवहार में लगा है, छोटे को धर्म की साधना के लिए रहने दो तो क्या अच्छा न होगा? आपका यह पावन दान अत्यन्त प्रशस्त होगा!

श्रीमती हुलासा बाई के लिए वह अवसर बड़ी दुविधा का था। एक ओर पुत्र की ममता और दूसरी ओर श्रद्धेय महापुरुष के वचन ! वह उनकी धार्मिकता की कसौटी थी। अन्तरतर में धार्मिकता और ममता का द्वन्द्व होने लगा। आखिर धर्म भावना विजय हुई। माताजी ने सोचा—गुरुदेव जैसे महा पुरुष के वचन निष्फल करने मे श्रेय नही। पुत्र का जीवन यदि संयम की आराधना के साथ स्व-पर के कल्याण में व्यतीत होता है तो मुझे बाधक नहीं बनना चाहिए। यह सोच कर आपने अपने प्राणप्रिय होनहार सुपुत्र को गुरुदेव के पावन चरणो में समर्पित कर दिया।

आपकी दीक्षा आपकी जन्म भूमि में ही होने वाली थी। किन्तु वह क्षेत्र छोटा था और उधर मीरी के श्रावकों का विशेष आग्रह था। अतएव मीरी मे ही मि० मार्गशीर्ष शु. ९ रविवार सं. १९७० के शुभ मुहूर्त मे, आपकी माताजी-आदि पारिवारिकजनों की उपस्थिति मे, बड़े समारोह के साथ उत्साह और आनंद पूर्वक दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा रूप मंगल कार्य मे श्रीमान् धनराजजी मेहेर अग्रणी थे। आपका शुभ नाम श्रीआनन्द ऋषिजी महाराज रक्खा गया। दीक्षा के समय आपकी उम्र करीब १३ वर्ष की थी।

जिस प्रकार गुरुवर्य श्रीरत्न ऋषिजी महाराज ने अपनी उच्च चारित्रनिष्ठा और विद्वत्ता के द्वारा आपका मन मुग्ध कर लिया था, उसी प्रकार आपने भी अपनी निर्व्याज भक्ति, श्रद्धा, शुश्रूषा और तीव्र बुद्धि से उनके मन को मोह लिया था। गुरुवर्य की पैनी दृष्टि ने आपके भीतर छिपे महान् व्यक्तित्व को देख लिया था। इस कारण दीक्षा लेने के समय से ही आपके विशिष्ट अभ्यास की व्यवस्था की गई। अनेक संस्कृत प्राकृत के विद्वान् क्रमशः नियुक्त किये गये। आप अपनी विशुद्ध बुद्धि से

सूक्ष्म प्रश्न करते, जिनका समाधान करना पंडितजी को कठिन हो जाता था। तब वे थोड़े ही दिन टिकते और चल देते। गुरुवर्य किसी सुयोग्य विद्वान की खोज में पूना पधारे। वहाँ खैरांटी (गोरखपुर) निवासी विद्यावारिधि पं. राजधारी त्रिपाठीजी को बनारस से बुलाये गये। त्रिपाठीजी के आने से आपका सन्तोषप्रद अभ्यास चालू हो गया। सिद्धान्त कौमुदी, जैनेन्द्र व्याकरण, शाकटायन व्याकरण, प्राकृत व्याकरण, साहित्यदर्पण, काव्यानुशासन, नैषधीयचरित आदि-आदि साहित्यिक ग्रन्थ, स्मृतियों में अष्टादश स्मृति, न्याय में सिद्धान्त मुक्तावली, साथ ही छन्द शास्त्र आदि का अध्ययन किया। इनके अतिरिक्त स्वसमय-परसमय के अनेक ग्रन्थों का पठन एवं अवलोकन किया। जिनागमों का अभ्यास गुरुवर्य के मुखारविन्द से हुआ। इस प्रकार अध्ययन करके आप सभी विषयों में निष्णात विद्वान् बने। करीब १३॥ वर्ष तक आपको गुरुदेव की शीतल छत्रछाया में रहने और अपना निर्विघ्न विकास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आपश्री ने प्राचीन भाषाओं के साथ-साथ आधुनिक भाषाओं का हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती, बंगला और अंगरेजी का—भी अभ्यास किया है। मराठी तो देश भाषा है ही। उस पर आपका पूर्ण आधिपत्य है।

बाल्यावस्था से ही गायन के प्रति आपकी विशिष्ट अभिरुचि थी। बुलंद आवाज थी और कंठ मधुर। अतएव जब आप तन्मय होकर शास्त्रों की गाथाओं का पाठ करते तो एक अपूर्व समा बँध जाता। श्रोता चित्रलिखित से रह जाते। अर्थ समझें, या न समझें पाठ सुन कर ही भाव-विभोर बन जाते थे। वास्तव में आपके कंठस्वर में अद्भुत मोहिनी थी। आज भी उसकी वह मोहकता सर्वथा निश्शेष नहीं हुई है।

आपश्री सं० १९७६ का चातुर्मास आवलकुटी ग्राम मे पूर्ण करके गुरुवर्य के साथ अहमदनगर पधारे। यहाँ आपका प्रथम व्याख्यान प्रारम्भ हुआ। अहमदनगर मे उस समय सुश्रावक सेठ किसनदासजी मूथा, श्रीचन्दनमलजी पीतलिया, श्रीहणोतमलजी कोठारी श्रीहीरालालजी गाँधी, श्रीगोकुलजी कटारिया, श्रीधोड़ीरामजी मूथा आदि शास्त्रज्ञ श्रावक विद्यमान थे। उनके समक्ष व्याख्यान देना साधारण बात नहीं थी। पर आप जैसे प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् के लिए कोई बड़ी बात भी नहीं थी। सं. १९७७-७८-७९-८० के चातुर्मास क्रमशः अहमदनगर, पाथर्डी, कलम अहमदनगर में हुए।

सं० १९८१ का चातुर्मास गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० तथा शास्त्रोद्धारक श्री अमोलकऋषिजी म० का ठा० ६ से करमाला मे हुआ था; उसमे आपश्री भी सम्मिलित थे। आपश्री के व्याख्यान से जैन और जैनेतर सभी मुग्ध हो जाते थे। सं० १९८२ का चातुर्मास चांदा (अहमदनगर) मे हुआ।

सं० १९८३ का चातुर्मास गुरु म० तथा तपस्वीजी श्रीदेवऋषिजी म. के साथ भुसावल मे हुआ। चातुर्मास के अनन्तर बरार प्रान्त के श्रावको की आग्रहपूर्ण प्रार्थना से आपने गुरु म. की सेवा मे ही रहते हुए उधर विहार किया। छोटे-बड़े क्षेत्रों मे विचरे। सं० १९८४ मे गुरुवर्य का वियोग हो जाने से आपका हृदय आहत हो गया। मस्तक पर महान् उत्तरदायित्व आ पड़ा। हीगनघाट में प्रथम चातुर्मास था जो आपने गुरुवर्य की अनुपस्थिति मे किया। इस समय आपके गुरुभ्राता मुनिश्री उत्तमऋषिजी म० आपके साथ थे। यहाँ के श्रावकों ने श्रीतिलोक जैन पाठशाला पाथर्डी के लिए उदारतापूर्वक दान दिया। चौमासा सानन्द व्यतीत हुआ। धर्मध्यान भी खूब हुआ।

सं० १९८५ का चातुर्मास सदर बाजार नागपुर में हुआ। आपके प्रभावशाली उपदेश से यहाँ परमोपकारी गुरुदेव श्रीरत्न-ऋषिजी म० की पावन स्मृति में श्री जैनधर्मप्रसारक संस्था की ज्येष्ठ वदि ७ के दिन स्थापना हुई। इस संस्था की ओर से हिन्दी और मराठी भाषा में अनेक ट्रेक्ट आदि प्रकाशित हुए हैं, जिनसे जैन-अजैन जनता ने अच्छा लाभ उठाया है। यह प्रकाशन जैनधर्म के विषय में फैले हुए भ्रम का निवारण करने मे पर्याप्त सहायक हुए हैं। अब भी यह संस्था व्यवस्थित रूप से चल रही है।

सं० १९८६ का चौमासा अमरावती में हुआ। इस चातुर्मास में श्रीमहावीर जैन पुस्तकालय की स्थापना हुई।

सं० १९८७ का चातुर्मास चांदूर बाजार में हुआ। यहाँ कोई निश्चित धर्मस्थान नहीं था। आपके सदुपदेश के प्रभाव से श्रावकों मे भावना जागी। उन्होंने अढ़ाई हजार रुपये में एक तैयार इमारत अपने धर्मस्थानक के लिए खरीद की।

सं० १९८८ में आपने वोदवड़ में वर्षावास किया। यहाँ के श्रावक श्रीमानमलजी चांदमलजी कोटेचा की तरफ से धर्मध्यान प्रीत्यर्थ दिये गये धर्मस्थानक के पीछे एक विशाल जगह की स्थानीय श्रावकों ने और व्यवस्था की। यहाँ के श्रीमान रतनलालजी कोटेचा और कन्हैयालालजी कोटेचा के उत्साह से पूज्यपाद श्री-तिलोकऋषिजी म० के जीवनचरित का प्रकाशन हुआ। चातुर्मास के वाद विहार करके ऋषिसम्प्रदायी संगठन के संबंध में वार्त्तालाप करने के लिए आप शास्त्रोद्धारक पं० मुनिश्री अमोलकऋषिजी म० की सेवा मे धूलिया पधारे। उस समय अहमदनगर निवासी शास्त्रज्ञ सुश्रावक श्रीकिसनदासजी मूथा तथा सतारानिवासी दीवानबहादुर सेठ मोतीलालजी मूथा भी धूलिया आये। संप्रदायी समाचारी बनाई

गई। तत्पश्चात् आप मनमाड़ की तरफ पधारे। वहाँ जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्रीचौथमलजी म० के साथ कई दिनों तक वात्सल्य-समागम रहा। मनमाड़ से विहार करके घोड़नदी पधारे। सती-शिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० को दर्शन देकर और समाचारी के विषय में सतियों की सम्मति लेकर आपने अत्युग्र विहार किया और ऋषिसम्प्रदायी संमेलन के लिए इन्दौर पधारे। उसी अवसर पर शास्त्रोद्धारकजी महाराज को पूज्यपदवी प्रदान की गई।

इस अवसर पर धार के श्रावकों ने चातुर्मास के लिए भाव-भरी प्रार्थना की, परन्तु प्रतापगढ़ में श्रीदौलत ऋषिजी (छोटे) रुग्ण थे; अतः उनकी सेवा करनेके लिए आप ठा २ वहाँ पधारे और सं. १९८९ का चातुर्मास प्रतापगढ़ मे ही हुआ। यहाँ जैन समाज मे धर्म का जो उद्योत हुआ सो तो हुआ ही, पर जैनेतर समाज पर आपकी बड़ी ही सुन्दर और गहरी छाप लगी। स्थानोय शास्त्री विद्वानो ने तथा उच्च राज्याधिकारियों ने पुनः पुनः प्रार्थनो करके राजमार्ग पर तथा दो बार ब्राह्मण सभागृह में आपके प्रवचन करवाये। उधर आसपास मे ऋषि सम्प्रदायी सन्तों एवं सतियों की नेश्राय के अनेक शास्त्र अनेक श्रावको के पास थे। किसी साधु-साध्वी को वे उनका नाम तक नहीं बतलाते थे। परन्तु जब आपने परिभ्रमण किया तो सब लोग स्वतः शास्त्र ला-लाकर आपको सौंपने लगे। उन शास्त्रो के संग्रह से प्रतापगढ़ मे अनायास ही एक बड़ा-सा प्राचीन शास्त्र भंडार बन गया है। यह आपके दैवी प्रभाव का एक नमूना था कि कठिन कार्य भी इतनी सरलता से सम्पन्न हो गया।

इसी वर्ष मालवा प्रांतीय ऋषि सम्प्रदाय की सतियों का प्रतापगढ़ में सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के पश्चात् आप बृहत्साधु सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए अजमेर की तरफ पधारे।

अजमेर सम्मेलन से लौटने पर सं. १९९० का चातुर्मास मन्दसौर में किया।

श्रीमान् ओंकारलालजी बाफणा ने इस चातुर्मास से खूब लाभ उठाया। यहाँ श्रीमान् प्रेमजी भाई पटेल को वैराग्यभाव जागृत हुआ और वे दीक्षा लेने को उद्यत हुए। बोदवड़-श्रीसंघ के आग्रह को स्वीकार करके चातुर्मास के अनन्तर ठा. ४ ने खानदेश की ओर विहार किया। बोदवड़ में माघ शु. १० गुरुवार को श्रीप्रेमजी भाई पटेल की दीक्षा सम्पन्न हुई। वहाँ से विहार करके आप धूलिया पधारे। धूलिया में करमाला श्रीसंघ का एक प्रतिनिधि मंडल आया। पंडिता महासतीजी श्रीराजकुंवरजी म० के पास माता-पुत्री की दीक्षा होने वाली थी। मगर वैरागिनों ने निश्चय कर लिया था कि पं. रत्न श्रीआनन्द ऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण करेंगे। 'भक्त के वश में हैं भगवान्' इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए आप सैकड़ों मीलों का विहार करके करमाला पधारे। वैशाख शुक्ल में माता-पुत्री की दीक्षा हुई। माताजी का नाम श्रीचन्दन-बालाजी और पुत्री का नाम श्रीउज्ज्वलकुमारीजी रक्खा गया।

सं. १९९१ का चौमासा पाथर्डी में हुआ। इस चातुर्मास में पं. रत्न गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० का जीवन चरित संकलित किया गया और बाद में वह प्रकाशित भी हुआ। चातुर्मास के अनन्तर अहमदनगर होते हुए, दक्षिण प्रान्तीय सतियों का सम्मेलन करने के लिए आप पूना पधारे। आपकी पथप्रदर्शक उपस्थिति में सम्मेलन सफल हुआ। उस साल तेरहपंथी साधुओं का चौमासा पूना (खड़की) में होने वाला था। अतः अहमदनगर आदि क्षेत्रों की प्रार्थना अस्वीकार करके आपने भी पूना (खड़की) में ही सं० १९९२ का चौमासा किया। इस चातुर्मास के समय में एक बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य धार्मिक पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन का

हुआ। धार्मिक संस्थाओं में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों का अभाव था और संचालकों की ओर से बार-बार शिकायतें हो रही थीं कि पुस्तकों के अभाव में बालकों को क्या पढ़ाएँ! तब श्रीरत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी की तरफ से सामायिक-प्रतिक्रमण, स्तोत्र संग्रह थोकड़ा संग्रह, आदि का प्रकाशन हुआ। इसके अतिरिक्त दूसरा बहुत महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय कार्य इसी वर्ष यह हुआ कि आपश्री के मुखारविन्द से पाँच दीक्षाएँ और एक बड़ी दीक्षा सम्पन्न हुई। वह दीक्षाएँ इस प्रकार थीं:—

	नाम	स्थान	किसकी नेश्राय में ?
(१)	श्रीसुमतिकुंवरजी म०	कुंडे गव्हाण	प्र. श्रीशांतिकुंवरजी म.
(२)	श्रीफूलकुंवरजी म० (बड़ी दीक्षा)	पूना	प्र. श्रीरम्भाजी म०
(३)	श्रीअमृतकुंवरजी म०	चरोली	प्र. श्रीशांतिकुंवरजी म.
(४)	श्रीसज्जनकुंवरजी म०	पूना	श्रीआनदकुंवरजी म.
(५)	श्रीमोतीऋषिजी म.	पूना	बा. ब्र. पं. र. श्रीआनन्द ऋषिजी महाराज
(६)	श्रीवसन्तकुंवरजी म०	पूना	प्र. श्रीरम्भाजी म०

इन छह दीक्षाओं के सानन्द सम्पन्न हो जाने के पश्चात् आप सतारा, बारामती आदि क्षेत्रों की जनता को अपने प्रवचन-पीयूष से परितृप्त करते हुए घोड़नदी पधारे। सं० १९९२ का चातुर्मास यहीं हुआ।

एक दिन प्रसंग उपस्थित होने पर आपने फर्माया कि धार्मिक संस्थाओं में धार्मिक अभ्यास की प्रगति के लिए एक धार्मिक परीक्षा-बोर्ड की नितान्त आवश्यकता है। आपके इस सदुपदेश से जागृत होकर वहाँ धार्मिकाग्रणी दानवीर सेठ श्रीनानचदजी दूगड़ ने उसी

समय पाँच हजार रुपये के दान की घोषणा कर दी। 'शुभस्य शीघ्रम्' की उक्ति का अनुसरण करते हुए दूगड़जी ता० २५ नवम्बर, ३६ के दिन पाथर्डी गये और वहाँ श्रीतिलोक रत्न स्था-जैन धार्मिक परीक्षाबोर्ड की स्थापना कर दी। आज यह परीक्षाबोर्ड समग्र स्था-नकवासी समाज की धार्मिक शिक्षासंस्थाओं तथा सन्तों-सतियों के धार्मिक अभ्यास को परखने की एक मात्र कसौटी है। प्रतिवर्ष हजारों विद्यार्थी परीक्षा में सम्मिलित होते हैं। आपश्री के सदुपदेश और श्रीदूगड़जी की उदारता के फलस्वरूप बोर्ड महान् उपयोगी संस्था-सिद्ध हो रहा है।

इसी वर्ष दैव दुर्विपाक से पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० स्वर्ग सिधार गये। पुनः ऋषिसम्प्रदायी संगठन के हेतु आप भुसा-वल पधारे। वहाँ तपस्वीराज श्रीदेवऋषिजी म० आचार्य पदवी से तथा आपश्री युवाचार्य पदवी से अलंकृत किये गये। इस मंगल-अवसर पर वहाँ उपस्थित सभी सन्तों, सतियों एवं श्रावकों ने पाथर्डी मे पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म० के स्मरणार्थ श्रीअमोल जैन सिद्धान्तशाला स्थापित करने का निश्चय किया।

इसी अवसर पर बम्बई-श्रीसंघ की तरफ से डॉ० नाराणजी मोनजी वोरा ने युवाचार्यश्री की सेवा में बम्बई में चातुर्मास करने की प्रार्थना की। तदनुसार सं० १९९४ का चातुर्मास ठा० ४ से कांदावाड़ी बम्बई में और सं १९९५ का घाटकोपर में हुआ। दोनों चौमासों में आपने गुजराती भाषा में प्रवचन किये। जैन अजैन जनता ने आपके सदुपदेशों से खूब लाभ उठाया। तपश्चर्या और धर्म-प्रभावना अच्छी हुई। आपके प्रवचनों का जनता पर गहरा असर हुआ। घाटकोपर चातुर्मास के अवसर पर श्रीतिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की विद्वत्समिति की बैठक हुई। श्रीसंघ ने प्रेम और उत्साह के साथ सब व्यवस्था की।

सं० १९९६ का चातुर्मास पनवेल में हुआ। पनवेल के सुप्रसिद्ध बांठिया परिवार की और श्रीचुन्नीलालजी मुणोत आदि की तथा माहेश्वरी सुवर्णकार आदि जैनेतर भाइयों की भक्ति-भावना प्रशंसनीय थी। सर्वसाधारण जनता की सुविधा के दृष्टिकोण से व्याख्यान दोपहर मे होता था, जिसमे अभेद भाव से सभी धर्मों के अनुयायी रस लेते थे।

चातुर्मास के पश्चात् पूना में पदार्पण हुआ। वहाँ पंजाब केसरी पूज्यश्री काशीरामजी म० का समागम हुआ। बड़ा ही वात्सल्यपूर्ण व्यवहार हुआ। दोनों महान् आत्माओं के एक साथ ही व्याख्यान हुए।

इसी वर्ष लोणावला में श्रीहीराऋषिजी म० की दीक्षा हुई और सिर्फ २१ दिन संयम का पालन करके वे स्वर्गवासी हो गए।

सं० १९९७ का चातुर्मास अहमदनगर क्षेत्र मे हुआ। इस चातुर्मास में सतीशिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० तथा शास्त्रज्ञ सेठ श्रीकिसनदासजी मूथा के स्मरणार्थ घोड़नदी या अहमदनगर में आपश्री के सदुपदेश से सिद्धान्तशाला स्थापित करने का निश्चय हुआ। चातुर्मास के अनन्तर आपश्री घोड़नदी पधारे। मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष मे वहाँ सिद्धान्तशाला का शुभारंभ हो गया। पं० श्री-बदरीनारायणजी शुक्ल की प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्ति हुई। अनेक सन्तों और सतियो ने इस संस्था से लाभ उठाया।

सं० १९९८ में आपश्री ने पूना जिला के एक छोटे-से ग्राम बोरी में चातुर्मास किया। वहाँ करीब १२ घर सम्पन्न चोरड़िया-परिवार के हैं। यहाँ के धर्मप्रेमी भाई बहुत दिनों से उत्सुक थे कि आपश्री का चातुर्मास हो। आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर कई हरिजन बन्धुओं ने मांस एवं मदिरा का परित्याग किया। एक हरि-

जन वहिन ने तपश्चर्या की। इतर समाज के लोग पर्याप्त संख्या में उपदेश--श्रवण का लाभ लेते थे। संवत्सरी पर्व के अवसर पर करीव ११०० श्रावक--श्राविकाओं ने वाहर से आकर लाभ लिया। चातु--र्मास में ११-१३-१५-१७-२१-४५ आदि दिनों की बड़ी-बड़ी तपस्याएँ हुई और उपवास, बेला; तेला, पंचोला, पचरंगी तथा नवरंगी तथा नवरंगी और प्रकीर्णक तपस्याएँ भी हुई।

चातुर्मास परिपूर्ण होने पर आपश्री अहमदनगर आदि क्षेत्रों में विचरण कर मीरी पधारे। वहाँ आषाढ़ शु. ६ सं. १९९९ के दिन श्रीबाबूलालजी रेदासनी की सजोड़ दीक्षा हुई। उनका नाम श्रीज्ञानऋषिजी रक्खा गया। नवदीक्षिता सती का नाम श्रीनवल-कुंवरजी निश्चित किया और पं० श्रीसुमतिकुंवरजी म० की नेश्राय में वह शिष्या हुई।

सं० १९९९ का चातुर्मास वाम्बोरी क्षेत्र में हुआ। चातुर्मास के पश्चात् युवाचार्यश्री चाँदा पधारे। यहाँ पूज्यश्री देवजी ऋषिजी म० के, तार से स्वर्गवास के समाचार प्राप्त हुए। आचार्य महाराज का समस्त भार युवाचार्यश्री के कंधों पर आ पड़ा। पूज्य पदवी समारोह के लिए पाथर्डी श्रीसंघ की प्रार्थना से वहाँ पधारना हुआ। वहाँ माघ वदि ६ सं० १९९९, बुधवार के दिन चतुर्विध श्रीसंघ की उपस्थिति में आपश्री पूज्य पदवी से विभूषित किये गये। इस शुभ अवसर पर पं. मुनिश्री कल्याण ऋषिजी म० आदि ९ सन्त तथा महासतीजी श्रीरम्भाकुंवरजी, श्रीआनन्दकुंवरजी म० आदि ठा० ९ की उपस्थिति थी। इस पदवीप्रदान के हर्ष के उपलक्ष्य में पीपला निवासी श्रीचांदमलजी सोभाचंदजी वोराजी ने श्रीति. र. स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के प्रकाशन विभाग में २१००) रु० का दान दिया। वयोवृद्ध मुनिश्री प्रेमऋषिजी म० की अस्वस्थता के कारण श्रीमोतीऋषिजी म० को सेवा में रखकर पूज्यश्री हीवड़ा

पधारे। वहाँ महासती श्रीसायरकुंवरजी म० के पास मिरि वाली दगड़ी बाई की दीक्षा हुई। यहाँ पं० मुनिश्री कल्याणऋषिजी म०, कविश्री हरिऋषिजी म० और वयोवृद्ध श्रीमाणकऋषिजी म० आदि १४ सन्त पधारे थे। यहाँ से सब सन्त पाथर्डी पधारे। यहाँ ऋषि-सम्प्रदायी सन्तो का सम्मेलन हुआ। १६ सन्तो और श्रीरंभाकुंवरजी म० तथा श्रीसायरकुंवरजी म० आदि सतियो की उपस्थिति में सम्प्रदाय के नियमोपनियम बनाये गये। वयोवृद्ध श्रीकालूऋषिजी म० की सम्मति भी प्राप्त हुई थी।

सं० २००० का चातुर्मास पूज्यश्री ने ठा० ५ से चांदा (अहमदनगर) मे किया। वयोवृद्ध श्रीप्रेमऋषिजी म० और मुनिश्री मोतीऋषिजी म० ठा० २ पाथर्डी मे विराजे। चांदा में १३ घर श्रावको के थे, किन्तु माहेश्वरी और ब्राह्मण आदि जैनेतर भाइयो ने श्रावको जैसा ही भक्तिभाव प्रकट किया। आश्विन मास मे श्रीप्रेमऋषिजी म० का स्वास्थ्य विशेष रूप से खराब हो जाने के कारण एक सन्त को पाथर्डी की ओर विहार कराया। अन्ततः पाथर्डी में ही श्रीप्रेमऋषिजी म० का स्वर्गवास हो गया।

चातुर्मास के अनन्तर पूज्यश्री स्वयं पाथर्डी पधारे। यहाँ पूज्यश्री देवजीऋषिजी म० तथा श्रीप्रेमऋषिजी म० के स्मरणार्थ श्रीदेव--प्रेम धार्मिक उपकरण भांडार नामक संस्था की स्थापना हुई।

इसी वर्ष वालमटाकली (अहमदनगर) में (कच्छ) पुनडीनिवासी श्रीजक्खुभाई की दीक्षा फाल्गुन शु० को पूज्यश्रीजी के मुखारविन्द से हुई। नाम श्रीजसवन्तऋषिजी म० रक्खा गया। सं. २००१ का चातुर्मास जलना मे हुआ। सानंद चातुर्मास व्यतीत करके आचार्य महाराज यवतमाल (बरार) पधारे। यहाँ गोदिया की

श्रीहुलासकुंवरजी की दीक्षाविधि सम्पन्न हुई। आचार्य महाराज की उपस्थिति के कारण करीब ४--५ हजार दर्शनार्थी आ पहुंचे। वहाँ से आप धामणगाँव पधारे। धामणगाँव से दानवीर श्रीमान् सेठ सरदारमलजी पूंगलिया को दर्शन देने के लिए पूज्यश्री उग्र विहार करके नागपुर की ओर पधार रहे थे किन्तु दूसरे दिन ही पूंगलि-याजी के स्वर्गवास के समाचार मिल गये! पूंगलियाजी सम्प्रदाय के एक महान् स्तंभ थे। उनके वियोग से बड़ी क्षति हुई, जो पूरी नहीं हो सकी।

अमरावती-श्रीसंघ कई वर्षों से विनन्ती कर रहा था। अतएव २००२ का चौमासा अमरावती में हुआ। चातुर्मास की खुशी में यहाँ के श्रावकों ने धार्मिक संस्था को अच्छा आर्थिक सह-योग दिया।

सं. २००३ का चातुर्मास बोदवड़ में हुआ। इस चातुर्मास में एक श्रीवर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचार सभा स्थापित हुई। जिसका संचालन पाथर्डी से हो रहा है श्रीमंत सज्जनों ने आन्तरिक उदारता से ममत्व का त्याग किया और करीब ३५ हजार की रकम एकत्र हो गई। चातुर्मास के पश्चात् श्रावकों की ओर से सूचना पाकर आचार्य श्री ने, श्री शान्तिकुंवरजी म० को दर्शन देने के लिए बाम्बोरी की ओर विहार किया। पंडिता प्रवर्तिनीजी सतीजी वहाँ रुग्णावस्था में थीं और पूज्यश्री के दर्शन की इच्छुक थीं। औरंगाबाद आदि क्षेत्रों में धर्म प्रभावना करते हुए बाम्बोरी पधारे। आपके दर्शन पाकर श्री शान्तिकुंवरजी म० को परम प्रमोद हुआ।

बाम्बौरी से आपश्री अहमदनगर, घोड़नदी होते हुए पूना पधारे। वहाँ आत्मार्थी मुनिश्री मोहन ऋषिजी म० तथा पं० प्रवर्तिनीजी श्री उज्ज्वलकुंवरजी म. विराजमान थे। आप महापुरुषों

के सम्मिलन से गलतफहमियाँ दूर हो गई। यथापूर्व गहरा वात्सल्य भाव उत्पन्न हो गया।

सं. २००४ का चातुर्मास बेलापुर रोड में हुआ। इस चातुर्मास में महासतीजी श्री रंभाजी म०, पंडिता श्री सुमतिकुंवरजी म० आदि ठाणे ४ भी विराजते थे। पर्युषण पर्व के अवसर पर करीब ४-५ हजार भक्त जनों ने आपके धर्मोपदेश का बाहर से आकर लाभ उठाया। इस चातुर्मास-काल में श्री उववाई सूत्र के संशोधन का कार्य हुआ। चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् आचार्य श्री पाथर्डी पधारे। वहाँ से अपनी जन्मभूमि चिचौंड़ी में पदार्पण किया। चिचौंड़ी की जैन-जैनेतर जनता की हार्दिक कामना थी कि आपका एक चातुर्मास यहाँ होना चाहिए। आप चिंचौड़ी की दिव्य विभूति हैं। फिर चिंचौड़ी ही आपके लाभ से वंचित क्यों रहना चाहिए ? इस प्रकार की गहरी लगन देख कर पूज्यश्री ने कोपर गांव में चौमासे की स्वीकृति प्रदान कर दी। इस चौमासे में इतर समाज का बहुत उपकार हुआ। अनेक लोगो ने मांस, मदिरा, शिकार,परस्त्री गमन आदि दुर्व्यसनो का त्याग कर जीवन-शुद्धि के पथ पर पैर रक्खा। पर्युषण पर्व के धार्मिक अवसर पर सिर्फ अजैन बन्धुओं ने करीब १००० उपवास किये, जो गाँव के छोटेपन को देखते हुए आश्चर्य जनक संख्या में कह जासकते हैं। पर्युषण पर्व का प्रारंभ दिन और संवत्सरी के दिन समस्त कृषको ने कृषिकार्य बंद रख कर धर्म कार्य किया। करीब चार हजार श्रोता आपके प्रवचन-पीयूष का पान करने को एकत्र हुए। क्या ब्राह्मण क्या हरिजन, क्या हिन्दू और क्या मुस्लिम, सभी ने अभेद भाव से चौमास मे सेवा-भक्ति, उपासना और उपदेश श्रवण आदि का लाभ लिया।

इस चातुर्मास से पूज्यश्री के महान् व्यक्तित्व और विराट योग्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। 'गुणाः पूजा स्थानं,

गुणेषु न च लिङ्गं न च वयः' यह उक्ति चिंचौडी में प्रत्यक्ष दिखाई देने लगी। आपके चातुर्मास की स्मृति चिर स्थायिनी रखने के लिए 'श्रीमहावीर सार्वजनिक-वाचनालय' की स्थापना की गई। यह वाचनालय आज भी अच्छी तरह से चल रहा है।

चिंचौड़ी में श्रावकों के सिर्फ सात घर थे। आसपास के बाम्बोरी, लोसर, करंजी, चांदा, मोरी आदि ग्रामों के श्रावक पूज्यश्री के समागम का लाभ लेने के लिए आ गये थे और स्वतंत्र स्थान लेकर सेवा का लाभ उठाते थे।

प्रवर्त्तिनी श्रीशान्तिकुंवरजी म० का स्वर्गवास हो गया था और श्रीराजकुंवरजी म० को यह पद दिया जाना निश्चित हुआ था। अतएव चातुर्मास की समाप्ति होने पर आप अहमदनगर पधारे। यहाँ आत्मार्थी श्रीमोहन ऋषिजी म० तथा पं० मुनिश्री श्रीमलजी म० का समागम हुआ। परस्पर में घनिष्ठ धर्मवात्सल्य रहा। अहमदनगर से आप घोड़नदी पधारे। वहाँ प्रवर्त्तिनी पद-प्रदान की विधि सम्पन्न हुई। श्रीरामकुंवरजी म० के परिवार में श्रीराजकुंवरजी म० को प्रवर्त्तिनी पद दिया गया और भावी प्रवर्त्तिनी म० श्रीसुमतिकुंवरजी म० निश्चित हुईं।

आपश्री के अन्तःकरण में करुणा का अखण्ड निर्झर प्रवाहित होता रहता है। भक्त जनों पर अमित अनुकम्पा की वर्षा करना, आपका सहज स्वभाव बन गया है। चाहे अपने को कितना ही कष्ट सहन करना पड़े पर भक्त भी भावना पूरी होनी चाहिए, यह आपकी प्रकृति है। अपने प्रति वज्र के समान कठोर होकर भी आप भावुक भक्तों के प्रति कुसुम से कोमल हैं। इसी से हम देखते है कि आपने भक्तों की भावना को पूर्ण करने के लिए कई बार लम्बे-लम्बे उग्र विहार किये है। ऐसा ही एक अवसर पुनः उपस्थित हो गया।

इधर आप दक्षिण में विचर रहे थे और उधर रतलाम (मालवा) में स्थविरा महासती श्रीगंगाजी म० अस्वस्थ हो गईं। आपने पूज्यश्री के दर्शन करने की उत्कंठा प्रकट की। जब यह समाचार आपको मिले तो मालवा की ओर चल पड़े। मनमाड़ में कान्फरेंस कार्यालय से एक तार मिला कि संघ ऐक्य की प्रवृति के लिए पूज्यश्री ब्यावर में चातुर्मास करें तो कृपा होगी। डेप्यूटेशन आ रहा है। मालेगांव मे आपने संघ-ऐक्य की योजना को सहर्ष स्वीकार किया। और तीन वर्ष के लिए निश्चित की हुई, सात बातें स्वीकार कीं। धुलिया, श्रीपुर, सेंधवा आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए धार पधारना हुआ। पं. प्रवर्त्तिनीजी श्रीरतनकुंवरजी म० ठा. ८ से पूज्यश्री के सन्मुख पधारी थीं। यहाँ पूज्यश्रीजी शारीरिक अस्वस्थता के कारण कुछ दिन विराजे थे। आपके सदुपदेश से स्थानीय श्रीमहावीर जैन पाठशाला की नींव सुदृढ़ बनाने के लिए प्रेरणा मिली। ब्यावर श्रीसंघ की तरफ से डेप्यूटेशन हाजिर हुआ था। अनन्तर आप रतलाम पधारे। साहू बावड़ी स्थानक मे निवास किया। वहाँ प्रतापगढ़ श्रीसंघ, शाजापूर श्रीसंघ खाचरोद श्रीसंघ और ब्यावर का सर्वपक्षीय श्रीसंघ पुनः चातुर्मास की प्रार्थना के लिए उपस्थित हुआ। संघ ऐक्य के पुनीत कार्य में सहयोग देने के निमित्त आपने ब्यावर मे चातुर्मास करने की स्वीकृति दे दी।

ब्यावर मे मुख्य तीन पक्ष थे। सभी ने एकमत होकर चौमासे की प्रार्थना की थी। पूर्ण शान्ति के साथ चातुर्मास व्यतीत हुआ। यहाँ प्रान्तीय सम्मेलन करने के लिए स्था. जैन कान्फरेंस की ओर से प्रयत्न चल रहा था। पूज्यश्री विहार करके बगड़ी पधारे। वहाँ पूज्यश्री हस्तीमलजी म० का समागम हुआ। संघ-ऐक्य संबंधी और समाचारी संबंधी विचार विनिमय हुआ।

ब्यावर मे नौ सम्प्रदायो के सन्तों का सम्मेलन हुआ। सम्मे-

लन में समाचारी संशोधन का महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ, जिससे संघ ऐक्य की नींव लग गई। चैत्र वदि १ सं. २००६ के दिन श्रीवीर वर्द्धमान श्रमण संघ की स्थापना हुई। इसमें पाँच सम्प्रदाय संगठित हो गए। सम्मिलित सन्तों ने अपनी-अपनी पूर्व प्राप्त पदवियों का परित्याग करके इतिहास में एक नया युग प्रारंभ किया। हजारों वर्षों से विघटन की परम्परा चली आ रही थी। एक शासन के दो टुकड़े हुए, दो के अनेक हुए और उन अनेकों में से भी फिर अनेकानेक भेद-प्रभेद और सम्प्रदाय अलग-अलग होते चले गये। मगर आपश्री के नायकत्व में, ब्यावर में जो कुछ हुआ, उसने अतीत की उस अवांछनीय परम्परा कोए कदम विपरीत दिशा मे मोड़ दिया। उसने संघटन का युगानुकूल आदर्श उपस्थित कर दिया। उस समय ब्यावर में जो लोग उपस्थित थे, उन्हें अढ़ाई हजार वर्ष पहले की केशी-गौतम स्वामी की स्मृति हो आई। उस समय दो परम्पराएँ मिलकर एक हुई थीं। इसी प्रकार ब्यावर में पाँच सम्प्रदायो ने एक संघ में अपने अस्तित्व को विलीन कर दिया। अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व के इतिहास ने अपने को दोहराया।

आपश्री ऋषि-सम्प्रदाय के आचार्य थे। आपने संघ-ऐक्य के इस पुनीत अवसर पर अपनी आचार्य पदवी का त्याग कर दिया। मगर जब संघ के आचार्य का चुनाव हुआ तो पाँचों सम्प्रदायों द्वारा आप प्रधानाचार्य पद से विभूषित किये गये। उस समय आपश्री की आज्ञा में विचरने वाले सन्तों और सतियों की संख्या लगभग ३५० थी। इस प्रकार संघ-ऐक्य का 'ओं नमः सिद्धेभ्यः' आपश्री के नायकत्व में और पथप्रदर्शन में हुआ। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि यह व्यवस्था बृहत्साधुसम्मेलन-तक के लिए की गई थी। बृहत्सम्मेलन के समय सारी स्थिति पर पुनः विचार करने के लिए गुंजाइश रक्खी गई थी।

प्रधानाचार्यजी महाराज ने ब्यावर से सोजत की तरफ विहार किया। उस समय संघ--संघटना की वायु चल रही थी। उदयपुर-श्रीसंघ भी संघटित होने की ओर कदम बढ़ा रहा था। वह अपने यहाँ तटस्थ और सुयोग्य मुनिराज का चौमासा कराना चाहता था। श्रीसंघ ने कान्फरेंस के साथ सम्पर्क स्थापित किया और कान्फरेंस ने आपश्री से उदयपुर में चातुर्मास करने की प्रार्थना की। आपश्री संगठन के कार्य में अग्रसर थे ही; अतः सं० २००७ का चौमासा आपने उदयपुर मे किया। इस समय पं० प्रभाविका महासतीजी श्रीरत्नकुवरजी म० ठाणे १० यहां विराजते थे। चातुर्मास में दोनों पक्षो को सन्तोष रहा और सानन्द चौमासा समाप्त हुआ।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष में श्री-पुण्यऋषिजी म० की दीक्षा हुई। आप विहार करके आपड़ पधारे थे, कि श्रीजैनदिवाकर मुनिश्री चौथमलजी म० के स्वर्गवास का समाचार मिला। इस दुःसमाचार से आपके हृदय को तीव्र आघात पहुँचा। चातुर्मास के पश्चात् आपश्री की जैन दिवाकरजी म० से मिलने की अभिलाषा थी; मगर कराल काल ने उसे सफल न होने दिया।

तत्पश्चात् आप नाथद्वारा पधारे। वहाँ कविरत्न पं. मुनिश्री अमरचन्दजी म० तथा स्थविर मुनिश्री हजारीमलजी म० का समागम हुआ। परस्पर में इतना घनिष्ठ प्रेम रहा कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सभी सन्तों का एक ही स्थान नीलकुण्ड पर सार्वजनिक व्याख्यान होता था।

प्रधानाचार्य श्रीआनन्द ऋषिजी म० नाथद्वारा से संत स्नेह सम्मेलन मे सम्मिलित होने के लिए गुलाबपुरा पधारे। स्थविर

पं. मुनिश्री पन्नालालजी म०, पूज्यश्री हस्तीमलजी म०, कविश्री अमरचन्दजी म० और प्रधानाचार्यजी म० का सम्मिलन हुआ। संगठन के लिए अनुकूल वायु मण्डल तैयार किया गया। यहाँ से विहार करके आप ब्यावर पधारे। वहां श्रीजैन दिवाकरजी म० के ५४ सन्त एकत्र हुए थे। पाँच ठाणों से आप पधारे तो ५९ सन्त हो गये। प्रधानाचार्यजी म० की शान्तवृत्ति, आचार-विचार की पवित्रता, हृदय की शुचिता एवं सौम्यता देखकर सन्तों के हृदय पर अतीव सुन्दर प्रभाव पड़ा और ऐसे महापुरुष का संयोग मिलने के लिए अपने आपको भाग्यशाली समझने लगे। ब्यावर से विहार करके आपश्री अजमेर, किसनगढ़, मदनगंज, शाहपुरा, बनेड़ा आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए भीलवाड़ा पधारे। संवत् २००८ का चातुर्मास वहीं हुआ।

चातुर्मास के पश्चात् भोपालगंज में श्रीहिम्मतमलजी की दीक्षा हुई और उनका नाम श्रीहिम्मतऋषिजी रक्खा गया। तत्पश्चात् प्रधानाचार्यजी म० आकड़सादा पधारे। यहाँ पं० मुनिश्री प्यारचन्दजी म० भी पधार गए। सादड़ी सम्मेलन एवं संघ-ऐक्य के सम्बन्ध में विचार विमर्श किया गया और सम्मेलन की सफलता उपाय सोचे गये। श्रीवीर वर्धमान श्रमण संघ के सन्तों, सतियों और प्रमुख श्रावकों की पत्रों द्वारा सम्मति लेने का निश्चय हुआ।

आकड़सादा से प्रधानाचार्यजी म० सम्मेलन के लिए सादड़ी की ओर पधारे। मार्ग मे, बैतूल (सी पी.) का चातुर्मास पूर्ण करके इटारसी, भोपाल, साजापुर, सुजालपुर उज्जैन, नागदा, जावरा, मन्दसौर, नीमच, चित्तौड़ आदि क्षेत्र स्पर्शते हुए कवि मुनिश्री हरिऋषिजी म० तथा श्रीभानुऋषिजी म० ठा० २ से भगवानपुरा में प्रधानाचार्यजी म० की सेवा में पधारे, और वहाँ से ठा० ८ने गुलाबपुरा की तरफ विहार किया। गुलाबपुरा में, दक्षिण

हैदराबाद प्रान्त से उग्र विहार करके श्रीरम्भाजी म० तथा सुव्याख्यानी पं० श्रीसुमतिकुंवरजी म० आदि पधारे। इसी जगह जिनशासन प्रभाविका पण्डिता श्रीरत्नकुंवरजी म. तथा विदुषी श्रीवल्लभकुंवरजी म० आदि भी पधार गये। यहाँ सब का समागम हुआ। चैत्र शु. २ सं० २००९, गुरुवार के दिन वैराग्यवती श्रीशकुन्तला बाई की दीक्षा प्रधानाचार्यश्री के मुखारविन्द से हुई। उनका नाम श्रीचन्दनकुंवरजी रक्खा गया। श्रीसुमतिकुंवरजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुई।

गुलाबपुरा से विहार करके, जगह-जगह सम्मेलन के उद्देश्य से समागत मुनिराजों से मिलते हुए, प्रधानाचार्यजी म० सादड़ी (मारवाड़) पधारे।

अक्षयतृतीया के शुभ मुहूर्त्त में सम्मेलन आरंभ हुआ। सम्मेलन में सम्मिलित सब सन्तो ने सर्वानुमति से निश्चय किया कि सभी सन्त अपनी-अपनी पदवियो का परित्याग कर एकता के पवित्र सूत्र मे आबद्ध हो जाएँ। तदनुसार सब ने अपनी-अपनी आचार्य आदि पदवियाँ त्याग दीं। आपश्री ने भी प्रधानाचार्य पदवी का परित्याग कर दिया। तत्पश्चात् नये सिरे से जैन दिवाकर श्रीआत्मारामजी म० को आचार्य पदवी और पं. मुनिश्री गणेशीलालजी म० को उपाचार्य पदवी प्रदान करना निश्चित किया गया। सोलह मन्त्रियों में आपश्री प्रधानमन्त्री पद से अलंकृत किये गये। वैशाख शु० १३ के पवित्र मुहूर्त्त में लगभग १५ हजार की संख्या में उपस्थित श्रावक-श्राविकाओ एवं बहुसंख्यक सन्तो-सतियों की उपस्थिति मे नवनिर्वाचित उपाचार्यश्री को उपाचार्य की चादर ओढाई गई।

सम्मेलन की सफल समाप्ति के पश्चात् आपश्री ने नाथद्वारा

की ओर विहार किया। वहीं आपका सं. २००९ का चौमासा हुआ। इस चौमासे में सादड़ी-सम्मेलन की नींव को सुदृढ़ बनाने के हेतु मन्त्री-मुनिवरों का सोजत शहर में सम्मेलन करना निश्चित हुआ। आमन्त्रण भेज दिये गये। चातुर्मास सानन्द सम्पन्न करके आपश्री ने सोजत की तरफ विहार किया। मार्ग में अनेक जगह उपाचार्यश्री के साथ आपका समागम हुआ और भविष्य की व्यवस्था क संबंध मे विचार हुआ।

उपाचार्यजी म० तथा प्रधानमंत्रीजी म० आदि प्रमुख सन्त सोजत पधार गये। इस अवसर पर खिचन वाले पं. मुनिश्री समरथमलजो म० आदि सन्तों का समागम हुआ और उनके साथ विचार विमर्श हुआ। यद्यपि यह सन्त श्रमण संघ में सम्मिलित नहीं हुए थे, तथापि स्नेह के कारण पधारे थे। ता. १५-१-५३ से मन्त्रीमण्डल की बैठक हुई। इस बैठक में मंत्रियों का कार्यविभाजन और प्रान्तो का विभाजन किया गया। अनेक प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

सम्मेलन मे विचार किया गया कि अगर श्रमण संघीय उपाचार्य श्री, प्रधानमंत्रीजी, सहमंत्रीजी व्या. वाचस्पतिजी, कविजी और पं० समर्थमलजी म० इन छह महारथियों का चातुर्मास एक ही क्षेत्र मे हो तो लम्बे समय मे शान्ति से विचारविनिमय हो सके, शास्त्रो के संशोधन आदि के संबंध में विचार किया जा सके और आगामी वृहत्सम्मेलन का कार्य सुगम बन सके। यह विचार प्रकाश में आया तो सं० २०१० के चातुर्मास के लिए जोधपुर-श्रीसंघ ने विशेप प्रयत्न किया। वहीं छह प्रमुख मुनिवरों का चौमासा हुआ। इस चातुर्मास में मध्याह्न में छहों मुनिवरों की बैठक होती थी। विविध विषयों पर विचारविनिमय हुआ और उनकी तालिका बना ली गई। शास्त्रीय ग्रन्थों का अवलोकन करके कार्य किया गया।

चातुर्मास के उत्तरार्द्ध में कार्त्तिक शुक्ला पंचमी (ज्ञानपंचमी) के दिन श्रीचांदमलजी भंडारी की दीक्षा उपाचार्य श्रीगणेशीलालजी म० के मुखारविन्द से अनेक संतो-सतियो एवं ४-५ हजार जनता की उपस्थिति मे जोधपुर-श्रीसंघ द्वारा सम्पन्न हुई। आप प्रधान-मंत्री श्रीआनन्दऋषिजी म० की नेश्राय मे शिष्य हुए। चन्द्रऋषिजी नाम रक्खा गया।

इस प्रकार जोधपुर का चातुर्मास सानन्द व्यतीत होने पर प्रधानमंत्रीजी म० का पाली की ओर विहार हुआ। पाली में स्थविर मुनिश्री सादूलसिंहजी म० तथा पं० कवि मुनिश्री रूपचंदजी म. से समागम हुआ। खारची और सिरियारी होते हुए राणावास स्टेशन पधारे। आपने देखा कि यहाँ के तथा आसपास के ग्रामों के अनेक छात्र स्कूल मे पढ़ने जाते है। किन्तु स्थानकवासी सम्प्रदाय की मान्यता के संस्कार दृढ़ करने का यहाँ कोई साधन नहीं है। इस विषय में आपने प्रभावशालो उपदेश दिया। उससे प्रभावित होकर राणावास, सिरियारी, निमलो, रडावास आदि के श्रावक एकत्र हुए। उन्होने ५१ हजार का प्रारंभिक फंड करके एक संस्था की स्थापना करने का विचार किया। इस प्रकार आपश्री के प्रभाव से श्रीवर्द्धमान स्था० जैन बोर्डिंग की स्थापना हो गई। इस संस्था की स्थापना मे अनेक धर्मप्रेमो सज्जनो ने अच्छा सहयोग दिया, किन्तु श्रीमान् चम्पालालजी गूगलिया विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होने तीन वर्ष तक तन मन धन से सेवा करने का निश्चय किया।

राणावास में देवगढ़-श्रीसंघ की विनति हुई। वहाँ तेरहपंथी सम्प्रदाय के आचार्य श्रीतुलसीरामजी के पास दीक्षा होने वाली थी। अतएव देवगढ़-श्रीसंघ उस अवसर पर आपश्री की उपस्थिति चाहता था। प्रधानमंत्रीजी म० श्रीसंघ की प्रार्थना स्वीकार कर देवगढ़

पधारे। वहाँ जैन-जैनेतर जनता पर और विशेषतः देवगढ़ के राव-साहब पर आपके ज्ञान-चारित्र का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। अनेक प्रश्नोत्तर हुए। लोगों ने दोनों सम्प्रदायों की मान्यता का भेद समझा। आचार्य तुलसी से वहाँ के शिक्षित लोगो ने प्रश्न किये, पर वे संतोष-जनक समाधान न कर सके। आपश्री की तात्त्विक विवेचना सुन कर सब का समाधान हुआ। आपकी विद्वत्ता, स्वभाव की शान्तता और गंभीरता आदि ने देवगढ़ की सर्वसाधारण जनता को खूब प्रभावित किया। रावजी सा० के विशेष अनुरोध से आपश्री के राजमहल के विस्तीर्ण प्रांगण में भी दो प्रवचन हुए। यहाँ भी जनता बड़ी तादाद में उपस्थित थी। आपके सदुपदेश से धार्मिक शिक्षण के लिए यहाँ भी पाठशाला स्थापित करने का विचार किया गया था।

देवगढ़ से विहार कर आप नाथद्वारा, देलवाड़ा आदि क्षेत्रों में प्रवचन-सुधा का पान कराते हुए उदयपुर पधारे। यहाँ ६ रात्रि विराजे। उदयपुर के दोनों पक्षों मे व्याप्त क्लेश को शान्त करने का भरसक प्रयत्न किया गया। दोनों ओर के श्रावक आपकी सेवा में उपस्थित हुए। परन्तु कतिपय मुखिया लोग अपने आग्रह का त्याग न कर सके। प्रधानमन्त्रीजी म० ने देखा कि अभी काल नहीं पका है। लोग समझाने से समझने वाले नही। तब उस वार्त्ता को वहीं स्थगित कर दिया।

उदयपुर से विहार करके आप सेमल पधारे। मन्त्री मुनिश्री मोतीलालजी म० वहीं विराजमान थे। उन्हें आपने कुछ आवश्यक निर्देश दिये और मन्त्री मुनिश्री ने उस ओर लक्ष्य रखना स्वीकार किया। तदनन्तर आप नाथद्वारा पधारे और वहाँ श्रीतिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की विद्वत्समिति की बैठक हुई। यहाँ

प्रतापगढ़ श्रीसंघ का तथा दिगम्बर जैन समाज के प्रधान सज्जनों का पत्र लेकर श्रीचांदमलजी रामावत, आये। अतः प्रधानमन्त्रीजी महाराज के प्रतापगढ़ की तरफ विहार किया।

सनवाड़ में पं. मुनिश्री इन्द्रमलजी म० का समागम हुआ। यहाँ मुनि उत्तमचन्दजी को श्रमण संघ में मिलाकर आहार-पानी सम्मिलित करने की आज्ञा आपश्री ने की। जब आप कपासन पधारे तो वहाँ के श्रावको ने धार्मिक पाठशाला चलाने का निश्चय किया। तत्पश्चात् आप बड़ी सादड़ी पधारे। यहाँ तपस्वी श्रीधन-राजजी म० का मिलाप हुआ। यहाँ के राजराणा श्रीमान् हिम्मत-सिंहजी सा० प्रधानमंत्रीजी म० की सेवा मे उपस्थित हुए और दर्शन तथा वार्त्तालाप करके बहुत सन्तुष्ट हुए। छोटीसादड़ी पधारने पर आपश्री ने वहाँ के श्रीगोदावत हाई स्कूल मे संस्कृत-प्राकृत की उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने पर जोर दिया। संस्था के अध्यक्ष ने तथा मन्त्रीश्री चॉदमलजी नाहर ने आगामी बैठक मे इस संबंध मे विचार कर व्यवस्था करने का आश्वासन दिया। तत्पश्चात् विहार करते हुए आप प्रतापगढ़ पधार गये। वहाँ वयोवृद्ध महा-सती श्रीहगामकुंवरजी म० ठा० ५ को दर्शन दिये। प्रधानमन्त्रीजी म० की योग्यता और विद्वत्ता आदि सद्गुणो से प्रतापगढ़ की जनता परिचित थी, अतः वकील, डाक्टर, राज्यकर्मचारी तथा विद्वान् पण्डित आदि शिक्षित वर्ग भी सेवा मे उपस्थित होकर व्याख्यान एवं चर्चावार्त्ता से लाभ उठाने लगा। उस समय प्रताप-गढ़ में दिगम्बर समाज मे प्रतिष्ठा महोत्सव था। उस अवसर पर जर्मनी के तीन विद्वान् आमन्त्रित किये गये थे। वे प्रधानमन्त्रीजी म० की सेवामे अनेक पण्डितो के साथ आये। संस्कृत भाषा में वार्त्तालाप हुआ। प्रश्नोत्तर हुए। प्रधानमन्त्रीजी म० के उत्तर सुनकर वे अत्यन्त संतुष्ट हुए। पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म०

कृत ज्ञानकुंजर, चित्रालंकार काव्य और श्रीदशवैकालिक का पन्ना जिस पर सम्पूर्ण दशवैकालिक लिखा था, देख कर वह चकित रह गये।

आगामी चातुर्मास की प्रार्थना करने के लिए बदनौर, बड़ी सादड़ी और प्रतापगढ़ का श्रीसंघ उपस्थित हुआ। परन्तु बड़ी सादड़ी के राजराणा साहब ने पट्टा लिख कर दिया था कि अगर प्रधानमन्त्रीजी म० का चातुर्मास यहाँ हो तो आश्विन मास में भैंसों और बकरों की जो हिंसा होती है, उसे सदा के लिए बन्द कर दिया जायगा। महाराज श्री ने अभयदान के इस महान् कार्य को महत्त्व देकर बड़ी सादड़ी मे चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

रतलाम में महासतीजी श्रीपानकुंवरजी म० ने अस्वस्थावस्था में आपश्री के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की। अतः आप रतलाम पधारे और श्रीधर्मदास मित्रमण्डल में विराजे। यहाँ पर महाराष्ट्रमंत्री पं० श्रीकिसनलालजी म० तथा पं० रत्न श्रीसौभाग्यमलजी म० आदि सन्तों और सतियों का मिलाप हुआ। श्रमणसंघ के कार्य के सबंध में आपने सन्तों एवं सतियों को यथोचित सूचनाएँ दीं। तत्पश्चात् विहार करके मन्दसौर पधारे। यहाँ स्थानक के संबध म परस्पर जो मतभेद और तज्जन्य क्लेश था, वह आपके पदार्पण से शान्त हो गया। मार्ग में कालूखेड़ा ग्राम में पण्डिता श्रीरत्नकुंवरजी म० ठा० ८ का मिलाप हुआ। श्रीलछमाजी म० पंडिता श्रीवल्लभकुंवरजी म० आदि ठा० ४ को शाजापुर-चातुर्मास के लिए श्रीसंघ की प्रार्थना पर ध्यान देकर आदेश दिया। भीमगढ़ पधारने पर काका भीमसिंहजी का अत्यन्त धर्मानुराग देखकर गढ़ पर आपने एक व्याख्यान फर्माया। यहाँ से आप बड़ी सादड़ी

पधारे। आपके स्वागत के लिए राजराणा सा० श्रीहिम्मतसिंहजी, श्रीभीमसिंहजी, इतर सज्जन और श्रावक-श्राविका आदि सामने आये। जय-जयघोष के साथ स्थानक में पदार्पण हुआ।

बड़ीसादड़ी मे पूज्यप्राद गुरुवर्य श्रीतिलोकऋषिजी म० की पुण्यतिथि तथा उपाचार्य श्रीगणेशीलालजी म० की जयन्ती उल्लास के साथ मनाई गई। प्रतिदिन नियत समय पर आपश्री का प्रवचन होता था और जैन-जैनेतर जनता उससे लाभ उठाती थी। प्रथम मुनिश्री मोतीऋषिजी म० सुखविपाकसूत्र वांचते थे और फिर आप पधार कर विविधविषयस्पर्शी उपदेश फरमाते थे। सब श्रोताओ के चित्त पर उपदेश का अच्छा असर पड़ता था। संवत्सरी पर्व तक जनता की उपस्थिति खासी अच्छी होती थी; परन्तु बाद मे स्थानीय श्रावकों मे पारस्परिक प्रेम न रहने से और जय बोलने के विषय में मतभेद होने से आपस मे द्वेषभाव फैल गया। प्रधानमंत्रीजी म. ने दोनो पक्षों की शांति के लिए विपक्षीय लोगो के सुझावसे पाँच जयघोष के स्थान पर सिर्फ 'भगवान महावीर की जय' ही बोलना आरंभ कर दिया। इस प्रकार चातुर्मास व्यतीत हो गया। हाँ, कार्तिक शु० १२ को श्रीजैनदिवाकरजी म० की जयन्ती मनाई गई। उन दिनों प्रधानमंत्रीजी म० अस्वस्थ थे, अतः श्रीमोतीऋषिजी म० ने दिवाकरजी म० के जीवन के विषय मे अपने उद्गार प्रकट किये।

बड़ीसादड़ी का चौमासा समाप्त करके प्रधानमंत्रीजी म० कानौड़ पधारे। शास्त्रज्ञ मुनिश्री मोतीलालजी म० का समागम हुआ। कपासन मे पं० मुनिश्री इन्द्रमलजी म० से भेंट हुई। यहीं से बीकानेर-सम्मेलन के संबंध मे सूचनाएं दी गईं और संगठन के संबंध में विचार हुआ। बदनौर के श्रीसंघ का अत्याग्रह होने से आपश्री ठा० ८ वहाँ पधारे। परासोली मे पं० मुनिश्री भूरालालजी

म० ठा० ५ के साथ समागम हुआ। वयोवृद्ध पं० र० स्थविर मुनिश्री पन्नाऋषिजी म० मसूदा में विराजमान थे। उनकी तरफ से सूचना पाकर प्रधानमंत्रीजी म० मिलने के लिए मसूदा पधारे। सहमंत्री पं० रत्न मुनिश्री हस्तीमलजी म० भी मसूदा पधार गये। शास्त्रज्ञ मुनिश्री मोतीलालजी म० भी पधारे। इस प्रकार ७४ संतों और १६ सतियों का एक छोटा-सा सम्मेलन हो गया। यहाँ उपस्थित मुनि-वरों ने विचारविमर्श के पश्चात् निश्चय किया कि सब मुनिवर बीकानेर इस वर्ष नहीं पहुँच सकते; अतः सं० २०१२ के चातुर्मास के पश्चात् सब की सम्मति लेकर किया जाय। इस प्रकार सम्मेलन आगे के लिए स्थगित कर दिया गया।

मसूदा में श्रीहिम्मतऋषिजी म० को निमोनिया हो गया। अतएव उनकी सेवा में पं. मुनिश्री मोतीऋषिजी म० तथा श्रीचन्द्र-ऋषिजी म० को रख कर आपने विजयनगर गुलाबपुरा की ओर विहार किया। बदनौर श्रीसंघ की पहले से प्रार्थना थी। इस बार भी प्रार्थना हुई। वहाँ के ठाकुर सा० का भी विशेष आग्रह हुआ। अतः आपने चातुर्मास की स्वीकृति दे दी। हिम्मतऋषिजी म० पूरी तरह स्वस्थ नहीं हुए थे, अतएव उनकी चिकित्सा के लिए प्रधान मन्त्रीजी म० अजमेर पधारे। कुछ दिन विराज कर चिकित्सा कर-वाई। मगर वे विहार करने में समर्थ न हो सके। तब एक सन्त को रख कर और दोनों सन्तों को पं. र. सहमन्त्रीजी श्रीहस्तीमलजी म० की सेवा में रख कर आप चातुर्मासार्थ बदनौर पधारे। बद-नौर में जैन जैनेतर जनता तथा ठाकुर साहब श्रीमान् गोपालसिंहजी ने आपश्री का हार्दिक स्वागत किया। जय-जयकार के तुमुल घोष से गगन को गुञ्जायमान करके आपका प्रवेश कराया। आषाढ़ शु. १० ता० २८-६-५५ को आपने बदनौर में पदार्पण किया। बद-नौर ठिकाने के ५३ गांव और आसींद चौकी के १४ गाँवों में परस्पर

में सामाजिक वैमनस्य था वह आपश्री के सदुपदेश से और स्थानीय ठाकुर साहब के सत्प्रयत्न से तथा संवत्सरी पर्व के शुभ प्रसंग पर उपस्थित सभी गांवो के प्रमुख श्रावकों के सहयोग से समाज में शान्ति हुई। यहाँ पर श्रीवर्द्धमान स्था० जैन वाचनालय की स्थापना हुई।

यहाँ स्था. जैनों के ३५ घर है। साधारण छोटा क्षेत्र है, पर श्रावकों की भावभक्ति असाधारण है। जैनेतर भाई भी व्याख्यान आदि का अच्छा लाभ ले रहे हैं।

यह प्रधान मन्त्रीजी म० का संक्षिप्त परिचय है। इससे आपके महान् जीवन की एक साधारण सी झांकी मात्र मिल सकती है। स्था० जैन संघ पर आपका कितना ऋण है, आपने विद्या-प्रचार, संघ संगठन आदि कार्यों में कितना योग प्रदान किया है, किस प्रकार संघ की सेवा की है, आदि बातो पर विस्तार से प्रकाश डालने के लिए स्वतंत्र ग्रंथ की अपेक्षा है। निस्सन्देह आपने अपने उच्चतर व्यक्तित्व, उत्कृष्ट आचार और विशद विचारों से एक भव्य और प्रशस्त आदर्श मुनियो के समक्ष खड़ा किया है। हार्दिक कामना है कि आप दीर्घजीवी हों और समाज के उत्थान मे अपनी पवित्र शक्तियो का सदुपयोग करते रहे।

आपश्री के आठ शिष्य हुए, उनका परिचय आगे दिया गया है।

श्रीहर्षऋषिजी महाराज

आपने गुरुवर्य श्रीरत्न ऋषिजी म० के सदुपदेश से प्रभावित होकर गुरुवर्य के मुखारविन्द से ही दीक्षा अंगीकार की। पं. रत्न, प्र. वक्ता श्रीआनन्द ऋषिजी म० की नेश्राय में शिष्य हुए।

मन की चंचलता एवं अस्थिरता के कारण तथा प्रकृति के वशीभूत होकर आप पृथक् हुए। अभी आप श्रीजैन दिवाकरजी म० के सन्तों की सेवा में विचरते हैं।

वयोवृद्ध मुनिश्री प्रेमऋषिजी महाराज

कच्छ प्रदेश के अन्तर्गत जखौ बंदर निवासी, दशा ओसवाल जातीय श्रीमेघजी भाई की धर्मपत्नी श्रीकुंवर बाई को कुक्षि से, श्रावण शु० ५; सं० १९३४ को आपका जन्म हुआ। आपका शुभ नाम श्रीप्रेमजी भाई था। व्यापार के निमित्त आप अमलनेर (खानदेश) आये। वहाँ एक जापानी कम्पनी में काम करते थे। व्यवहार कुशलता के कारण आपको अच्छी आय थीं। गुरुवर्य श्रीरत्न ऋषिजी म० अमलनेर पधारे तो आपने अर्थ की मर्यादा कर ली। बीस हजार की सम्पत्ति हो जाने पर व्यवसाय न करने की प्रतिज्ञा ले ली। इस प्रकार अर्थतृष्णा पर अंकुश लगा कर आप सन्मार्ग में प्रवृत्त हुए और धर्मकृत्यों की ओर विशेष लक्ष्य देने लगे।

सं. १९८४ में पं. रत्न श्रीआनन्द ऋषिजी म० के चातुर्मास में आप हींगनघाट में करीब दो महीने अलग मकान लेकर रहे थे। उस समय आपने कहा था—मैं आपकी सेवा में सर्वप्रथम उपस्थित हुआ हूं; अतः मेरा नंबर पहला है। तत्पश्चात् प्रतिवर्ष चातुर्मास मे करीब दो मास तक पं. रत्न महाराजश्री की सेवा मे उपस्थित होकर धर्म ध्यान का लाभ लेते थे। आप सं. १९९० के मन्दसौर-चातुर्मास में उपस्थित हुए। तेले की तपश्चर्या की। पारणा के दिन आपने महाराजश्री से प्रश्न किया—आप कितनी उम्र वाले को अपनी सेवा में ग्रहण कर सकते हैं? तब महाराजश्री ने फर्माया—

'पच्छा वि ते पयाया. खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं।' भगवान् ने अधिक से अधिक उम्र की कोई सीमा निर्धारित नहीं की है। वृद्धावस्था मे संयम ग्रहण करने वाले भी अपना कल्याण कर सकते है। हम दोनों मुनि तरुण हैं। आप जैसे अनुभवी और वयोवृद्ध साथी मिले तो अच्छा ही है। तब आपने दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। यही नही, गृहकार्य की व्यवस्था करने और परिवार-जनों से आज्ञा प्राप्त करने के लिए आप अमलनेर गये। अन्ततः ५७ वर्ष की उम्र में माघ शु. १० सं० १९९० में, बोदवड़ ग्राम में आपने भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली।

पं० रत्न मुनिश्री आनन्दऋषिजी म० को बोदवड़ श्रीसंघ की अत्यन्त आग्रहपूर्ण प्रार्थना को स्वीकार करके आपकी दीक्षा के लिए शीघ्रता से मन्दसौर से बोदवड़ पधारना पड़ा।

अपनी दीक्षा के पश्चात् आपने गुरुवर्य के साथ करीब २०० मील का विहार किया और दो वैरागिन बाइयों की दीक्षा के लिए करमाला (सोलापुर) पधारे। प्रथम चातुर्मास सं० १९९१ का पाथर्डी मे हुआ। पूना में दक्षिणप्रान्तीय सतीसम्मेलन में आपसे परामर्श किया जाता था और आप उचित परामर्श दिया करते थे। वृद्धावस्था होने पर भी आपने गुरुवर्य की खूब सेवा की है। गुरु म० के साथ ही पूना घोड़नदी, बम्बई, घाटकोपर, पनवेल, अहमदनगर, बोरी, बाम्बोरी क्षेत्रो मे चातुर्मास किये। सं० १९९९ में युवाचार्य श्रीआनन्दऋषिजी म० को जब पाथर्डी में पूज्यपदवी प्रदान की जाने वाली थी, तब आपकी शारीरिक स्थिति क्षीण थी। निर्बलता थी। पाथर्डी तक पहुंचना कठिन था। परन्तु आप अपने मनोबल की दृढ़ता के सहारे तथा गुरुभक्ति का अवलम्बन लेकर गुरु म० के साथ ही साथ पाथर्डी पहुँचे।

पाथर्डी में आपके पैरों पर सूजन आ गई। चलने की शक्ति न रही। तब पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० ने मुनिश्री मोतीऋषिजी म० को आपकी सेवा में रखकर चांदा-चातुर्मास के लिए विहार किया।

आपश्री का सं. २००० का चातुर्मास पाथर्डी में हुआ। भाद्रपद शु० १४ के दिन आपके शरीर में विशेष वेदना हुई। डाक्टरों और वैद्यों ने बतलाया कि आपकी स्थिति आशाजनक नहीं जान पड़ती। चांदा समाचार भेजे गये। पूज्यश्री ने श्रीमिश्रीऋषिजी म० को सेवा में भेजा। दूसरे दिन ही वे पाथर्डी आ पहुँचे। आश्विन कृ० २ को आपने अच्छी तरह प्रतिक्रमण किया। परन्तु रात्रि में ३ बजे से बीमारी ने उग्र रूप धारण कर लिया। आपके संसारपक्ष के पुत्र श्रीविसनजी भाई उपस्थित थे। पाथर्डी के प्रमुख श्रीमोतीलालजी गूगलिया, श्रीउत्तमचन्दजी मूथा, श्रीहीरालालजी गांधी आदि श्रावक और राजधारी त्रिपाठोजी भी उपस्थित थे। आपने संथारा ग्रहण करने की भावना प्रदर्शित की। आखिर रात्रि में ५॥ बजे संथारे का प्रत्याख्यान करा दिया गया।

आपश्री के संथारे का समाचार वायुवेग की तरह आसपास के ग्रामों में फैल गया। अहमदनगर और पूना आदि क्षेत्रों मे तार से सूचना दी गई। तार मिलते ही अहमनगर से सेठ माणकचंदजी मूथा सपरिवार आये। प्रातःकाल होते हो महासती श्रीरंभाजी म०, प० श्रीसुमतिकुंवरजी म० आदि ठा० ४ पधारे। शास्त्रस्वाध्याय, नवकारमहामंत्र, चार शरण आदि सुनाये। आपश्री एकाग्रचित्त होकर सुनते रहे। चौविहार प्रत्याख्यान किया। मध्याह्न में २॥ बजे लगभग आपश्री ने शरीर त्याग दिया। पूर्ण समाधि के साथ आपने अन्तिम साधना की। पाथर्डी श्रीसंघ ने इस अवसर पर सेवा का लाभ उत्साहपूर्वक लिया था।

दीक्षित होकर आपने शिष्य धर्म का पूर्ण रूप से निर्वाह किया। पूज्यश्री को यथाशक्ति सब कार्यों में सहयोग दिया। पूज्यश्री आपको अपनी दाहिनी भुजा समझते थे। पण्डिता महासती श्री सुमतिकुंवरजी म० की दीक्षा के कार्य में तथा शिक्षण मे आपने सम्पूर्ण रूप से योग दिया। पूज्यश्री तथा आपके अनुग्रह से ही उनका इतना उच्चकोटि का शिक्षण हो सका। सरल हृदय मुनिश्री मोतीऋषिजी म० को तो वह अपना लघु धर्मबन्धु ही समझते थे। उन्होंने भी सच्चे अन्तःकरण से आपकी सेवा की थी।

पण्डित सेवाभावी मुनिश्री मोतीऋषिजी महाराज

जन्म नायगांव (पूना) निवासी श्रीमान् हजारीलालजी कांकलिया की धर्मपत्नी श्रीसुन्दर बाई की कुक्षि से, सं० १९५४, भाद्रपद कृ० १४ (म० श्रावण वदि १४) शनिवार के दिन हुआ। नाम श्रीमोतीलालजी रक्खा गया। बारह वर्ष की बाल्यावस्था में ही पितृवियोग का भीषण आघात सहन करना पड़ा। पितृवियोग के पश्चात् नायगांव पेठ निवासी श्रीगुलाबचन्दजी भणसाली जो गृहस्थावस्था के मामाजी थे—के यहाँ व्यावहारिक शिक्षा के लिए करीब ७-८ वर्ष रहे। शिक्षा-प्राप्त करने के बाद माताजी के साथ पूना मे रहने लगे। सन्त समागम की चित्त में स्वतः अभिरुचि थी, अतः धर्मभावना जागृत हुई। सेवा भावना बाल्यकाल से ही थी।

चातुर्मास में तल्लीनता के साथ सन्तों के प्रवचन सुने। इस कारण संसार की असारता का अनुभव होने लगा। शुद्ध आत्म स्वरूप की उपलब्धि करने का श्रेयस्कर विचार अन्तरात्मा में उदित हुआ। दीक्षित होकर निवृत्तिमय जीवन यापन करने की इच्छा जागी। परन्तु मातृभक्ति के कारण मातजी के अकेली रह

जाने का खयाल आया ! दीक्षा लेने के संकल्प को कुछ काल के लिए स्थगित कर दिया। इस तरह माताजी के सुख और सन्तोष के लिए अपनी आकांक्षा का भी दमन किया। गृहस्थावस्था में रहते हुए व्रत, प्रत्याख्यान, संवर, सामायिक, पौषध करते हुए धार्मिक जीवन यापन करते रहे। छह वर्ष बाद सं. १९८६ में माताजी छोड़ कर चली गईं। अब कोई बन्धन न रहा। सद्गुरु की टोह में रहे। सं. १९९२ में पं. रत्न श्रीआनन्द ऋषिजी म० का पूना मे चातुर्मास हुआ। प्रतिदिन स्थानक मे ही संवर करने की प्रवृत्ति थी। एकदिन विचार आया-सांसारिक प्रवृत्तियों में करीब आधा जीवन व्यतीत कर दिया। इतने दिनों में इस जीवन के लिए जो कुछ किया है, उसका सौवां हिस्सा परलोक के लिए नहीं किया। अब इस प्रवृत्तिमय जीवन का परित्याग कर आत्मा के श्रेयस् के लिए भी कुछ करना चाहिए !

इस प्रकार का विशुद्ध अध्यवसाय उत्पन्न होने पर श्रीबालारामजी गेलड़ा के साथ महाराजश्री की सेवा में उपस्थित हुए। निवेदन किया—गुरुदेव, दीक्षा लेने की मेरी भावना है; किन्तु ज्ञानाभ्यास की सुविधा हो तो ही दीक्षा लेना चाहता हूँ।

पं. रत्न म० ने उत्तर दिया—तुम्हारा विचार प्रशस्त है। मानव-जीवन की वास्तविक सफलता अपने अनन्त भविष्य को उज्ज्वल बनाने में ही है। दीक्षा लेनी है तो जहाँ लेनी हो वहीं लो, परन्तु देर मत करो। उम्र ३८ वर्ष की हो गई है !

'तो मैं आपकी ही शरण ग्रहण करना चाहता हूँ।' इस प्रकार निवेदन करने पर पं० र० महाराजश्री ने फर्माया—जैसी इच्छा। मैं तुम्हारे ज्ञानोपार्जन मे और संयम के आराधन में सहायता देने की भावना रखता हूँ।

महाराजश्री से आश्वासन पाकर पूर्ण सन्तोष हुआ। उसी समय से गार्हस्थिक कार्यों की व्यवस्था आरम्भ कर दी। चौमासा समाप्त होने पर महाराजश्री चन्होली ग्राम में श्रीअमृतकुंवरजी म. की दीक्षा के लिए पधार गये। जब महाराजश्री वापिस पूना पधारे तो फाल्गुन शु० ५ गुरुवार के प्रभात में उत्कृष्ट वैराग्यभाव से दीक्षा ग्रहण कर ली। नाम मोतीऋषिजी रक्खा गया। दीक्षा के पावन प्रसंग पर ३५ महासतियाँ और ३ सन्त उपस्थित थे। पूना वालो ने इस अवसर पर अच्छा धर्मानुराग प्रकट किया। श्रीमान् देवीचन्दजी उत्तमचन्दजी संचेती का विशेष उल्लेखनीय सहयोग रहा।

सं० १९९३ के घोड़नदी-चातुर्मास में अध्ययन आरंभ हुआ। संस्कृत और प्राकृत भाषाओ के व्याकरण का अभ्यास किया। पनवेल मे गुरुवर्य के मुखारविन्द से धर्मभूषण परीक्षा के पाठ्यग्रंथो का अध्ययन किया। बाद मे श्रीति० र० स्था. जैन धार्मिक परीक्षाबोर्ड से प्रथम श्रेणी मे धर्मभूषणपरीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् पाणिनीयव्याकरण का अध्ययन किया। हितोपदेश, न्यायदीपिका, प्रमाणनयतत्त्वालोक आदि का अभ्यास करके और घोड़नदी-सिद्धान्तशाला मे चार मास ठहर कर जैनसिद्धान्तप्रभाकर परीक्षा का अभ्यास पूर्ण किया और परीक्षा देकर उत्तीर्णता प्राप्त की।

मुनिश्री प्रेमऋषिजी म० की अस्वस्थता के कारण पाथर्डी ठहरे। तब अध्ययन का फिर अवसर मिल गया। जैनसिद्धान्तशास्त्री परीक्षा के प्र० खं० के पाठ्यक्रम का अध्ययन किया और यथासमय परीक्षा देकर उसमें उत्तीर्णता पाई। करीब १० महीने तक पाथर्डी मे रहे।

इसके पश्चात् पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म. की सेवा में रह कर ज्ञानोपार्जन किया।

श्रीबेलापुर (श्रीरामपुर-जि० अहमदनगर) के चातुर्मास में, प्रारंभ में श्रीउपासकदशांगसूत्र और चिंचोड़ी--सिराल के चातुर्मास मे भी शास्त्र वांचने का अवसर प्राप्त हुआ।

सं० २००६ में पूज्यश्री के साथ ब्यावर में चातुर्मास किया था। इस चातुर्मास में थोकड़ो, बोलों और शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त किया। उदयपुर--चातुर्मास में श्रीराजमलजी बाफणा से भी अनेक बोलों आदि की धारणा की। वहाँ मध्याह्न मे श्रीभगवतीसूत्र का वांचन होता था। उससे भी पर्याप्त लाभ उठाया।

गुरुदेव की पूर्ण कृपा से संयम-जीवन सफलता के साथ व्यतीत हो रहा है। गुरुदेव के आदेश को शिरोधार्य करके ऋषि-सम्प्रदाय का यह इतिहास लिखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

मुनिश्री हीराऋषिजी महाराज

आप कच्छ प्रान्तीय देसलपुर निवासी श्रीखिमजी भाई के पुत्र थे। वीसा ओसवाल जाति में जन्मे थे। युवाचार्य पं० रत्न श्रीआनन्दऋषिजी म० का मलाड़ (बम्बई) क्षेत्र में पदार्पण हुआ। उपदेश सुनने से दीक्षा ग्रहण करने की भावना जागृत हुई। कुछ दिनो तक शिक्षणप्रीत्यर्थ साथ में रहे। किन्तु माटु गा में आपके पिताजी आये और वापिस घर ले गये पिताजो का देहान्त होने के पश्चात् सं० १९९६ में युवाचार्यश्री का चातुर्मास पनवेल में था। चातुर्मास के अन्तिम दिनो में पनवेल आकर आपने प्रार्थना की-मुझे दीक्षा लेनी ही है। सर्वप्रथम मैं आपकी सेवा मे रहना चहता हूँ। आप स्वीकार न करेंगे तो फिर किसी दूसरे मुनिराज की सेवा में रहूँगा।

आपका मनोभाव जान कर आपके मामाजी की अनुमति से तीन मास तक पुनः शिक्षण के निमित्त साथ रक्खा। युवाचार्य श्री जब लोनावला पधारे तो आपने कहा—गुरुदेव, अब तो चारित्र रत्न प्रदान कीजिए! आपकी उत्कृष्ट भावना देखकर सं० १९९६ में माघ शु. ६ रविवार के दिन आपको दीक्षा प्रदान की गई। आपका नाम श्रीहीराऋषिजी रक्खा गया। दीक्षा का समस्त कार्य श्रीमान् मोहनलालजी पन्नालालजी चोरड़िया ने सहर्ष किया। उस समय आप करीब २५ वर्ष के तरुण थे।

क्रियाकाण्ड की तरफ आपकी विशेष रुचि थी। ३०-३५ थोकड़े कंठस्थ किये थे। होनहार सन्त थे।

लोनावला से युवाचार्यजी महाराज अनेक ग्रामों में धर्म-प्रचार करते हुए दावड़ी (पूना) पधारे। वहाँ आपके शरीर पर ज्वर ने आक्रमण किया। दस्त और वमन होने से विशेष घबराहट हुई। दावड़ी-श्रीसंघ ने औषधोपचार करवाया, मगर दूसरे दिन आप बेसुध हो गये और अनित्य शरीर को त्याग कर चल बसे।

आप केवल २१ दिन तक ही संयम का पालन कर सके। जिस दिन आपने दीक्षा धारण की थी, उसी दिन अर्थात् रविवार के दिन ही आप स्वर्ग सिधारे।

आपकी धारणाशक्ति अच्छी थी। ज्ञानाभ्यास की उत्कृष्ट अभिरुचि थी। संयम की ओर भी आपका पूर्ण लक्ष्य था। आपसे भविष्य में बड़ी आशाएँ थीं; मगर निर्दय काल ने शीघ्र ही आप पर हमला कर दिया। कौन जाने, किस क्षण, किसके जीवन का अन्त आने वाला है!

मुनिश्री ज्ञानऋषिजी महाराज

सिरसाला (पूर्वखानदेश) के निवासी थे । गृहस्थावस्था में आपका नाम बाबूलालजी था । जाति से रेदासणी वीसा ओसवाल थे । सं० १९९० के मन्दसौर-चातुर्मास में पं० रत्न मुनिश्री आनन्द-ऋषिजी म० की सेवा में धार्मिक अभ्यास के लिए रहे । बाद में विवाह हुआ । फिर भी आपके अन्तस्तल में वैराग्यभाव बना रहा । सं० १९९८ बोरी (पूना) में चातुर्मास पूर्ण करके अहमदनगर बेलापूर आदि क्षेत्र स्पर्शते हुए युवाचार्यश्री वरि ग्राम में पधारे उस समय आप उपस्थित हुए । इस बार आपने सपत्नीक दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की । तत्पश्चात् आप अपनी पत्नी के साथ पांचेगांव (अहमदगर) में आये । आपकी पत्नी महासती श्रीरंभा-कुंवरजी म० की सेवा में तथा आप युवाचार्यश्री की सेवा में शिक्षण प्राप्ति के लिए रहे । दोनों ने साधुप्रतिक्रमण आदि सीख लिया । तब आपने आषाढ़ शु० ६ सं० १९९९ के दिन मीरी में युवाचार्यश्रीजी से दीक्षा धारण की । आपकी धर्मपत्नी आषाढ़ शु. २ को ही दीक्षित हो चुकी थीं । आपका नाम श्रीज्ञानऋषिजी रक्खा गया । दोनों ने तरुणावस्था में संयम लिया । दीक्षा का समस्त व्यय श्रीबाबूलालजी गाँधी तथा बंसीलालजी गूगलिया बंधुओं ने किया ।

वैराग्यभावना होने पर भी आपमें एक बड़ा दोष था । प्रकृति के बड़े जिद्दी थे । कितना ही समझाने पर भी पकड़ी बात को छोड़ना नहीं जानते थे । श्रीरामपुर (बेलापुर) चातुर्मास के समय आपके परिणामों में शिथिलता उत्पन्न हो गई । स्वच्छंदता बढ़ गई । परिणाम यह आया कि चातुर्मास के बाद एकलविहारी हो गये । आखिर अपनी प्रकृति के कारण चरित्ररत्न को न सँभाल सके ।

मुनिश्री पुष्पऋषिजी महाराज

राणावास (मारवाड़) निवासी श्रीछोगालालजी कटारिया के आप सुपुत्र हैं। पूसालालजी आपका नाम था। सं० २००६ में पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० राणावास पधारे तो आपकी सुधा-स्राविणी वाणी सुनकर आपके हृदय में धर्मप्रेम जागृत हुआ। आप पूज्यश्री के साथ ब्यावर गये। जब ब्यावर से उदयपुर पधारे तब भी आप सेवा में ही थे। उदयपुर-चातुर्मास में आपने साधु-प्रतिक्रमण आदि सीख लिया था। तत्पश्चात् मार्गशीर्ष शु० ५ गुरुवार के दिन उदयपुर में ही आपने दीक्षा ग्रहण की दीक्षामहोत्सव के अवसर पर पण्डिता महासती श्रीरतनकुंवरजी म० ठाणा १० भी उपस्थित थे। श्रीमान् रघुनाथसिंहजी-गुलुंदा वाले, उदयपुर निवासी ने दीक्षा का उत्साहपूर्वक सब कार्य किया। आपने शक्ति-अनुसार शास्त्रों का वाचन किया है। सम्प्रति श्रीहिम्मतऋषिजी म० की अस्वस्थता के कारण अजमेर में सहमंत्री पं० रत्न श्रीहस्तिमलजी म० की सेवा में विराजमान हैं।

मुनिश्री हिम्मत ऋषिजी महाराज

मंगरुल चंवाला (बरार) निवासी श्रीछोगमलजी भंडारी आपके पिताजी थे। माताजी का नाम श्रीदगड़ी बाई था। आप हिम्मतमलजी के नाम से पुकारे जाते थे।

महासती पं० श्रीसिरेकुंवरजी म० तथा श्रीफूलकुंवरजी म० के सदुपदेश से आप पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० की सेवा में आये। शिक्षणप्रीत्यर्थ सेवा मे रहे और धार्मिक शिक्षण लेने लगे। किन्तु कुछ दिनों बाद आपको अमरावती से वापिस घर जाना पड़ा। फिर भी आपके अन्तःकरण मे वैराग्य का जो अंकुर उत्पन्न हो

गया था, वह मुरझा नहीं सका। अतएव आप भीलवाड़ा-चातुर्मास के समय पुनः प्रधानाचार्य श्री की सेवा में आ पहुँचे। दीक्षा ग्रहण करने का अपना संकल्प प्रकट किया। मार्गशीर्ष शु० ५ सोमवार, सं० २००८ के दिन आप दीक्षित हुए। दीक्षा-उत्सव पर मुनिश्री छोगालालजी म० तथा श्रीगोकुलचंदजी म० पधारे थे। पण्डिता श्रीरतनकुंवरजी म०, श्रीरामकुंवरजी म० ठा० ४ तथा भूदेश्वर वाले श्रीसोभागाजी म० (टीबूजी) म० ठा० ४ की भी उपस्थिति थी। दीक्षा-महोत्सव भोपालगंज (भीलवाड़ा) श्रीसंघ की ओर से उत्साह के साथ आयोजित किया गया था। लगभग ७-८ सौ की संख्या में बाहर की जनता उपस्थित थी।

श्रीहिम्मत ऋषिजी म० ने ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की। नाथद्वारा-चातुर्मास मे हिन्दी भाषा का शिक्षण लिया। कुछ मास तक आप सहमन्त्री पं. रत्न मुनिश्री हस्तीमलजी म० की सेवा में रहे थे। शास्त्रज्ञ मुनिश्री मोतीलालजी म. के समीप बंबोरा (मेवाड़) चातुर्मास में रहे। कानौड़ में आप पुनः गुरुवर्य की सेवा मे पधार गये। सम्प्रति अस्वस्थता के कारण मुनिश्री पुष्पऋषिजी म० के साथ अजमेर में पं. रत्न सहमन्त्रीजी श्रीहस्तीमलजी म० की सेवा मे है। बंबोरा मे आपने मुनिश्री मोतीलालजी म के मुखारविन्द से श्रीआचारांग, सूयगडांग, जीवाभिगम और भगवती सूत्र का वाचन किया है। अजमेर चातुर्मास में मुनिश्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी म के समीप आपने ज्ञानलब्धि, नवतत्त्व, अठाणु बोल का बासठिया, गतागति आदि ८-१० थोकड़ों का ज्ञान उपार्जन किया। चातुर्मास पूर्ण होने के बाद दोनो ठाणे प्रधानमन्त्री म० की सेवा में पधार गये है।

मुनिश्री चन्द्रऋषिजी महाराज

आप कड़ा (अहमदनगर) निवासी श्रीचुन्नीलालजी भंडारी की धर्मपत्नी श्रीमती सक्कर बाई के आत्मज हैं। सं० १९७१ में आपका जन्म हुआ। आप दो भाई हैं। आपका नाम चांद-मलजी था।

अहमदनगर में विराजित प्रवर्त्तिनी पण्डिता श्रीउज्ज्वल-कुंवरजी म० के सदुपदेश से प्रभावित होकर आपके मन ने निश्चय किया कि इस अनित्य, असार संसार को त्याग कर शाश्वत सिद्धि प्राप्त करने के लिए मुनि-दीक्षा अंगीकार करना ही योग्य है। इस संकल्प के अनुसार आप सं० २०१० में चातुर्मास के समय विराजमान प्रधानमंत्रीजी म० की सेवा में जोधपुर में उपस्थित हुए। दीक्षा लेने की भावना प्रकट की।

साधुप्रतिक्रमण, एषणासमिति के दोष तथा कुछ सामान्य शिक्षण होने के बाद सं० २०१० कार्त्तिक शु० ५ (ज्ञानपंचमी) के शुभ मुहूर्त्त में उपाचार्य श्री १००८ श्रीगणेशीलालजी म० तथा महा-रथी सन्त-सतियो की उपस्थिति में जोधपुर मे आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। प्रधानमंत्रीजी म० की नेश्राय में शिष्य हुए। जोधपुर-श्रीसंघ ने दीक्षामहोत्सव का उत्साह के साथ आयोजन किया। दीक्षा के पश्चात् आपने श्रीदशवैकालिकसूत्र के ५ अध्ययन, भक्तामरस्तोत्र, चिन्तामणिस्तोत्र महावीराष्टक, तिलोकाष्टक, रत्नाष्टक आदि तथा बड़ीसाद्ड़ी में लघुदंडक एवं कर्मप्रकृति का थोकड़ा आदि कंठस्थ किये हैं। आप सेवाभावी और सरल स्वभाव के सन्त है। ज्ञान-ध्यान में संलग्न रहते है आपका शास्त्रीय एवं संस्कृत का शिक्षण चल रहा है।
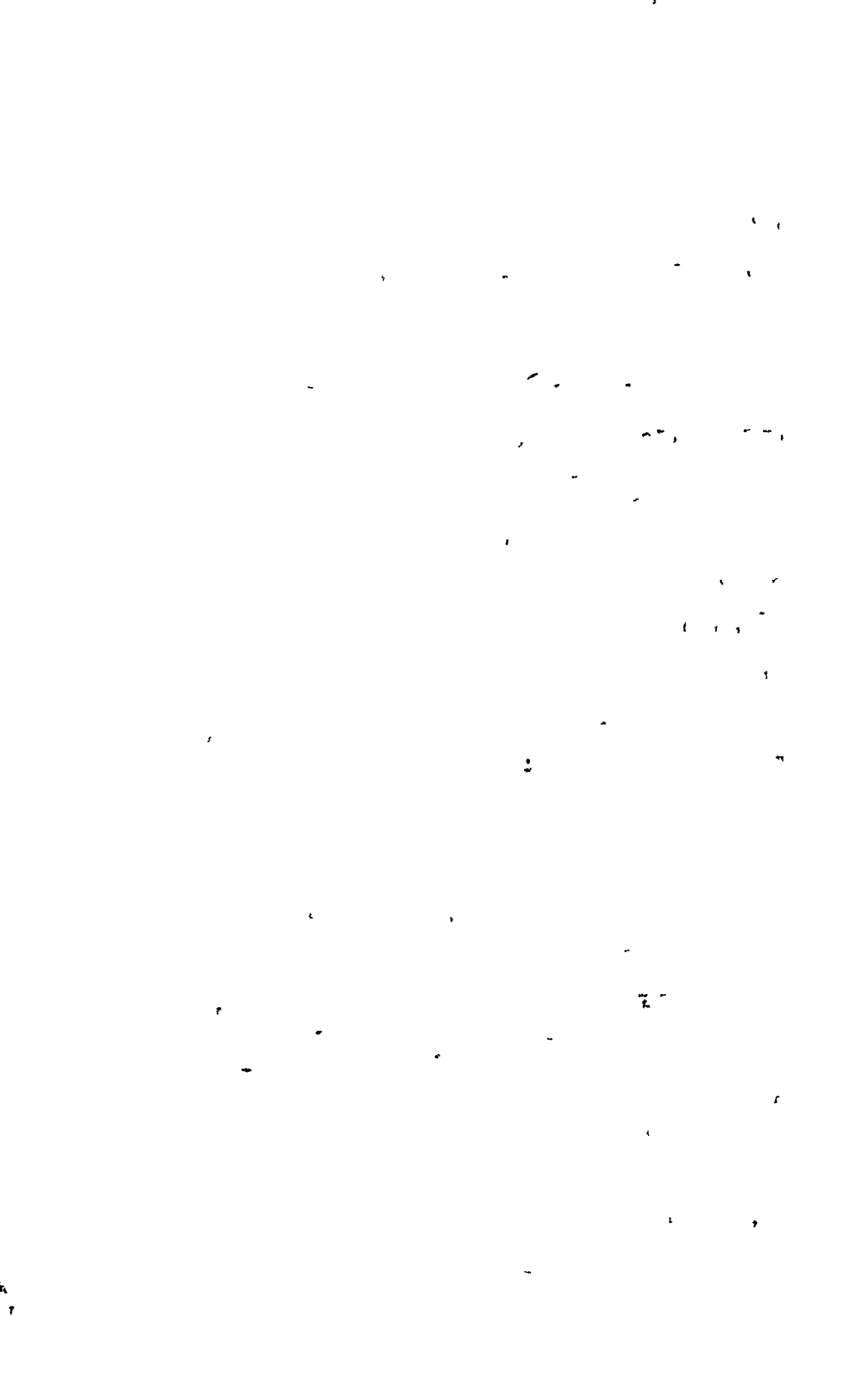
उत्तरार्द्ध

श्री ऋषि-संप्रदायी महासतियों का

जीवन-परिचय

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

श्री ऋषि-सम्प्रदायी महासतियों का इतिहास

इस ग्रंथ के पूर्वार्द्ध में ऋषि संप्रदायान्तर्गत महर्षियों का इतिवृत्त दिया गया है, अब उत्तरार्द्ध मे ऋषिसंप्रदायान्तर्गत महासतियों का इतिवृत्त दिया जाता है। यद्यपि महर्षियो का इतिवृत्त सं० १६६२ से सम्यक्रीति से प्राप्त हो सका है, किन्तु महासतियो मे उस समय कौन विराजमान थी, किस के पुनीत प्रयास और पुष्ट प्रेरणा ने इस संप्रदाय में सतियो के प्रवर प्रवाहको प्रारंभ कर दिया, आदि प्रश्नो के उत्तर में इतिहास अभी मौन ही है। किन्तु प्रतापगढ़ भंडार से प्राप्त एक प्राचीन पत्र में उल्लिखित वृत्तांतसे पता चलता है कि सं० १८१० वैशाख शुक्ल ५ मंगलवार को पंचेवर ग्राम में चार संप्रदायों का एक सम्मेलन हुआ था। जहाँ ऋषिसंप्रदाय की तरफसे संतो मे पूज्यश्री ताराऋषिजी म० और सतियों मे श्रीराधाजी म० उपस्थित थे।

ऋषियों के इतिवृत्त मे स्पष्ट है कि क्रियोद्धारक महापुरुष पूज्यश्री १००८ श्रीलवजीऋषिजी म० के पाट पर क्रमशः पूज्यश्री सोमऋषिजी म०, पूज्यश्री कहानजीऋषिजी म० के पश्चात् पूज्यश्री ताराऋषिजी म० विराजे थे। उस समय विराजित महासतीजी श्रीराधाजी म० से सतियों का इतिवृत्त प्रारंभ होता है।

सती शिरोमणि श्री १००५ श्रीराधाजी महाराज।

पूर्व में बताया जा चुका है कि ये महासतीजी सं० १८१० में पंचेवर-सम्मेलन में उपस्थित थीं। विशेष वृत्तांत का तो पता नहीं चलता किन्तु यह निश्चय है कि ये सतियो में अग्रणी, शिक्षिता और शांतस्वभावा थी। उस समय प्रचलित अनेक संप्रदायो में पुनः संगठन स्थापित कराने के लिये ये प्रयत्न किया करती थी। विशेष तौर पर स्त्रीसमाज मे धर्म प्रचार इनकी प्रेरणा का फल था। इनकी अनेक शिष्याएँ हुईं। जिनमें महासतीजी श्रीकिसनाजी प्रसिद्ध थी। श्रीकिसनाजी म० की शिष्या श्रीजोताजी म० और उनकी शिष्या श्रीमोताजी म० हुई। इन सतियों का कोई विवरण प्राप्त नहीं हुआ है। महासतीजी श्रीमोताजी म० की अनेक शिष्याओं मे श्रीकुशल-कुंवरजी म०(श्रीखुशालाजी म०) का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होंने जैनधर्म की बहुत प्रभावना की।

पदवीधरजी (प्रवर्तिनीजी) श्रीकुशलकुंवरजी महाराज

इनका जन्म मालवप्रांत के बागड देशीय हावडा ग्राम में हुआ था। ये हूमड गोत्र की थी। महासतीजी श्रीमोताजी के पास इन्होंने वैराग्यभाव से दीक्षा ली थी। विनय; सरलता, गंभीरता और दक्षता इनके विशेष गुण थे। इनका व्याख्यान प्रभावशाली था क्योंकि ये शास्त्रीयज्ञान की अनुभवी थीं इन्होने प्रतापगढ़,धरियावद, पीप-लोदा आदि स्थानों के नरेशों को उपदेशों से प्रभावित किया; जिससे वे भी मांस मदिरादि का त्याग कर इनके भक्त बन गये। एक बार पूज्यश्री धनजीऋषिजी म.की उपस्थिति में संत और सतियो ने एक-त्रित होकर समाचारी की रचना की थी। उस समय ऋषिसंप्रदाय में करीब १२५ संत और १५० महासतियां विचरती थीं। किन्तु

इनके ज्ञान-दर्शन और चारित्रधर्म से प्रभावित होकर सभी संत सतियो ने इनको अग्रणी रक्खा और पदवीधरजी (प्रवर्तिनीजी) के पद से इन्हे सुशोभित किया। ये सतीजी शास्त्रीय चर्चा में अपनी अभिरुचि अधिक रखती थी, इसीलिये इस सम्प्रदाय मे ये वैसी ही प्रतिष्ठित थी जैसे कि पूज्यश्री उदयसागरजी म० संतों मे प्रतिष्ठित थे। इनके २७ शिष्याएँ हुई थी। उनमेंसे ४ महासतियो के नाम उपलब्ध हुए है। १ श्रीसरदाराजी म०, २ श्रीधनकुंवरजी म०, ३ श्रीदयाजी म०, ४ श्री लछमाजी म०। महासती श्रीदयाजी म० और महासतीजी श्रीलछमाजी म० की ही शिष्य परंपरा चली।

महासतीजी श्रीसरदाराजी महाराज

इन्होने पदवीधरजी श्रीकुशलकुंवरजी म० से दीक्षाग्रहण की थी। ये अपनी सहचारिणी महासतीजी श्रीदयाजी म० से बहुत स्नेह रखती थी और दोनो साथ ही साथ विचरण किया करती थी। आपकी प्रकृति बहुतही सरल और भद्रपरिणामी थी। आप अपनी नेश्राय मे शिष्या नही बनाते हुए सहचारिणी श्रीदयाजी म० की शिष्याओं को ही अपनी शिष्या समझते थे। इन्होंने बड़े--बड़े संत सतियो के समागम मे भाग लिया। इनके शास्त्रीय ज्ञान को श्रवण कर जनता मुग्ध हो जाती थी। इन्होने अपने मानवीय जीवन को तप-संयम और धर्मप्रचार मे लगाकर सार्थक कर दिया।

महासतीजी श्रीधनकुंवरजी महाराज

इन्होने अपना अधिक समय अपनी गुरुणीजी पदवीधरजी श्रीकुशलकुंवरजी म० की सेवा में ही बिताया था। ये मालवा मेवाड़ आदि प्रांतों मे विचरण कर धर्मोपदेश से साधारण जनता को प्रभावित करती थी। आप तपस्विनी सतीजी थी। आपके दिल में

सांप्रदायिकता नहीं थी। अतएव अन्य संप्रदायी संत सतियों के साथ बहुत वात्सल्यभाव से रहकर अपने नामको यथार्थ कर दिखाया। आपकी एक शिष्या हुई श्रीफूलकुंवरजी म० । इनके परिवार में सरसाजी, म० श्रीमेनाजी म०, श्रीकेसरजी म०, श्रीरंभाजी म० हुए है, इनका परिचय प्राप्त नहीं हुआ है।

पदवीधरजी श्रीकुशलकुंवरजी म० की शिष्या श्रीदयाकुंवरजी महाराज और उनकी परम्परा।

सतीशिरोमणि पं० श्रीकुशलकुंवरजी म० की शिष्याओं में विशुद्ध स्वभावा महासतीजी श्रीदयाकुंवरजी म० बड़ी विदुषी थी। शास्त्रीयज्ञान से ओतप्रोत होने के कारण इनका व्याख्यान बड़ा प्रभावशाली होता था। महासतीजी श्रीसरदाराजी म. के साथ साथ इन्होंने मालवा, मेवाड़, वागड़ आदि प्रांतो में विचरकर उपदेशामृत से अनेक मनुष्यों को सन्मार्ग पर लगाया।

संयमी जीवन के अंतिम दिनों में आप रतलाम शहर में विराजती थीं। एक समय रात्रि के तीसरे प्रहर मे जागृत होकर सेवा में रही हुई अपनी प्रशिष्या विदुषी सतीजी श्रीगेंदाजी म० से पूछा कि अब कितनी रात बाकी है ? सतीजी ने तारामंडल देखकर कहा कि तीसरा प्रहर बीतने आया है । तब आपने लक्षणों से अपना अतिम समय जानकर कहा कि "मुझे संथारा (अनशन व्रत) लेना है और यह संथारा पच्चीस दिन तक चलेगा। घबराना नहीं। सतीजी ने पूछा कि खाचरोद समाचार देकर महासतीजी श्रीगुमानकुंवरजी म० तथा श्रीसिरेकुंवरजी म० आदि को बुला लेवे ? तब आपने उत्तर दिया कि परसों शाम को वे स्वयं यहां आ जायंगे, समाचार देने की जरूरत नहीं।

इधर खाचरोद में भी सतियों को संथारे का स्वप्न आया और महासतीजी खाचरोद से विहार कर तीसरे दिन रतलाम पधार गईं। रतलाम में चतुर्विध श्रीसंघ की साक्षि से संथारा ग्रहण किया। जब तक संथारा चला, वहां तक सतियों ने आयंबिल, उपवास की तपश्चर्या चालू रक्खी। ठीक पच्चीसवें दिन संथारा सीझा। समता पूर्वक आयुष्यपूर्ण करके नश्वर शरीर को छोड़कर आप स्वर्गवासी हुए।

इनकी अनेक शिष्याओं में महासतीजी श्रीघीसाजी म०, श्रीझमकूजी म०, श्रीहीराजी म०, श्रीगुमानाजी म०, श्रीगगाजी म०, श्रीमानकुंवरजी म०, प्रसिद्ध है। इनमें से दो शिष्याएँ श्रीमोनकुं-वरजी म० और श्रीघीसाजी म० का विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता। श्रीघीसाजी म० की एक शिष्या हुई थी, जिनका नाम श्री-गेदाजी म० था, किन्तु इनका भी विवरण प्राप्त नहीं होने से यहां देने में असमर्थता रही है।

महासतीजी श्रीदयाकुंवरजी म० की शेष चार शिष्या १ श्रीझमकूजी म० २ श्रीगंगाजी म०, ३ श्रीहीराजी म०, और ४ श्री-गुमानाजी म. का परिचय तथा उनकी शिष्या-परम्परा आगे दी जा रही है।

महासतीजीश्री दयाकुंवरजी महाराज की शिष्या श्रीझमकूजी म० और उनकी परम्परा

ये पीपलोदा निवासी श्रीमान् माणकचन्दजी नांदेचा की सुपुत्री थी। महासतीजी श्रीदयाकुंवरजी म० के समीप दीक्षा ग्रहण कर इन्होने उन्हीं की सेवा में अपना जीवन अर्पण करते हुए ज्ञान ध्यान का अच्छा अनुभव प्राप्त कर लिया था। इनका संयमी जीवन बड़ी सफलता पूर्वक बीता। सं० १९२१ में इनकी दीक्षा के उपलक्ष्य

में इनकी वड़ी माताजी ने ऋषि-संप्रदायानुयायी श्रावक श्राविकाओं को धर्मध्यान करने के लिये रतलाम में साहू वावड़ी के समीप एक धर्म स्थानक भेंट किया था। आपके द्वारा मालवा और दक्षिण देश में धर्मप्रचार हुआ था। इनकी सोलह शिष्याएँ हुईं। जिनमें से १ श्रीगगाजी म० २ श्रीअमृताजी म०, ३ श्रीकेसरजी म०, ४ श्री-जड़ावाजी म०, ५ श्रीराधाजी म०, ६ श्रीमानकुंवरजी म० और ७ श्रीकुशालाजी म० प्रसिद्ध थीं। किन्तु श्रीगंगाजी म० श्रीअमृताजी म० इन सव शिष्याओं में अग्रणी और तेजस्विनी थीं। इनके अलावा अन्य किसी शिष्या का विवरण उपलब्ध नहीं होता।

वयोवृद्ध श्रीगंगाजी महाराज

ये दक्षिण प्रांत की निवासिनी थी। महासतीजी श्रीभमकूजी म० से दीक्षित वनकर इन्होने अपना सारा जीवन सेवा में विताया। संयम मार्ग मे इनकी वड़ी निष्ठा थी। इनका स्वभाव शांत और सरल था। समाज में धर्म की वृद्धि के हेतु इन्होने मालवा मेवाड़ और मेरवाड़ा में विचरण कर ग्रामीण जंता को भी धार्मिक उपदेश दिये। वृद्धावस्था में शारीरिक स्थिति क्षीण हो जाने से रतलाम के साहुवावड़ी नामक धर्मस्थानक में स्थिरवास विराजे। जो सतियां इनकी सेवा मे रहती थी, उनको ये वड़े प्रेमभाव से रखती थी। पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० के दर्शन करने की इनके द्वारा अभि-लाषा प्रकट करने पर महाराजश्री ने इन्हे रतलाम में सं० २००६ वैशाख शु. ३ के दिन दर्शन देकर कृतकृत्य कर दिया। इनका स्वर्ग-वास रतलाम मे ही हुआ। इनको दो शिष्याएँ हुईं। १ श्रीराज-कुंवरजी म० और २ श्रीसुमतिकुंवरजी म०।

महासतीजी श्रीराजकुंवरजी महाराज

सं० १९५० मार्गशीर्ष शुक्ल १४ शुक्रवार के दिन आपका

जन्म हुआ था। ये मलवा की निवासिनी और स्थविर महासतीजी श्रीगंगाजी म. से दीक्षिता हुई थी। धारणाशक्ति प्रबल होने से अल्प काल ही में इन्होंने अध्ययन कर धर्म की विशेष प्रभावना की। बड़ी भक्तिमती और श्रद्धालु होने के कारण ये अपनी गुरुणीजी की बहुत सेवा किया करती थी। किन्तु दुर्भाग्यवश ये अल्पायु मे ही देवलोक हो गई।

श्रीसुमतिकुंवरजी महाराज

स्थविरा श्रीगंगाजी महाराज की द्वितीय शिष्या श्रीसुमति-कुंवरजी म. ने बाल्यकाल मे पंडिता प्रवर्तिनीजी श्रीरत्नकुंवरजी म. के सदुपदेशों से संयमी जीवन प्रारम्भ किया था, किन्तु धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन में उत्थित कठिनाइयों को सहन करने की क्षमता नहीं होने से वे संयम को निभा न सकी।

श्रीदयाकुंवरजी महाराज की शिष्या श्रीगंगाजी महाराज व उनकी परम्परा।

आपका जन्म राजपूत ज्ञाति में हुआ था। सं. १९२५ में आप सपरिवार रतलाम आये थे। आप नौ वर्ष की अवस्था में शिक्षण प्रीत्यर्थ महासतीजी की सेवा में रहे। आपका पालन पोषण रतलाम मे एक सेठाणीजी से हुआ था। आपने करीब १४ वर्ष की उम्र मे प्रभाविका महासतीजी श्रीदयाकुंवरजी म० की सेवा में दीक्षा ग्रहण की थी। गुरुणीजी म० की सेवा मे आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त कर मालवा, मेवाड़, मारवाड़ आदि प्रान्तो में विचरते हुए अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर धर्म मार्ग मे दृढ़ बनाये। मालवा देश के अनेक क्षेत्रों को स्पर्शते हुए आप भोपाल

पधारी। वहाँ पर श्रीअमृताजी नामक एक शिष्या की प्राप्ति हुई। इन्दौर आदि क्षेत्रों मे चातुर्मास करके आप दक्षिण देश मे भी पधारी थीं। वहाँ भी आपके सदुपदेश से अनेक आत्माएं बोध पाकर दीक्षित हुईं। सुजालपुर (मालवा) में स्थिरवास होकर वहां पर ही आप स्वर्गवासी हुई हैं।

महासतीजी श्रीअमृतकुंवरजी महाराज

आप भोपाल (मालवा) निवासिनी थी। आपका जन्म मोड़ जाति मे हुआ था। नौ वर्ष की अवस्था में आपका विवाह सम्बन्ध माता की मौजूदगी में इच्छावर में हुआ। एक महीने का ही सौभाग्य रहा था। संसार की रचना देखकर आपका चित्त वैराग्य की तरफ झुका हुआ था, परन्तु ससुराल पक्ष वालों से दीक्षा की सम्मति नहीं मिलने के कारण श्रीमान् हजारीमलजी मास्टर सीहोर वाले के जरिये सरकारी सहयोग से आपकी दीक्षा महासतीजी श्रीगंगाजी महाराज के समीप हुई। गुरुणीजी के साथ विचरते हुए दक्षिण में पधार कर सं० १९५३ का चातुर्मास धूलिया में किया। चातुर्मास के पश्चात् आप वांबोरी (अहमदनगर) पधारे। वहाँ आपके सदुपदेश से तीन बाइयों को वैराग्य हुआ था परन्तु उनमें से माता-पुत्री दोनों ने ही दीक्षा ग्रहण की। उनका शुभ नाम श्रीहेमकुंवरजी म० और श्रीजयकुंवरजी म० रक्खा गया। दक्षिण प्रांतीय अनेक क्षेत्रों को स्पर्शकर आपने जैनधर्म की प्रभावना की है। आपकी और एक शिष्या हुई थी उनका नाम श्रीराधाजी म० था। इनका स्वर्गवास बरार प्रांत में हुआ।

महासतीजी श्रीहेमकुंवरजी महाराज

पूना जिला के भिवरी निवासी श्रीमान् फोजमलजी खिव-

सरा की धर्मपत्नी श्रीभोमबाई की कुक्षि से आपका जन्म सं. १९४५ भाद्रपद कृष्णा १४ को हुआ। महासतीजी श्रीगंगाजी म० श्रीअमृताजी म० सं० १९५३ के साल मे वांबोरी (अहमदनगर) मे पधारे थे। उनके सदुपदेश से आप दोनो माता और पुत्री को वैराग्य प्राप्त हुआ। सत्कार्य में अनेक विघ्न उपस्थित होते रहते हैं। इसी तरह आपके शुभ कार्य में भी परिवार की तरफसे विघ्न उपस्थित करने से सोनई मे दीक्षा नहीं होते हुए वडूले मे सं० १९५३ माघ शुक्ल १५ के दिन माताजी की आज्ञा से महासतीजी श्रीगंगाजी म० के समीप दीक्षा ग्रहण कर महासतीजी श्री अमृतकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई। आपकी माता ने भी दो महीने के बाद दीक्षा ली थी। आपने गुरुणीजी की सेवा में रहकर शास्त्रीय ज्ञान और ज्योतिष विषयक ज्ञान भी प्राप्त किया है। अपनी वृद्धावस्था होते हुए भी आप उत्साह रखती हैं। मालवा, खानदेश, दक्षिण आदि प्रांतों में विचर कर आपने धर्म का प्रचार किया है। वर्तमान में आपकी आयु ६७ वर्ष की है और अभी धुलिया (खानदेश) में आप तीन ठाणे से विराजित हैं।

महासतीजी श्रीजयकुंवरजी म० और उनकी परम्परा।

आप वांबोरी निवासी श्रीमान् हजारीमलजी पगारिया की पुत्री है। आपका विवाह श्रीमान् फोजमलजी खिवसरा भिवरी (पूना) वाले के साथ हुआ था। स० १९५३ के साल में वांबोरी में महासतीजी श्रीगंगाजी म० तथा श्रीअमृताजी म० की संगति से प्रतिबोध पाकर ग्राम मिरि में सं० १९५४ चैत्र शुक्ल ९ के दिन पच्चीस वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण कर आपश्री अमृतकुंवरजी म० की नेश्राय से शिष्या हुई।

आपने दीक्षित होकर गुरुणीजी की सेवा तन मन से की

है। आपकी तीन शिष्याएँ हुई। १ श्रीगुलाबकुंवरजी म० २ श्री-रामकुंवरजी म० और ३ श्री दुर्गाकुंवरजी म०। सं० २००५ मार्ग-शीर्ष वदि ७ मंगलवार के दिन निजाम स्टेट के वैजापुर नामक ग्राम में ७५ वर्ष की अवस्था में आप स्वर्गवासी हुई।

महासतीजी श्रीगुलाबकुंवरजी म०

आपका जन्म श्रावगी ज्ञाति में हुआ था और आप अंजड नामक ग्राम (मध्यभारत) में रहती थी। महासतीजी श्रीजयकुंवरजी म० का सदुपदेश पाकर वैराग्य प्राप्त हुवा। अपनी १८ वर्ष की आयु में सं० १९६४ माघ शुक्ल ५ के दिन महेश्वर (मालवा) में दीक्षित होकर महासतीजी श्रीजयकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई। आपकी प्रकृति सरल और शांत स्वभाविनी थी। गुरुणीजी की सेवा करके यथाशक्ति शास्त्रवाचन किया था। मालव खानदेश आदि प्रांतो में विचरकर सं० १९९० मार्गशीर्ष शुक्ल ८ को बरडा-वदा (मध्यभारत) में आप स्वर्गवासी हुई।

पण्डिता श्रीरामकुंवरजी म०

ललितपुर (यू. पी.) निवासी श्रीमान् गिरधारीलालजी श्रावगी की धर्मपत्नी श्रीमूलीबाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ। दस वर्ष की आयु में महासतीजी श्रीजयकुंवरजी म० की सेवा में धार्मिक शिक्षण के लिये रही। सं० १९८९ फाल्गुन शुक्ल ९ सोम-वार के दिन चौदह वर्ष की अवस्था में श्रीजयकुंवरजी म० के नेश्राय में आप दीक्षित होकर श्रीरामकुंवरजी म० नाम रक्खा गया। आपने शास्त्रीय ज्ञान अच्छा प्राप्त किया है। न्याय, व्याकरण और साहित्य का भी आपने अध्ययन किया है। श्रीतिलोकरत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षाबोर्ड पाथर्डी की सिद्धान्त प्रभाकर परीक्षा में

आप उत्तीर्ण हैं। आपका व्याख्यान रोचक है। महासतीजी श्री हेमकुंवरजी म० के साथ वर्तमान में खानदेश में विचरते हुए धर्म का प्रचार कर रही है।

श्रीदुर्गाकुंवरजी म०

कुसुंबा (नासिक) निवासी श्रीमान् बादरमलजी धाडीवाल की धर्मपत्नी श्रीगंगुबाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ था। चौदह वर्ष की अवस्था में पीपलपाड़ा (नासिक) निवासी श्री-उदयराजजी सोलंकी के साथ आपका विवाह संबंध होकर सिर्फ बीस दिन का ही सौभाग्य रहा। महासतीजी श्रीहेमकुंवरजी म० और श्रीजयकुंवरजी म० के प्रतिबोध से संसार को अनित्य समझकर सं० १९९८ माघ शुक्ल १३ शुक्रवार के दिन निफाड (नासिक) में आपने ५१ वर्ष की अवस्था में श्रीजयकुंवरजी म० के पास दीक्षा ग्रहण की। आप प्रकृति की भद्र, सरल और सेवाभावी सतीजी है। संप्रति खानदेश में श्रीहेमकुंवरजी म० की सेवा में आप विचर रही हैं।

श्रीदयाकुंवरजी म० की शिष्या उग्र तपस्विनी तथा सेवा-भाविनी महासतीजी श्रीगुमानाजी म० और उनकी परंपरा

प्रतापगढ़ स्टेट के कोटड़ी नामक गांव में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीनाहरमलजी और माता का नाम श्रीभूमाबाई था। इन्होंने २१ वर्ष की अवस्था में जावरा शहर में प्रभाविका महासतीजी श्रीदयाकुंवरजी म० से दीक्षाग्रहण की थी। ये उग्र तपस्विनी थी। इन्होने ३६ वर्ष तक एकांतर उपवास रक्खा। जिसमें १२ वर्षों तक पारणे में कभी आयंबिल और कभी एकासन

करती थी। बाकी २४ वर्षों के पारणों में एकलठाणा या बियासणा करती रही तप और संयम मार्ग में आपकी विशेषनिष्ठा होने से मासखमण, अर्द्धमासखमण आदि अन्य तपश्चर्या भी की। विगय का उपयोग विशेषतया नहीं करती थी। ये साध्वीजी स्वभाव की बड़ी सरला थी। भेदभाव और दिखाव इनको छू तक नहीं गया था। ये खादी के वस्त्र धारण करती थी और सेवा में रहने वाली अन्य सतियो के प्रति प्रगाढ़ प्रेमभाव रखती थी। मालवा, मेवाड़ और बरार मे विचरते हुए इन्होंने स्वगच्छ और अपरगच्छ के कई अपरिचित संत-सतियों की खूब सेवा की। ये किसी को अपनी शिष्या बनाना चाहती नहीं थीं किन्तु पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म० की आज्ञा होने से इन्होंने अमरावती निवासिनी श्री सिरेकुंवर बाई को सं. १९३९ के मार्गशीर्ष में रतलाम नामक शहर में दीक्षा दी थी। आपका स्वर्गवास मालव प्रांत मे हुआ।

तपस्विनी सतीजी श्रीसिरेकुंवरजी म०

नागपुर के श्रीनवलमलजी की धर्म पत्नी श्रीविनयकुंवर बाई की कुक्षि से इनका जन्म हुआ था। इनका नाम श्रीसिरेकुंवरबाई रक्खा गया। अमरावती निवासी श्री··· ····· नाहरजी के साथ इनका विवाह हुआ। उग्र तपस्विनी श्रीगुमानाजी म० से सं. १९३९ मे दीक्षा लेने के पश्चात् इन्होंने शास्त्रीय ज्ञानोपार्जन में बहुत परिश्रम किया। इन्होंने ३२ सूत्रों का अध्ययन कर, १६१ थोकड़े, स्तवन लावणी के ३५१ पद्य और करीब ३०० अन्य श्लोक और सवैये कंठस्थ कर लिये थे। इनके साथ इनके भाई भी दीक्षित हुए थे, जो श्रीकुन्दनमलजी म० के नाम से प्रख्यात हुए। जिन्होंने बरार प्रांत में स्थानकवासी जैनधर्म की जागृति करके संरक्षण किया था।

इन महासतीजी की प्रकृति बहुत सरल और दिव्य, स्वर कोयल के समान मधुर और हृदय भक्ति से भरपूर था। ये अल्पाहारी और विगय को त्यागने वाली थी। शरीराच्छादन के लिये मोटा लट्ठा काम में लाना, एवं गुरुणीजी के सम्मुख अविनीतता से यदि एक अक्षर का भी प्रयोग हो जाय तो एक बेले का प्रायश्चित करना, इनकी प्रतिज्ञाएँ थी। इन्होने मासखमण और अर्द्ध मास खमण के दो थोक किये। कभी २ ये सूर्य की आतापना लेती थी। इस तरह इन्होने १८ वर्ष तक संयम मार्ग का शुद्धता पूर्वक पालन किया। मालव देश मे विचरण कर जैनधर्म की इन्होंने बहुत प्रभावना की। इनके चातुर्मास ७ जावरा मे, ५ साजापुर में, २ सुजालपुर मे, और आगर, रतलाम, मन्दसौर तथा देवास मे एक एक हुए। अनेक स्थानों में नरेशो द्वारा जीवो की बलि को अपने सरस उपदेशों से आपने रुकवा कर अभयदान दिलवाया।

जावरा के चातुर्मास मे इनको असाध्य रोग हो जाने पर भी इन्होने औषधोपचार का त्याग कर बेले बेले का पारणा करने का निश्चय किया। सं० १९५८ मार्गशीर्ष मास मे ३ की रात को इन्होंने आलोचना कर शुद्ध अंतःकरण से सभी श्रावक श्राविका, संतसतियों से खमत खामना करके अरिहंत सिद्धो का नाम स्मरण करती हुई समता पूर्वक इस नश्वर शरीर का त्याग कर देवलोकवासी हुई। दाह संस्कार मे इनकी मुखवस्त्रिका और दाढ़ी नहीं जली। तप संयम के प्रभाव से घटित इस आश्चर्यजनक घटना ने जनसाधारण को बहुत अधिक प्रभावित किया।

आपकी नौ शिष्याएँ हुई। जिनमें से छह के नाम उपलब्ध हुए हैं। १ श्रीचूनाजी म०, २ श्रीगुलाबकुंवरजी म०, ३ श्रीगंगाजी म० ४ श्रीचंपाजी म०, ५ श्रीपीसाजी म०, ६ पंडिता प्रवर्तिनीजी

श्रीरतनकुंवरजी म० । प्रथम ५ शिष्याओं का विवरण प्राप्त नहीं हुआ है, किन्तु पं० श्रीरतनकुंवरजी म० की शिष्या परम्परा चली।

पंडिता प्रवर्तिनीजी श्रीरतनकुंवरजी म० और उनकी परंपरा

आपका जन्म सं० १९४९ में जोधपुर स्टेट के मोगरा ग्राम में हुआ था। इनके पिताश्री गणेशरामजी राजपूत थे और माता श्रीरंभाबाई। इन्होंने आठ वर्ष की उम्र में ही सं० १९५७ फाल्गुन कृष्ण पंचमी के दिन जावरा शहर में तपस्विनी महासतीजी श्रीसिरेकुंवरजी म० से दीक्षा ग्रहण की। बाल्यावस्था में दीक्षित हो जानेसे आप का मन ज्ञानोपार्जन की ओर झुक गया। यही कारण था कि इन्होंने संस्कृत और प्राकृत का उच्च शिक्षण लिया। शास्त्रीय ज्ञान संपादन करते हुए हिन्दी उर्दू भाषा पर भी विशेष अधिकार प्राप्त किया। आपकी आवाज मर्दानी है। शरीर कांतिशाली है। आपका व्याख्यान प्रभावशाली मधुर और रोचक है। सेमलिया के महाराज श्रीचतरसेनजी ने आपके सदुपदेशों से प्रभावित होकर दशहरे के दिन किए जाने वाले भैंसे के बलिदान को बंद कर हमेशा के लिए अभयदान दिया। आपसे प्रभावित होकर ही देलवाड़ा के नरेश, तनोदिया, अचलावदा, ऊबरवाड़ा, पीपलखूटा, भींडर, निंबोज, नामली तथा सैलाना के नरेशों ने मांस मदिरा का त्याग कर व्रत नियमादिकों का पालना प्रारंभ कर दिया। आपकी पद्य-रचना सुंदर है और उन्हें प्रभावपूर्ण तरीके से गाकर सुनाने से सर्वसाधारण जनता आकर्षित हो जाती है। आपकी रचनाओं को जैन सुबोधरत्नमाला भाग १-२-३-४ के रूप में प्रकाशित किया गया है। प्रदेशीराजा, रत्नचूडमणि, सती तिलोकसुंदरी आदि के चरित्र आपकी रचनाएँ है।

कविकुल भूषण, पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म० द्वारा

लिखित भरत क्षेत्र का नक्शा आपकी प्रेरणा से प्रकाशित हुआ है। इसी तरह लेश्यावृक्ष और निर्जरा भेदों का वृक्ष भी आपके द्वारा लिखे जाने पर प्रसिद्धि में आया है।

प्रतापगढ़ में सं० १९८९ पौष वदि ५ को आयोजित मालवा प्रांतीय ऋषिसंप्रदायी सती सम्मेलन में आपको प्रवर्तिनीपद से अलंकृत किया गया। इन्होंने मालवा, मेवाड़, मारवाड़, पंजाब, खानदेश, बरार, दक्षिण, महाराष्ट्र आदि प्रांतों मे विचरण कर जैन-धर्म का प्रचार करते हुए श्रावक श्राविकाओं में धार्मिक दृढ़ता उत्पन्न की है और कर रही है। आचार व्यवहार में दृढ़ और संत सतियों की सेवा करने वाली ये महासतीजी ऋषिसंप्रदाय की प्रतिष्ठा और गौरव बढ़ाने वाली सतियो में अपना प्रमुख स्थान रखती है। इन्दौर मे स्वर्गीय पूज्य श्रीअमोलकऋषिजी म. के आचार्यपद महोत्सव एवं भुसावल आचार्य-युवाचार्य-पदमहोत्सव और प्रतापगढ़के सती-सम्मेलन में आपका विशेष सहयोग था। अजमेर, सादड़ी और सोजत मुनिसम्मेलनो मे भी ये उपस्थित थीं। इन्होने स्व० पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० के साथ देहली में और प्रधानाचार्य श्रीआनंद-ऋषिजी म० के साथ उदयपुर मे चातुर्मास किया। प्रखर विद्वान् पूज्यश्री जवाहरलालजी म० शास्त्रविशारद पूज्यश्री काशीरामजी म० तथा जैनदिवाकर श्रीचौथमलजी म० के साथ भी आपका समागम रहा था।

आपके सदुपदेश से नागदा जंकशन मे श्रीरत्न जैन पुस्त-कालय की स्थापना हुई है। अच्छे २ ग्रंथों एवं शास्त्रो का संग्रह है, स्थानीय सुश्रावक श्रीसागरमलजी भेरूलालजी कांठेड़ पुस्तकालय का व्यवस्थित कार्य कर रहे है। इन्होने १ श्रीउमरावकुंवरजी म०, २ पं० श्रीवल्लभकुंवरजी म०, ३ श्री श्रीमतीजी म०, ४ राजीमतीजी

म०, ५ श्रीसोहनकुंवरजी म०, ६ श्रीपानकुंवरजी म०, ७ श्रीसूरजकुंवरजी म० ८ श्रीकुसुमकुंवरजी म० ९ श्रीविमलकुंवरजी म० १० श्रीचतरकुंवरजी म० को दीक्षित किया है। इन दस शिष्याओं में श्रीचतरकुंवरजी म० और पं० श्रीवल्लभकुंवरजी म० विशेष उल्लेखनीय है।

महासतीजी श्रीउमरावकुंवरजी म०

आपका जन्म सं० १९३८ में टाटोटी (अजमेर) निवासी श्रीपन्नालालजी ढाबरिया की धर्मपत्नी श्रीकेशरबाई की कुक्षि से हुआ और १६ वर्ष की आयु में अजमेर निवासी श्रीकानमलजी सुराणा के साथ इनका विवाह हुआ था। विवाहानंतर १५ दिन तक आपको सौभाग्य रहा। अशुभ कर्मों के उदय से ही दुःखों की प्राप्ति होती है, ऐसा जानकर आपने सत्संग करके धर्मध्यान की तरफ अपनी आत्मा को जोड़ दिया। आपने एक मास मे पांच उपवास और पांच आयंबिल करना, प्रतिदिन पांच सामायिक किये बिना भोजन नहीं करना आदि का नियम लिया। आपने चारों खंधो का पालन गृहस्थीपन में ही किया। इस तरह धार्मिक क्रियाओं का संपादन करते करते बीस वर्ष बिता दिये। तत्पश्चात् पंडिता प्रवर्तिनीजी श्रीरतनकुंवरजी म० से इन्होंने अजमेर में सं० १९७५ की चैत्र शु० पंचमी के दिन दीक्षा ग्रहण की। स्वाध्याय और नाम स्मरण में विशेष रुचि रखने वाली सरल स्वभावा तथा सेवाभावी सतीजी है। मालवा, मेवाड़, मारवाड़, मेरवाड़ा, दक्षिण आदि प्रांतो में इन्होने गुरुणीजी के साथ विचरण किया है।

प्रभाविका पंडिता महासतीजी श्रीवल्लभकुंवरजी म०

साजापुर निवासी श्रीमोतीलालजी कोठारी की धर्मपत्नी

श्रीदेवकुंवरबाई की कुक्षि से आपका जन्म सं० १९६८ में हुआ और ११ वर्ष की उम्र में ही नलखेड़ा (मालवा) निवासी श्रीछगनलालजी नाहर के साथ इनका विवाह हुआ। किन्तु सौभाग्य एक वर्ष तक ही रहा। संसार की अनित्यता ने इन पर ऐसा प्रभाव डाला कि ये सं० १९८३ आषाढ़ शुक्ला पंचमी के दिन पडिता प्रवर्तिनीजी श्रीरतनकुंवरजी म० से साजापुर मे ही दीक्षित हो गईं। आपकी बुद्धि निर्मल और स्मरणशक्ति तीव्र होने से आपने संस्कृत प्राकृत हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओ का अच्छा अभ्यास कर शास्त्रीय ग्रंथो का विशेष अध्ययन किया। ये सतीजी विदुषी होते हुए भी नम्र, सरल और शांत स्वभावा है। छोटी बड़ी सतियो के साथ बहुत प्रेमपूर्वक अपना व्यवहार रखती हैं। आपके विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानो को सुनकर सर्वसाधारण जनता मंत्रमुग्ध हो जाती है। इन्होने उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, रतलाम, पूना, अहमदनगर, खानदेश आदि बड़े बड़े शहरो में आम व्याख्यान सुनाये है। संयममार्ग के संपादन में दृढ़ और जप तप मे अनुरक्त रहती है। सं० २०११ का चातुर्मास आपकी जन्मभूमि साजापुर में महासतीजी श्रीलछमाजो म० के साथ ठाणे ४ से हुवा था। चातुर्मास में धर्मध्यान, तपश्चर्या अच्छी हुई। आपके सदुपदेश से वहाँ पर श्री जैन पाठशाला की स्थापना हुई। मालवा, मेवाड़, मारवाड़, पंजाब, खानदेश, दक्षिण महाराष्ट्र आदि प्रांतो मे इन्होने अपनी गुरुणीजी के साथ विचरण किया है।

महासतीजी श्रीमतीजी म०

वखतगढ़ (जिला धार-मध्यभारत) निवासी श्रीचंपालालजी की धर्मपत्नी श्रीप्यारीबाईजी की कुक्षि से सं० १९६७ में आपका जन्म हुआ और विवाह नागदा निवासी श्रीबरतीमलजी सुराणा के साथ

हुआ। प्र० श्रीरतनकुंवरजी म० के सदुपदेशों से वैराग्य उत्पन्न होने पर इन्होंने २१ वर्ष की अवस्था में ही खाचरोद में सं० १९८८ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी के दिन दीक्षा ग्रहण की। आपको हिन्दी संस्कृत और प्राकृत का अच्छा अभ्यास है। ये पाथर्डी परीक्षाबोर्ड की जैन सिद्धांत प्रभाकर परीक्षा उत्तीर्ण हैं। ज्ञानमार्ग की आराधना करते हुए आप तपश्चर्या की अभिरुचि रखती है। वैसे तो ये दो दिन, तीन दिन, पांच दिन के उपवास किया ही करती हैं, परन्तु ८-१५-१७-१९-२१ तथा २९ दिन की तपश्चर्या भी इन्होंने की है। ये सतीजी बहुत सेवाभावी शांत और चतुर होते हुए भी आत्मार्थिनी है। गुरुणीजी की सेवा में रहकर मालव आदि प्रदेशों में आप विचर रही है।

महासती श्रीसोहनकुंवरजी महाराज

इन्दौर निवासी श्रीइन्द्रचंद्रजी सुराणा की धर्मपत्नी श्रीदाखाबाई की कुक्षि से आपका जन्म सं. १९४५ में हुआ। उज्जैन निवासी श्रीज्ञानचन्दजी मूथा के साथ आपका विवाह हुआ। आप प्र० श्रीरत्नकुंवरजी म० के सदुपदेश से वैराग्य प्राप्त कर मन्दसौर (मालवा) में ?४ वर्ष की अवस्था मे सं० १९८९ माघ शु० १३ के दिन दीक्षित हुई। दीक्षा प्रसंग पर स्व. पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म०, स्व० तपस्वी पूज्यश्री देवजी ऋषिजी म०, स्व० जैन दिवाकर श्रीचौथमलजी म०, पं० रत्न मुनिश्री आनन्द ऋषिजी म०, तथा स्थविरा प्रवर्तिनीजीश्री हगामकुंवरजी म०, आदि संत-सतियों की उपस्थिति थी। इनको हिन्दी का अभ्यास है और साधारण शास्त्रीय अध्ययन किया है। ये गुरुणीजी की सेवा मे साथ २ विचरती है।

महासतीजी श्रीपानकुंवरजी महाराज

सांजापुर निवासी श्रीहुक्मीचन्दजी की धर्मपत्नी श्रीजेरुवर

बाई की कुक्षि से सं० १९६३ में आपका जन्म हुआ और विवाह सम्बन्ध कानड़ निवासी श्रीदेवबच्छजी के साथ हुआ था। आपकी पं. प्र० श्रीरतनकुंवरजी म० के प्रतिबोध से वैराग्य होने पर ये सं० १९९३ की माघ वदी पंचमी के दिन भुसावल मे आचार्य युवाचार्य पदवी महोत्सव पर तपस्वीराज पूज्यश्री देवजी ऋषिजी म० के मुखारविन्द से पाठ सुनकर दीक्षित हुई। इन्होंने हिन्दी संस्कृत और शास्त्रीय ज्ञान के साथ थोकड़ो की भी अच्छी जानकारी की है। छुटकर उपवास आदि तपश्चर्या करते हुए आपने ९-११-१७-१९-२१ के थोक किये हैं। ये शांत और आत्मार्थिनी सती है। सांसारिक विकथाओ से दूर रहकर आपका चित्त ज्ञान ध्यान मे लगा रहता है। वर्त्तमान मे गुरुणीजी की सेवा मे रहकर विचर रही है।

महासतीजी श्रीसूरजकुंवरजी महाराज

चिचोंड़ी पटेल (अहमदनगर) निवासी श्रीनेमिचन्दजी गांधी की धर्मपत्नी श्रीराजकुंवर बाईजी कुक्षि से सं० १९५९ में आपका जन्म हुआ। और धवलपुरी (अहमदनगर) निवासी श्रीसुलतानचन्दजी पोखरणा के साथ विवाह सम्बन्ध हुआ था। सं० १९९४ मार्ग शीर्ष शुक्ल पंचमी के दिन धवलपुरी मे ही इन्होंने अपनी ३५ वर्ष की अवस्था में प्र० श्रीरतनकुंवरजी म० से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा महोत्सव का सारा खर्च आपके परिवार वालो ने ही किया था। दीक्षा प्रसंग पर करीब १५०० की जनता उपस्थित थी। आपका शिक्षण साधारण हुआ है और आप अपनी गुरुणीजी के साथ विचर रही है।

बालब्रह्मचारिणी श्रीकुसुमकुंवरजी म०

रांजणी (खानदेश) निवासी श्रीबालारामजी काकलिया की

धर्मपत्नी श्रीधापूबाई की कुक्षि से सं० १९९३ में इनका जन्म हुआ। ये अपनी दस वर्ष की अवस्था से महासतीजी की सेवा में रहकर हिन्दी तथा धार्मिक अध्ययन करती रही, और चौदह वर्ष की उम्र में इन्होंने डूंगला (मेवाड़) में सं० २००७ वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन पं० प्र० श्रीरतनकुंवरजी म० से दीक्षाग्रहण की। संस्कृत प्राकृत और हिन्दी का अभ्यास अभी चालू है। इन्होंने पाथर्डी परीक्षाबोर्ड की जैनसिद्धांत विशारद परीक्षा भी उत्तीर्ण की। ये शांत प्रकृति की सती है। बाल्यावस्था में इन्होंने दीक्षा ली है और बुद्धि भी साधारण ठीक है अतः ये सतीजी परिश्रमपूर्वक शिक्षण लेकर भविष्य में समाज के लिये आधारभूत बने और गुरुणीजी की आज्ञा पालन कर अपने जीवन की सफलता करें, ऐसी शुभाभिलाषा है।

महासतीजी श्रीविमलकुंवरजी म०

इनकी जन्मभूमि राणावास (मारवाड़) है। पिता का नाम दौलतरामजी था। सिरियारि (मारवाड़) निवासी श्रीहीराचंदजी पितलिया के पुत्र के साथ विवाह सबंध हुआ। अपने परिवार वालों की तरफ से दीक्षा की सम्मति मिलने पर सं० २०१० के वैशाख वदि २ के दिन श्रीवर्द्धमान स्था. जैनश्रमण संघ के प्रधान-- मंत्री पं० मुनिश्री आनन्दऋषिजी म० के मुखारविन्द से सिरियारी ग्राम मे दीक्षा ग्रहण कर ये प्र० पंडिता श्रीरतनकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई। श्रीगुरुणीजी की सेवा में रहकर ज्ञान ध्यान एवं शास्त्रीय अध्ययन कर रही है।

महासतीजी श्रीचतरकुंवरजी म०

कालूखेड़ा (मालवा) निवासी श्रीहुकमीचंदजी भंडारी की धर्मपत्नी श्रीदयाकुंवरबाई की कुक्षि से आपका जन्म सं० १९४० मे

हुआ था। रतलाम निवासी श्रीहजारीमलजी के साथ इनका विवाह हुआ किन्तु सौभाग्य थोड़े ही दिनो तक रहा। संसार की अनित्यता को देखकर आपने २८ वर्ष की अवस्था मे कालूखेड़ा मे सं० १९६८ वैशाख शुक्ल ३ (अक्षयतृतीया) के दिन पंडित रत्न शास्त्रज्ञ प्रौढ़ कवि मुनिश्री अमीऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा अंगीकार कर पंडिता प्र० श्रीरतनकुंवरजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुई। इनकी दीक्षा के उपलक्ष्य मे कालूखेड़ा के ठाकुर साहब श्रीमान् प्रह्लादसिंहजी ने देवीमाता के सामने बकरे का बलिदान करना बंद कर दिया, सो अभी तक मूक जीवों को अभयदान देने का शुभ कार्य चल रहा है। आपने शास्त्रीय ज्ञान और थोकड़ो की जानकारी की है। इन्होने मेवाड़, मारवाड़, मालवा, पंजाब, खानदेश, दक्षिण आदि प्रान्तों मे विचरण किया किन्तु अब शारीरिक अनुकूलता नहीं रहने से पीपलोदा (मालवा) मे विराज रही है। आपकी दो शिष्याएँ है। १ श्रीलछमाजी म० और २ श्रीमृगावतीजी म०।

व्याख्यानी महासतीजी श्रीलछमाजी म०

आपका जन्म कालूखेड़ा (मालवा) निवासी राजपूत सरदार श्रीकिशनाजो हवलदार की धर्मपत्नी श्रीनवलकुंवर बाई की कुक्षि से सं० १९५४ मे हुआ। सात वर्ष की छोटी उम्र में ही इनका विवाह कर दिया किन्तु छह माह के पश्चात् आपके पति का वियोग हुआ। महासतीजी श्रीचतरकुंवरजी म० की दीक्षा होती देख इनको भी संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया। तब से ये उनकी सेवा में ही रहीं। १५ वर्ष की अवस्था में जावरा शहर मे संवत् १९६९ मार्ग शीर्ष वदी २ के दिन भद्र परिणामी मुनिश्री भेरुऋषिजी म० तथा प्रसिद्धवक्ता पं० मुनिश्री चौथमलजी म० की उपस्थिति में आपकी दीक्षा बड़े समारोह के साथ होकर श्रीचतरकुंवरजी म० की

नेश्राय मे शिष्या हुई। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं का अध्ययन किया है। शास्त्रीय ज्ञान का भी अच्छा अनुभव रखती हैं। कंठ मधुर होने से इनकी गायनकला श्रोताओं को मुग्ध कर देती है। आपका व्याख्यानं बड़ा रोचक और प्रभावशाली होता है। सं० २०१० का चातुर्मास आपने प्रतापगढ़ में ठाणे ४ से किया। वहाँ आपका प्रभाव अच्छा पड़ा था। विविध प्रान्तो में विचरकर इन्होंने जैनधर्म की प्रभावना की है। प्र० श्री रतनकुंवरजी म० की ये प्रशिष्या है। आपकी नेश्राय में एक शिष्या हुई उनका नाम श्रीशांतिकुंवरजी हैं। धूलिया में यह दीक्षा हुई है।

महासतीजी श्रीमृगावतीजी महाराज

आपका जन्म महू छावणी (मध्यभारत) में श्रीपन्नालाल जी की धर्मपत्नी श्रीघीसी बाई की कुक्षि से सं० १९७१ में हुआ। और आपका विवाह श्रीगेंदालालजी के साथ हुआ था। इनका नाम सज्जनबाई था। १८ वर्ष की उम्र में इनको वैराग्य भावना जागृत होने से पं० प्र० श्रीरतनकुंवरजी म० के मुखारविन्द से सं० १९८९ मार्गशीर्ष वदि पंचमी के दिन तलगारा ग्राम मे दीक्षा ग्रहण कर महासतीजी श्री चतरकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई। आपकी प्रकृति भद्र और सेवाभाविनी हैं। इन्होंने हिन्दी, संस्कृत और शास्त्रीय ज्ञान संपादन किया है।

सती शिरोमणि श्रीदयाकुंवरजी म. की शिष्या श्रीनानूजी म.

रतलाम निवासी श्रीदुलीचन्दजी सुराणा की आप धर्मपत्नी थी। आपके चार संतान थीं। १ श्रीधनराजजी, २ श्रीकुंवरमलजी, ३ श्रीतिलोकचन्दजी, और ४ श्रीहीराबाई। पतिदेव के वियोगानंतर संतानों के छोटे-छोटे रह जाने से आप उदासीन रहती थी। सांसा-

रिक अनित्य परिस्थिति ने धीरे-धीरे इनके मन में वैराग्य उत्पन्न कर दिया। एक समय रतलाम में पधारे हुए स्वामीजी श्री अयवंता ऋषिजी म० का व्याख्यान सुनने के लिये आप गई थी। वहाँ "न वैराग्यात्परो बंधुर्न संसारात् परो रिपुः" अर्थात् संसार में वैराग्य से बढ़कर अपना कोई बन्धु नहीं है और सांसारिक विषयों से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है, इस प्रकार का प्रवचन सुनकर आपका वैराग्य और भी बढ़ गया। अपने स्थान पर आकर नानूबाई ने अपनी सुपुत्री से कहा कि मुझे अब दीक्षा लेना है। माता के वचन सुनकर पुण्यशालिनी कुमारी श्रीहीराबाई ने उत्तर दिया कि—हे माता! आप जिस मार्ग से जावेगी उसी मार्ग की मैं भी अनुगामिनी बनूंगी। माता पुत्री का दीक्षा विषयक निश्चय हो जाने के पश्चात् श्री कुंवरमलजी और श्रीतिलोकचन्दजी भी दीक्षा के लिये तैयार हुए। यद्यपि इनके परिवार ने श्रीतिलोकचन्दजी और श्रीहीराबाई को बहुत प्रलोभन देकर समझाया, किन्तु ये अपने निश्चय पर सुदृढ़ रहे। आखिरकार सं० १६१४ माघ कृष्ण प्रतिपदा गुरुवार के दिन इन चारों ने पंडित रत्न श्रीअयवन्ता ऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की। श्रीकुंवरमलजी और श्रीतिलोकचन्दजी श्रीअयवंता ऋषिजी म० की नेश्राय में शिष्य हुए। तथा श्रीनानूजी और श्री हीराजी सती शिरोमणि श्रीदयाकुंवरजी म० की नेश्राय मे शिष्या बनी। आप प्रकृति से सरल एवं गंभीर थी। मालव प्रांत में धर्म का प्रचार करते हुए इनका स्वर्गवास हो गया।

प्रभाविका महासतीजी श्रीहीराजी म०

रतलाम निवासी श्रीदुलीचन्दजी सुराणा की धर्मपत्नी श्रीनानू बाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ। बाल्यावस्था में ही आपकी सगाई हुई थी। माताजी दीक्षा लेने

के लिए प्रवृत्त है, यह जान कर आप भी दीक्षा लेने को तैयार हुई। तब परिवार वालों ने अनेक सांसारिक प्रलोभन दिखायें, तथापि आपने अपनी माता श्रीनानूजी के साथ ही दीक्षा ग्रहण करली। निजमत के शास्त्रीय ज्ञान के साथ साथ इन्होंने अन्य-मतो की भी जानकारी की थी। आपका कंठ मधुर होने से व्याख्यान बड़ा रोचक एवं प्रभाव पूर्ण होता था। ऋषिसंप्रदाय में हीरे के समान चमक कर आपने नामको सार्थक बनाया। सं० १९३५ का चातुर्मास जावरा शहर में करने के बाद जब पूज्यपाद श्रीतिलोक-ऋषिजी म० दक्षिण देश की ओर पधारे, तब इन्होंने भी दक्षिण प्रांत मे विचरने का विचार कर प्रस्थान किया। करीब चार वर्ष तक उसी देश में विचर कर वहां की श्रद्धालु जनता के हृदय मे उपदेशा-मृत से धर्मवल्ली को सिंचन किया। सं० १९४० में पूज्यपाद श्रीतिलो-कऋषिजी म० का स्वर्गवास हो जाने के बाद उनके शिष्य श्रीरत्न-ऋषिजी म० इन्हीं की प्रेरणा से मालव प्रांत में शास्त्रीय ज्ञान संपा-दन करने के लिये पधारे। महासतीजी स्वयं विदुषी थी और संत सतियों में प्रेरणा भरती थी कि ज्ञानोपार्जन करना चाहिये। इन्हीं की प्रेरणा का फल था कि श्रीरत्नऋषिजी म० अध्ययन कर ज्ञानी बने। इन्हीं महासतीजी के प्रभाविक सदुपदेश से ही लघुमुनि श्रीरत्न-ऋषिजी म० के समीप रतलाम में श्रीवृद्धिऋषिजी म० की दीक्षा हुई। और उनकी धर्मपत्नी आपकी सेवा में दीक्षित बन गई। आपकी तेरह शिष्याएँ हुईं। १ श्रीहरियाजी म० २ श्रीछोटाजी म०, ३ श्री-रंभाजी म०, ४ श्रीगोकुलजी म०, ५ श्रीलछमाजी म०, ६ श्रीझमकूजी म०, ७ श्रीअमृताजी म०, ८ श्रीसोनाजी म०, ९ श्रीरंगूजी म.. (इनका विवरण प्राप्त नहीं होने से नहीं दिया गया है।) १० श्रीनंदूजी म०, ११ श्रीचंपाजी म०, १२ श्रीभूराजी म०, १३ श्रीरामकुवरजी म०, इन चारो का विवरण और शिष्य परपरा आगे उल्लिखित की गई

है। इन्होने मालवा मेवाड़ मारवाड़ और दक्षिण आदि प्रांतों में विचरण कर जैनधर्म की बहुत प्रभावना की है।

प्रभाविका श्रीहीराजी म० की शिष्या तपस्विनी महासतीजी श्रीनंदूजी म० और उनकी परंपरा

नासिक जिले के साइखेड़ा नामक ग्राम के निवासी श्रीमेघराजजी नाबरिया की धर्मपत्नी श्रीचंदनबाई की कुक्षि से सं० १९१४ मार्गशीर्ष शुक्ल मे इनका जन्म हुआ और देरवाड़ी (नासिक) निवासी श्रीदगडूजी खिवसरा के साथ आपका विवाह किया गया। जन्मनाम तो इनका दगड़ीबाई था किन्तु दीक्षा के बाद आपका नाम नंदूजी म० रक्खा गया। इनकी दीक्षा २२ वर्ष की उम्र में सं० १९३६ चैत्र शुक्ल १३ के दिन कविवर्य पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म० के मुखारविन्द से होकर ये श्रीहीराजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुईं। मेधा शक्ति प्रबल होने से आपको शास्त्रीयज्ञान अच्छा था। इन्होने श्रीचन्द्र प्रज्ञप्ति और सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र को छोड़ कर शेष तीस सूत्रों का अध्ययन किया था। करीब २०० थोकड़े आपको कंठस्थ थे मालवा प्रांत मे आठ चातुर्मास करने के पश्चात् ये खानदेश दक्षिण और निजाम स्टेट में बहुत विचरी। निरंतर संयम मार्ग के संपादन मे ये तन्मय रहती थी। इनको तपश्चर्या की अभिरुचि विशेष थी अतः इन्होने कर्मचूर, धर्मचक्र, चक्रवर्त्ती के तेरह तेले, अठाइयाँ तेरह, पंचरंगी तपस्या, एक उपवास से वृद्धि करते २ पंदरह उपवास तक किये। एवं अठारह दिन की तपश्चर्या का थोक एक और इक बीस दिनों के उपवास का एक थोक किया। इस तरह अनेक प्रकार की तपस्याओं का संपादन करते रहने से ये तपस्विनी नाम से प्रख्यात हुईं। सेंतालीस वर्ष तक संयम मार्ग का पालन कर संवत् १९८३ मार्गशीर्ष शुक्ला ३ गुरुवार को उपवास के दिन अहमद-

नगर में आपका स्वर्गवास हो गया। इनकी सात शिष्याएँ हुई। १ श्रीछोटाजी म०, २ श्रीसिरेकुंवरजी म०, ३ श्रीरायकुंवरजी म०, ४ श्रीराधाजी म०. ५ श्रीकेसरजी म०, ६ श्रीसायरकुंवरजी म०। ७ श्रीजड़ावकुंवरजी म०।

महासतीजी श्रीछोटाजी म०

इन्होंने तपस्विनी महासतीजी श्रीनंदूजी म० से दीक्षा ली। आपको अभिरुचि शास्त्रीय ज्ञानोपार्जन मे विशेष रही। इन्होंने श्री-गुरुणीजी म० की सेवा में रहकर उनके साथ विचरण करती हुई संयममार्ग का पालन किया था।

प्रवर्तिनीजी श्रीसिरेकुंवरजी म०

थेवला (नासिक) निवासी श्री रामचंद्रजी की धर्मपत्नी श्री-सेरुबाई की कुक्षि से सं० १६३५ आषाढ़ मास में इनका जन्म हुआ। ये राहुरी निवासी श्रीताराचंदजी बाफणा के साथ विवाहिता हुई किंतु सौभाग्य अल्प समय तक ही रहा। सं० १६५४ आषाढ़ कृष्ण ४ भौमवार के दिन परमोपकारी श्रीरत्नऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण कर तपस्विनी महासतीजी श्रीनंदूजी म० की नेश्राय में शिष्या बनी। आपकी प्रकृति सरल और शांत थी। हिन्दी और प्राकृत भाषा की इनको जानकारी थी। सं० १६६१ चैत्र कृष्ण ७ को पूना में आयोजित ऋषिसंप्रदायी सती सम्मेलन में इन्हें प्रवर्तिनी पदसे अलंकृत किया गया सं. १६६२ पौष शुक्ल २ के दिन पंडिता महासतीजी श्रीसुमतिकुंवरजी म० की दीक्षा के शुभ प्रसंग पर कोंडे-गव्हाण में ठाणे ३ से आप पधारीथीं। इन्होने दक्षिण प्रांतीय अह-मदनगर, पूना, नासिक जिलों के छोटे २ गांवों में विचर कर जैनधर्म का प्रचार किया किंतु वृद्धावस्था में शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाने

पर ये घोड़नदी (पूना) में ही स्थिर वासी रही और वहां ही आपका स्वर्गवास सं० २००१ में हो गया। इनको एक शिष्या हुई जिनका नाम श्रीहुलासकुंवरजी म० है।

महासतीजी श्रीहुलासकुंवरजी म०

गउरवेल (बीड़-मोगलाई) निवासी श्रीरतनचंदजी गुगलिया की धर्मपत्नी श्रीछगनीबाई की कुक्षि से सं० १९६२ के मार्गशीर्ष शुक्ल में आपका जन्म हुआ। और हिंडरा (बीड़) निवासी श्री-रतनचंदजी मुथा के साथ आपका विवाह संबंध हुआ था। २६ वर्ष की अवस्था मे सं० १९८८ माघ शुक्ल १३ के दिन अहमदनगर में इन्होंने प्र० श्री सिरेकुंवरजी म० से दीक्षा ली। आपने संस्कृत हिंदी प्राकृत और मराठी भाषा का अभ्यास कर कुछ सूत्र भी कंठस्थ किये हैं। पाथर्डी परीक्षाबोर्ड की धर्मभूषण परीक्षा उत्तीर्ण है और वयो-वृद्ध महासतीजी श्रीकेसरजी म० की सेवा मे घोड़नदी (पूना) में रहकर बहुत वर्षों तक सेवा की और स्थविरा महासतीजी के संथारे के समय आपने अंतःकरण पूर्वक सेवा सुश्रूषाका लाभ उठाया है। वर्तमान में पं० प्र० श्री सायरकुंवरजी म० को सेवा मे पहुँचने के लिए घोड़नदी से विहार किया है।

तपस्विनीजी श्रीरायकुंवरजी म०

इन्होने तपस्विनी महासतीजी श्रीनंदूजी म० से दीक्षा ग्रहण की। आपकी प्रवृत्ति नामस्मरण तथा तपश्चर्या की ओर विशेष थी। सं० १९८४ में पुणतांबा (अहमदनगर) मे ये महासतीजी बहुत बीमार हो गई। आपकी शारीरिक हालत दयनीय देखकर वहां पधारी हुई सतीजी श्रीआनंदकुंवरजी म० ने इन्हे उठाकर १३ मील दूर कोपरगांव में पहुँचाया। आपकी भावना अनशन करने की थी,

अतः वहां आठ दिन के बाद पधारे हुए शास्त्रोद्धारक पं० श्रीअमोलकऋषिजी म० के मुखारविन्द से सं० १९८४ फाल्गुन कृष्णा ६ के दिन चतुर्विध संघ की उपस्थिति में इन्होंने अनशन प्रारंभ कर दिया। इस शुभ अवसर पर प्र० श्रीरंभाजी म० ठाणे १२ पधारे थे। अनशन वार्ता सुनकर स्थानीय सरकारी कर्मचारी लोगों ने आकर कहा कि आप भूखे मरकर आत्मघात क्यों कर रही हो? ऐसा सुनकर आपने धैर्ययुक्त शांतभाव से जवाब दिया कि मैं आत्म-कल्याण के लिये अनशनव्रत से समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण करना चाहती हूँ। ऐसा उत्साहपूर्वक प्रत्युत्तर सुनकर राजकर्मचारियों को समाधान हुआ। ये अपने व्रत पर दृढ़ रही। ४२ दिन का अनशन व्रत (संथारा) पालन कर सं० १९८५ चैत्र शुक्ला ४ सोमवार के दिन ये स्वर्गवासी हुई। कोपरगाव श्रीसंघ ने आगंतुक दर्शनार्थी लोगों की परिचर्या का लाभ उत्साहपूर्वक लिया था।

महासतीजी श्रीराधाजी म०

तपस्विनी महासतीजी श्रीनंदूजी म० के सदुपदेश से आप दीक्षित हुईं। गुरुणीजी की सेवा में आपने यथाशक्ति ज्ञान उपार्जन किया। आप स्वभाव से शीतल एवं सेवाभाविनी थी। आपका परिचय विशेष प्राप्त न होने से अधिक लिखने में नहीं आया।

महासतीजी श्रीकेशरजी म०

नारायणपुर (पुना) में सं० १९३१ में इनका जन्म हुआ। पिता का नाम श्रीगेनमलजी दूगड़ और माता का नाम कुन्दनबाई था। आपका विवाह सम्बन्ध पूना निवासी श्रीपेमराजजी पोखरणा के साथ हुआ। ३२ वर्ष की अवस्था में सं० १९६३ माघ शुक्ला ३

शनिवार के दिन वैराग्यभाव से नारायणपुर में ही इन्होंने तपस्विनी महासतीजी श्री नन्दूजी म० से दीक्षा ग्रहण की। आपका शिक्षण साधारण हुआ है। प्रवर्तिनी श्रीसिरेकुंवरजी म० के साथ आप विचरती थीं। शारीरिक स्थिति ठीक नहीं रहने से आप घोड़नदी (पूना) में स्थिरवासी है। सं० २०१२ के साल में आपकी शारीरिक स्थिति विशेष क्षीण होने से आपने प्रथमतः पांच दिन की तपश्चर्या करके घोड़नदी श्रीसंघ की सम्मति से यावज्जीवन अनशन व्रत मिति .... को अंगीकार किया। आपने श्रीसंघ को सूचना की थी कि मेरे संथारे के समाचार प्रधान मन्त्रीजी म० की सेवा में पहुँचावें परन्तु तारटपाल अन्यत्र देने की आवश्यकता नहीं है। अनशन लेने के बाद आपके भाव बढते ही गये। आखिर में के रोज समाधि पूर्वक आयुष्य पूर्ण करके आप स्वर्गवासी हुए। घोड़नदी श्रीसंघ ने आगन्तुक दर्शनार्थी लोगो की सेवा का लाभ उत्साह पूर्वक लिया था।

मधुर भाषिणी पंडिता प्र० श्रीसायरकुंवरजी म. और उनकी परम्परा।

जेतारण (मारवाड़) निवासी श्रीमान् कुन्दनमलजी बोहरा की धर्मपत्नी श्रीश्रेयकुंवर बाई की कुक्षि से सं० १९५८ कार्तिक वदी १३ के दिन इनका जन्म हुआ। सिकन्दराबाद निवासी श्रीसुगालचन्दजी मकाना के साथ आपका विवाह हुआ। गृहस्थ जीवन में भी आपकी प्रकृति विशेषतया धर्म की ओर झुकी हुई थी। संवत् १९८१ फाल्गुन कृष्णा २ बुधवार के दिन मिरि (अहमदनगर) में शास्त्रोद्धारक पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म० के मुखारविन्द से २२ वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण कर तपस्विनी महासती श्रीनन्दूजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई। आपकी धारणा शक्ति अच्छी होने से

इन्होंने श्रीदशवैकालिक सूत्र सम्पूर्ण और श्रीउत्तराध्ययन सूत्र के छुटकर अध्ययन, एवं १०१ थोकड़े, अनेक चौढालिया, करीब पांच सौ स्तवन पद्य, इसी तरह सैंकड़ों सवैया और श्लोक, तथा स्तोत्र आदि कण्ठस्थ कर लिये हैं। बत्तीस सूत्रों का वाचन भी किया है। ज्ञानचर्चा में ये हाजिर जवाबी है। आपका व्याख्यान इतना मधुर और प्रभावशाली होता है कि जैन और जैनेतर लोग मुग्ध हो जाते हैं। इनके व्यक्तित्व का इतना प्रभाव पड़ता है कि अनेक कुव्यसनी लोगों ने मांस, मदिरा, जूआ आदि का त्याग कर दिया। दक्षिण प्रान्त के अहमदनगर, पूना, खानदेश, बगलाना आदि जिलों मे तथा निजामस्टेट कर्णाटक देश में धर्म की बहुत प्रभावना करके ये आजकल मद्रास प्रान्त मे धर्म का प्रचार कर रही है और वहाँ आपके सदुपदेश से अनेक धार्मिक संस्थाएँ स्थापित हो गई हैं।

प्रवर्तिनी श्रीसिरेकुंवरजी म० का स्वर्गवास होने के पश्चात् सं० २००१ हैदराबाद (दक्षिण) में आपको पं० मुनिश्री कल्याण ऋषिजी म० की उपस्थिति में प्रवर्तिनी पद से सुशोभित किया गया। धार्मिक संस्थाओ के प्रति आपकी विशेष सद्भावना है। आपने धूलिया में संस्थापित श्रीअमोल जैन ज्ञानालय संस्था के लिये अच्छा सहयोग दिया है। आपकी छह शिष्याएँ हुईं। १ श्रीसोनाजी म०, २ श्रीसुमतिकुंवरजी म०, ३ श्रीपद्मकुंवरजी म०, ४ श्रीपारस कुंवरजी म०, ५ श्रीदर्शनकुंवरजी म० और श्रीइन्दुकुंवरजी म०।

महासतीजी श्रीसोनाजी म०

वरखेड़ा (अहमदनगर) निवासी श्रीरामचंद्रजी की कन्या और वहां के ही निवासी श्रीहजारीमलजी चोपड़ा की धर्मपत्नी थी। पिछले दिनों में भानसहिवरा मे आप निवास कर रही थी। सं०

१६८२ घोड़नदी क्षेत्र में पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० की उपस्थिति में इनको पं० प्र० श्रीसायरकुंवरजी म० द्वारा दीक्षा दी गई। दीक्षा के समय आपकी आयु ४२ वर्ष की थी। ये भद्रस्वभाव वाली सती थी पूना में प्रवर्तिनीजी श्रीरंभाजी म० की सेवा में कुछ दिन रही थीं। इनका स्वर्गवास वहां ही हुआ। ये पं० मुनिश्री कल्याणऋषिजी म० की संसार पक्ष मे माताजी थी।

महासतीजी श्रीसुमतिकुंवरजी म०

आपका जन्म अहमदनगर में ओसवालवंश के बोहरा गोत्र में हुआ था। १८ वर्ष की अवस्था मे पूना में पं० महासतीजी श्री सायरकुंवरजी म० से ये दीक्षित हुई। किन्तु खेद की बात है कि दीक्षा के चार मास पश्चात् ही पूना मे इनका स्वर्गवास हो गया।

महासतीजी श्रीपद्मकुंवरजी म०

बोरकुंड (खानदेश) निवासी श्रीगोपालचंदजी बाफना की धर्मपत्नी श्रीजड़ावबाई की कुक्षि से सं० १६५६ भाद्रपद कृष्ण ४ के दिन आपका जन्म हुआ। कमलसरा (खानदेश) निवासी श्रीकिस-नदासजी छाजेड़ के साथ ये विवाहित हुई। करीब ३२ वर्ष की आयु में पं० प्र० श्रीसायरकुंवरजी म० से इन्होंने स० १६८७ माघ शुक्ल १० के दिन धुलिया में दीक्षा ली। इनका शिक्षण साधारण और स्वभाव तीक्ष्ण था। आपका स्वर्गवास सं० १६६६ में हो गया है।

महासतीजी श्रीपारसकुंवरजी म०

ग्राम रोज (नासिक) निवासी श्रीनाहरमलजी बाफना की

धर्मपत्नी श्रीनाजूंवाई की कुक्षि से सं० १९७३ वैशाख वदी ५ के दिन आपका जन्म हुआ और सिदवाड़ी (खानदेश) निवासी श्रीगंगारामजी बरडिया के साथ आप विवाहित हुई। सं० १९९७ आषाढ़ शुक्ल ५ के दिन बोरकुंड (खानदेश) में २५ वर्ष की उम्रमें इन्होंने पं० प्र० श्रीसायरकुंवरजी म० की सेवा में दीक्षा ग्रहण की। आप सेवाभाविनी सती है और दक्षिण, खानदेश. निजाम स्टेट, कर्णाटक, मद्रास आदि प्रांतों में प्रवर्तिनीजी की सेवा में विचर रही है।

महासतीजी श्रीइन्दुकुंवरजी म०

मिरि (अहमदनगर) निवासी श्रीमुलतानमलजी बोगावत की सुपुत्री, और वहीं के निवासी श्रीमुलतानमलजी मेहर के साथ आप विवाहित हुई। आपके पतिदेव ने शास्त्रोद्धारक पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म० से संवत् १९८२ मार्ग शीर्ष शुक्ल १५ के दिन घोड़नदी में दीक्षा ली। तत्पश्चात् ये भी संसार से विरक्त हो कर धर्म की ओर विशेष प्रवृत्त हुई। गाम भानसहिवरा (अहमद नगर) मे सं० २००० वैसाख शुक्ल ३ के दिन ये पूज्यश्री आनन्द ऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण कर पं० प्र० श्रीसायरकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या बन गई। दीक्षा के समय पं० मुनिश्री कल्याण ऋषिजी म०, स्थविर मुनिश्री माणक ऋषिजी म०, कविश्री हरिऋषिजी म०, श्रीमनसुख ऋषिजी म० श्रीकांति ऋषिजी म० आदि ठाणे १४ संत और सतियों में श्रीआनन्द कुंवरजी म०, कोटा सम्प्रदायी महासतीजो श्रीराजकुंवरजी म० आदि भी उपस्थित थे। आप शांत प्रकृति की हैं तथा सेवा कार्य में विशेष अभिरुचि रखती है। इस समय प्र० गुरुणीजी के साथ मद्रास प्रान्त में विचर रही है।

प्रभाविका सतीजी श्रीहीराजी म० की शिष्या श्रीचंपाजी म० और उनकी परंपरा

घोड़नदी (पूना) निवासी श्रीगंभीरमलजी लोढ़ा की ये धर्मपत्नी थी। संसार से विरक्ति हो जाने से ये अपनी पुत्री सहित सं० १९३६ आषाढ़ शुक्ल ९ शनिवार के दिन पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा धारण कर यथार्थनाम्नी प्रभाविका महासतीजी श्रीहीराजी म० की नेश्राय में शिष्या बन गई। इन्होंने श्रीगुरुणीजी की सेवा मे रह कर ज्ञान, ध्यान, दर्शन और चारित्र में अच्छी सफलता प्राप्त की। क्षमामूर्ति श्रीरामकुंवरजी म० को शिक्षित बनाने का श्रेय इनको ही था। १६ वर्ष तक परीषहो को सहन करते हुए अनेक छोटे २ ग्रामों मे विचरण कर इन्होंने जैनधर्म का प्रचार किया। सहनशीलता शांतता, गंभीरता और निष्कपटता इनके विशेष गुण थे। आपके इन सद्‌गुणो की प्रशंसा अभी भी पुराने लोग कर रहे है।

सं० १९५१ का चातुर्मास अहमदनगर करने के लिए आषाढ़ कृष्णा ११ के रोज इन्होंने घोड़नदी से विहार किया। वहाँ से करीब डेढ़ मिल उतारे के बंगले पर पधारे। पानी चुकाने के समय सायंकाल मे यकायक वमन हुआ। उस समय शारीरिक परिस्थिति के ऊपर से भावी परिणाम का लक्षण देखकर इन्होंने स्वयमेव अनशन ग्रहण कर लिया। दूसरे दिन स्थानीय श्रीसंघ के आग्रह से वापिस घोडनदी पधारे। पांच दिन तक बेभान से थे। उनको खाने पोने तथा औषध आदि देने के लिये सतियो ने तथा श्रावक श्राविकाओ ने बहुत प्रयत्न किये परन्तु उनको महासतीजो ने उपयोग मे नही लिया। महासतीजी ने अनशन ले लिया है, यह बात उनकी शिष्याओ को भी विदित नहीं थी। नहीं तो वे लोग इतना

प्रयास क्यों करते। आखिर पांच दिन के बाद चेतना शक्ति स्वस्थ होने पर अपने शिष्यावर्ग तथा श्रावक श्राविकाओं को महासतीजी ने सूचित किया कि मैं प्रत्याख्यान कर चुकी हूँ मेरे लिये आप लोग औषधोपचार का कुछ प्रयत्न न करें। महासतीजी की इस दृढ़ प्रतिज्ञा अर्थात् संथारे की बात चारों तरफ बिजली के समान फैल गई। बहुत दूर २ के श्रावक श्राविकावर्ग दर्शनार्थ आने लगे। उस कालके वृद्धो के द्वारा सुना जाता है कि महासतीजी श्रीचंपाजी म० के संथारे के समान संथारा नहीं हुआ। इनके संथारे की हकीकत वास्तविक में शिलालेख के तुल्य है। ६५ दिन का उनको संथारा आया। उसमें ६० दिन तक तिविहार और ५ दिन चौविहार रहे थे।

संथारे के समय आपकी गुरुभगिनी श्रीनंदूजी म० चौमासे के अंदर सोनई से विहार करके आपकी सेवा में आ गई थी। सुना जाता है कि रास्ते में सिर्फ एक दफे आहार किया, बाकी के दिन तपश्चर्या मे ही बिताये। आषाढ़ वदि ११ से प्रारंभ करके भाद्रपद शुक्ल ३ के रोज महासतीजी श्रीचंपाजी म० संथारा (अनशनव्रत) पूर्ण कर स्वर्गवासी हुई। परन्तु संसार में अपना एक आदर्श छोड़ गई। इनकी दो शिष्याएँ हुईं। १ श्रीछोटाजी म. २ श्रीजमुनाजी म.।

महासतीजी श्रीछोटाजी म०

ये आवलकुटि (अहमदनगर) की निवासिनी थी। इन्होंने महासतीजी श्रीचंपाजी म० के समीप आवलकुटि मे ही दीक्षाग्रहण की। इनकी प्रकृति सेवाभाविनी और भद्रपरिणामी थी। इन्होंने श्रीगुरुणीजी म० की सेवा में रहकर साधारण ज्ञान प्राप्त किया। था। आपका स्वर्गवास दक्षिण प्रांत मे ही हुआ है।

महासतीजी श्रीजमुनाजी म०

ये आवलकुटि (अहमदगर) में रहती थी । महासतीजी श्रीचंपाजी म० ने घोड़नदी में सथारा (अनशनव्रत) लिया है, ऐसे समाचार सुनकर ये दर्शनार्थ आई थीं । दर्शनो से इनके मनके विचारों में परिवर्तन होकर ये संयममार्ग को अपनाने के लिये उद्यत हो गईं । परन्तु महासतोजी श्रीचंपाजी म० ने अनशन मे होने के कारण इन्हें दीक्षा देने से इनकार कर दिया अतः इनको दीक्षा सं० १९५१ मे श्रीचपाजी म० का स्वर्गवास होने के पश्चात् हुई और ये उनकी ही शिष्या के रूप में विख्यात हो गई । जिस उत्कृष्ट भावना से इन्होने दीक्षा ली थी उसी दृढ़ता से संयम और तपोमार्ग के पालन से ये अपने जीवन को सफल कर गई । दक्षिण प्रांत में विचरते हुए इनका स्वर्गवास हो गया ।

प्रभाविका महासतीजी श्रीहीराजी म० की शिष्या शांतमूर्ति महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० और उनकी परंपरा

पूना जिला में घोड़नदी (लश्कर) नामक एक सुप्रसिद्ध ग्राम है । वहां पर श्रीमान् सुश्रावक गंभीरमलजी लोढ़ा रहते थे । उनकी धर्मपत्नी का नाम चंपाबाई था । दृढ़धर्मी श्रीचंपाबाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ । और लौकिक नाम छोटीबाई रक्खा गया था । समय पर आपका विवाह खाराकर्जुना निवासी श्रीगुलाबचदजी बोरा के साथ कर दिया किन्तु अठारह मास तक ही आपका सौभाग्य रहा । अनेक संतानों मे भी अवशिष्ट एक पुत्री, और वह भी विधवा हो जाने से मातापिता को विशेष दुःख हुआ । वे दोनों अपनी पुत्री सहित किसी अच्छे मुनिश्री के मुखारविंद से सदुपदेश श्रवण करके अपने जीवन को सफल बनाने का निश्चय कर संतों के

दर्शन करने के लिये इन्दौर (मालवा) में पधारें । वहां कोटा संप्रदायी पूज्यश्री छगनलालजी म० विराजते थे । इन्होंने घोड़नदी की तरफ पधारने के लिये मुनिश्री की सेवा में विनति की परंतु रास्ता विकट होने से मुनिश्रीजी ने असमर्थता प्रकट करदी । तब निराश होकर कविकुलभूषण पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म० की सेवा में जावरा शहर में आये और वहां भी श्रीमान् लोढ़ाजी ने प्रार्थना की कि "हे स्वामी ! आप इसी प्रदेश मे क्या विचर रहे है ? दक्षिण देश की तरफ आप पधारें तो विशेष उपकार होगा" इस प्रकार लोढ़ाजी की आंतरिक भावना और उपकार का कारण समझकर पूज्यपाद महाराजश्री ने इनकी विनति स्वीकृत कर फरमाया कि सुखेसमाधे क्षेत्र स्पर्शनेकी भावना है । स्वामीजी म० की दिव्यकांति एवं ओजस्वी व्याख्यानों को सुनकर दंपती का अंतःकरण बहुत प्रभावित और आल्हादित हो गया था । उन्होंने समझ लिया था कि ऐसे ही मुनि गुरु बनाने योग्य हैं ।

सं० १९३५ का चातुर्मास जावरा शहर में पूर्ण कर पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म० कठिन परीषह सहन करते हुए बहुत लम्बे मार्ग को शीघ्र पार कर सं० १९३६ के चैत्र में घोड़नदी पधार गये। उस समय प्रभाविक महासतीजी श्रीहीराजी म० भी घोड़नदी में पधारी हुई थी। महापुरुषों का पदार्पण होने से श्रीमान् लोढाजी ने अपने जीवन को कृतकृत्य समझा। पूज्यपाद महाराजश्री के प्रभाविक प्रवचनों को सुनकर माता-पुत्री का वैराग्य रंग दृढ़ गया। आखिरकार सं० १९३६ आषाढ शु० ६ के दिन माता सहित पुत्री छोटीबाई ने पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण कर सती शिरोमणि श्रीहीराजी म. की नेश्राय मे शिष्याएँ हुईं । माता दीक्षा के पश्चात् श्रीचम्पाजी म. के नाम से विख्यात हुई,

जिनका वर्णन पूर्व मे दिया जा चुका है और सुपुत्री श्रीछोटीबाई दीक्षा के पश्चात् श्रीरामकुंवरजी म० के नाम से प्रख्यात हुई।

सर्व प्रथम दीक्षा के बाद ये करीब साढ़े चार वर्ष तक गुरुणीजी श्रीहीराजी म० की सेवामें ज्ञानोपार्जन करती रही। तत्पश्चात् सं० १९४० मे पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म० का स्वर्गवास अहमदनगर मे हो जाने से गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० को शिक्षित बनाने की भावना से महासतीजी श्रीहीराजी म० ने मालवा की ओर प्रस्थान कर दिया। उस समय श्रीचम्पाजी म० श्रीरामकुंवरजी म० आदि ठाणे ३ दक्षिण मे ही रही। एक तो श्रीचम्पाजी म० संसार पक्ष से इनकी माता थीं और दूसरी तरफ आश्रयदात्री भी। इन्होने इनको समय २ पर उचित शिक्षा देकर या दिलाकर एक आदर्श और विदुषी सती बना दिया इनका समागम आपको ग्यारह वर्ष तक रहा। इसके दरम्यान सत्यता, सज्जनता, सच्चरित्रता सरलता, सादगी, दयालुता, गम्भीरता, आदि गुणों से युक्त श्रीरामकुंवरजी म० की कीर्ति बेलि चारों ओर फैल गई। महासतीजी श्रीचम्पाजी म० का सं० १९५१ भाद्रपद शु० ३ के रोज ६५ दिन के अनशन पूर्वक स्वर्गवास हुआ। पहले तो श्रीगुरुणीजी का और बाद में श्रीचम्पाजी म० का अंकुश रहा, अतः इतने लम्बे समय तक अनुशासन में रह जाने से इनका जीवन स्रोत ऐसी धार्मिक मर्यादा में बहा, जहाँ स्वच्छंदता का नाम भी नहीं था। श्रीगुरुणीजी और माताश्री का अंकुश हट जाने पर भी ये ज्ञान और विवेक के आश्रय में रहकर अपने चारित्र को समुज्वल बनाते हुए जैनधर्म का प्रचार करने लगी। मुक्ति साधना की आराधना में आपका ध्यान सदा लगा रहता था।

गुरुबन्धु श्रीरत्नऋषिजी म० के साथ इनका अत्यन्त विशुद्ध प्रेमभाव था, क्योकि दोनो को दीक्षा एक ही दिन हुई थी। दोनों में

से किसी के भी पास दीक्षा का शुभ प्रसंग हो तो दूर क्षेत्र में होने पर भी परस्पर अपना सहयोग प्रायः देते थे। शांत मूर्ति महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० दीर्घकाल तक सोलह सतियो से विचरती थी। सभी आर्याओं की प्रकृति सरीखी नहीं होती, तथापि सब को निभाना और प्रेम भरी शिक्षा देना आपकी विशेषता थी। ये बहुत मानी हुई और ख्यातनामा सतीजी थी, तथापि अहंकार से दूर रहती थी और साधारण संत सती के पास जाने मे जरा भी सकोच नहीं करती थी। आपका स्वभाव इतना नम्र था कि आपकी ज्येष्ठ गुरुभगिनी महासतीजी श्रीभूराजी म० ठाणे ८ दीर्घकालानंतर मालव देश से दक्षिण तरफ पधार रही है, यह शुभ संदेश पाकर १० ठाणे से आप अपनी शिष्याओं के साथ मनमाड़ तक स्वागत प्रीत्यर्थ सामने पधारी थी। ये अपने संयम मार्ग पर दृढ रहती थी और बाधा आने पर भी धैर्य को नहीं छोड़ती थी। आपके हाथ से माला नही छूटती थी। नमोकार मन्त्र, अरिहंत सिद्ध साहू श्रीशान्तिनाथजी का जाप इत्यादि नाम स्मरण में और शास्त्रीय चितन मे ये अपना समय अधिक लगाती थी। आपके पास वचन माधुर्य इतना था कि शत्रु भी आपके सामने झुक जाता था। आपके समीप रहने वाली मासी गुरुणीजी सती श्रीसोनाजी म० और श्रीझमकूजी म० के साथ इनका इतना नम्रभाव रहता था कि आज भी लोग आपकी सरलता और नम्रता को याद करते हैं।

सच तो यह है कि जैनधर्म रूपी जिस पौधे को दक्षिण देश में पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म० ने लगाया था उसे गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० ने और इन्होने अपनी अमृतवाणी से सींच कर हरा भरा बनाया और प्रफुल्लित कर दिया।

आपका संयमी जीवन ५२ वर्ष तक रहा। शारीरिक शिथिलता के कारण ये घोड़नदी मे चार वर्ष तक स्थिरवास रहीं। अंतिम

वर्ष में वायु के विकार से जबान से अस्पष्ट शब्द हो जाने पर इन्होंने कुछ दिन तक एकांतर तप और तत्पश्चात् बेले २ का पारणा करना प्रारम्भ कर दिया। और पं० रत्न मुनिश्री आनन्द ऋषिजी म० की सेवा में सं० १९८८ के बोदवड़ चातुर्मास में आपने समाचार दिलाये कि 'मेरी वृद्धावस्था है, एक दफे दर्शन देने की कृपा करें।" शान्तमूर्ति स्थविरा महासतीजी की हार्दिक प्रार्थना पर ध्यान पहुँचा कर पं० रत्न मुनिश्री और महात्माजी श्रीउत्तम ऋषिजी म० ठाणे २ शीघ्रता से विहार कर घोड़नदी पधारे और दर्शन देकर महासतीजी की भावना सफल की।

तपश्चर्या करते हुए आखिरकार सं० १९८९ कार्तिक वदि द्वितीया के दिन मध्यरात्रि के बाद पांच प्रहर के अनशन पूर्वक ये इस असार शरीर को त्याग कर स्वर्गारूढ हो गईं। इस अवसर पर अहमदनगर निवासी शास्त्रज्ञ सुश्रावक श्रीमान् किशनदासजी मुथा सपरिवार उपस्थित थे। आपकी जन्मभूमि घोड़नदी, दीक्षा और स्वर्गवास भी वहीं हुआ। आपकी तेवीस शिष्याएँ हुईं। १ श्रीरङ्गुजी म०, २ श्रीबड़े सुन्दरजी म०, ३ श्रीहुलासाजी म०, ४ श्रीसूरजकुंवरजी म०, ५ श्रीबड़े राजकुंवरजी म०, ६ श्रीबड़े केशरजी म०, ७ श्रीकस्तूराजी म०, ८ श्रीछोटे सुन्दरकुंवरजी म०, ९ श्रीशांतिकुंवरजी म०, १० श्रीसदाकुंवरजी म०, ११ श्रीछोटे राजकुंवरजी म०, १२ श्रीप्रेमकुवरजी म०, १३ श्रीश्रेयकुंवरजी म०, १४ श्रीचंद्रकुंवरजी म०, १५ श्रीजड़ावकुंवरजी म०, १६ श्रीसुव्रताजी म०, १७ श्रीचाँदकुंवरजी म०, १८ श्रीपानकुंवरजी म०, १९ श्रीजसकुंवरजी म०, २० श्रीसरसकुंवरजी म०, २१ श्रीरम्भाजी म०, २२ श्रीकेसरजी म०, २३ श्रीसोनाजी म०।

महासतीजी श्रीरंगूजी म०

ये आलेगांव (पूना) की निवासिनी थी। शान्तमूर्ति श्री

रामकुंवरजी म० के सदुपदेश से वैराग्य प्राप्त होने से इन्होंने दीक्षा ले ली। संयम मार्ग में लक्ष रखते हुए आपने साधारण शिक्षण भी लिया। इनका स्वर्गवास पूना में हुआ।

महासतीजी श्रीबड़े सुन्दरजी म०

आपकी और आपकी छोटी बहिन श्रीहुलास कुंवरजी म० की दीक्षा साथ ही शान्तमूर्ति श्रीरामकुंवरजी म० की सेवामें आले गांव (पागा) जिला पूना में हुई। ये श्रीगुरुणीजी म० की द्वितीय शिष्या थी। आपकी गुरु भक्ति, हार्दिक दूरदर्शिता समय सूचकता, और दाक्षिण्यता लोगों को मुग्ध करती थी। आप एक सच्ची सलाह-कारिणी थी। महासतिजी श्रीरामकुंवरजी म० के साथ विचरने वाली सोलह सतियों मे आप प्रधान और नेतृत्व करने वाली थी। आपके नेतृत्व में कोई सतीजी हस्तक्षेप नहीं करती थी बल्कि सब अपना अपना कार्य करती रहती। आपका अनुशासन कठोर होने से और नेतृत्वशक्ति अनूठी होने से लोग इन्हें प्रधानाजी म० के नाम से पुकारते थे।

आपकी आवाज बुलन्द और गायनकला उत्कृष्ट थी। आपका हितोपदेश इतना प्रभावशाली होता था कि इनकी बात को टालने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। हित शिक्षा देने के इनके तरीके को आज भी प्रधानमन्त्री श्रीआनन्द ऋषिजी म० याद किया करते हैं।

आपने दक्षिण प्रान्तीय अहमदनगर, पूना, नासिक जिले में विचर कर अनेक भव्य आत्माओं को सन्मार्ग पर लगाकर धर्म में दृढ़ किया है। ये अपना समय संयम और तप के पालन में बिताते थे। अपनी शारीरिक शक्ति क्षीण देखकर आपने एक एक उपवास

बढ़ा कर अठाई कर ली थी। पश्चात् अवसर देख कर नौवें दिन संथारा लिया। ये समाचार पाकर गुरुवर्य श्रीरत्न ऋषिजी म० श्री आनन्द ऋषिजी म० ठाणे २ अष्टी (निजाम स्टेट) से विहार करके संथारे पर पधारे थे। उस समय अहमदनगर निवासी शास्त्रज्ञ सुश्रावक श्रीमान् किसनदासजी मुथा मकान लेकर करीब पंद्रह दिन तक सेवा मे रहे थे। संथारे की शुभ वार्ता सुनकर बाहर गांव से करीब ८०० लोग दर्शनार्थ आये थे वांबोरी (अहमदनगर) श्रीसंघ ने आगंतुक लोगो की सेवा भक्ति का लाभ उत्साहपूर्वक लिया था। नौ दिन का अनशन व्रत पालकर सं० १९७७ आषाढ़ मास मे इनका स्वर्गवास हो गया। आपके गुणो की प्रशंसा आज भी परिचित लोग मुक्त कंठ से कर रहे है।

महासतीजी श्रीहुलासाजी म०

बड़े सुंदरजी म० की ये छोटी बहिन थी। दोनो की दीक्षा आलेगांव मे साथ ही हुई थी। इन्होने साधारण शिक्षण लिया था। आपका स्वर्गवास १९८३ द्वितीय चैत्र कृष्णा दशमी बुधवार के दिन वांबोरी (अहमदनगर) मे हुआ। ये भद्रस्वभाव की सतीजी थी।

महासतीजी श्रीसूरजकुंवरजी म०

करंजी (अहमदनगर) निवासी श्री छोटमलजी मुणोत की आप पुत्री थी। आपका विवाह वडूला निवासी श्रीबिरदीचंदजी कोठारी के साथ हुआ था। इन्होंने घोड़नदी (पूना) मे महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० से दीक्षा ग्रहण की थी। ये पं० मुनिश्री आनंद-ऋषिजी म० की संसार पक्ष से बड़ी मौसी थी। नामस्मरण करने मे इनकी भावना विशेष रहती थी। आपका अध्ययन साधारण था। इनका स्वर्गवास सं० १९७७ आषाढ़ शुक्ल ५ के दिन अहमदनगर

में हुआ। अंतिम देहसंस्कार का खर्च आपके संसारपक्ष के पौत्र श्रीभगवानदासजी कोठारी ने किया था।

महासतीजी श्रीबड़े राजकुंवरजी म०

अहमदनगर निवासी श्रीदौलतरामजी बोरा इनके पिता थे और आपका विवाह चिचोंड़ी पटेल (अहमदनगर) निवासी श्री-कोंडीरामजी गांधी के साथ हुआ था। सं० १९५१ में इन्होंने सती शिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० से चिचोंड़ी (पटेल) मे दीक्षा ली। दीक्षा संबंधी खर्च अपने घरसे ही हुआ था। ये सतीजी बड़ी सरल और सेवाभाविनी थे। शास्त्रीय ज्ञान साधारण था किन्तु सेवाभाव से सब सतियों के लिये गौचरी लाने के विषय में एषणा समिति के अनुसार आपमें विशेष दक्षता एवं समय सूचकता थी। इसीलिए ये महासतीजी "गोचरीवाले महाराज" इस नाम से प्रसिद्ध थे। इनका स्वर्गवास सं० १९७० में अहमदनगर में हुआ।

महासतीजी श्रीसदाकुंवरजी म०

नांदूर खंडरमाल (अहमदनगर) निवासी श्रीपन्नालालजी भंडारी की धर्मपत्नी श्रीरुखमाबाई की कुक्षि से सं० १९३४ में इनका जन्म हुआ। आपका विवाह कन्हेर पोखरी निवासी श्रीमलकरणजी डूंगरवाल के साथ हुआ था। इन्होंने २१ वर्ष की अवस्था में शांत--मूर्ति श्रीरामकुंवरजी म० के समीप सं० १९५५ ज्येष्ठ कृष्णा १३ के दिन आवलकुटी (अहमदनगर) ग्राम में दीक्षा ग्रहण की। संयम मार्ग में विशेष अनुराग रखते हुए शास्त्रीय ग्रंथो का साधारण अध्य-यन कर २०-२५ थोकड़े कंठस्थ कर लिये हैं। ये बड़े क्रियाशील और आत्मार्थी सतीजी हैं। वर्तमान में श्रीसरसकुंवरजी म० के साथ अहमदनगर में आप विराज रहे हैं।

महासती श्रीकस्तूराजी महाराज।

आपका जन्म पीपला (निजाम स्टेट) में हुआ। इनके पिता का नाम श्रीरूपचन्दजी बोरा और भाई का नाम श्रीतेजमल जी बोरा था। अहमदनगर निवासी समाज विख्यात श्रीकिसनदास जी मुथा के अग्रज बन्धु श्रीअगरचन्दजी मुथा की आप धर्मपत्नी थी। सं० १९५६ आषाढ़ शु० ५ के दोपहर में डेढ बजे आपने अहमदनगर में महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० से दीक्षा ली। उस समय गुरुवर्य श्रीरत्न ऋषिजी म०, पं० मुनिश्री अमोलक ऋषिजी म०, श्रीसुलतान ऋषिजी म० श्रीहेमराजजी म० आदि संत उपस्थित थे। दीक्षा समारोह में सम्मिलित होने के लिए करीब ७०० लोग बाहर से आये थे। आपने संयम मार्ग का पालन उत्कृष्टता से किया था। इनका स्वर्गवास घोड़नदी (पूना) में सं० १९७२ में हो गया।

महासती श्रीबड़े केशरजी महाराज

घोड़नदी (पूना) निवासी श्रीमगनीरामजी दरडा की ये धर्मपत्नी थी। इनका नाम कालीबाई था। पति का वियोग होने पर थोड़े ही दिनो मे इन्होने श्रीरामकुंवरजी म० से दीक्षा अंगीकार की। केशरजी म० नाम रक्खा गया। यद्यपि स्वभाव से ये सतीजी उग्र थे किन्तु दीक्षा के पश्चात् विशेष शान्त हो गये। २१ दिन के संथारे के पश्चात् आपका स्वगवास घोड़नदी में हो गया। संथारा वाले सतीजी को दर्शन देने के लिये गुरुणीजी श्रीरामकुंवरजी म० ने वांबोरी से विहार किया था, परन्तु रास्ते में संथारा परिपूर्ण होने के समाचार मिलने से महासतीजी वापिस लौटे।

महासती श्रीछोटे सुन्दरकुंवरजी महाराज

घोड़नदी निवासी श्रीगुलाबचन्दजी दूगड़ की आप धर्मपत्नी

थी। सं० १६५७ पौष कृष्णा ११ मंगलवार के दिन इन्होने अपनी लघुपुत्री श्रीशांतिकुंवर के साथ महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० से दीक्षा ले ली। आप शांत स्वभावी सतीजी थे। ज्ञान ध्यान और संयम मार्ग का पालन इन्होने करीब ३२ वर्ष तक किया। संवत् १६८६ कार्तिक वदि तृतीया के दिन करीब ११ बजे रात्रि से ६ प्रहर का संथारा (अनशन व्रत) लेकर आप घोड़नदी मे ही देवलोक हुई।

प्रवर्तिनीजी श्रीराजकुंवरजी महाराज

वांबोरी (अहमदनगर) निवासी श्रीमान् चदनमलजी मुथा जी की धर्मपत्नी श्रीहरकूबाई की कुक्षि से आपका जन्म होकर विवाह सम्बन्ध पूना निवासी श्रीरतनचंदजी मुणोत के साथ हुआ। सं० १६६२ मार्गशीर्ष शु. १३ के रोज गुरुवर्य श्रीरत्न ऋषिजी म० के मुखारविन्द से आपकी दीक्षा घोड़नदी (पूना) मे होकर महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म. की नेश्राय से शिष्या हुई। आप बड़ी ही सुशील सरल स्वभावी सेवाभावी और आत्मार्थी सतीजी है। सं० २००५ मार्ग शीर्ष शु० १० शनिवार के रोज घोड़नदी मे पूज्यश्री आनन्द ऋषिजी म० ठाणे ५ तथा महासतीजी श्रीसदाकुंवरजी म०, श्रीचांद कुंवरजी म०, श्रीपानकुंवरजी म०, श्रीरंभाजी म०, श्रीकेसरजी म० आदि ठाणे १७ की उपस्थिति में इनको प्रवर्तिनी पद से अलंकृत किया। आप दक्षिण प्रांतीय नासिक, खानदेश, अहमदनगर, पूना, सतारा आदि जिलों में विचरे हैं और वर्तमान मे अहमदनगर में विराजते है।

महासतीजी श्रीप्रेमकुंवरजी महाराज

सलाबतपुर (अहमदनगर) निवासी श्रीउत्तमचन्दजी चतर

की धर्मपत्नी श्रीसदावाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ। संसारी अवस्था में आपका नाम तुलसाबाई था। विवाह सम्बन्ध भानस हिवड़ा निवासी श्रीतिलोकचन्दजी मुथा के साथ हुआ। सौभाग्य सिर्फ सवा महीने का रहा था। आपके संसारावस्था के श्वसुर श्री रतनचन्दजी मुथाजी ने अपने ग्राम मे ही सं १९६३ फाल्गुन शु. ३ गुरुवार के रोज आपकी दीक्षा करवाई थी। आपका दीक्षित नाम श्रीप्रेमकुंवरजी म० रक्खा गया। इनकी गायनकला सुमधुर और प्रशंसनीय थी। शान्तमूर्ति महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० के व्याख्यान मे आपके और पण्डिता प्र० श्रीशान्तिकंवरजी म० के गायन से जनता प्रभावित हो जाती थी। गुरुणीजी की सेवामे रहकर सयम मार्ग का पालन अच्छी तरह किया था। आपका स्वर्गवास अहमदनगर में हुआ। अतिम देह संस्कार का खर्च आपके संसारावस्था के बन्धु सलाबतपुर निवासी श्रीगोकुलदासजी गेदमल जी ने किया था।

महासतीजी श्रीसिरेकुंवरजी महाराज

घोड़नदी (पूना) निवासी श्रीकरणमलजी भंडारी मुथा की आप लघुभगिनी थी। विवाह सम्बन्ध श्रीचंदनमलजी मुथा अहमद-नगर वाले के साथ हुआ। आपकी दीक्षा घोड़नदी में सं० १९६५ मे हुई। दीक्षा सम्बन्धी अर्थ व्यय परिवार वालो ने किया था। आप शांतस्वभावी सतीजी थे। संयम मार्ग को बड़ी वीरता के साथ १८ वर्ष तक पालन करके सं० १९८३ द्वितीय चैत्र शु० ४ के दिन वांबोरी (अहमदनगर) मे ये स्वर्गवासी हुये। अंतिम देह संस्कार का खर्च अहमदनगर निवासी श्रीचन्दनमलजी हीरालालजी भंडारी ने किया था।

महासतीजी श्रीचन्द्रकुंवरजी महाराज

पूना निवासी श्रीलालचन्दजी गेलड़ा की आप धर्मपत्नी थीं। इन्होंने घोड़नदी (पूना) में महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० के नेश्राय में दीक्षा ग्रहण की। अपनी गुरुणीजी की सेवामें रहकर शास्त्रीय साधारण ज्ञान प्राप्त किया था। आप प्रकृति के शान्त थे। सं० १९७५ भाद्रपद कृष्ण १३ के दिन पांच बजे तीन दिन के संथारे से आयुष्य पूर्ण करके अहमदनगर में आप स्वर्गवासी हुईं। पूना निवासी श्रीबालारामजी गेलड़ा (संसार पक्ष के देवर) ने अंतिम संस्कार का खर्च किया था।

महासतीजी श्रीजड़ावकुंवरजी म०

शिरूर भालगांव निवासी श्रीरघुनाथजी मुणोत की धर्मपत्नी श्रीचंपाबाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ। पाना के पारगांव निवासी श्रीफूलचंदजी कोठारी के साथ आपका विवाह संबंध होकर करीब ८-१० वर्ष तक सौभाग्य रहा था। दो वर्ष के पश्चात् अपनी २५ वर्ष की आयु में सं० १९६७ में श्रीगोंदा (अहमदनगर) में श्रीमान् सेठजी उत्तमचंदजी कटारिया जहांगिरदार साहब ने बड़े उत्साह से आपकी दीक्षा महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० की सेवा में करवाई थी। आप सेवाभावी सतीजी थीं। आपका स्वर्गवास अनशनपूर्वक पूना में हुआ।

महासतीजी श्रीसुव्रताजी म०

तीसगांव (अहमदनगर) निवासी श्रीभागचंदजी फिरोदिया की आप सुपुत्री थी। सांसारिक नाम सुंदरबाई था। आपका विवाह संबंध वांबोरी (अहमदनगर) निवासी श्रीनथमलजी गाँधी के

दत्तक पुत्र श्रीकुंदनमलजी के साथ हुआ था। सं० १६६६ माघ शुक्ल १३ बुधवार के रोज प्रातःकाल १० बजे वांबोरी (अहमदनगर) में महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० की सेवा में आपकी दीक्षा हुई और श्रीसुव्रताजी म० ऐसा नाम रक्खा गया। दीक्षा अवसर पर बाहर गांव से करीब पांच हजार की जनता एकत्रित हुई थी। दीक्षा संबंधी संपूर्ण खर्च आपके संसारपक्ष के सासूजी श्रीरूपाबाईजी ने बड़े उत्साह से किया था। इस शुभ प्रसंगपर पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० भी एक वैरागी के साथ पधारे थे (जो कि श्रीऋषिसंप्रदाय के आचार्यपद से सुशोभित होकर वर्तमान में श्रीवर्द्धमान स्था० जैन श्रमण सघ के प्रधानमंत्री श्रीआनन्दऋषिजी म० के नाम से प्रख्यात हुए हैं) आपका स्वभाव मिलनसार था। संयममार्ग में आपका लक्ष था। सं० १६८८ मे आपका स्वर्गवास घोड़नदी मे हुआ।

महासतीजी श्रीजसकुंवरजी म०

अहमदनगर निवासी श्रीखुशालचंदजी कोठारी की धर्मपत्नी श्रीसदाबाई की कुक्षि से सं० १६५४ में इनका जन्म हुआ था। संसारावस्था में आपका नाम जड़ीबाई था और विवाह संबंध मिरि निवासी श्रीकिसनदासजी बोगावत के साथ हुआ था। स० १६७४ आषाढ़ शुक्ल १० शुक्रवार के दिन प्रातःकाल मे करीब १० बजे शांतमूर्ति श्रीरामकुंवरजी म० के समीप अपनी बीस वर्ष की अवस्था में आप अहमदनगर में दीक्षित हुई, और श्रीजसकुंवरजी म० नाम रक्खा गया। दीक्षा का खर्च अहमदनगर निवासी श्री-तखतमलजी चाँदमलजी चोपड़ाजीने किया था। आपकी प्रकृति सौम्य थी। समय सूचकता और गंभीरता से आप सुशोभित थीं। गुरुणीजी म० के समीप करीब १५ वर्ष रहकर अंतःकरणपूर्वक सेवा का लाभ लेने के पश्चात् गुरुभगिनी प्र० श्रीशांतिकुंवरजी म० के

साथ विचरती थीं। ज्ञानाभिलाषिणी श्रीसुमतिकुंवरजी म. के शिक्षण-प्रीत्यर्थ आप ठाणा ४ से पाथर्डी विराजते थे और योग्य शिक्षण हो रहा था। सं० १९९५ मार्गशीर्ष वदि ५ के दिन आप स्वर्गवासी हुई। ज्ञानपिपासु आत्मा को पूर्ण सहयोग देकर आदर्श बनाऊं, ऐसी आपकी भावना थी किन्तु वह पूर्ण नहीं हो सकी। पाथर्डी श्रीसंघ ने अंतिम संस्कार कार्य उत्साह पूर्वक किया था।

महासती श्रीरम्भाजी महाराज

करमाला (सोलापुर) निवासी श्रीजवानमलजी बोरा की धर्मपत्नी श्रीराजीबाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ और विवाह सम्बन्ध अहमदनगर निवासी श्री श्रीमलजी सुथा के साथ हुआ था। सती शिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० के सदुपदेश से वैराग्य प्राप्त होकर सं० १९७५ माघ कृ० १ के दिन गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० के मुखारविन्द से महासतीजी के समीप अहमदनगर में आपकी दीक्षा हुई। आप बहुत ही सेवाभाविनी सतीजी है। समयसूचकता और दक्षता आपके चमकीले सद्गुण हैं। सतीजी श्रीसुमतिकुंवरजी म० की शैक्षणिक अभिलाषा मे आपने पूर्ण सहयोग दिया अर्थात् महासतीजी श्रीजसकुंवरजी म० के दिल मे जो भावना रह गई थी, उसे सफल बनाने के लिये उचित सहयोग देकर आपने महासतीजी को आदर्श विदुषी बनाया है। आपको कइएक थोकड़े कंठस्थ है। अनेक परीषहों को सहते हुए उग्रविहार करके दक्षिण में निजाम स्टेट, सिकंदराबाद औरंगाबाद, सातारा, पूना, अहमदनगर, नासिक, खानदेश, बरार, के क्षेत्रों को स्पर्श कर मालवा, मेवाड़, मारवाड़ आदि देशों मे विचरना हुआ। पंजाब प्रांतीय शिमला आदि क्षेत्रो मे विचरकर संप्रति लुधियाना मे आचार्य श्री आत्मारामजी म० की सेवा मे ठाणे ५ से विराज रही है।

महासतीजी श्रीसरसकुंवरजी म०

घोड़नदी (पूना) निवासी श्री बिरदीचंदजी दूगड़ की धर्मपत्नी श्रीनन्दूबाई की कुक्षि से सं० १९६१ पौष कृ० ३ शनिवार के रोज आपका जन्म हुआ। संसारीपक्ष मे आपका नाम सिरीबाई था। सती शिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० के समीप गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० के मुखारविन्द से सं० १९७५ माघ कृ० १ शुक्रवार के दिन अहमदनगर मे अपनी १३ वर्ष की कुमारी अवस्था मे आप दीक्षित हुए और नाम श्रीसरसकुंवरजी म० रक्खा गया। श्रीदशवैकालिक सूत्र सम्पूर्ण और श्रीउत्तराध्ययन सूत्र के कतिपय अध्ययन कंठस्थ किये है। बीस शास्त्रो का वाचन तथा संस्कृत, प्राकृत, उर्दू और हिन्दी का अभ्यास किया। कुछ थोकड़े की जानकारी भी है। आपका स्वर मधुर और गायनकला अच्छी है। आपका स्वभाव कुछ तेज प्रकृति का है। अभी महासतीजी श्रीसुंदाकुंवरजी म० की सेवामे अहमदनगर मे विराज रही है।

महासतीजी श्रीकेशरजी महाराज

अहमदनगर निवासी श्रीबालमुकुन्दजी भंडारी मुथा की धर्मपत्नी श्रीचतरूबाई की कुक्षि से आपका जन्म होकर विवाह सम्बन्ध श्रीफकीरचन्दजी कटारिया नेवासा वाले के साथ हुआ था। सं० १९७६ मार्गशीर्ष शु० १२ के रोज अहमदनगर मे सती शिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० की सेवा मे अपनी ३४ वर्ष की अवस्था मे आप दीक्षित हुए। आपको करीब ६० थोकड़ो की जानकारी थी। श्रीदशवैकालिक सूत्र के कुछ अध्ययन कंठस्थ थे। और २०-२१ शास्त्रो का वाचन किया था। आप बहुत ही आत्मार्थी सतीजी थी। सं० १९९८ की साल मे बोदवड़ समीपस्थ दाभाड़ी (खानदेश) में आपका स्वर्गवास हुआ।

महासतीजी श्रीपानकुंवरजी म०

सलाबतपुर (अहमदनगर) निवासी श्री भगवानदासजी फिरोदिया की धर्मपत्नी श्रीनानीबाई की कुक्षि से सं० १६५७ में आपका जन्म हुआ और नाम प्यारीबाई रक्खा था। सतीशिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० से प्रतिबोध पाकर अपनी १५ वर्ष की आयु में सं० १६७२ माघ शुक्ल १३ के दिन घोड़नदी (पूना) में दीक्षाग्रहण कर महासतीजी की नेश्राय में शिष्या हुई और श्रीपानकुंवरजी म० ऐसा नाम करण हुआ। सं० १६८२ मे गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० ठाणे ३ की सेवा मे आपने चांदा (अहमदनगर) में चातुर्मास करके महाराज श्री से कुछ शास्त्र की वाचना ली थी और उसके बाद शास्त्रज्ञ श्रीमान् किसनदासजी मुथाजी से आपने शास्त्रीयज्ञान प्राप्त किया। दक्षिण खानदेश के छोटे बड़े क्षेत्रों मे विचरकर आप धर्म की प्रभावना कर रही हैं। संप्रति अहमदनगर में आप चातुर्मासार्थ विराज रही है।

महासतीजी श्रीचाँदकुंवरजी म० और उनकी परंपरा

सलबतपुर निवासी श्री भगवानदासजी फिरोदिया की धर्मपत्नी श्रीनानीबाई की कुक्षि से सं० १६५६ मे आपका जन्म होकर चांदकुंवरबाई नाम रक्खा गया था। सतीशिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० का सदुपदेश सुनकर सं० १६७२ माघ शुक्ल १३ के रोज घोड़नदी में गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० की आज्ञा से महासतीजी की सेवा में अपनी तेरहवर्ष की कुमारी अवस्था में आपने दीक्षाग्रहण की। अपनी गुरुणीजी म० की सेवा में रहकर आपने शास्त्रीयज्ञान साधारण प्राप्त किया। दक्षिण प्रांतीय अहमदनगर, पूना, सोलापुर, नासिक आदि जिलों में तथा खानदेश में आपका विचरना हुआ है। संप्रति

सेवाभावी प्र० श्रीराजकुंवरजी म० की सेवा में अहमदनगर में चातुर्मासार्थ विराज रही है। आपकी नेश्राय मे दो शिष्याएँ हुई। १ श्रीपुष्पकुंवरजी म० और २ श्रीमनोहरकुंवरजी म०।

महासतीजी श्रीपुष्पकुंवरजी म०

आप कड़ा (अहमदनगर) में महासतीजो श्रीचाँदकुंवरजी म० के सद्बोध से प्रभावित हुए और सं० १९९९ फाल्गुन शुक्ल १० के दिन दीक्षित होकर महासतीजी श्रीचाँदकुंवरजी म० की नेश्राय मे आप शिष्या हुई। आपका शिक्षण साधारण और स्वभाव भी तेज है। आप अपनी गुरुणीजी म० की सेवा मे रहकर साथ ही विचर रही है।

महासतीजी श्रीमनोहरकुंवरजी म०

सोलापुर मे महासतीजी श्रीपानकुंवरजी म. के सदुपदेश से वैराग्य प्राप्त कर सं० २००० माघ शुक्ल १३ को आपने दीक्षाग्रहण कर महासतीजी श्रीचांदकुंवरजो म० की नेश्राय मे शिष्या हुई। आपका शिक्षण साधारण हुआ है। अपनी गुरुवर्या की आज्ञा से घोड़नदी में विराजित स्थविरा महासतीजी श्रीकेसरजी म० की सेवा मे कुछ दिन रहकर वहाँ से भी सतीजी श्रीपुष्पकुंवरजी म. के साथ प्रकृति के वश होकर ठाणे २ ने पृथक् विहार किया। पूना जिले के क्षेत्रो में विचर कर वर्तमान मे कड़ा (अहमदनगर) में चातुर्मासार्थ विराज रही है।

महासतीजी श्रीसोनाजी महाराज

पीपलगांव (अहमदनगर) निवासी श्रीदौलतरामजी मुणोत की धर्मपत्नी श्रीभीकुबाई की कुक्षि से आपका जन्म होकर विवाह

सम्बन्ध करजगांव (नासिक) निवासी श्रीप्रेमराजजी कटारिया के साथ हुआ था। सौभाग्य सिर्फ सवा महीने का रहा था। तीन वर्ष बाद महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० के समीप अहमदनगर में सं० १९७८ वैशाख शु० २ के दिन इनकी दीक्षा हुई। बारह वर्ष तक संयम पालन करके स० १९९० चैत्र कृ० २ के रोज मध्यरात्रि के बाद कोलगांव (अहमदनगर) में आप स्वर्गवासी हुई।

पंडिता प्रवर्तिनी श्रीशांतिकुंवरजी महाराज और उनकी परम्परा

आप घोड़नदी (पूना निवासी श्रीगुलाबचन्दजी दूगड की पुत्री थी और माता का नाम सुन्दरबाई था। इन्होने करीब नौ वर्ष की उम्र मे अपनी माता के साथ सती शिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म. से स० १९५७ पौष कृष्णा ११ मगलवार को घोडनदी मे दीक्षा ग्रहण कर ली। यद्यपि धर्म विरोधी लोगों ने इनकी उम्र बहुत छोटी होने से सरकार द्वारा दीक्षा रुकवाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु इन्होने दृढ़ता के साथ अधिकारियो को उत्तर दिया कि मुझे आत्म कल्याण के लिये दीक्षा लेना है, न कि विवाह करना। अंततो गत्वा आपकी दीक्षा आपके ज्येष्ठबन्धु श्रीमान् बिरदीचन्दजी दूगड़जी के विशेष सहयोग से बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुई। दीक्षा के निमित्त करीब पांच हजार लोग बाहर गांव से आये थे, परन्तु आपकी दीक्षा आठ दिनों के बाद होने के कारण करीब एक हजार की जनता उपस्थित रही।

धारणा शक्ति प्रबल होने से आपने थोड़े समय में ही पांच शास्त्रों को कंठस्थ किया और लघुसिद्धांत कौमुदी, सिद्धांत कौमुदी, तर्कसंग्रह, हितोपदेश पंचतंत्र आदि साहित्य के ग्रंथों का सम्यक्

अध्ययन कर लिया। हिन्दी, उर्दू और मराठी भाषा पर भी इनका पूरा अधिकार था। आपका व्याख्यान प्रभावशाली, रोचक और विद्वत्तापूर्ण होता था। आपकी आवाज बुलन्द और गायनविधि उत्कृष्ट थी। जैनेतर लोग भी इनके व्याख्यान को सुनकर चित्रवत् हो जाते थे। इन्होंने अपने सदुपदेशों से कुकाना (अहमदनगर) मे जयराम बांबी और एक मुस्लिम भाई को यावज्जीव पर्यन्त मदिरा मांस का त्याग करवाया था। इसी तरह आपने अनेक कुव्यसनियों को सन्मार्ग पर लगाया और व्यसनो को छुड़वाकर धर्म की ओर प्रवृत्त करा दिया।

पूना में दक्षिण प्रांतीय ऋषि-सम्प्रदायी सती सम्मेलन हुआ था, उसमें आपको सं० १९९१ चैत्र कृ० ७ के दिन प्रवर्तिनी पद से सुशोभित किया। आपने सती शिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० के साथ और बाद मे भी दक्षिण, निजाम, खानदेश, अहमदनगर, पूना, सतारा आदि जिलो के छोटे बड़े क्षेत्रो मे विचरण कर जैन-धर्म की खूब प्रभावना की।

सं. २००२ का चातुर्मास वैजापुर (निजाम) में करने के लिये स्थानीय श्रीसघ ने पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म. की आज्ञा प्राप्त की थी, परन्तु कोपरगांव से विहार करते समय यकायक तबियत अस्वस्थ हो जाने से आपने वैजापूर श्रीसंघ की सम्मति से वह चातुर्मास कोपर-गांव मे ही किया। तत्पश्चात् ये वांबोरी पहुँच गये। वहां उन्हे लकवे की बीमारी हो गई और भाषा के पुद्गलो मे भी फर्क हो गया अतः शारीरिक हालत ठीक नही होने से इन्होने श्रीसंघ की विनति पर सं० २००३ का चातुर्मास वांबोरी में ही किया। इस चातुर्मास में प्रवर्तिनीजी की हालत बहुत ही खराब हो जाने से वांबोरी श्रीसंघ की तरफ से श्रीमान् मेघराजजी बोथरा तथा श्रीमान् बिरदीचंदजी कटा-

रिया ने प्रवर्तिनीजी की प्रेरणा से बोदवड़ में विराजित पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म० की सेवा में दर्शन देने के लिये पधारने की कृपा करें ऐसा विनति पत्र भेजा। उस पर से चातुर्मासानंतर बोदवड़ से वरणगाव, भुसावल, जलगांव, औरंगाबाद, लासूर, बैजापूर, कोपरगाव, बेलापूर, राहुरी आदि क्षेत्रों में धार्मिक प्रचार करते हुए सं० २००३ के माघ शुक्ल में पूज्यश्री ठाणे ६ वांबोरी पधारे। प्रवर्तिनीजी को दर्शन देकर उनकी भावना सफल की।

खानदेश में विचरते हुए महासतीजी श्रीरंभाजी म०, पंडिता सतीजी श्रीसुमतिकुंवरजी म० ठाणे ४ को पूज्यश्रीजी की तरफसे सूचना करने मे आई कि "आप शीघ्रता से विहार कर वांबोरी पधारे, यहां प्रवर्तिनीजी की तबियत अस्वस्थ है"। ऐसे समाचार देकर पूज्यश्री ठाणे ६ ने वांबोरी से विहार कर अहमदनगर होते हुए घोड़नदी मे विराजित स्थविरा महासतीजी श्रीकेसरजी म० को दर्शन दिये, जिससे उन्हे समाधान रहा। घोड़नदी से विहार कर पूज्यश्री ठाणे ३ शीघ्रता से पूना पधारे। वहां विराजित आत्मार्थीजी श्रीमोहनऋषिजी म० ठाणे २ तथा प्रवर्तिनीजी श्रीउज्वलकुंवरजी म० आदि ठाणो के साथ समागम होने से पारस्परिक प्रेमकी विशेष वृद्धि हुई। पूना मे तीन रात्रि विराजकर चिचवड़, चन्होली, फूलगांव राजणगांव होते हुए पुनः घोड़नदी पधारकर अहमदनगर मे पदार्पण हुआ और वहां से सांप्रदायिक विशिष्ट कार्य के लिये पुनः वांबोरी में ६ ठाणे से पधारे।

पूज्यश्रीजी की सूचना के अनुसार महासतीजी श्रीरंभाजी म० ठाणे ४ खानदेश से शीघ्रतापूर्वक विहार कर वांबोरी पधार गये। सेवाभावी श्रीराजकुंवरजी म० श्रीचांदकुंवरजी म० श्रीपानकुंवरजी म० आदि ठाणे ५ का भी वांबोरी पधारना हुआ। सती शिरोमणि

श्रीरामकुंवरजी म० के परिवार के कुल ठाणे १५ का यहां सम्मेलन होकर पूज्यश्रीजी की उपस्थिति में पारस्परिक प्रेमभाव वृद्धिंगत हुआ।

शारीरिक कारण से सं० २००४ का चातुर्मास वांबोरी क्षेत्र में हुआ। इस वर्ष प्रवर्तिनीजी की सेवा मे पूज्यश्रीजी की आज्ञा से सेवाभावी और अनुभवी महासतीजी श्रीराजकुंवरजी म० रहे थे।

सं० २००४ का चातुर्मास समाप्त होने पर (श्रीरामपुर) बेलापुर रोड़ से पूज्यश्री ठा० ५ वाम्बोरी पधारे। तब आपने पूज्यश्री से निवेदन किया—अपने वचन के अनुसार मेरी भावना घोड़नदी पहुँचने की है। आज्ञा हो तो विहार कर दूं ?

पूज्यश्री ने अवसर देखकर आज्ञा प्रदान कर दी। तब प्रवर्तिनीजी महाराज महासतियो के सहयोग से धीमे धीमे थोड़ा-थोड़ा विहार करके घोड़नदी पधार गईं और अपनी भाषा का पालन किया।

घोड़नदी पहुँचने के बाद आपका स्वास्थ्य और बिगड़ गया। औषधोपचार करने पर भी कुछ लाभ नहीं दिखाई देता था। दिनो दिन शरीर क्षीण होता चला गया और बीमारी बढ़ती ही गई। प्रवर्तिनीजी म० की इस अस्वस्थता को देख कर घोड़नदी श्रीसंघ मे चिन्ता फैल गई। उन्हीं दिनों पूना मे आगामी चातुर्मास करने के लिए महासती श्रीरम्भाजी म० तथा विदुषी महासती श्रीसुमतिकुंवरजी म० आदि ठा० ४ अहमदनगर होते हुए घोड़नदी पधारे। देखा, प्रवर्तिनीजी महाराज की शारीरिक स्थिति चिन्ताजनक है। यद्यपि चातुर्मास आरम्भ होने के दिन थोड़े ही रह गये थे और विहार की शीघ्रता थी फिर भी अवसर देख कर चारो ठाणे प्रवर्तिनीजी म० की सेवा मे ही विराजे।

कुछ ही समय बाद स्वास्थ्य अधिक गिर गया। तब प्रवर्त्तिनीजी म० ने अहमदनगर निवासिनी सुश्राविका हांसीबाई सिंघी तथा सदाबाई और सुश्रावक श्रीसुखलालजी खाबिया, जुगराजजी कोठारी, तेजमलजी बरमेचा, जेठमलजी चोरड़िया और डाक्टर चुन्नीलालजी नाहर आदि श्रावकसघ के अग्रेसरो को सम्मति से संथारा ग्रहण कर लिया। मिती आषाढ़ शु० २ सं० २००५ के दिन समताभाव से, समाधियुक्त होकर आपने देहोत्सर्ग कर दिया।

आपश्री ने ४७ वर्ष तक संयम का पालन किया। अनेक परीषहो को समभाव से सहन करके जैनधर्म की खूब प्रभावना की। आपकी छह शिष्याएँ हुईं:—(१) श्रीरतनकुंवरजी म०, (२) श्रीसज्जनकुंवरजी म०, (३) श्रीअमृतकुंवरजी म०, (४) श्री सूरजकुंवरजी म०, (५) श्रीमदनकुंवरजी म० और (६) विदुषी व्याख्यानी श्रीसुमतिकुंवरजी महाराज।

महासतीजी श्रीरतनकुंवरजी म०

घोड़नदी (पूना) निवासी श्रीविरदीचंदजी दूगड़ आपके पिता थे। माताजी का नाम श्रीनन्दूबाई था। आपने १० वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण की। पण्डिता महासती श्रीशान्तिकुंवरजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुईं। आपकी बुद्धि तीव्र और धारणाशक्ति भी अच्छी थी। होनहार सती थीं, किन्तु थोड़े ही वर्षों बाद शारीरिक व्याधि के कारण सतारा मे आपका स्वर्गवास हो गया।

महासतीजी श्रीसज्जनकुंवरजी म०

गृहस्थावस्था में आपका वसन्ताबाई नाम था। फाल्गुन कृ० १ मंगलवार सं० १९६८ मे आपने जन्म ग्रहण किया। माली-चिंचोरा ग्राम निवासी सेठ उत्तमचंदजी वोरा आपके पिताजी थे।

माता का नाम जड़ावबाई था । मीरी-निवासी सेठ घोंड़ीरामजी गुगलिया के सुपुत्र भूंवरलालजी के साथ आपका विवाह हुआ था। फाल्गुन शु० ३ सं० १९८९ के दिन पं० महासती श्रीशान्ति-कुंवरजी-म० की नेश्राय मे आपने मीरी मे दीक्षा ग्रहण की। आप बड़ी ही सेवाभावी सती है। प्रकृति बहुत ही सरल और शान्त है। महासती श्रीरंभाजी म० के साथ आप देश-देश मे विचर रही है। इस वर्ष आपका चातुर्मास लुधियाने (पंजाब) मे है।

पण्डिता श्रीअमृतकुंवरजी म०

वि० सं० १९७५ मे ग्राम चहोली (पूना) निवासी सेठ पूनम-चंदजी सुराणा की धर्मपत्नी श्रीमती कुंवरबाई की कूख से आपने जन्म ग्रहण किया। आनन्दीबाई आपका नाम रक्खा गया। श्री-नवलमलजी खींवसरा के पुत्र श्रीजीवराजजी के साथ विवाह हुआ। प्रवर्तिनीजी श्रीशान्तिकुंवरजी म० के सदुपदेश से वैराग्य की प्राप्ति हुई। माघ शु० ७ गुरुवार सं० १९९२ मे प० र० श्रीआनन्दऋषिजी म० के मुखारविन्द से अपने जन्मस्थान मे ही आपकी दीक्षा हुई। श्रीशान्तिकुंवरजी म० की नेश्राय मे शिष्या बनी। आपकी दीक्षा के शुभ प्रसंग पर पूज्यश्री धर्मदासजी म० के सम्प्रदाय के प्रवर्तक वयो-वृद्ध श्रीताराचंदजी म० ठा० ५ उपस्थित थे। प्रवर्त्तकजी म० के पधा-रने से तथा पारस्परिक धर्म वात्सल्य से यह शुभ प्रसंग और भी सुखद तथा शोभास्पद बन गया। दीक्षा का व्यय आपकी माताजी तथा आपके व्यवसायभागीदार बम्बई-निवासी श्रीमान् काशीरामजी कनीरामजी बिहाणी ने किया था। दीक्षा के अवसर पर बिहाणीजी सपरिवार उपस्थित थे। बाहर के लगभग ७०० श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति थी।

आपने करीब १००० संस्कृत भाषा के श्लोक अर्थसहित कंठ-

स्थ किये हैं। आगमों का वाचन किया है। श्रीति० र० स्था० जैन धार्मिक परीक्षाबोर्ड की सिद्धान्तप्रभाकर परीक्षा उत्तीर्ण की है। सिद्धान्तशास्त्री परिक्ष के कुछ खंडों मे भी उत्तीर्णता प्राप्त की है। पाथर्डी की श्रीअमोल जैन सिद्धांतशाला में विराज कर शिक्षण लिया है। आप अच्छी विदुषी सती हैं। प्रकृति शान्त और सरल है। अहमदनगर और पूना आदि जिलो मे विचरण करके धर्मप्रचार कर रही हैं। वर्त्तमान में अपनी जन्मभूमि चह्लोली में चातुर्मास मे ठा० ३ से स्थित हैं। आपका व्याख्यान प्रभावशाली होता है। कंठ की मधुरता उस प्रभाव को और अधिक बढ़ा देती है। ज्ञानाभ्यास की आपकी रुचि कभी शान्त नहीं होती।

तपस्विनी श्रीसूरजकुंवरजी महाराज

आपका जन्म नाम श्रीकुंवरबाई है। काराठी (जिला पूना) निवासी श्रीपूनमचन्दजी छाजेड़ की सुपुत्री हैं। माताजी का नाम धाबुबाई था। चरौली निवासी श्रीमान् नवलमलजी के सुपुत्र श्री पूनमचन्दजी सुराणा के साथ आपका विवाह सम्बन्ध हुआ था। आप श्रीअमृतकुंवरजी म० की संसार-पक्ष की माता हैं। प्रवर्त्तिनी जी श्रीशान्तिकुंवरजी म० की सत्संगति से आपके अन्तःकरण में वैराग्यभाव उदित हुआ। सं० १९९४ की ज्येष्ठ शु. १३ के दिन वांबोरी (अहमदनगर) में प्रवर्त्तिनीजी की सेवा मे आपने दीक्षा अंगीकार की। आपके हृदय में गहरा सेवाभाव है। तपस्विनी सती हैं। करीब १५ थोकड़े कंठस्थ किये है। श्रीदशवैकालिक और श्रीउत्तराध्ययन सूत्र का वाचन किया है। अहमदनगर पूना, खानदेश, हैदराबाद रियासत आदि प्रदेशों मे आपने प्रवर्त्तिनीजी म० के साथ विचरण किया है। वर्त्तमान में श्रीअमृतकुंवरजी म० के साथ चरौली ग्राम मे ठाणा २ से विराजमान हैं।

महासतीजी श्रीमदनकुंवरजी महाराज

खेड़ (नाशिक) में श्रीवरदीचन्दजी छाजेड़ की धर्मपत्नी श्रीमती रूपा बाई आपकी माता थीं। सं० १९७२ में जन्म हुआ। घोड़ेगांव (अहमदनगर) निवासी श्रीदलीचन्दजी चोरड़िया के पुत्र श्रीकेशरमलजी के साथ विवाह सम्बन्ध हुआ। प्रवर्त्तिनीजी श्रीशान्तिकुंवरजी म० से धार्मिक शिक्षण प्राप्त करके करीब २८ वर्ष की उम्र में, सं० २००० की अक्षय तृतीया के दिन मनमाड़ में दीक्षा अंगीकार की। प्रवर्त्तिनीजी म० के पास आपने साधारण संयमोपयोगी ज्ञान प्राप्त किया है। सम्प्रति प० महासती श्रीअमृत-कुंवरजी म० के साथ चरौली में विराजमान है। आप सेवाभावी सतीजी हैं।

प्राभाविका विदुषी श्रीसुमतिकुंवरजी महाराज

घोड़नदी निवासी श्रीमान् हस्तीमलजी दूगड़ की धर्मपत्नी श्रीमती हुलासा बाई की रत्नकुक्षि से सं० १९७३ की पौष शु० १०, बुधवार के दिन आपने जन्म ग्रहण किया। आपका जन्म नाम हर्षकुमारी था। बाल्यावस्था में आपने सती शिरोमणि श्रीराम-कुंवरजी म० से धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। आपकी बुद्धि निर्मल और मेधाशक्ति उग्र थी। प्रतिभा चमकती थी। कंठ में कोकिला का माधुर्य था। धर्म के संस्कार जन्मजात थे। बाल्यावस्था में ही वैराग्य की वृत्ति थी। उस वैराग्य से प्रेरित होकर आपने उसी समय संयममय जीवनयापन करने का विचार किया; परन्तु माता पिता के आग्रह रूप बाह्य कारण से तथा भोगावली कर्म के उदय रूप अंतरंग कारण से आपकी भावना फलवती न हो सकी। कोडे-गव्हाण निवासी श्रीमान् मोहनलालजी भणसाली के साथ आपका

पाणिग्रहण हुआ; किन्तु १८ महीनो के बाद श्रीभणसालीजी का देहान्त हो गया। प्रकृति ने एक ही झटके में आपको बन्धनयुक्त कर दिया—दुनिया के दारुण दलदल में फँसने से बचा लिया।

आपकी आत्मा में वैराग्य के बीज विद्यमान ही थे, इस घटना से वह अंकुरित हो गये। पतिवियोग होने पर आपने अपने चित्त को समझाया—हे हृदय ! सांसारिक संयोग का अन्तिम एक मात्र फल वियोग ही है। जो फल विलम्ब से होना था वह यदि शीघ्र हो गया तो इसमे खेद संताप या शोक की क्या बात है ? संसार मे भटकने वाले आत्मा को पुनः पुनः संयोग वियोग सहना ही पड़ता है। इस दुःख से बचने का एक ही मार्ग है--संयम ग्रहण करके, धार्मिक भावना बढ़ा कर मुक्ति की साधना करना। मुझे अनायास ही यह शुभ अवसर मिल गया है। अतएव शेष जीवन को आत्मोत्थान मे लगा देना ही उचित है।

इस प्रकार विचार कर आपने दीक्षित होने का निश्चय कर लिया। परन्तु अनेक बार प्रयत्न करने पर भी आपके पितृपक्ष और श्वसुरपक्ष की आज्ञा प्राप्त न हो सकी। तब विवश होकर आपको गृहस्थदशा मे ही समय व्यतीत करना पड़ा। दक्षिण प्रांत मे विचरने वाली प्रायः सभी आर्याजी महाराजों ने अपने-अपने संघाड़े मे दीक्षा लेने के लिए आपको आकर्षित किया, परन्तु आपका एक ही ध्येय था-अगर उभय पक्ष की अनुमति मिल जाय और चारित्ररत्न को ग्रहण करने का अवसर आ जाय तो मैं वहीं दीक्षा अगीकार करूँगी, जहाँ मेरे ज्ञान चारित्र की विशेष उन्नति हो सके।

सतीशिरोमणि श्रीरामकुंवरजी म० की सुशिष्या श्रीजसकुंवरजी म० तथा श्रीरंभाजी म० के प्रति आपके हृदय में अधिक

प्रीति थी। आपने जब अपना अभिप्राय उनके समक्ष प्रकट किया तो उन्होंने विश्वास दिलाया कि तुम जितना अध्ययन करना चाहोगी उसमें हमारी ओर से कोई बाधा न होगी, प्रतिबन्ध न होगा; यही नहीं वरन् हम अध्ययन में सहायता करने का यथासंभव प्रयत्न करेंगी।

पं० र० युवाचार्य श्रीआनन्दऋषिजी म० के सुशिष्य, वयोवृद्ध एवं अनुभवी मुनिश्री प्रेमऋषिजी म० के प्रतिबोध तथा प्रेरणा से आपको दोनों पक्षों से दीक्षा लेने की आज्ञा प्राप्त हो गई। सं० १९९७ की पौष शु० २, शुक्रवार के दिन प० र० प्र० व० श्रीआनन्दऋषिजी म० आदि ठा० ३ की उपस्थिति में कोडेगव्हाण ग्राम में आपकी दीक्षा विधि सपन्न हुई। दीक्षा के शुभावसर पर प्र० श्रीसिरेकुंवरजी म०, प्र० श्रीशान्तिकुंवरजी म०, श्रीजसकुंवरजी म० तथा श्रीरंभाजी म० आदि उपस्थित थे। आप श्रीशान्तिकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं। श्रीसुमनिकुंवरजी नाम रक्खा गया।

मीरी चातुर्मास प्र० श्रीशान्तिकुंवरजी म० की सेवा में व्यतीत किया। तत्पश्चात् श्रीजसकुंवरजी म०, श्रीरंभाजी म० तथा श्रीसज्जनकुंवरजी म० के संघाड़े के साथ शिक्षाप्राप्ति के हेतु आपका पाथर्डी में पदार्पण हुआ। श्रीअमोल जैन सिद्धान्तशाला मे लगभग दो-अढ़ाई वर्ष अध्ययन किया। पं० राजधारी त्रिपाठीजी से सिद्धान्तकौमुदी, प्राकृतव्याकरण, सटीक अनुयोगद्वार, आचारांग, औपपातिक, भगवती, स्थानांग आदि सूत्रों का वाचन किया। तर्कसंग्रह, न्याययुक्तावली, प्रमाणनयतत्त्वालोक, स्याद्वादमंजरी, सप्तभंगीतरंगिणी आदि दार्शनिक ग्रंथों का भी अभ्यास किया। आपने इतनी तन्मयता के साथ अध्ययन किया कि अल्पकाल मे ही विविध विषयों का अच्छा बोध प्राप्त कर लिया और विदुषी सती हुईं।

पाथर्डी-बोर्ड की सिद्धान्तशास्त्री परीक्षा देकर और उसमें उत्तीर्णता प्राप्त करके आपने अन्य सतियों के साथ युवाचार्य श्री-आनंदऋषिजी म. के दर्शनार्थ विहार किया। स्टेशन बड़गांव (पूना) में युवाचार्यश्री के दर्शन हुए। यहाँ घाटकोपर श्रीसंघ के मुखिया उपस्थित थे। वहाँ की श्राविकाओं की मुखिया श्रीभूराबाई (गोल-वाले) भी थी। सबने मिलकर घाटकोपर में चातुर्मास करने को आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। तब युवाचार्य श्री ने द्रव्य क्षेत्र काल भाव देखकर स्वीकृति दे दी। अतएव आपका सं० १९९६ का चातुर्मास घाटकोपर में हुआ। वहाँ आपने गुजराती भाषा पर पूरी तरह अधिकार प्राप्त कर लिया। गुजराती मे ही आपके प्रवचन होने लगे और बम्बई से अनेक लोग सुनने को खींचे चले आने लगे। प्रतिदिन हजारों श्रोताओं की भीड़ होती थी। आपके वहाँ विरा-जने से अच्छी धर्मप्रभावना हुई।

सं० १९९७ का चातुर्मास अहमदनगर में हुआ। यहां पं० र० युवाचार्य श्रीआनन्दऋषिजी म० का भी चातुर्मास था। इस चातुर्मास में युवाचार्यश्री के मुखारविन्द से सटीक आचारांगसूत्र का वाचन हुआ। सानंद चातुर्मास पूर्ण हुआ। तत्पश्चात् आप ठा० ३ का घोड़नदी की तरफ विहार हुआ। इसी वर्ष मार्गशीर्ष मास में श्री जैन सिद्धान्तशाला की स्थापना के अवसर पर युवाचार्यश्री ठा. ४ से घोड़नदी पधारे। इस अवसर पर बम्बई-श्रीसंघ के महामंत्री श्रीमान् जमनालालभाई आदि श्रावक-श्राविकाओ ने घोड़नदी आकर विदुषी महासतीजी के चातुर्मास के लिए प्रार्थना की। तदनुसार सं० १९९८ का आपका चातुर्मास बम्बई में हुआ। आपके विद्वत्तापूर्ण उपदेशों से बम्बई की जनता खूब प्रभावित हुई। फलस्वरूप श्रीसंघ ने करीब ७०-७५ हजार का फंड एकत्र किया और सदा के लिए आयंबिल तपश्चर्या का खाता खोल दिया। वह अब भी सुचारु रूप

से चल रहा है। बम्बई की जनता अभी तक आपको स्मरण करती है।

सं० १९९८ का चौमासा व्यतीत करके आपने बम्बई से विहार किया। इगतपुरी, घोटी आदि क्षेत्रो मे धर्मप्रचार करती हुई आप वैरागिन श्रीमोतीबाई की दीक्षा के लिए राहुरी (अहमदनगर) पधारीं। युवाचार्यश्री की उपस्थिति मे माघ मास में श्रीमोतीबाई को दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा का समस्त व्यय उत्साह के साथ राहुरी-श्रीसंघ ने किया।

सं० १९९९ के वैशाख मास में खानदेश- निवासी श्रीबाबूलालजी रेदासनी अपनी धर्मपत्नी को साथ लेकर पाचेगांव में युवाचार्यश्री तथा आपश्री की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने अपनी धर्मपत्नी सौ० नवलबाई को साधुप्रतिक्रमण आदि सीखने के लिए आपकी सेवा में रक्खा। आषाढ़ शु०२ को वैराग्यवती श्रीनवलबाई की दीक्षा मीरी ग्राम में युवाचार्यश्री के मुखारविन्द से सानन्द संपन्न हुई। वह आपकी नेश्राय मे शिष्या हुई।

सं० १९९९ का चातुर्मास आपकी जन्मभूमि घोड़नदी में व्यतीत हुआ। आपकी पीयूषवर्षिणी वाणी श्रवण कर यहां के श्रावक-श्राविकाओं पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा। नवयुवको मे भी धर्म की खूब जागृति हुई। चातुर्मास समाप्त होने पर आपने शिक्षण प्रीत्यर्थ पुनः पाथर्डी मे पदार्पण किया। धार्मिक परीक्षा बोर्ड की जैन सिद्धांतशास्त्री परीक्षा का अभ्यास पूर्ण करके श्रीजैन सिद्धान्ताचार्य परीक्षा के प्रथम खण्ड का श्रीअमोल जैन सिद्धान्तशाला में अध्ययन किया। तन मन को एकाग्र करके लगन के साथ अभ्यास कर आपने परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की। इस चातुर्मास में वयोवृद्ध मुनिश्री प्रेमऋषिजी म० ठा० २ से पाथर्डी मे विराजमान थे

और स्थविर मुनिश्री रुग्णावस्था मे थे। आपने उनकी सेवा का भी अच्छा लाभ उठाया। इस प्रकार सं० २००० का चातुर्मास पाथर्डी में व्यतीत हुआ।

श्रीसंघ के अत्यन्त आग्रह से सं० २००१ का चातुर्मास वार्शी (टाउन) क्षेत्र में हुआ और सं० २००२ का चातुर्मास पाथर्डी क्षेत्र मे किया। तत्पश्चात् पूज्यश्री के दर्शनार्थ आपने बरार की ओर विहार किया। खामगांव मे पूज्यश्री आनन्द ऋषिजी म० के दर्शन हुए। स० २००३ के चातुर्मास के लिए बोदवड़ श्रीसंघ ने विनती की थी, किन्तु भुसावल मे तेरहंपन्थी साधुओ का चातुर्मास होने वाला था, इसलिये वहाँ किसी योग्य सन्त या सती का चातुर्मास होना आवश्यक था। अतएव पूज्यश्री ने देशकाल का विचार करके ठा० ४ से आपको भुसावल मे चातुर्मास करने की आज्ञा फरमाई। इस चातुर्मास मे भी आपके प्राभाविक व्याख्यानो से विशेपतया नवयुवको मे धर्म की खूब जागृति हुई। प्रतिस्पर्द्धी लोगों ने आपके प्रभाव को कम करने के अनेक उपाय किये, किन्तु आपकी योग्यता और कुशलता के सामने किसी की कुछ भी न चली! जैन और जैनेतर जनता पर आपके सदुपदेश का इतना अच्छा और स्थायी प्रभाव पड़ा कि लोग अब भी आपकी याद करते रहते हैं। इस चातुर्मास में स्थानीय सुश्रावक श्रीसागरमलजी ओस्तवालजी के द्वारा तेरापंथ विषयक शास्त्रीय चर्चा मे विशेष जानकारी हुई यह उल्लेखनीय है।

भुसावल-चातुर्मास आनन्द और सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। तदनन्तर खानदेश के अनेक क्षेत्रो में धर्म का उद्योत करते हुए आपश्री का वांबोरी पधारना हुआ। वहाँ प्रवर्तिनी श्रीशान्तिकुंवरजी म० शारीरिक कारण से विराजमान थीं। पूज्यश्री भी

वहाँ पधार गये। प्रवर्त्तिनीजी और आपके बीच जो कुछ गलत-फहमी उत्पन्न हो गई थी। पूज्यश्री के प्रभाव से वह दूर हो गई और पुनः यथापूर्व वात्सल्यभाव उत्पन्न हो गया।

सं० २००४ का चातुर्मास श्रीरामपुर (बेलापुरा रोड़) में पूज्यश्री की सेवा मे हुआ। संस्कृत-प्राकृत, उर्दू, फारसी, गुजराती, मरहठी और हिन्दी भाषाओ का तथा आगम आदि विषयों का अभ्यास होने के कारण आपके सार्वजनिक व्याख्यानों का जैन--जैनेतर जनसमूह पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। इस चातुर्मास में श्रीऔपपातिक सूत्र के संशोधन--कार्य में आपने विशेष सहयोग दिया।

चातुर्मास पूर्ण होने पर आपने पूना की ओर विहार किया। मार्ग में घोड़नदी पधारे। यहाँ प्र० श्रीशान्तिकुंवरजी म० ठा० ६ से विराजमान थे। उनकी बीमारी बढ़ती चली जा रही थी। एक ओर पूना चातुर्मास के लिए पधारना था। दिन थोड़े ही शेष थे। दूसरी ओर श्रीप्रवर्तिनीजी की अस्वस्थावस्था मे सेवा में रहना आवश्यक था। इस उलझन के प्रसंग पर आपने सेवा मे रहना ही उचित समझा। अन्तिम समय तक प्रवर्त्तिनीजी की सेवा का लाभ लिया। प्रवर्त्तिनीजी का स्वर्गवास होने के पश्चात् आपने पूना की तरफ विहार किया। सं० २००५ का चातुर्मास वहाँ हुआ। इस चातुर्मास मे भी आपके सार्वजनिक व्याख्यान हुए। जैनधर्म की प्रभावना हुई। श्रावको और श्राविकाओ ने धर्म में दृढ़ता प्राप्त की।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् ठा० ४ से आपने विहार किया। घोड़नदी मे प्रवर्त्तिनी-पद का महोत्सव होने वाला था। अतएव आप भी वहाँ पधारे। पूज्यश्री ठा० ५ की उपस्थिति में वयोवृद्ध महासती श्रीराजकुंवरजी म० को मार्गशीर्ष शुक्ल १० के

रोज प्रवर्त्तिनी की पदवी प्रदान की गई और भावी प्रवर्त्तिनी-पद के लिए आप मनोनीत की गईं।

सं० २००६ के चातुर्मास की विनंती अहमदनगर श्रीसघ ने की थी। स्वीकृति भी दी जा चुकी थी। किन्तु घोड़नदी के मुख्य २ श्रावकों ने मालवा मे नागदा (धार) आकर पूज्यश्री से प्रार्थना की-- पण्डिता श्रीसुमतिकुंवरजी म० का हमारे क्षेत्र मे चातुर्मास होने से विशेष लाभ होगा। वहाँ के समाज में पड़ी हुई तड़ें टूट जाएँगी, वैमनस्य दूर हो जायगा और अनेक धार्मिक कार्य हो सकेंगे। अतएव कृपा करके महासतीजी को घोड़नदी मे चौमासा करने की आज्ञा फरमाइए।' पूज्यश्री ने फर्माया—अहमदनगर श्रीसंघ को वचन दिया जा चुका है। वहाँ का श्रीसंघ अनुमति दे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। चौमासा आपके यहाँ हो सकेगा आखिर घोड़नदी श्रीसंघ ने अहमदनगर वाले श्रीसंघ से स्वीकृति ले ली और सं० २००६ का आपका चातुर्मास घोड़नदी मे हुआ। आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व और वाणी के प्रभाव से घोड़नदी में फैली हुई अशान्ति दूर हो गई। द्वेष मिट गया। परस्पर प्रेम का संचार हुआ। पंचायती मकानो को लेकर जो कलह हो रहा था, वह भी समाप्त हो गया। 'अहिंसाप्रतिष्ठायां वैरत्यागः' की उक्ति पुनः चरितार्थ हुई। श्रीसुमतिकुंवरजी म० ने सर्वत्र सुमति का स्वच्छ स्रोत प्रवाहित कर दिया। बालकों और बालिकाओ के धार्मिक शिक्षण के लिए पाठशाला की स्थापना हुई, जो आज भी अच्छी तरह चल रही है। इस प्रकार आपके इस चातुर्मास से अनेक उपकार कार्य हुए। धर्म ध्यान और तप भी खूब हुआ। नवयुवको मे धर्म जागृति उत्पन्न हुई। उन्होने सेवा, धर्मश्रवण एवं प्रार्थना आदि का खूब लाभ लिया।

चातुर्मास के पश्चात् पूना होते हुए सतारा में आपका पदा-

पंण हुआ। वहाँ शेष काल विराजे। जैन-जैनेतर भाइयों ने आप की वाणी का लाभ उठाया। सतारा का श्रीसंघ आगामी चातुर्मास कराने के लिए कटिबद्ध हुआ। पूज्यश्री की सेवामे आग्रहपूर्ण प्रार्थना पत्र भेजा; किन्तु सतारा श्रीसघ की प्रार्थना स्वीकृत न हो सकी। औरंगाबाद क्षेत्र मे तेरह पथियो का चौमासा होने वाला था। आसपास में कोई सुयोग्य सन्त या सती नही थे, जिन्हे वहाँ भेजा जा सके। उधर औरंगाबाद सघ का भी आग्रह था। अतएव पूज्यश्री ने औरगाबाद में ही यह वर्षाकालयापन करने का आदेश दिया। सतारा से विहार करके आपने अनेक छोटे मोटे क्षेत्रों में धर्मप्रचार किया। आपके सदुपदेश से अनेक स्थानो पर कन्याशालाओं की स्थापना हुई।

सं० २००७ का चातुर्मास औरंगाबाद में हुआ। तेरापंथी समाज पर भी आपका गहरा प्रभाव पड़ा। आपके सार्वजनिक प्रवचनो को श्रवण करने के लिए राज्याधिकारी भी आते थे। कई लोगो ने मॉस मदिरा सेवन न करने की प्रतिज्ञाएँ लीं।

सिकदराबाद का श्रीसंघ आपकी निर्मल कीर्त्ति को सुन चुका था। वहां की जनता आपके वचनामृत का पान करने के लिए चातक की तरह प्यासी थी। अतएव वहां का एक प्रतिनिधि-मंडल आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ। उसने चातुर्मास के पश्चात् सिकंदराबाद पधारने का आग्रह किया। आपने प्रधानाचार्य म० की आज्ञा प्राप्त होने पर सुखे-समाधे सिकंदराबाद पधारने की भावना व्यक्त की। प्रधानाचार्यजी म० की आज्ञा प्राप्त हो गई। वर्षावास के बाद सिकन्दाराबाद की ओर विहार हुआ। सिकन्दराबाद का मार्ग सन्त-सतियो के लिए बड़ा कष्टकर है। अनेक परीषह सहने के पश्चात् उग्र विहार करके आप वहां पहुँचे। हैदराबाद, बुलारम

आदि क्षेत्रों में धर्मोपदेश किया और सं० २००८ का चातुर्मास सिकंदराबाद में किया।

चातुर्मास-समय में आपके सदुपदेश से वहां कन्याशाला की स्थापना हुई। महिलाओ के धार्मिक शिक्षण की तरफ श्रीसंघ का ध्यान आकर्षित किया। सरकारी कॉलेज में आपका प्रवचन हुआ। विद्यार्थियों पर और राज्य के बड़े-बड़े अधिकारियों पर तथा मुस्लिम बन्धुओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा। महिलासंघ की ओर से महिलाओं के लिए भी आपके व्याख्यान का आयोजन किया गया, जिससे महिलामण्डली मे अच्छी जागृति हुई। इस प्रकार आपने अनेक कष्ट उठाकर वीरशासन की प्रभावना मे सुन्दर योग प्रदान किया।

सिकन्दराबाद-चातुर्मास के पश्चात् आपने जो उग्रविहार किया, वह आश्चर्यजनक है। करीब ६० दिनों में ६०० मील का विहार क्या साधारण है? सन्त भी कठिनाई से ही इतना विहार कर सकते हैं। सिकन्दराबाद से प्रस्थान करके दक्षिण, खानदेश बरार, मालवा, और मेवाड़ के अनेक क्षेत्रों को पावन करती हुई आप गुलाबपुरा (मेवाड़) में पधारी। यहाँ प्रधानाचार्यश्रीजी के दर्शन किये।

कुमारी शकुन्तला नामक एक बहिन करीब ३-३॥ वर्ष से आपकी सेवा मे हिन्दी और धर्मशास्त्र का शिक्षण ले रही थी। इस ६०० मील के लम्बे और विस्मयजनक विहार में कुमारी शकुन्तला और उनकी माताजी भी साथ थी। प्रधानाचार्यजी म० की सेवा में उपस्थित होने पर शकुन्तला ने और उनकी माताजी ने अनुरोध किया-वैराग्यवती शकुन्तला को दीक्षा आपके मुखारविंद से इसी क्षेत्र मे हो जाना चाहिए। प्रार्थना स्वीकृत हुई। प्रधानाचार्यजी म० ने वैराग्यवती को संयम का योग्य पात्र समझ कर गुलाबपुरा में,

करीब पाँच हजार जैन-जैनेतरजनो की उपस्थिति मे तथा प्र० पंडिता महासती श्रीरत्नकुंवरजी म० ठा० ११ और विदुषी महासती ठा० ४ की उपस्थिति मे, अपने मुखारविन्द से भाग्यशालिनी शकुन्तला कुमारी को स० २००६ चैत्र शु० २ को भागवती दीक्षा प्रदान की। नवदीक्षिता सती का नाम श्रीचन्दनकुमारी रक्खा गया।

सं० २००६ में सादड़ी मे हुए मुनिसम्मेलन के अवसर पर भी आप ठा० ५ से उपस्थित रहीं। संगठन की आप प्रबल समर्थिका है।

सं० २००६ का चातुर्मास गुलाबपुरा मे हुआ। चातुर्मास के बाद अनेक क्षेत्रों मे धर्मप्रभावना करके, सोजत के मंत्री-मुनि सम्मेलन के अवसर पर आपका सोजत में पदार्पण हुआ। मत्री-मंडल की बैठक मे आप उपस्थित होकर अन्य सतियों के साथ धर्मवात्सल्य मे वृद्धि की।

सोजत से विहार करके बिलाडा आदि होते हुए आपश्री जोधपुर पधारे। नवदीक्षिता सतीजी की शिक्षा के उद्धेश्य से यहाँ विराजना हुआ और छह महारथी-मुनिराजो के साथ सं० २०१० का आपका चातुर्मास यहीं हुआ। कभी २ मुनिराजो की शास्त्रचर्चा में भी आप विराजती थीं। आपके सार्वजनिक व्याख्यान हुए। महिलासमाज पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा।

जोधपुर-चातुर्मास के अनन्तर आपश्री ने बीकानेर की ओर विहार किया। पीपाड़, मेड़ता, नागौर होकर बीकानेर पधारे। बीकानेर में आपका कोई पूर्वपरिचय नहीं था। किन्तु 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' की उक्ति प्रसिद्ध है। आपका जहाँ कहीं भी पधारना होता है, अपनी महती योग्यता से वहीं अपना उच्च स्थान बना लेती है।

वीकानेर में भी ऐसा ही हुआ। आपका सार्वजनिक प्रवचन हुआ तो करीव ५ हजार श्रोता उपस्थित हुए। बीकानेर की महारानीजी भी उपस्थित थीं। आपके प्राभाविक प्रवचनों से बीकानेर में धूम मच गई। वहाँ के महिलासमाज ने, स्था० जैन कान्फरेंस के अध्यक्ष श्रीमान् सेठ चम्पालालजी बांठिया ने तथा अन्यान्य प्रमुख श्रावकों ने चातुर्मास के लिए आग्रह किया। परन्तु आपकी भावना लुधियाना में विराजित आचार्य म० के दर्शन करने की थी। अतएव आपने स्वीकृति नहीं दी।

बीकानेर से विहार करके आपने थली प्रान्त मे प्रवेश किया। थली प्रान्त में प्रवेश करना भी साहस का काम है। यह प्रान्त तेरह पंथियो का गढ़ माना जाता है। अन्य सम्प्रदाय के संतों और सतियों के प्रति उनका व्यवहार अत्यन्त असहानुभूतिपूर्ण होता है। वे उन्हें नाना प्रकार से लांछित और परेशान करने का प्रयत्न करते हैं। इस परिस्थिति से परिचित होने पर भी आपने थली प्रान्त में विहार किया। सरदारशहर, रतनगढ़, लाडनू आदि क्षेत्रो में पधारीं। जहाँ एक भी घर स्थानकवासी जैन का नहीं था, वहाँ जाने में भी आपने संकोच नहीं किया। यद्यपि आपको इस विहार में अनेकानेक कष्ट उठाने पड़े, विरोधी समाज ने धर्म प्रचार के पावन कार्य में रोड़ा अटकाने में कुछ भी कसर न रक्खी, फिर भी आपने द्विगुणित उत्साह और समभाव से वीरवाणी का प्रचार किया। अग्रवाल, स्वर्णकार, ब्राह्मण आदि वैदिकधर्मी बन्धुओ पर आपके हृदयस्पर्शी व्याख्यानों का अद्भुत प्रभाव पड़ा। उनका हृदय आपके प्रतिभक्ति से भर गया। उन्होंने रतनगढ़ में चौमासा करने का प्रबल आग्रह किया।

यद्यपि थली में आपको अधिक समय नहीं लगाना था, तथापि विरोधी बन्धुओं ने आपके विरुद्ध वातावरण उत्पन्न किया,

आपके मार्ग में कंटक बिखेरे और रोड़े अटकाये; यह सब विरोधी परिस्थिति आपको अपने लिए अत्यन्त अनुकूल प्रतीत हुई। परीषहों और उपसर्गों ने आपको ललचा लिया। संकटों को शीघ्र त्याग देने की आपकी इच्छा नहीं हुई। विरुद्ध वातावरण में धर्म-प्रचार करने मे आपको रस की अनुभूति हुई। अतएव थली में अनुमान से अधिक समय लग गया। यह अवसर देखकर बीकानेर संघ की ओर से पुनः चातुर्मास के लिए प्रार्थना की गई। किन्तु रतनगढ़ के अग्रवाल भाइयो का आग्रह अनिवार्य हो गया। यह क्षेत्र कट्टर विरोधियो का प्रभावशाली क्षेत्र था। अतएव आपने स० २०११ का चातुर्मास इसी क्षेत्र मे करना स्वीकार किया।

स्मरण रखना चाहिए कि रतनगढ़ मे एक भी स्थानकवासी जैन का घर नहीं है। तेरहपंथियो के करीब १००-१५० घर हैं। वहाँ तेरहपंथी साधुओ और साध्वियो का भी चौमासा था। वहाँ विराज कर आपने जैनधर्म के दया-दानमय सत्य स्वरूप पर इतना सुन्दर विशद और प्रभावशाली प्रकाश डाला कि जनता के नेत्र खुल गये। रतनगढ़ के जैनेतर भाई महासतीजी के परमभक्त बन गये। चातुर्मास शान के साथ सम्पन्न हुआ। तदनन्तर जब आपने वहाँ से विहार किया तो अद्भुत दृश्य दिखाई दिया। रामचन्द्रजी के अयोध्या त्याग कर वनवास को जाते समय जैसे अयोध्यावासी विकल और व्यथित हो उठे थे, उसी प्रकार रतनगढ़ के धर्मप्रेमी सरल हृदयजन आपके विहार के समय भी व्याकुल हो गये। सभी के चेहरे उदास और शोकाकुल थे। अग्रवाल और अन्य समाज के भाइयो तथा बाइयो के नेत्रो से आँसू बह रहे थे। पुनः शीघ्र पधारने की भावभरी प्रार्थना कर रहे थे। चातुर्मास-काल मे जो श्रावक-श्राविका आपके दर्शनार्थ रतनगढ़ गये थे, उनका इन भाइयो ने तन, मन, धन से स्वागत-सत्कार किया था। भीनासर (बीकानेर)

निवासी सेठ श्रीचम्पालालजी सा० बांठिया तथा आपकी धर्मवत्सला सुशिक्षिता धर्मपत्नी श्रीमती तारादेवी बांठिया ने रतनगढ़ में विदुषी महासतीजी की सेवा का विशेष लाभ उठाया था।

रतनगढ़ चातुर्मास के पश्चात् आपने पंजाब की ओर विहार किया। शिमला आदि क्षेत्रों को स्पर्श करके आप आचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ लुधियाना पधारीं। सं० २०१२ का चातुर्मास आचार्य म० की सेवा में लुधियाना किया है।

श्रीमोतीकुंवरजी महाराज

आप श्रीमान् भागचन्दजी भलगट (कोबली वाले) अहमदनगर निवासी की छोटी बहिन हैं। गृहस्थावस्था मे भी आप अनेक प्रकार की तपश्चर्या किया करती थीं। सं० १९९८ मे युवाचार्य पं० रत्न श्रीआनन्दऋषिजी म० के चातुर्मास मे, बोरी (पूना) में, आप धर्मलाभ लेने आई थीं और ४५ दिन की अनशन तपश्चर्या की थी।

बम्बई में विराजित श्रीरंभाजी म० की सेवा में रह कर कुछ काल तक सत्संग करने से आपके अन्तरतल में वैराग्य-भाव उदित हुआ और संयम ग्रहण करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। फल स्वरूप राहुरी (अहमदनगर) में फाल्गुन शु० ५, शुक्रवार के दिन युवाचार्यश्री के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की महासती श्री सुमतिकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं। राहुरी श्रीसंघ ने उत्साह पूर्वक दीक्षा का व्यय वहन किया। कुछ ही दिनो तक आप महासतीजी ठा० ३ की सेवा मे रहीं। तत्पश्चात् प्रकृति के वशीभूत होकर अकेली अहमदनगर मे रही। परन्तु चारित्र रूपी रत्न को संभालने मे समर्थ न हो सकीं।

महासती श्रीनवलकुंवरजी महाराज

आप सिरसाला-निवासी श्रीबाबूलालजी रेदासणी की धर्म-पत्नी थीं। गृहस्थावस्था में आपका नाम नत्थू बाई था। सं० १६६६ के वैशाख मास में आप अपने पतिदेव के साथ पांचेगांव (अहमद-नगर) में युवाचार्य श्रीआनन्दऋषिजी म० के दर्शनार्थ आई थी। सदुपदेश सुनकर आपके धर्मसंस्कार उद्बुद्ध हो उठे। तदनन्तर महासती श्रीरंभाजी म० ठा० ४ की सेवा मे शिक्षणप्रीत्यर्थ रहीं। आषाढ़ शु० २ के दिन पं० र० युवाचार्यश्री के मुखारविन्द से मीरी (अहमदनगर) मे दीक्षा अंगीकार की। पण्डिता महासती श्रीसुमति-कुंवरजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुई। आपका शुभ नाम श्रीनव-लकुंवरजी रक्खा गया। दीक्षा के समय आपको उम्र सिर्फ १४ वर्ष की थी। आपकी दीक्षा के निमित्त श्री पन्नालालजी गूगलिया के घर से तथा सिरसाला वाले चोपड़ाजी की ओर से खर्च किया गया था। आपकी दीक्षा के बाद चौथे दिन ही आपके पतिदेव ने भी वहीं मीरी में युवाचार्यश्री से दीक्षा अंगीकार की।

दीक्षा के अनन्तर आप महासती श्रीरंभाजी म० के साथ घोड़नदी-चातुर्मास के लिए पधारी। आपकी बुद्धि अच्छी है। यथा-शक्ति शास्त्रो का अभ्यास किया है। आप सेवाभाविनी सतीजी हैं। महासती श्रीरंभाजी तथा पं० श्रीसुमतिकुंवरजी म० के साथ-साथ देश-देशान्तर में विचर कर वर्त्तमान मे आप लुधियाना (पंजाब) में अपनी गुरुणीजी की सेवा में ही विराजमान है।

बालब्रह्मचारिणी श्रीचन्दनकुंवरजी म०

पूना जिला के चासकमान निवासी श्रीमान् माणकचंदजी कटारिया की धर्मपत्नी श्रीप्रेमकुंवरबाई की कुक्षि से सं० १६६५ में

आपका जन्म हुआ। गृहस्थावस्था में आपका नाम शकुन्तलाबाई था। महासती श्रीरंभाजी म० की सेवा में करीब ३॥ वर्ष तक शिक्षणप्रीत्यर्थ रहीं। आपकी बुद्धि तीव्र और निर्मल है। धारणाशक्ति भी अच्छी है। दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व ही आपने इलाहाबाद की हिन्दी की प्रथमा परीक्षा देकर उत्तीर्णता प्राप्त की थी। संस्कृत-प्राकृत भाषाओं का भी अच्छा अभ्यास किया था। सिकन्दराबाद से गुलाबपुरा (मेवाड़) तक करीब ६०० मील का महासती श्रीरंभाजी म० पं० श्रीसुमतिकुंवरजी आदि ठा० ४ के साथ पैदल विहार किया था। चैत्र शु० २ सं० २००६ के दिन प्रधानाचार्य पं० र० श्रीआनन्दऋषिजी म० के मुखारविन्द से गुलाबपुरा में आपकी दीक्षा सम्पन्न होकर महासती श्रीसुमतिकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं। श्रीचन्दनकुमारीजी नाम दिया गया। आपकी दीक्षा के अवसर पर प्रधानाचार्यजी म० तथा कविश्री हरिऋषिजी म० ठाणे ८ एवं, पंडिता महासती श्रीरतनकुंवरजी म० ठा० ११ श्रीरंभाजी म० ठा० ४ से उपस्थित थीं। दीक्षाप्रीत्यर्थ वस्त्र-पात्र आदि का खर्च आपको माताजी तथा काकाजी ने किया था। दीक्षामहोत्सव के लिए बाहर से आये हुए १०००।१२०० श्रावक-श्राविकाओं के भोजनादि की व्यवस्था गुलाबपुरा श्रीसंघ ने उत्साहपूर्वक की थी।

आपका शास्त्राभ्यास तथा संस्कृत-प्राकृत आदि का अध्ययन चालू है। इस समय आप श्रमणसंघ के आचार्य श्रीआत्मारामजी म० की सेवा में लुधियाना मे विराजमान हैं। श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षाबोर्ड पाथर्डी का अभ्यास वहाँ भी चल रहा है। आपकी तर्कणाशक्ति सुन्दर है। आप होनहार महासती हैं।

पुण्यश्लोका महासती श्रीभूराजी महाराज

घोड़नदी निवासी श्रीगंभीरमलजी लोढ़ा की हार्दिक प्रार्थना

को लक्ष्य में रखकर पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म० ठा० ३ ने सं० १९३५ का जावरा का चातुर्मास समाप्त करके दक्षिण की ओर विहार किया। आप मार्ग के छोटे-बड़े क्षेत्रों को पावन करते हुए फैजपुर (खानदेश) पधारे। आपकी सहोदरा बालब्रह्मचारिणी गुरुभगिनी महासती श्रीहीराजी म० भी मालवा से फैजपुर पधार गईं। वहीं पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म० के सदुपदेश से वैराग्य प्राप्त करके स० १९३७ की मिती ·· ······ को आपने पूज्यापाद महाराजश्री के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की और महासती श्रीहीराजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुई। आपका स्वभाव सरल शान्त और अतीव कोमल था। विनय गुण से विभूषित होने के कारण आपने शास्त्रीय ज्ञान अच्छा प्राप्त किया था। आपका व्याख्यान प्रभावशाली, मधुर और रोचक था।

बहुत वर्षों तक मालव प्रांतीय क्षेत्रों में विचरने के पश्चात् पिछले वर्षों मे अहमदनगर, पूना, और नाशिक जिले आपको प्रधान विहारभूमि रहे है। आपने अनेक भव्य जीवों को धर्ममार्ग पर आरूढ और दृढ़ किया है। आपकी नेश्राय मे चार शिष्याएँ हुईं, जिनमे से बालब्रह्मचारिणी प्रवर्त्तिनी पण्डिता श्रीराजकुंवरजी म० अतीव प्रभावशालिनी और शासनप्रभाविका हुई है।

पौष वदि १३ सं० १९७९ में आपका स्वर्गवास हो गया।

महासती श्रीरतनकुंवरजी महाराज

आपके जन्मस्थान और माता-पिता का नाम ज्ञात न हो सकने के कारण नहीं दिया जा सका। केवल यही मालूम हो सका कि आपने महासती श्रीभूराजी म० के समीप दीक्षा अंगीकार की थी। आपका भी स्वभाव अपनी गुरुणीजी के अनुरूप शान्त, सरल और कोमल था।

आपको शास्त्रों और थोकड़ों की अच्छी जानकारी थी। मालवा आदि प्रान्तों में विचर कर आपने जैनधर्म की खूब प्रभावना की है।

महासती श्रीजयकुंवरजी महाराज

आपकी भी दीक्षा महासती श्रीभूराजी म० की नेश्राय में हुई थी। शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके भी सेवा, भक्ति और वैयावृत्य की ओर आपका अधिक झुकाव था। संयम और तपश्चरण मे आपने खूब पराक्रम दिखलाया था। आपका संयम जीवन बड़ा ही निर्मल था। वीर प्रभु के वचनों पर आपकी अगाध आस्था थी। आपने आत्म-कल्याण मे निरन्तर निरत रह कर अपना जीवन धन्य बनाया।

महासती श्रीपानकुंवरजी महाराज

आपने महाभागिनी महासती श्रीभूराजी म० से दीक्षा ग्रहण की थी। गुरुणी महाराज को सेवा मं रह कर शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया था।

आपकी दो शिष्याएँ हुईं—श्रीप्रेमकुंवरजी म० और श्री फूलकुंवरजी म०। आपका स्वर्गवास कहाँ और किस वर्ष हुआ, यह ज्ञात नहीं हो सका।

स्थविरा महासती श्रीप्रेमकुंवरजी महाराज

आपका जन्मस्थान रतलाम था। पिताजी का नाम मोटाजी था। गाँधी गोत्र था। श्रीस्वरूप बाई को आप आत्मजा थीं। रतलाम में ही श्रीकस्तूरचन्दजी मुणोत के साथ आपका लग्न संबंध

हुआ। २४ वर्ष की उम्र में, सं० १६५५ में रतलाम में ही महासती श्रीभूराजी म० से दीक्षा अंगीकार की और महासती श्रीपानकुंवर जी म० की नेश्राय मे शिष्या हुईं।

आपकी प्रकृति बहुत सरल और भद्र थी। प्रत्येक शब्द में शान्ति और सरलता ओतप्रोत रहती थी। भगवद्भजन में लीन रहती थीं। माला फेरना और प्रभु का नाम जपना आपको बहुत ही प्रिय था। आप प्रवर्त्तिनी श्रीराजकुंवरजी म० की संसारपक्षीय माता थीं। मालवा, खानदेश और महाराष्ट्र में आपने विशेष रूप से विचरण किया। वृद्धावस्था के कारण शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाने पर अहमदनगर मे स्थिरवासिनी हुईं।

सं० २००८ की ज्येष्ठ कृ० ७ के दिन संथारा पूर्वक, समाधि भाव से देहोत्सर्ग किया और स्वर्गवासिनी हुईं।

बालब्रह्मचारिणी प्र० श्रीराजकुंवरजी म०

आप रतलाम-निवासी श्रीकस्तूरचंदजी मुणोत की धर्मपत्नी श्रीप्रेमकुंवरजी--की पुत्री है। पूज्यपाद कविकुलभूषण श्रीतिलोक--ऋषिजी म० की गुरुभगिनी महासती श्रीहीराजी म० की प्रथमशिष्या, श्रीभूराजी म० के सदुपदेश से आप विरक्त हुईं। वैशाख शु० ६ मंगलवार सं० १६५८ को समारोह के साथ दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा के समय आपकी उम्र आठ वर्ष की थी।

बुद्धि तीव्र और निर्मल होने से बाल्यावस्था में शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया और आठ शास्त्र कंठस्थ किये। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी उर्दू, और फारसी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके आप विदुषी और प्रभाविका सती हो गईं।

आपके कंठ में माधुर्य था और संस्कृत हिन्दी एवं उर्दू भाषाओं पर अच्छा अधिकार था। सहित्य का व्यापक वाचन किया। इस कारण आपका व्याख्यान रसपूर्ण, मधुर, गंभीर और प्रभावशाली होता था। श्रोताओ पर आपकी वाणी का अच्छा प्रभाव पड़ता था। क्या जैन और क्या जैनेतर, सभी व्याख्यान सुनकर मुग्ध हो जाते थे।

आपकी प्रभावपूर्ण वाणी को श्रवण करके अनेक जैनेतर भाइयों ने मांसभक्षण और मदिरापान का परित्याग किया। कई तो जैनधर्म के पक्के श्रद्धालु श्रावक बन गये।

मालवा, खानदेश, वरार. महाराष्ट्र, बम्बई आदि प्रान्तों के छोटे--छोटे क्षेत्रो मे भी आपने भ्रमण किया और अनेक परीषह सहन करके धर्म की खूब प्रभावना की।

बम्बई मे पहली बार चातुर्मास करके आपने ही सतियों के लिए बम्बई का द्वार खुला कर दिया था। बम्बई में आपका ही प्रथम चातुर्मास होने से जैनधर्म की खूब प्रभावना हुई। तपश्चर्या हुई। परोपकार के अनेक कार्य हुए। श्राविकावर्ग मे अपूर्व जागृति हुई। चैत्र वदि ७, सं० १९९१ में ऋषिसम्प्रदाय की दक्षिण प्रान्तीय सतियो का जो सम्मेलन पूना में हुआ था, उसमे आप प्रवर्त्तिनी पद से विभूषित की गई।

सं० १९९४ में आपका चातुर्मास बैजापुर में था। वहाँ से विहार करके आपने खानदेश में पर्यटन किया। तत्पश्चात् खाम--गॉव में आपका पदार्पण हुआ। आपकी शारीरिक स्थिति बहुत चिन्तनीय हो गई थी। चलने की शक्ति नहीं रह गई थी। अचानक प्रकृति बिगड़ गई थी। समीप ही मलकापुर मे आत्मार्थी मुनि श्री--

मोहनऋषिजी म० तथा श्रीविनयऋषिजी म० विराजमान थे। उन्हें यह समाचार मिले तो दोनो सन्त महानुभाव शीघ्र विहार करके खामगाँव पधारे। उस समय आपकी वाचा बंद हो गई थी, किन्तु चेतनाशक्ति ज्यो की त्यो थी। मुनिराजों के पधारने पर आपने मनोयोग और काययोग से खमतखामणा की और ऐसे भाव प्रकट किये कि आपने मुझे दर्शन देने के लिए जो कष्ट सहन किया है, उसके लिए क्षमा चाहती हूँ।

फाल्गुन शु० ४ बुधवार सं० १९९६ के दिन सन्तो और सतियो की उपस्थिति मे, मध्याह्न के २ बजे आपने सागारी संथारा धारण किया। ४॥ बजे यावज्जीवन संथारा ले लिया। रात्रि मे ८॥ बजे समभाव से, समाधि में लीन रह कर आयुष्य पूर्ण किया।

आपका संयमी जीवन अत्यन्त निर्मल रहा। गुणग्राहिता, सरलता, शान्ति और उदारता आप मे ओतप्रोत थी। विद्वत्ता तो थी ही। फिर भी अहंकार छू तक नहीं सका था। नम्रता इतनी थी कि छोटे से छोटे सन्त या सती के साथ भी ज्ञानचर्चा और भद्र व्यवहार करती थीं। आपने जैनधर्म के प्रचार मे महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया है।

आपकी १४ शिष्याएँ हुई है। उनमे से प्रभाविका पण्डिता महासती श्रीउज्ज्वलकुंवरजी म० को आपके स्वर्गवास के पश्चात् प्रवर्त्तिनी पद प्रदान किया गया है।

महासती श्रीसुगनकुंवरजी महाराज

आपका जन्म सं० १९४५ में लिवड़ी (मालवा) में हुआ। पिता का नाम श्रीदेवीचन्दजी लोढ़ा और माता का नाम श्रीमती

प्यारीवाई था। लिंवड़ी के श्रीलालचन्दजी श्रीमाल के साथ विवाह सम्वन्ध हुआ। महासती श्रीभूराजी म० के सदुपदेश से सं० १९७० की मार्गशीर्ष शु० ११ के दिन दीक्षा अंगीकार की। वालब्रह्मचारिणी पं० श्रीराजकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं।

आपने साधारण शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया है। आपकी प्रकृति सरल है। मालवा, खानदेश और महाराष्ट्र में विचरण किया है। वर्त्तमान मे आप मालवा प्रान्त में विचर रही हैं।

महासती श्रीचन्द्रकुंवरजी महाराज

वाम्बोरी (अहमदनगर) निवासी श्रीदौलतरामजी भटेवरा आपके पिताजी थे और श्रीयशोदा बाई माताजी थी। सं. १९५०मे आपने जन्म लिया। श्रीविरदीचन्दजी खाबिया के साथ वाम्बोरी में ही आपका लग्न हुआ।

सं० १९७३ की अक्षय तृतीया के दिन महासती श्रीभूराजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की। वालब्रह्मचारी पण्डिता श्रीराजकुंवरजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुईं। गुरुणीजी की सेवा में रहकर साधारण शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया है।

आप सेवाभाव वाली सतीजी हैं। मालवा, खानदेश, अहमदनगर, पूना, सतारा और बम्बई आदि क्षेत्रों में विचरी हैं। वर्त्तमान में अहमदनगर जिले मे विचर रही हैं।

महासती श्रीजसकुंवरजी महाराज

आप अहमदनगर निवासी श्रीमान् हेमराजजी राय गांधी की सुपुत्री हैं। झाँवरवाई आपका नाम था। श्रीवालचन्दजी सरूपचन्दजी मुणोत वाम्बोरी वालो के यहाँ आपका ससुराल था।

पचास वर्ष की आयु में महासती श्रीभूराजी म० के समीप सं० १९७८ का माघ शु० १३ को दीक्षा धारण की और पं० श्री राजकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं। साधारण शास्त्रज्ञान उपार्जन किया था। आचार-विचार की ओर आप अत्यन्त सावधान रहती थीं।

मालवा, दक्षिण, खानदेश, आदि प्रदेशों में विहार किया। माघ वदि ४ सं० १९८८ के दिन आपका स्वर्गवास हो गया।

शान्तिमूर्ति महासती श्रीशान्तिकुंवरजी म०

बाम्बोरी (अहमदनगर)-वासी श्रीमान् सरूपचंदजी-की धर्मपत्नी श्री झांवरबाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ। आपका नाम लालाबाई था।

आप बालब्रह्मचारिणी सती है। महासती श्रीभूराजी म० के सदुपदेश से आपने भी अपनी माताजी के साथ ही दीक्षा धारण की थी। पं० श्रीराजकुंवरजी म० की शिष्या हुईं।

बाल्यावस्था होने के कारण आपकी बुद्धि निर्मल होने से आपने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। लघुसिद्धान्त कौमुदी कठस्थ की है। संस्कृतसाहित्य, न्याय, हिन्दी, उर्दू, गुजराती और मरहठी का अभ्यास करके आप विदुषी सती बनी है। शास्त्रीय बोध भी आपका अच्छा है।

आपकी प्रकृति अत्यन्त कोमल, सरल और शान्त है। 'यथा नाम तथा गुणः' की उक्ति आपके विषय में चरितार्थ होती है। मधुर और प्रभावशाली व्याख्यान फर्माती है।

उत्कृष्ट ज्ञान के साथ उत्कृष्ट चारित्र पालन करने में सदैव दत्तचित्त रहती हैं। ज्ञान-ध्यान में लीन और सांसारिक वार्तालाप से सदैव उदासीन रहा करती हैं। वास्तव में आप आत्मार्थिनी सतीजी हैं।

महाराष्ट्र, खानदेश, वरार, बम्बई आदि प्रदेश आपकी मुख्य विहारभूमि रहे हैं। आपने खूब ही धर्म की प्रभावना की है।

महासतीजी श्रीसिरेकुंवरजी म०

आपका जन्मस्थान विंचौर (नासिक) है। पिता श्रीनन्दरामजी सोनी और माता श्रीभूराबाई थीं। सं० १९५७ में आपका जन्म हुआ। न्यायडोंगरीनिवासी श्रीभागचंदजी दूगड़ के साथ आपका विवाह-संबंध हुआ था।

फाल्गुन शु० १२ सं० १९७९ को, श्रीप्रेमकुंवरजी म० के समीप खडाला (पूर्व खानदेश) में, २२ वर्ष की तरुणावस्था में आपने दीक्षा ग्रहण की। पं० श्रीराजकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या बनीं।

आप नम्र थीं। सदैव गुरुणीजी की सेवा में ही रहती थीं। सतीसमुदाय में आप 'गोराजी म०' के उपनाम से विख्यात थीं। संयमोपयोगी शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया था।

आषाढ़ कृ० १४, सं० १९९४ में आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी एक शिष्या हुईं-श्रीसूरजकुंवरजी म०। आप प्रायः खानदेश और दक्षिण प्रान्त में विचरीं।

महासतीजी श्रीसूरजकुंवरजी म०

आपका निवासस्थान भिंगार (अहमदनगर) था। महा-

सती श्रीसिरेकुंवरजी म० के सदुपदेश से सं० १९९३ की पौषी पूर्णिमा, गुरुवार के दिन विलद मे दीक्षा धारण की। आपने साधारण ज्ञान प्राप्त किया है। भद्रहृदया सती हैं।

महासतीजी श्रीविनयकुंवरजी म०

आपकी जन्मभूमि सिन्दूरणी (खानदेश) है। आषाढ़ शु० १३ सं० १९६४ के दिन जन्म ग्रहण किया। श्रीचुन्नीलालजी ललवानी आपके पिता थे। माताजी का नाम पार्वतीबाई था। गृहस्थावस्था में आपका नाम तानीबाई था। सिलोड (पूर्व खानदेश) निवासी श्रीदेवीचंदजी भूंवरलालजी संकलेचा के यहाँ आपका श्वसुरगृह था।

पं० श्रीराजकुंवरजी म० के सदुपदेश से आप इस असार संसार से उदासीन हुईं और जलगांव मे माघ वदि ६ सं० १९८१ के शुभ मुहूर्त्त मे पंडिता महासतीजी म० के श्रीमुख से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के समय आपकी उम्र करीब १८ वर्ष की थी।

आपने लघुकौमुदी आदि का अभ्यास किया है, शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया है तथा हिन्दी, गुजराती, मरहठी और उर्दू भाषाओं का शिक्षण लिया है। गंभीरता, विनम्रता एवं सरलता आपकी प्रशसनीय विशेषता है। समय-सूचक दक्षता आपमें विद्यमान हैं। प्रवर्त्तिनीजी के प्रत्येक कार्य में आपका गहरा सहयोग रहता था। सदा उनकी ही सेवा मे रहती थीं। आपका व्याख्यान मधुर और गम्भीर होता है। महाराष्ट्र की ओर विचर कर आपने धर्म की खूब प्रभावना की है।

महासती श्रीसदामकुंवरजी महाराज

पण्डिता श्रीराजकुंवरजी म० की सेवा मे मार्गशीर्ष शु० ११

सं० १९८३ के दिन आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। साधारण शास्त्रीय एवं हिन्दी का ज्ञान प्राप्त किया था। प्रकृति की उग्र और हठा थी। कुछ दिनो गुरुवर्या की सेवा मे रह कर प्रकृति के वशीभूत होकर स्वच्छन्द बन गई थीं। अकेली ही विचरती थीं। आपका स्वर्गवास हो चुका है।

महासती श्रीलाभकुंवरजी महाराज

बारामती (पूना) निवासी श्रीमान् माणकचन्दजी छाजेड़ आपके पिता थे। माताजी का नाम श्रीअमृता बाई था। भाद्रपद शु० ५ सं० १९५७ को आपका जन्म हुआ। गृहस्थावस्था मे आप का नाम श्रीतुलसा बाई था। मनचर (पूना) के श्रीउदयचन्दजी भंडारी के साथ विवाह सम्बन्ध हुआ था। सं० १९८१ की ज्येष्ठ शु. द्वितीया के दिन, २३ वर्ष की उम्र में आपने कोटा सम्प्रदाय के तपस्वीराज श्रीदेवीलालजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की। पं० श्री राजकुंवरजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुई। उन्हीं की सेवा में रह कर आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया है और उन्हीं के साथ दक्षिण, खानदेश तथा बरार आदि प्रान्तों मे विचरण किया है।

महासती श्रीरमणीक कुंवरजी महाराज

जुन्नेर (पूना) आपका जन्म स्थान है। श्रीरतनचन्दजी मुथा की पुत्री और श्रीरतनबाई की आत्मजा है। दीक्षा से पहले आपका नाम रंगुबाई था। सं० १९५९ मे आपने जन्म लिया। खड़की (पूना) के फौजमलजी नगराजजी के परिवार की आप वधू थीं। पंडिता श्रीराजकुंवरजी म० का तत्त्वोपदेश श्रवण कर आपके चित्त मे संयम पालन की भावना उदित हुई और संसार से विरक्त हुई।

ज्येष्ठ वदि ११ सं० १९८९ के शुभ दिन स्थविरा महासती श्रीप्रेमकुंवरजी म० के समीप दीक्षा धारण की और पंडिता महासतीजी की शिष्या हुई। दीक्षा के समय ३० वर्ष की उम्र थी। आपके पिताजी ने बड़े समारोह के साथ जुन्नेर मे आपका दीक्षा महोत्सव किया था।

गुरुणीजी की सेवा में रह कर आपने संयमोपयोगी शास्त्र ज्ञान प्राप्त किया है। दक्षिण, खानदेश, बरार की ओर आपका विचरण हुआ।

महासती श्रीसज्जनकुंवरजी महाराज

कोंबली (अहमदनगर) निवासी श्रीमान् मूलचन्दजी भलगट की धर्मपत्नी श्रीजेठीबाई की कुक्षि से सं० १९५६ को श्रावण शु० १३ के दिन आपका जन्म हुआ था। जड़ावबाई नाम था। धामण गाँव मे श्रीरामचन्द्रजी मुकनदासजी कासवा के यहाँ आपकी सुसराल थी।

पौष वदि १२ सं० १९९१ में करमाला (सोलापुर) में पं० महासतीजी श्रीराजकुंवरजी म० के समीप दीक्षा हुई। दीक्षा के समय आपकी उम्र ३५ वर्ष की थी। गुरुणीजी की सेवा में रह कर साधारण ज्ञान प्राप्त किया है। आप वैयावृत्य परायणा, शुद्धहृदया और शान्तप्रकृति सती है। दक्षिण, खानदेश, बरार आदि प्रान्तों में आपने विचरण किया है।

महासती श्रीचन्दनबालाजी महाराज

आप बरवाला (काठियावाड़) निवासी श्रीमान् मोहन-

लाल भाई पारेख की धर्मपत्नी श्रीमणि बहन की सुपुत्री है। दीक्षा से पूर्व चंचल बहिन के नाम से प्रसिद्ध थीं घाटकोपर (बम्बई) की शाला में शिक्षिका थीं। पण्डिता श्रीराजकुंवरजी म० के सदुपदेश का आपके चित्त पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि अध्यापन कार्य त्याग कर आप अपनी दशवर्षीया कन्या को साथ लेकर पं० महासतीजी की सेवामें शिक्षा प्राप्ति के हेतु रहने लगीं। इस प्रकार करीब चार वर्ष रह कर आपने प्रयोजनभूत शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया।

आपकी वह सुपुत्री और कोई नहीं, श्रीउज्ज्वलकुंवरजी म० हैं, जो आज प्रवर्त्तिनी के पद को सुशोभित कर रही हैं और अपनी ज्ञान किरणों से जैन जैनेतर समाज में प्रकाश फैला रही हैं।

यथोचित ज्ञानाभ्यास हो चुकने पर आपका और आपकी सुकन्या का संयम ग्रहण करना निश्चित हो चुका। तब आपने उस समय धुलिया में विराजमान पं० रत्न मुनिश्री आनन्दऋषिजी म० की सेवा में पहुँच कर प्रार्थना की-हम माता-पुत्री संयम अंगीकार करना चाहती हैं। दीक्षा के अवसर पर आप करमाला पधारने का अनुग्रह करें। आपके श्रीमुख से दीक्षा ग्रहण करने की हमारी हार्दिक कामना है।

पं० रत्न म० श्री इस भाव-भरी प्रार्थना को मान देकर शीघ्रतापूर्वक करीब २०० मील का विहार करके करमाला पधारे। इस विहार में आपको करीब डेढ़मास का समय लगा। वैशाख शु० द्वितीया के दिन पं० मुनिश्री पधारे और तृतीया के दिन श्रीउज्ज्वल (अजवालो) बहिन की दीक्षा सम्पन्न हुई। छह दिन बाद अर्थात् वैशाख शु० ६ (सं० १९९१) को आपकी दीक्षा हुई। दोनों दीक्षाएँ पं० रत्न मुनिश्री के मुखारविन्द से हुईं। दोनों नवदीक्षिता सतियाँ श्रीराजकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं।

आपकी प्रकृति सरल और शान्त है। अवसर-कौशल का गुण आपमें विद्यमान है। सहिष्णुता सराहनीय है।

महासतीजी श्रीगुलाबकुंवरजी म०

जलगांव (पूना) के श्रीरामलालजी रांका की धर्मपत्नी श्रीराधाबाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ था। जन्मकाल-श्रावण शु० ५, सं० १९५३। गृहस्थावस्था में पारुबाई नाम था। श्रीजीवराजजी प्रेमराजजी छाजेड़ बोधेगांव टाकली (अहमदनगर) के यहाँ आपका सुसराल था।

अहमदनगर में पं० श्रीसिरेकुंवरजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की और श्रीराजकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या बनीं। कार्तिक शु० १३, सं०१९९२ के दिन दीक्षा हुई।

आपने साधारण ज्ञान प्राप्त किया है। आपकी प्रकृति भद्र है। दक्षिण, खानदेश और बरार आदि प्रान्तों मे विचरण किया है।

महासतीजी श्रीमाणककुंवरजी म०

अहमदनगर-निवासी श्रीचन्दनमलजी पितले की धर्मपत्नी श्रीगीताबाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ है। आपके पिताजी श्रीमान् पितलियाजी साहब अहमदनगर श्रीसंघ में लब्ध प्रतिष्ठ अग्रणी सुश्रावक थे और आपकी दादीजी धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती रंभाबाईजी थी। जिन्होंने श्रावकों के धर्मध्यानार्थं अपने ही पड़ौस की एक विशाल जगह श्रीसंघ को दी थी जो कि आज श्रीरंभाबाई का स्थानक के नाम से प्रसिद्ध है। माणककुंवर ही आपका नाम था। सोलापुर में श्रीहजारीमलजी भोमराजजी गुंदेचा के यहाँ

आपकी सुसराल थी। प्र० श्रीराजकुंवरजी म० ने स० १९९८ का चातुर्मास अहमदनगर में किया था। उनके सदुपदेश से आपको वैराग्य हुआ। वैशाख वदि ११ सं० १९९३ शुक्रवार के दिन समारोह के साथ अहमदनगर में प्रवर्त्तिनीजी म० की सेवा में दीक्षा अंगीकार की। आपके दीक्षा महोत्सव में श्रीमोतीलालजी भुवरलालजी पितलिया बधुद्वय ने उत्साहपूर्वक भाग लिया था।

आपने हिन्दी आदि के शिक्षण के अतिरिक्त शास्त्रीय ज्ञान भी प्राप्त किया है। प्रवर्त्तिनीजी म० की खूब सेवा की है। आप अवसर को पहचानने वाली दक्ष सती है। दक्षिण, खानदेश, वरार आदि प्रदेशों में बहुत विचरी हैं।

विदुषीरत्न प्रवर्त्तिनी श्रीउज्ज्वलकुंवरजी महाराज

चैत्र वदि १३ (गुजराती फाल्गुन कृ० १३) सं० १९७५ को वरवाला (सौराष्ट्र) निवासी श्रीमान माधवजी भाई डगली की धर्मपत्नी श्रीचचल वहिन की रत्न-कुक्षि से आपका जन्म हुआ। बाल्यावस्था मे आप अजवाली वहिन कहलाती थीं। प० श्रीराजकुंवरजी म० के सदुपदेश से ससार की अनित्यता और असारता को जान कर आपकी माताजी जब उनकी सेवामें रहीं थीं, तब आप भी उनके साथ थीं।

सुशिक्षिता माता की पुत्री होने से तथा बुद्धि तीक्ष्ण और मेधाशक्ति प्रवल होने के कारण आप दीक्षित होने से पूर्व ही विदुषी हो चुकी थीं। लघुसिद्धान्त कौमुदी हितोपदेश, पंचतन्त्र, प्रमाणनयतत्त्वालोक तर्कसंग्रह, मुक्तावली, भट्टि-काव्य, पंच महाकाव्य, हिन्दी, गुजराती और उर्दू आदि का व्यापक अध्ययन कर लिया था।

सं० १९९१ की अक्षय तृतीया के दिन करमाला में पं० रत्न मुनिश्री आनन्द ऋषिजी म० के श्रीमुख से आपकी दीक्षा हुई। श्रीराजकुंवरजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुईं।

दीक्षित होने के पश्चात् भी आपका अध्ययनक्रम निरन्तर चालू रहा। व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि विविध विषयों का तथा जैनागमों का गभीर और विशद अध्ययन किया। इससे भी आपकी ज्ञानलिप्सा शान्त नहीं हुई। तब आपने अंगरेजी भाषा का भी अध्ययन किया और विशेषतया विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर के साहित्य का खूब पर्यालोचन किया। आध्यात्मिक ग्रन्थो मे समयसार आदि का परिशीलन किया है।

पाँच भाषाओ पर आपने प्रभुता प्राप्त की है। अंगरेजी में आप धाराप्रवाह बोलती है और प्रवचन भी करती हैं। वास्तव में आपका पांडित्य व्यापक और तलस्पर्शी है। आपमें बहुमुखी प्रतिभा है।

आपका व्याख्यान प्रभावशाली, हृदयस्पर्शी और पांडित्य-पूर्ण होता है। विषय का प्रतिपादन करने की आपमे सराहनीय क्षमता है। प्राचीन और अर्वाचीन विचारशैली के समन्वय से व्याख्यान ग्राह्य और रुचिकर हो जाता है। जैन और जैनेतर-हजारों की सख्या मे आपका व्याख्यान श्रवण करते हैं और मुग्ध तथा चकित हो जाते है। श्रोतृसमूह आपकी विद्वत्ता एवं विपयनिरूपणशैली की भूरि-भूरि प्रशसा करते हैं। आपके कतिपय प्रवचन 'उज्ज्वल-वाणी' नाम से दो जिल्दों में श्रीसन्मति ज्ञानपीठ, आगरा से प्रकाशित हो चुके हैं।

सं० १९९६ की फाल्गुन शु० ५ गुरुवार के दिन खामगांव

(वरार) में आत्मार्थी श्रीमोहनऋषिजी म० तथा श्रीविनयऋषिजी म० एवं सतीवृन्द की उपस्थिति में आप प्रवर्त्तिनी-पद से विभूषित की गई हैं।

बम्बई, पूना, अहमदनगर, नाशिक, खानदेश वरार आदि क्षेत्रों में विचर कर आपने धर्म की अच्छी प्रभावना की है। आपका शारीरिक स्वास्थ्य पूरी तरह साथ नहीं देता। अतएव आजकल आप अहमदनगर एवं घोड़नदी आदि क्षेत्रों में ही प्रायः विचरती हैं।

महासतीजी श्रीप्रभाकुंवरजी म०

आपको प्रवर्त्तिनी महासती श्रीउज्ज्वलकुंवरजी म० के सदुपदेश से वैराग्य-लाभ हुआ। आत्मार्थी मुनिश्री मोहनऋषिजी म० की उपस्थिति में माघ शु० १३, सं० १९९९ गुरुवार के दिन घोड़नदी (पूना) में दीक्षा अंगीकार की। प्रवर्त्तिनीजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं। गुरुणीजी की सेवा में रहकर आपने हिन्दी, संस्कृत और आगमों का अभ्यास किया है। आप विदुषी सती हैं।

महासतीजी श्रीसुगनकुंवरजी म०

आपने संसार-अवस्था में प्रवर्त्तिनी श्रीउज्ज्वलकुंवरजी म० की सेवा मे रहकर संस्कृत, हिन्दी और आगमों का शिक्षण लिया। तदनन्तर भाद्रपद वदि १४ सं० २००३, रविवार के शुभ मुहूर्त्त में आत्मार्थीजी म० के श्रीमुख से पूना मे दीक्षा धारण की और विदुषी प्रवर्त्तिनीजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुईं। आपकी दीक्षा की विशेषता यह थी कि अत्यन्त सादगी के साथ, बिना किसी आडम्बर के दीक्षा-विधि सम्पन्न हुई। शुद्ध खादी के वस्त्रों का ही उपयोग किया गया। इस दृष्टि से यह आदर्श थी। आपका नाम श्रीसुगनकुंवरजी

रक्खा गया। प्रवर्त्तिनीजी म० की सेवा में रहकर आप अपने ज्ञान का विकास करने मे संलग्न है।

महासतीजी श्रीविमलकुंवरजी म०

संसार-अवस्था में आपने प्रवर्त्तिनी पंडिता श्रीउज्ज्वलकुंवरजी म० की सेवा मे रहकर हिन्दी, सस्कृत और आगमों का अभ्यास किया है। भाद्रपद वदि १४, सं० २००३, रविवार के दिन आत्मार्थी मुनिश्री मोहनऋषिजी म० के मुखारविन्द से पूना मे दीक्षा अंगीकार की। प्रवर्त्तिनीजी की नेश्राय में शिष्या बनीं। श्रीसुगनकुंवरजी म० तथा आपकी दीक्षा साथ-साथ ही हुई थी। अतएव आपकी दीक्षा मे भी वही सब विशेषताएँ थीं। दीक्षा के अवसर पर आपको विमलकुंवरजी नाम दिया गया। आप भी प्रवर्त्तिनीजी म. की सेवा में रहकर अध्ययन कर रही हैं और शास्त्रीय ज्ञान की भी वृद्धि कर रही है।

महासतीजी श्रीप्रमोदकुंवरजी म०

पंडिता महासती श्रीउज्ज्वलकुंवरजी म० का सदुपदेश सुनकर आपके चित्त मे आत्मसाधना की लगन उत्पन्न होकर संसार से उदासीनता हुई। कुछ वर्षों तक प्रवर्त्तिनीजी म० की सेवा मे रहकर हिंदी, संस्कृत, प्राकृत का तथा शास्त्रों का अभ्यास किया। जब अच्छी योग्यता प्राप्त हो गई तो पौष वदि १, स० २००८, रविवार के दिन आत्मार्थी मुनिश्री मोहनऋषिजी म० ठा० २ की उपस्थिति में घोड़नदी मे दीक्षा धारण करके प्र. श्रीउज्ज्वलकुंवरजी म. की शिष्या बनीं।

इस समय भी आपका ज्ञानाभ्यास चालू है। पूरे मनोयोग से आप अपनी योग्यता की वृद्धि में निरत हैं।

महाभागा महासतीजी श्रीलछमाजी म०

आपका जन्मस्थान मन्दसौर (मालवा) था। पिता श्रीमान् धनराजजी बीसा पोरवाड़ तथा माता श्रीमती गगूबाई थी। विवाह रतलाम में ही हुआ था। पदवीधर श्रीकुशालाजी (कुशलकुंवरजी) म० से प्रतिबोध पाकर आपने दीक्षा अंगीकार की। आगमाभ्यास करके बहुसूत्री हुई। आपका व्याख्यान प्रभावजनक, मधुर और रोचक होता था। पिपलोदा के राजा श्रीमान् दुलीसिंहजी ने उपदेश सुनकर ११ जीवों को अभयदान दिया था। प्रतापगढ़-नरेश को सद्बोध देकर धर्मनिष्ठ बनाया था। श्रीभगवतीसूत्र पर आपकी विशेष अभिरुचि रहती थी और भिन्न २ शैली का अवलम्बन लेकर उसे समझाने में आपने कुशलता प्राप्त की थी।

आपके पिपलोदा-चातुर्मास मे खूब धर्मध्यान एवं तपश्चरण हुआ था। आपके प्रवचनों एव संयम-तप के प्रभाव से जैनों के अतिरिक्त जैनेतर जनता पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा था। जनता मुक्त कंठ से आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करती थी।

मालवा-मेवाड़ आदि प्रान्तों में विचरण करके आपने धर्म को खूब दिपाया है। चवालीस वर्ष तक संयम का पालन किया। अन्तिम समय मे, प्रतापगढ़ में ११ वर्ष तक स्थिरवास किया। दो दिन का संथारा करके, आलोचना करके, निश्शल्य होकर, समता-भावपूर्वक समाधिमरण से शरीरोत्सर्ग किया।

आपकी अनेक शिष्याएँ हुईं। उनमें १ श्रीरुकमाजी म०, २ श्री हमीराजी म०, ३ श्रीदेवकुंवरजी म०, ४ श्रीरंभाजी म०, ५ श्रीदयाकुंवरजी म०, ६ श्रीजड़ावकुंवरजी म०, ७ श्रीगेंदाजी म०, ८ श्रीलाडूजी म० ९ श्री वड़े हमीराजी म०, १० शांतमूर्ति श्रीसोनाजी

म० ये दस नाम उपलब्ध हैं। इनमें से श्री बड़े हमीराजी म० और महासती श्रीसोनाजी महाराज बड़ी प्रभावशालिनी हुई। सतियों पर उनका खूब प्रभाव पड़ता था।

महासतीजी श्रीरुक्माजी म०

आपका जन्म सारंगपुर (मालवा) मे हुआ था और सुसराल मंदसौर मे थी।

आपने सतीशिरोमणी श्रीलछमाजी म० से दीक्षा ग्रहण की थी। गुरुणीजी की सेवा मे रहकर शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया था। आप अच्छी विदुषी सती हुई है। आपने व्याख्यान बड़े ही प्रभावपूर्ण होते थे। लोग आपके सद्गुणो की प्रशंसा करते थे। विदुषी होने पर भी आप वैयावृत्यपरायणा सती थी। आपकी यह विशेषता उल्लेखनीय है।

इन सतीजी ने अनेक परीषह सहन करके जैनधर्म की प्रभावना की है। श्रीहरखकुंवरजी म० आपकी शिष्या हुई हैं।

महासतीजी श्रीलाडूजी म०

आपकी दीक्षा महाभाग्यशालिनी सतीशिरोमणि श्रीलछमाजी म० के पास हुई थी। अत्यन्त सरलहृदय और विनयविभूषित सती थीं। अनेक शास्त्रों का स्वाध्याय करके अच्छा आगमज्ञान प्राप्त किया था। शास्त्रलेखन की आपकी अभिरुचि थी। आपके हस्तलिखित पन्ने अभी मौजूद है।

मालवा आदि प्रान्तों मे विहार करके जैनधर्म का प्रचार किया है। आपका भी व्याख्यान बड़ा प्रभावशाली था। आपने

छोटे-छोटे ग्रामों में विचर कर भव्य जीवों को धर्मपथ पर आरूढ़ किया और अपना जीवन सफल बनाया। आपकी एक शिष्या श्री भूलाजी म० हुई।

महासतीजी श्रीदेवकुंवरजी म०

मालवा प्रान्त में आपने जन्म ग्रहण किया। सतीप्रवरा श्री-लछमाजी म० के सन्निकट दीक्षा अंगीकार की। आपको प्रकृति में अत्यन्त मृदुता और सरलता थी। गुरुणीजी की सेवा में रहकर आपने संयमोपयोगी शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया था। श्रीसरदाराजी म० नामक आपकी एक शिष्या हुई। मालवा आदि प्रान्तों में प्रधान रूप से विहार हुआ। जैनधर्म की खासी प्रभावना की। संयम की आराधना करके आप स्वर्गवासिनी हुईं।

महासतीजी श्रीसरदाराजी म०

मालव प्रान्तीय इंगणोद ग्राम में माली बिरादरी में आपका जन्म हुआ था। महासतीजी श्रीदेवकुंवरजी म० के मुखारविन्द से सदुपदेश सुनकर आपको वैराग्य प्राप्त हुआ और उनके समीप ही दीक्षित हुए। आपकी प्रकृति सरल शान्त थी, गुरुणीजी की सेवा में आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया, मालवप्रान्त में आपकी विहार-भूमि रही है। आपने छोटे २ ग्रामों में विचर कर जैनधर्म की प्रभा-वना की है।

आपकी एक शिष्या हुई उनका नाम है श्रीसुन्दरकुंवरजी महाराज।

सं० १६८६ में प्रतापगढ़ में विराजित स्थविरा महासती श्री-छोटे हमीराजी म० की सेवा में आप और श्रीइन्द्रकुंवरजी म०

तथा श्रीसुन्दरजी म० सेवा प्रीत्यर्थ विराजते थे। आपने तन मन से सेवा की है।

महासतीजी श्रीसुन्दरजी म०

आपकी जन्मभूमि मेवाड़ प्रांत मे ग्राम मनासा है। श्रीरिखबदासजी सेठिया आपके पिताजी है माता का नाम तेजाबाई था। आपका विवाह प्रतापगढ़ निवासी श्रीझमकलालजी के साथ हुआ था, महाभागा सतीजी श्रीकासाजी म० के मुखारविन्द से सदुपदेश सुनकर प्रभावित हुईं। और वैराग्यभाव से प्रतापगढ़ में ही सं० १९७२ मि० आषाढ़ शु० ११ के दिन महाभागा सतीजी से दीक्षित होकर महासतीजी श्रीसरदाराजी म० के नेश्राय मे शिष्या हुई। आपने साधारण ज्ञान प्राप्त किया है । प्रकृति के भद्र है। हमेशा तप जप और नाम स्मरण मे लीन रहते हैं । प्रतापगढ़ मे छोटे श्रीहमीराजी म० की सेवा में विराजे। गुरुणीजी का स्वर्गवास होने के पश्चात् आप प्रवर्त्तिनीजी महासतीजी श्रीहगामकुंवरजी म० की सेवा में मालवा मेवाड़ बरार सी. पी आदि प्रान्तो में विचरी है। वर्तमान में भी प्रवर्त्तिनीजी की सेवा में मालव प्रान्त में विचर रही है। आप सेवाभाविनी सतीजी हैं।

महासतीजी श्रीगुलाबकुंवरजी म०

जन्मस्थान निनोर (मालवा) था। पिता श्रीअमरचंदजी माली और माताजी-श्रीसरसाबाई। सं० १९४८ में आपका जन्म हुआ। आपने छोटी-करीब नौ वर्ष की उम्र में ही, महासती श्री-लाडूजी म० के मुखारविन्द से चैत्र शु० ३ सं० १९५७ में दीक्षा अंगीकार कर ली थी। महासती श्रीभूलाजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुई।

आपने संयमोपयोगी साधारण ज्ञान प्राप्त किया है। प्रकृति भद्र है। प्रायः मालवा ही आपकी विहारभूमि है। आपकी तीन शिष्याएँ हुईं:—(१) श्रीधापूजी (२) श्रीसूडाजी (३) श्रीसुमतिकुंवरजी।

प्रभाविका महासतीजी श्री (बड़े) हमीराजी म०

आपने महाभाग्यशालिनी महासती श्रीलछमाजी म० के समीप दीक्षा ग्रहण की थी। आप व्याख्यानपटु, सरलप्रकृति और गंभीर सती थीं। मालवा और बागड़ आदि प्रान्तों में विचरण करके सत्य जैनधर्म का प्रचार किया। कितने ही भव्य जीव आपका उपदेश सुनकर धर्म और नीति के मार्ग पर लगे। आपके व्याख्यानों का श्रोताओं पर बहुत प्रभाव पड़ता था।

आप बड़ी ही तेजस्विनी और प्रभावशालिनी सती थी। सतीवृन्द पर आपका अच्छा प्रभाव था। इस कारण उस समय विचरने वाली करीब ३० सतियाँ आपकी आज्ञा का पालन करती थीं।

आपकी पाँच शिष्या हुईं, १ श्रीछोटाजी म०, २ श्रीजमनाजी म०, ३ हुलासकुंवरजी म०, ४ श्रीमानकुंवरजी म०, ५ और श्रीरंभाजी म०, जिनमें से भद्रहृदया महासती श्रीरंभाजी म० ने दक्षिण प्रान्त में विचर कर धर्म की खूब जागृति की है।

महासतीजी श्रीमानकुंवरजी म०

आप धरियावद के नगरसेठ श्रीमान् कालूरामजी की धर्मपत्नी थीं। पतिवियोग से व्यथित होकर तथा श्रीहमीराजी म० का सदुपदेश श्रवण करके आपने गुरुवर्य पं० रत्न श्रीरत्नऋषिजी म० के

मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की और महासतीजी की नेश्राय मे शिष्या हुईं। धरियावद मे ही आपका दीक्षासमारोह मनाया गया।

दो वर्ष तक प्रतापगढ़ मे श्रीलछमाजी म. की सेवा मे विराज कर गुरुणीजी म० तथा महासतीजी श्रीरंभाजी म० के साथ गुजरात होकर दक्षिण पधारीं और उनकी सेवा में ही रहीं। सं० १९९६ के मार्गशीर्ष मास मे आपका स्वास्थ्य गिर गया और जीवन का अन्त सन्निकट दिखाई देने लगा। आपने पं० रत्न युवाचार्य श्रीआनन्द-ऋषिजी म० के मुखारविन्द से संथारा ग्रहण करने की अभिलाषा व्यक्त की। उस समय सतीजी पूना मे और पण्डितरत्न मुनिश्री उरण मे विराजमान थे। पूना-श्रीसंघ की ओर से सेवा में समाचार भेजे गये। पण्डितरत्नजी म० ने तत्काल पूना की ओर शीघ्रता के साथ विहार किया। यथाशक्य शीघ्रता करने पर भी आप समय पर न पहुँच सके और महासतीजी का स्वर्गवास हो गया।

आप अत्यन्त भद्रात्मा और सरलप्रकृति की सती थीं। अन्त तक शुद्ध परिणामो के साथ सयम का पालन किया और पंडितमरण से शरीर त्याग कर स्वर्ग पधारीं।

प्रवर्त्तिनी श्रीरंभाजी म० और उनकी परंपरा

प्रतापगढ़-निवासी वैष्णवधर्मी श्रीघासीलालजी पोरवाड़ की धर्मपत्नी श्रीरुक्माबाई की कुक्षि से आपका जन्म हुआ। नौ वर्ष की उम्र मे विवाह हुआ और तेरह वर्ष की उम्र में वैधव्य की प्राप्ति हो गई। हिन्दू महिला के जीवन में बालवैधव्य सब से बड़ा दुःख है। परन्तु समाज में प्रचलित बालविवाह की कुप्रथा के कारण प्राप्त हुए इस भीषण दुःख को भी कल्याण के रूप में परिणत कर लिया। अशुभ कर्म के उदय के पश्चात् आपके शुभ कर्म का उदय हुआ प्रभावशालिनी महासती श्री बड़े हमीराजी म० का प्रतापगढ़ में पदार्पण हुआ। उन्होंने आपको जगत् का सत्य स्वरूप प्रदर्शित किया, जिसका प्रत्यक्ष परिचय भी आपको मिल गया था। अतएव आपके चित्त मे निर्वेद का भाव उत्पन्न हुआ। दो वर्ष पश्चात्-पन्द्रह वर्ष की उम्र मे, माता-पिता की अनुमति प्राप्त करके आपने श्री-हमीराजी म० से दीक्षा ग्रहण कर ली।

महासती श्रीलछमाजी म० के पैर में दर्द हो जाने के कारण आप पन्द्रह वर्ष तक प्रतापगढ़ में सेवा में रहीं। बड़े हमीराजी म० भी पाँच वष तक अपनी शिष्याओं सहित उनकी सेवा में रही थीं। गुरुवर्य श्रीरत्नऋषिजी म० ने जब धरियावद में चातुर्मास किया था, उस समय आपका भी चातुर्मास वहीं था। उधर से विहार करके आप पुनः प्रतापगढ़ पधारीं। दो वर्ष तक पुनः श्रीलछमाजी म० की सेवा की। श्रीलछमाजी म० का स्वर्गवास होने पर श्रीहमीराजी म०, श्रीरंभाजी म० तथा श्रीमानकुंवरजी म० ठा० ३ ने मेवाड़, मारवाड़, वागड़ आदि प्रान्तों मे भ्रमण करके पुनः गुरुवर्य श्री-रत्नऋषिजी म० के साथ खेड़ा (गुजरात) में चातुर्मास किया।

एक बार आपने बम्बई-मार्ग से दक्षिण की ओर विहार

किया। उस समय प्लेग की बीमारी शुरु थी। आप ठाणा ३ का मुँहपत्ती से ढँका मुख देखकर किसी अनभिज्ञ पुलिस के सिपाही ने न जाने क्या सोचकर आपको रोक दिया! उसके लिए आपका वेष अजनबी था और शायद वह समझ रहा था कि यही प्लेग की पुड़िया लिये घूम रही है! तीन दिन तक आप तीनों महासतियाँ आम के एक वृक्ष के नीचे रहीं। बाद मे सूरत के एक वकील के हस्तक्षेप करने पर आपका छुटकारा हुआ। वहाँ से उग्र विहार करके नौ दिनो मे आप इगतपुरी पधारीं। मार्ग मे अनेक कष्ट सहन करने पड़े। भूख और प्यास के उग्र परीषह झेलने पड़े।

मालवा, वागड़, गुजरात, महाराष्ट्र, खानदेश आदि प्रान्त आपकी प्रधान विहारभूमि रहे। आपके सदुपदेश से १८ शिष्याएँ हुईं, जिनमे से अनेक विख्यात हुई है।

सं० १९९१ की चैत्र वदि ७ के दिन पूना में ऋषिसम्प्रदायी सतियो का सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन मे आपको प्रवर्त्तिनी-पद प्रदान किया गया। वृद्धावस्था और शारीरिक दुर्बलता के कारण आप लगभग १५ वर्ष तक पूना मे स्थिरवासिनी रहीं।

शारीरिक स्थिति गिरती देखकर महासतीजी ने प्रथम नौ दिन की तपश्चर्या की। तत्पश्चात् ३६ दिन का अनशन व्रत अगीकार करके सं० २००२ की ज्येष्ठ शु० १५ सोमवार को रात्रि मे १० बजे समता-भाव से, समाधि मे लीन होकर देहोत्सर्ग किया। इस प्रकार तपस्या सहित पैंतालीस दिन का सथारा आया। संथारे के समय आपका चित्त सदैव प्रसन्न रहता था, अध्यवसाय शुद्ध थे और परिणामों में समता व्याप्त रहती थी।

पौन शताब्दी तक आपने संयम का पालन किया। ९० वर्ष

की उम्र में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके स्वर्गवास के अनन्तर आपकी प्रशिष्या बालब्रह्मचारिणी पण्डिता महासती श्रीइन्द्र-कुंवरजी म० को प्रवर्त्तिनी पद से अलंकृत किया गया। उस समय आत्मार्थी मुनिश्रीमोहनऋषिजी म० तथा श्रीविनयऋषिजी म० उपस्थित थे। संथारे के समय पूना-श्रीसंघ ने दर्शनार्थी स्वधर्मी बन्धुओं की खूब सेवा-भक्ति की थी।

सरलस्वभावा श्रीपानकुंवरजी म०

आप सुकिना-निवासी ओसवाल जातीय श्रीमान् किसन-दासजी की पुत्री थीं। गृहस्थावस्था में नंदूबाई के नाम से प्रसिद्ध थीं। आप भी बालविवाह की पैशाचिक प्रथा का शिकार हुईं। ९ वर्ष की अबोध अवस्था मे विवाह हो गया और एक वर्ष बाद ही वैधव्य की विडम्बना भुगतनी पड़ी।

१९ वर्ष की उम्र मे बोध पाकर महासतीजी श्रीरंभाजी म० के पास आपने भागवती दीक्षा अंगीकार की। आपकी भाषा में अनूठा माधुर्य था। हृदय को हिला देने वाली वक्तृत्वशक्ति थी। गंभीरता, समयसूचकता आदि गुणों से विभूषित थीं। स्थविरा महासतीजी म० की दाहिनी भुजा समझी जाती थीं। संयमशुद्धि की तरफ आपका विशेष लक्ष्य रहता था। प्रायः गुरुणीजी म० की सेवा मे ही रहती थीं। महाराष्ट्र मे विचर कर आपने खूब धर्म-प्रचार किया। सं० १९९१ के भाद्रपद मास की शु० ५ की रात्रि में समाधिपूर्वक शुद्ध भाव से देह त्याग किया।

सेवाभाविनी महासतीजी श्रीराजकुंवरजी म०

आपका निवासस्थान करजगाँव था। महासतीजी श्रीरंभाजी म० से सद्बोध पाकर आपको संसार से निर्वेद हुआ। उच्च वैराग्य

से प्रेरित होकर महासतीजी म० की सेवा में दीक्षा धारण की। आपका स्वभाव शान्त और सरल है। सेवाभाव खूब गहरा है। आपने ४५ दिन की तपश्चर्या की थी। गुरुणीजी म० तथा पण्डिता श्रीचन्द्रकुंवरजी म० आदि सतियों की सेवा में रहकर आपने तन-मन से सेवा की और अपने जीवन को सफल बनाया।

वृद्धावस्था और शारीरिक शक्ति की क्षीणता के कारण इस समय आप पूना में स्थिरवास कर रही हैं।

महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म०

आपका निवासस्थान सिरपुर (पश्चिम खानदेश) था। ५० वर्ष की उम्र में श्रीरंभाजी म० से आपने दीक्षा ग्रहण की थी। स्वभाव से सरल और भक्ति से परिपूर्ण हृदय वाली सती थीं। साधारण ज्ञान प्राप्त किया था। अपने गुरुणीजी म० की तन मन से सेवा की थी। सं० १९७२ में आप स्वर्गवासिनी हो गईं।

महासतीजी श्रीकेसरजी म०

आप भी सिरपुर की ही निवासिनी थीं। महासती श्रीरंभाजी म० के सदुपदेश से संसार से विरक्त हुईं। पति की अनुमति लेकर आपने गृह-त्याग किया और श्रीरंभाजी म० से दीक्षा ली। आप भद्रहृदया और संयमपरायणा महासती थीं। आपने गुरुणीजी म० की सेवा में रहकर चारित्रधर्म का पालन करते हुए जीवन को सफल बनाया। सं० १९८७ में आपका स्वर्गवास हुआ।

महासतीजी श्रीगुलाबकुंवरजी म०

आप भी सिरपुर की ही विभूति थी। महासती श्रीरंभाजी म०

से दीक्षा धारण की। उत्तरावस्था में दीक्षा लेकर भी आपने अपने जीवन को कृतकृत्य कर लिया। हमेशा प्रभु के नामस्मरण में संलग्न रहती थी। प्रकृति में अपरिमित शान्ति और सरलता थी। सहि--ष्णुता इतनी कि कोई कुछ भी कह लें, आपका उधर ध्यान नहीं जाता था। सदैव निर्विकार चित्त से माला जपती रहती थीं। हर समय प्रवर्त्तिनीजी की सेवा मे रहीं। सं० १९९९ के पौष मास में, पूना में आपका स्वर्गवास हुआ।

महासतीजी श्रीजतनकुंवरजी म०

आप वाम्बोरी (अहमदनगर) की निवासिनी थीं। बाल्यावस्था में ही आपने महासती श्रीरंभाजी म० से दीक्षा अंगीकार की थी। अभ्यास करके अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। आपकी भाषा मे मधुरता थी। श्रोताओं पर व्याख्यान का प्रभाव पड़ता था। आप विदुषी महासती थीं। सं० १९७२ मे आपका स्वर्गवास हो गया।

महासतीजी श्रीसुन्दरकुंवरजी म०

आपकी निवासभूमि चौपड़ा (पश्चिम खानदेश) थी। स्वभाव की कोमलता और अन्तःकरण की भद्रता प्रशंसनीय थी। श्रीरंभाजी म० के पास आप दीक्षित हुईं और उन्हीं की सेवा में रह कर अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। आपको ढाल, स्तवन, थोकड़े आदि का अच्छा अभ्यास था। जो सीखा, सब कंठस्थ किया!

वि० सं० १९७२ में आप स्वर्गवासिनी हुईं।

महासतीजी श्रीजसकुंवरजी म०

आपका गृहस्थजीवन चहोली (पूना) में व्यतीत हुआ।

सत्संगति के फलस्वरूप आपके चित्त में वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हुआ। महासती श्रीरंभाजी म० से वि० सं० १६६८ शकाब्द १८३२ की ज्येष्ठ शु० ११ के दिन उरुलीकांचन में दीक्षा धारण की। आपके कुटुम्बी जनो ने ही आपकी दीक्षा का समस्त आयोजन और व्यय किया।

आपने शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त किया है। सेवाभाविनी सती हैं। गुरुणीजी म० आदि सतियो की सेवा में रहकर आपने सर्वतो-भावेन उनकी सेवा की है। चारित्रपालन करने मे सावधान रहती है। इस समय आप दक्षिण मे विराजमान हैं। बम्बई, पूना और नाशिक जैसे बड़े-बड़े और छोटे-छोटे क्षेत्रों को भी आपने पावन किया है।

मधुरव्याख्यात्री श्रीसूरजकुंवरजी म०

कुडगॉव (अहमदनगर) आपकी निवासभूमि है। गूगलिया गोत्र मे आप विवाहित हुइ थी। एक पुत्ररत्न को प्राप्ति हुइ थी। अल्प वय मे ही सत्सगति पाकर उदासीन भाव से संसार में रहती थी। गृहस्थो मे रहकर भी आप भावना से गृहस्थी मे अलिप्त थी। महासतीजी श्रीरंभाजो म० के सदुपदेश से विरक्ति मे वृद्धि हुई और पंचवर्षीय पुत्र का परित्याग करके उन्हीं के पास प्रव्रज्या अगीकार कर ली। कडाग्राम मे दीक्षाविधि सम्पन्न हुई।

आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया है। कोकिला के समान मधुर स्वर से जब आप प्रभुप्रार्थना करती है और वैराग्य-रस के पदो का उच्चारण करती है तो श्रोतागण भक्तिविह्वल हो जाते है। आवाज़ आपकी बुलद है। जब आप पण्डिता महासती श्रीचन्द्रकु वरजी म० के साथ व्याख्यानसभा मे विराजमान होती थी तो आपकी जोड़ी

चन्द्रसा और सूर्य के समान ही शोभा पाती थी ! श्रोताओं पर आपके भाषण का अच्छा प्रभाव पड़ता है। आपका स्वभाव शांत और सरल है।

आपने पूना, घोड़नदी, अहमदनगर, कोपरगाँव, राहुरी, वाम्वोरी, मनमाड़, नासिक, जुन्नेर, खेड़, मंचर, आदि क्षेत्रों में विचर कर जैनधर्म का खूब प्रचार किया है, । वर्त्तमान में आप कान्हूर पारनेर आदि क्षेत्रों में विचरण कर रहा हैं।

आपकी धर्मभावना आपके पुत्ररत्न को भी विरासत में मिली। वह भी दस वर्ष की उम्र में हो पूज्यश्री जवाहरलालजी म० की सेवा में दीक्षित हो गये। उनका शुभ नाम श्री श्रीमलजी म. है। वे विद्वान्, और उत्साही सन्त है। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि भाषाओ के वह पंडित है, वक्ता हैं, और प्रमुख सन्तों में गिने जाते हैं।

महासतीजी श्रीविजयकुंवरजी म०

आपका निवासस्थान करमाला (सोलापुर) था। महासतीजी श्रीरंभाजी म० से आपने दीक्षा ग्रहण की। सयम-मार्ग का ज्ञान प्राप्त करके आप तपश्चर्या की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुईं। उपवास बेला, तेला. पंचोला आदि तपश्चर्या किया करती थीं। सेवाभावना, भद्रता, शान्तता आपके विशेष गुण थे। तन-मन से आपने गुरुणीजी की सेवा की। पूना में सं० २००३ में आपने समाधियुक्त परिणामों से देहत्याग किया।

महासतीजी श्रीजयकुंवरजी म०

आपका भी निवासस्थान करमाला (सोलापुर) था। शान्त-चित्त और सरलहृदय की सती थीं। महासतीजी श्रीरंभाजी म० के

पास दीक्षा अंगीकार की। वैयावृत्य तप का प्रधान रूप से अवलम्बन लेकर आपने अपना जीवन सफल बनाया। सूत्रों का ज्ञान प्राप्त किया।

सं० १९७६ में गुरुणीजी म० की सेवा में रहकर अन्तिम समय अनशन व्रत धारण करके समभावपूर्वक आप स्वर्गवासिनी हुईं।

महासतीजी श्रीजड़ावकुंवरजी म०

अहमदनगर आपकी निवासभूमि थी। बालावस्था में आपको वैधव्य की व्यथा सहनी पड़ी। गृहस्थावस्था में ही आपकी प्रकृति वैराग्य के रंग मे रँगी हुई थी। सन्तों की संगति और उपासना कर आपने स्तवन एवं कुछ थोकड़े कंठस्थ किये थे। महासतीजी श्री-रंभाजी म० से आपने कड़ा गॉव मे साध्वी-दीक्षा ग्रहण की।

आप भद्र, सरल और शान्त प्रकृति की महासती थीं। संयममार्ग पर निरन्तर सूक्ष्म लक्ष्य रखकर विचरती थीं। कलह और क्लेश आदि से कोसो दूर रहती थीं। प्रायः गुरुणीजी म० की सेवा मे ही रहीं। सं० १९७७मे समाधिमरणपूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया।

बा० ब्र० पण्डिता महासतीजी श्रीरतनकुंवरजी म०

करजगांव आपका निवास-स्थल था। आपकी माता श्रीमती राजी बाई थी। आप चार वर्ष की अवस्था से ही अपनी माताजी के साथ महासती श्रीरंभाजी म० की सेवा में रही थीं। प्राथमिक ज्ञानाभ्यास के साथ धार्मिक ज्ञान भी प्राप्त किया। नौ वर्ष की उम्र होने पर महासतीजी से कुडगांव मे भागवती दीक्षा

ली। बाल्यकाल से ही विशुद्ध और संयममय वातावरण में रहने के कारण आपकी प्रज्ञा अति निर्मल हुई। मागधी संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू आदि भाषाओं का अभ्यास करके अच्छी पण्डिता बनीं। इन सब भाषाओं पर आपने प्रभुता प्राप्त कर ली थी। अहमदनगर मे पूज्यश्री जवाहरलालजी म० से व्याख्यान में ही आपने महत्त्वपूर्ण प्रश्न किया था। तब पूज्यश्री ने आपकी भाषाशुद्धि और विद्वत्ता का परिचय पाकर भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

खेद है कि १७ वर्ष की अल्प आयु में ही, सं० १९९७ में आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी विकासित होती हुई योग्यता को देखकर भविष्य से बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं; मगर त्रिकराल काल ने असमय में ही इस महासती रूपी महामूल्य मणि से समाज को वंचित कर दिया!

सेवाव्रतिनी महासती श्रीप्रेमकुंवरजी म०

पीपाड़ (मारवाड़) निवासी अम्बेटावंशीय ब्राह्मण पं० नारायणदासजी की धर्मपत्नी श्रीकेशरबाई के उदर से आपका जन्म हुआ। जन्मनाम पतासीबाई था। पं० सुखलालजी के पुत्र सूरजमलजी के साथ आपका विवाह हुआ था। सं० १९८० की मिति ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा रविवार के दिन बोरी शिरोली (जिला पूना) में महासती श्रीरभाजी म० से दीक्षा ग्रहण की। आपका स्वभाव बड़ा शान्त है। हृदय सरल है। सेवाभावना कूट-कूट कर भरी है। आप अपनी गुरुभगिनी श्रीआनन्दकुंवरजी म. के साथ विचरती हैं। वर्त्तमान मे कर्णाटक, रायचूर बैंगलोर आदि क्षेत्रों में विचर रही हैं। शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया है और संयम की साधना करके अपना जीवन सफल बना रही है।

महासती श्रीफूलकुंवरजी महाराज

आपका निवासस्थान मद्रास था। बरमेचा गोत्र और ओसवाल वंश था। जन्म नाम फूली बाई था। मद्रास छोड़ कर आप पूना मे रहने लगी थीं। प्रवर्तिनी महासती श्रीरंभाजी म० के सदुपदेश से, ४० वर्ष की अवस्था में सं० १९९२ के पौष मास में, पूना मे, प्रवर्तिनीजी से साध्वी दीक्षा धारण की। आप अत्यन्त भद्रपरिणाम वाली सती थीं। दीक्षा महोत्सव का खर्च स्वयं आपने ही किया था। दीक्षा के शुभ प्रसङ्ग पर करीब २५०० सौ रुपये की राशि सुकृत खाते में निकाली गई थी। आप प्रवर्तिनीजी म० की सेवा म पूना मे रहीं। पश्चात् स्थविरा महासती श्रीराजकुंवरजी म० की सेवा मे विचरीं। सं० २००८ में पूना में आपका स्वर्गवास हो गया।

महासती श्रीवसन्तकुंवरजी महाराज

आपका जन्म सं. १९७६ में आवलकुट्टी (अहमदनगर) में हुआ था। माता-पिता आदि पारिवारिक जनों की आज्ञा लेकर सं० १९९२ के फाल्गुन मास मे प० र० प्रसिद्धवक्ता श्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की और प्र० श्रीरभाजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं। दीक्षा के समय आपकी उम्र सोलह वर्ष की थी।

अल्प काल में ही आपने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। मागधी, हिन्दी भाषाएँ सीखी है। शास्त्र वाचन किया है। स्तवन आदि कठस्थ किये हैं। परन्तु अशुभ कर्म का उदय होने से संयम रूप रत्न को संभाल नहीं सकी।

पण्डिता महासती श्रीचन्द्रकुंवरजी महाराज

कड़ा (अहमदनगर) निवासी श्रीमान् नवलमलजी सिंघो की आप सुपुत्री थी। गृहस्थावस्था में आपका नाम पनी बाई था। आपका विवाह पारनेर निवासी श्रीमान् चुन्नीलालजी सिंघवी के साथ हुआ था। डेढ़ वर्ष बाद संसार का वास्तविक स्वरूप आपके सामने आ गया। आपको पतिवियोग की व्यथा का सामना करना पड़ा। परन्तु आपने भी अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य के रूप में परिणत कर लिया। आपकी ज्येष्ट भगिनी की प्रेरणा सहायक हुई। १५ वर्ष की उम्र मे ही आपने महासती श्रीरंभाजी महाराज के समीप अपनी जन्म भूमि कड़ा मे साध्वीदीक्षा अंगीकार कर ली।

दुनिया दुःख से डरती है; किन्तु कोई-कोई दुःख भी कल्याण में किस प्रकार सहायक बन जाता है, यह बात इस उदाहरण से समझी जा सकती है। हाँ, दुःख को सुख के रूप मे परिणत कर लेना जीवन की एक उत्कृष्ट और महान् कला है। जो इस कला में निपुण होते हैं, जगत् का भीषणतम दुःख भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

श्रीमती पनी बाई ने घोर अमंगल को भी मंगल रूप में परिणत करके जगत् के समक्ष एक आदर्श उदाहरण उपस्थित किया। आप पिशाच के आवेश से पीड़ित थीं, परन्तु संयम के प्रभाव से आपकी वह पीड़ा भी दूर हो गई।

आपने संस्कृत-प्राकृत हिन्दी आदि का अभ्यास करके तथा शास्त्रों का वाचन करके उच्च कोटि का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपका कण्ठ अतिशय मधुर था। व्याख्यान में जब आप भक्ति और वैराग्य के पदों का उच्चारण करती थीं तो श्रोताओ के दिल वैराग्य के रँग मे रंग जाते थे और भक्ति-रस का निर्मल स्रोत

प्रवाहित होने लगता था। जनता भाव-विभोर होकर मुग्ध हो जाती थी। आपके व्याख्यान भी अत्यन्त मधुर और प्रभावशाली होते थे।

आपके सदुपदेशों से प्रभावित होकर कितने ही जैनेतर भाइयों ने मांस, मदिरा, परस्त्रीगमन और हिंसा आदि पापों का त्याग किया था। पूना, सतारा, घोड़नदी, जुन्नेर, नाशिक मनमाड, अहमदनगर, राहुरी बाम्बोरी आदि क्षेत्रों मे तथा छोटे-छोटे ग्रामों विचर कर सत्य जैन धर्म की खूब प्रभावना की थी। मुख्य-मुख्य ऋषिसम्प्रदायी सन्तो के साथ चातुर्मास करके ज्ञान की पर्याप्त वृद्धि की थी। चार शास्त्र कठस्थ किये थे।

अन्तिम अवस्था में शारीरिक स्थिति के कारण आप दौंड (पूना) विराजती थीं। वहाँ सं. १९९३ में शुद्ध भावना के साथ आपका स्वर्गवास हुआ। आपको दो शिष्याएँ हुईं–(१) श्रीप्रभा-कुंवरजी और (२) श्रीइन्द्रकुंवरजी महाराज।

महासतीजी श्रीप्रभाकुंवरजी म०

आप सूपा पवार (अहमदनगर) की रहने वाली थीं। बालविवाह के भोषण अभिशाप का ग्रास बनीं। नौ वर्ष की अबोध अवस्था मे आपके मस्तक पर दाम्पत्य का भार लाद दिया गया। दुर्दैव से उसी वर्ष पति का वियोग हो गया। अहमदनगर-निवासी शास्त्रज्ञ श्रीमान् किसनदासजी मूथा के यहाँ आप १२ वर्ष तक रहीं। सुसंगति के प्रभाव से आपके अन्तःकरण मे परम-पद की प्राप्ति का निमित्तभूत संयम पालने की वृत्ति जागृत हुई। संसार के प्रति उदासीनता हुई। तब आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। पण्डिता महासती श्रीचन्द्रकुंवरजी म० से पूना में दीक्षा ग्रहण की। आपने

संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। थोकड़ों के विषय में अच्छी जानकारी है। कंठ मधुर है। वर्त्तमान में पंडिता महासती श्रीइन्द्रकुंवरजी म० आदि की सेवा मे अहमदनगर के निकटवर्त्ती क्षेत्रों में परिभ्रमण कर रही हैं।

प्रवर्त्तिनी पण्डिता श्रीइन्द्रकुंवरजी म०

आपकी जन्मभूमि कुडगाँव (अहमदनगर) थी। करीब ८ वर्ष की अल्प वय से पं० महासती श्रीचन्द्रकुंवरजी म० की सेवा में शिक्षण प्रीत्यर्थ रही। धर्मशास्त्र सीखा और हिन्दी तथा संस्कृत भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। आपके चित्त में विरक्ति का प्रबल भाव उदित हुआ, किन्तु परिवार के लोग अनुमति देने मे आना-कानी करने लगे। अन्ततः आपके दृढ़ मनोबल को विजय प्राप्त हुई। बड़ी कठिनाई से पारिवारिक जनों की अनुज्ञा मिली। दौंड (पूना) में उक्त सतीजी की नेश्राय मे दीक्षा ली।

पूना में ही आपका ज्ञानाभ्यास हुआ। संस्कृत और प्राकृत का ज्ञान प्राप्त करके आप विदुषी बनी। शास्त्रीय ज्ञान भी आपने अच्छा प्राप्त कर लिया है। आपका व्याख्यान प्रभावशील और रोचक होता है। अनेक भाषाओं पर आपका प्रभुत्व है।

सं० २००२ में प्रवर्त्तिनी श्रीरंभाजी म० का स्वर्गवास होने पर पूना में उस समय विराजित आत्मार्थी श्रीमोहनऋषिजी म० ठा० २ की उपस्थिति में, सतीमंडल की सम्मति से, पूना-श्रीसंघ के समक्ष आप प्रवर्त्तिनी के प्रतिष्ठित पद से विभूपित की गई। वर्त्तमान मे आप अहमदनगर के निकटवर्त्ती क्षेत्रों मे परिभ्रमण करती हुई जैनधर्म की खूब प्रभावना कर रही है और अपनी आत्मा के उत्थान में संलग्न हैं।

व्याख्यात्री महासती श्रीआनन्दकुंवरजी महाराज

आप ब्राह्मण जाति की महासती थीं। श्रीलाधूरामजी रत्नपुरी पांडेय आपके पिता का नाम था। श्रीरतन बाई की कुक्षि से इन सती रत्न ने जन्म ग्रहण किया। माघ शुक्ल ७ सोमवार सं. १९६० को आप इस भूतल पर अवतरित हुई। आपका नाम सोन बाई रक्खा गया। मालेगाँव-निवासी पं० सुकलालजी के पुत्र श्रीमुलतानमलजी के साथ आपका विवाह संबंध हुआ। पति की आज्ञा प्राप्त करके महासतीजी श्रीरंभाजी महाराज के समीप सं० १९७९ की बसन्त पंचमी के दिन आपने दीक्षा ग्रहण की। जुन्नेर मे दीक्षाविधि सम्पन्न हुई। शुद्ध खादी के वस्त्रो का ही प्रयोग किया गया। इस प्रसंग पर आपके श्वसुरपक्षीय कुटुम्बी जनों ने जीवदया के निमित्त लगभग ११००) सौ रुपयों का दान दिया था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात् आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया और थोकड़ों की भी अच्छी जानकारी की है। अपनी गुरुणीजी के साथ पृथक्-पृथक् स्थानों पर छह चातुर्मास किये। सं. १९८४ पुणतांबा मे विराजित महासती श्रीरायकुवरजी म० सख्त बीमार हो गई। चलने की शक्ति नही रही। तब आप १३ मील तक उन्हे उठाकर लाई और कोपरगांव पहुँचाने मे सफल हुई।

सत्य धर्म का प्रचार करती हुई आप सं० १९८८ मे पठानी देवलगांव (जिला बुलढाणा) पधारीं। हनुमानजी के मन्दिरमे ठहरी वहाँ श्रीघासीरामजी आदि तीन तेरहपंथी साधु आये हुए थे। वहाँ के तीन स्थानकवासी परिवार तेरहपथी बनने की तैयारी में थे। ऐन मौके पर आपका पदार्पण हो गया, जिससे वे अपने प्रयास में सफल न हो सके। महासतीजी के पधार जाने से उन्हे तथा अन्य जनता को महाराष्ट्रीय भाषा में व्याख्यानों का लाभ मिला और

सचाई प्रकट हो गई। जनता पर आपके व्याख्यानों का अच्छा असर हुआ।

गोचरी के अर्थ अटन करते समय रास्ते में तेरहपन्थी साधु मिल गये। उन्होंने आपसे कहा—हम आपसे प्रश्नोत्तर करना चाहते हैं। तब आपने फर्माया चर्चा रास्ते में नहीं, सभा में हुआ करती है। दूसरे दिन हनुमान-मन्दिर में आपका व्याख्यान हो रहा था। घासीरामजी साधु मूर्त्ति के पीछे छिप कर व्याख्यान नोट कर रहे थे। आपने देख लिया और श्रोताओं से कहा—'देख लीजिये इनकी प्रवृत्ति!' आपने दशवैकालिक सूत्र की पाँचवे अध्ययन की गाथा फरमा कर कहा—यह प्रत्यक्ष ही हमारे ज्ञान की चोरी कर रहे हैं!

बापूराव लिंगायत व्याख्यान-सभा में से उठकर देखने गये तो सचमुच ही घासीरामजी लिख रहे थे। यह देखकर श्रीबापूराव ने कहा—इस प्रकार गुप्त रीति से क्यों लिख रहे हो? सामने आइए। आपका और महासतीजी का—दोनों का भाषण होने से हम अन्य-मती श्रोताओ का भी समाधान हो जायगा! मगर वह साधु सभा में आने का साहस न कर सके। दूसरे दिन प्रभात होते ही तीनों साधुओं ने विहार कर दिया। महासतीजी एक सप्ताह वहाँ विराजीं। आपने सब के मन का समाधान किया और तेरहपंथी आम्नाय के ६ घरो को भी बाईस सम्प्रदाय की श्रद्धा दिला कर उनका उद्धार किया। वहाँ से आपने जालना-औरंगाबाद की ओर विहार किया। वास्तव में आपका यह कार्य बड़ा महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय है!

सं० १९८९ में आपका चातुर्मास कोपर गाँव में हुआ। वहाँ कार्त्तिक कृ० ८ के दिन रात्रि में ७॥ बजे आपको सर्प ने डँस लिया। मंत्र का प्रयोग न करने पर भी विषापहार छंद और भक्ता-मरस्तोत्र के ४२ वें पद्य का पाठ करने से रात्रि में ४ बजे के दस मिनिट पर आपको होश आ गया। होश में आते ही आपने प्रश्न

किया- रात्रि के समय गृहस्थ का आगमन क्यों ? उत्तर में कहा गया कि आपको सर्प ने डँस लिया है, इसी कारण यह भीड़ हो गई है। गुलाबभाई नामक एक कसाई भी उस भीड़ में मौजूद था। उसने कहा-मैं मंत्रवादी हूँ, पर किसनलालजी संघवी ने अन्दर ही नहीं आने दिया था। उस समय अमोलकचंदजी-नामक एक गृहस्थ ने कहा-महासतीजी का मनोबल और धर्म का प्रभाव भी कुछ कम नहीं है ! इस पर गुलाबभाई बोले-अब भी सतीजी मंत्र के बिना जीवित हो जाएँ तो मैं कसाईखाना छोड़ दूँ !

थोड़े ही समय के बाद सतीजी स्वस्थ हो गईं। विष का प्रभाव हट गया। अन्यमतियो पर धर्म का अच्छा प्रभाव पड़ा। सचमुच ही कसाई गुलाबभाई ने अपना धंधा छोड़ दिया। वह भूसा आदि का व्यापार करने लगे। अब भी वह मौजूद हैं !

सं० १९९० का चातुर्मास घनचर (पूना) में व्यतीत करके पूना मे विराजित श्रीरभाजा म० की सेवा में पधारीं और तीन वर्ष तक गुरुणीजी की सेवा में ही रहीं। तत्पश्चात् कल्याणी (बम्बई) में चातुर्मास करके कर्णाटक की ओर विहार किया। रायचूर, बैंग-लोर आदि क्षेत्रों में चातुर्मास करके जैनधर्म की खूब प्रभावना कर रही हैं।

आपकी पाँच शिष्याएँ हुई है, जिनमें से श्रीसज्जनकुंवरजी म० ने श्रीअमोलजैन सिद्धान्तशाला पाथर्डी में अच्छा शिक्षण लिया है। संस्कृत और प्राकृत भाषाएँ सीखी हैं तथा शास्त्रीय ज्ञान भी प्राप्त किया है। आप पण्डिता सती है।

पण्डिता महासतीजी श्रीसज्जनकुंवरजी म०

वार्शी (सोलापुर) वासी श्रीमान आनन्दरामजी चतर मूथा आपके पिता--और श्रीमती सोनाबाई माताजी थे। कार्तिक वदि ११

सं० १९७० में आप इस धराधाम पर प्रकट हुईं। जन्मनाम चन्द्र-कुंवरबाई था। चिंचवड़-निवासी श्रीबोरीदासजी संचेती के पुत्र श्री-केसरचंदजी के साथ पाणिग्रहण हुआ। अल्पकाल तक ही पति का संयोग रहा। संतों और सतियों की संगति करने से तथा उनके धार्मिक उपदेश सुनने से आपको तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हुई। आपने संसार का असार रूप समझा। सं० १९९२ की फाल्गुन वदि एका-दशी, सोमवार के दिन पं० रत्न प्र० व० श्री १००८ श्रीआनन्दऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा अंगीकार की। व्याख्यात्री महासती श्रीआनन्दकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या बनीं। दीक्षाउत्सव पूना में हुआ।

श्री अमोल जैन सिद्धान्त शाला पाथर्डी में करीब ढाई वर्ष तक पं राजधारी त्रिपाठीजी से संस्कृत, प्राकृत तथा शास्त्रों का अभ्यास करके अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। आप विदुषी महासती हैं। आपका व्याख्यान प्रभावजनक होता है। आपने प्रायः पूना, सोलापुर तथा कर्णाटक आदि क्षेत्रों मे विहार किया है। धर्म की खूब प्रभावना की है। इस समय भी आप पूना की तरफ विचर रही हैं। आपके समीप पूना में संवत् २०१२ में शांताबाई की दीक्षा हुई।

महासती श्रीशांतिकुंवरजी महाराज

आप पाना की देवलाली (अहमदनगर) निवासी श्रीधन-राजजी सिंघवी की सुपुत्री है। जाट देवला (अ० नगर) निवासी घटवाजी के यहां आपकी सुसराल थी। अल्पकाल मे ही वैधव्य प्राप्त होने से आपने सांसारिक कार्य से जीवन को मोड़कर धर्म मार्ग मे प्रवृत्ति की। महासतीजी श्रीरभाजी म. व पंडिता महासतीजी श्रीसुमतिकुंवरजी म० की सेवा मे रहकर कुछ धार्मिक अभ्यास

किया और संसार से उदासीन होकर दीक्षा लेने की भावना हुई, काल परिपक्व नहीं होने से अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई परन्तु वैराग्य का बीज नष्ट नहीं हुआ। पं. महासतीजी श्रीसज्जनकुंवरजी म० पूना पधारे, उस समय उनकी सेवा मे रहकर पुनः ज्ञानाभ्यास करने से वैराग्य का अंकुर खिल उठा। और सं. २०१२ आषाढ शुक्ल १० के दिन पूना मे पंडिता महासतीजी की नेश्राय मे आप दीक्षित हुई, और श्रीशांतिकुंवरजी नाम रक्खा गया। दीक्षा महोत्सव का सब कार्य आपकी ही रकम से आपके पिताजी तथा बंधुओं ने उत्साह पूर्वक किया। दीक्षा के शुभ प्रसंग पर सुकृत खाते मे पांच सौ रुपये निकाल कर पाथर्डी और कडाकी पारमार्थिक संस्थाओ को दिये गये। आप गुरुणीजी की सेवा मे रहकर ज्ञानाभ्यास कर रही है।

तपस्विनी महासती श्रीहर्षकुंवरजी महाराज

पूना निवासी श्रीमान् दौलतरामजी गेलड़ा की धर्म पत्नी श्रीकेसरबाई की कुक्षि से सं. १९७४ मे आपने जन्म लिया। श्रीमान् अमरचन्दजी कर्णावट, औंध (पूना) निवासी के साथ आपका विवाह-संबंध हुआ। किन्तु कुछ ही समय के पश्चात् प्रकृति ने आपको दाम्पत्य के बन्धन से छुटकारा देकर पूर्ण संयममय जीवन यापन करने का मार्ग खोल दिया। पति-वियोग से आपकी आत्मा प्रबुद्ध हुई। ससार के समस्त संयोगों को अनित्य समझ कर आपने बीस वर्ष की उम्र में महासती श्रीआनन्दकुंवरजी म० के पास दीक्षा ले ली। फाल्गुन शु० १३ सं० १९९४, सोमवार के दिन राहु पिपलगांव (पूना) में दीक्षा-समारोह हुआ। इस पावन समारोह के अवसर पर श्रीमान् बालारामजी गेलड़ा पूना-निवासी ने अढ़ाई हजार रुपयों का दान दिया था।

आप स्वभाव से अतिशय भद्र थीं। सं. २००२ का आपका

चातुर्मास गुरुणीजी के साथ कल्याण (बम्बई) में था। चातुर्मास काल मे आपने ४५ दिन की तपश्चर्या की थी जो शान्ति और समाधि के साथ सम्पन्न हुई, किन्तु उसी दिन अचानक आपका स्वर्गवास हो गया। अन्तिम समय आपके परिणाम अत्यन्त निर्मल रहे। समभाव के साथ आपने देह त्याग किया।

महासतीजी श्रीपुष्पकुंवरजी म०

आपका निवासस्थान वार्सी टाउन (सोलापुर) था। आपने स० २००० के आषाढ़ शु० ५ के दिन महासती श्रीआनन्द--कुंवरजी म० के निकट दीक्षा अंगीकार की। आपका सांसारिक नाम श्रीगोदाबाई था। पूना में रहकर आप सन्तो-सतियों की प्रायः संगति किया करती थीं। फलस्वरूप कुछ शास्त्रीय ज्ञान, थोकड़े और बोलचाल आदि का अनुभव प्राप्त कर लिया था। आप रायचूर, बैंगलोर, बागलकोट आदि क्षेत्रों में अपनी गुरुणीजी के साथ विचरी और अब भी उन्हीं के साथ विचर रही हैं। स्वभाव से शान्तिप्रिय और सरल हैं।

महासतीजी श्रीमदनकुंवरजी म०

आप नाशिक जिला के अन्तर्गत नांदूर्डी नामक ग्राम की निवासिनी थीं। महासती श्री आनन्दकुंवरजी म० के सदुपदेश से आपश्री को वैराग्य की प्राप्ति हुई। अपने पुत्र और परिवार की आज्ञा प्राप्त करके सं० २००३ मिती वैशाख विदी ७ सोमवार के दिन महासती श्रीआनन्दकुंवरजी म० के पास लासलगांव (नाशिक) में दीक्षा धारण की। आप सेवाभाविनी और विनीता सती हैं। आपने शास्त्रीय ज्ञान भी प्राप्त किया है। वर्त्तमान में आप महासती श्रीसज्जनकुंवरजी म० के साथ पूना के आसपास विचर रही हैं।

महासती श्रीवल्लभकुंवरजी महाराज

आप घाणेराव–सादड़ी (मारवाड़) की निवासिनी थीं। सादड़ी में ही आपका विवाह-सबंध हुआ। धर्म भाव से प्रेरित होकर आपने संयम-पालन करने का संकल्प किया। पतिदेव और सासूजी श्रीलालीबाई की अनुमति लेकर माघ वदि १२ सं. २००६, सोमवार ता० १६-१-५० के दिन बागलकोट मे महासतीजी श्रीआनन्दकुंवरजी म० के पास दीक्षा अंगीकार की। आपका नाम श्रीवल्लभकुंवरजी रक्खा गया।

साधु-क्रिया संबंधी ज्ञान प्राप्त करके आपने दीक्षा ली है और अब भी ज्ञानाभ्यास का क्रम चालू है। वर्त्तमान मे कर्णाटक प्रान्त में गुरुणीजी के साथ विचर रही है।

प्रभाविका महासती श्रीसोनाजी महाराज

जावद मालवा-मंडल के अन्तर्गत छोटा सा कस्बा है, तथापि स्थानकवासी जैन इतिहास के अनेक पृष्ठों के साथ उसका गहरा सबंध है। इसी जावद मे श्रीमान् ओंकारजी नामक श्रावक रहते थे। उनकी धर्म पत्नी का नाम रोडी बाई था। इन्हीं के उदर से आपका जन्म हुआ। सं० १६०० में, तरुणावस्था में महाभाग्यशालिनी महासती श्रीलछमाजी महाराज की वैराग्यमयी वाणी श्रवण करके आपके अन्तःकरण मे वैराग्य का बीजारोपण हुआ। सं. १६२५ में, पीपलोदा में, महासतीजी श्रीलछमाजी म० के समीप उत्कृष्ट वैराग्य से दीक्षा ग्रहण की थी। शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करने में आपने प्रशंसनीय परिश्रम किया था। व्याख्यान प्रभावशाली था। शान्त, गंभीर और विदुषी महासती थीं।

छोटे-छोटे ग्रामों तथा नगरों मे आपने खूब विचरण किया। अनेक भव्य जीवो को भगवान् की वाणी का श्रवण कराकर धर्म में दृढ़ किया। ३१ वर्ष तक संयम का पालन किया।

सं. १९५६ में आपका चातुर्मास प्रतापगढ़ में था। अपनी शारीरिक स्थिति को देख कर प्रतापगढ़ की महारानीजी की आज्ञा लेकर अंतिम समय में संथारा ग्रहण किया और समाधिपूर्वक आयु पूर्ण करके स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

आपकी ग्यारह शिष्याएँ हुईं, जिनमें से पाँच के नाम उपलब्ध हो सके हैं:—(१) श्रीकासाजी म० (२) श्रीचम्पाजी म० (३) श्री बड़े हमीराजी म० (४) श्रीप्याराजी म० और (५) श्रीछोटे हमीराजी महाराज।

महासती श्री छोटे हमीराजी महाराज

आप भाग्यशालिनी महासती श्रीलछमाजी म० की प्रशिष्या और प्रभाविका महासतीजी श्रीसोनाजी म० की शिष्या थीं। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल और निरभिमान था। अपनी नेश्राय में शिष्या बनाने का आपने त्याग कर दिया था। साथ रहने वाली सतियों के प्रति व्यवहार अतिशय विनम्रतापूर्ण होता था। श्रुत-चारित्र धर्म की तरफ पूर्ण लक्ष्य रहता था।

सं. १९८९ में पं. र. श्री आनन्दऋषिजी म० का चातुर्मास प्रतापगढ़ में था। उस समय आपकी सेवा में श्रीसरदाराजी म०, श्रीइन्द्रकुंवरजी म०, श्रीसुन्दरकुंवरजी म० ठा० ३ थे। शारीरिक क्षीणता के कारण आप अठारह वर्ष तक प्रतापगढ़ में विराजी, परन्तु आपके आचार-विचार एवं व्यवहार से जनता बहुत प्रसन्न थी। आपके प्रति सभी के अन्तःकरण में श्रद्धा भक्ति थी।

मालवा-प्रान्तीय ऋषि सम्प्रदायी महासतियों का सम्मेलन प्रतापगढ़ में होना निश्चित हुआ था। अतएव पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म., तपस्वीराज श्रीदेवऋषिजी म., तथा पं. र. श्रीआनन्द ऋषिजी म. आदि १६ सन्त वहां पधारे थे। प्रमुख महासतियां भी, प्र. श्रीकस्तूराजी म, प्र. पण्डिता श्री रतनकुंवरजी म., प्र. श्रीहगामा जी म., श्रीसिरेकुंवरजी म, श्री अमृतकुंवरजी म. आदि पधारी थी। करीब ४० सतियाँ उपस्थित थीं। सती सम्मेलन का कार्य शांति और आनन्द के साथ सम्पन्न हुआ।

अपने शरीर की नाजुक हालत देख कर आपने चतुर्विध श्रीसंघ की साक्षी से सं० १९८९ की पौष शु. ४ को तेले के उपवास का पारणा करके यावज्जीवन अनशन व्रत (संथारा) अङ्गीकार कर लिया। अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक आप समाधि मे लीन रहीं। आयु पूर्ण करके स्वर्गवासिनी बनीं। एक दिन का संथारा आया।

प्रतापगढ़-श्रीसंघ ने समारोह के साथ अन्तिम क्रिया की। उस समय आश्चर्य की बात यह हुई कि आपकी मुखवस्त्रिका को चिता को भयानक और लपलपाती हुई ज्वालाएँ भी न जला सकीं। श्रावकों ने मुखवस्त्रिका बाहर निकाली और देखा कि उस पर सिर्फ थोड़ी-सी काली झाई आई है! कठोर अस्थियों को भी जिसने भस्म के रूप मे परिणत कर दिया, वही अग्नि जब वस्त्र-खड को न जला सकी तो श्रावको के विस्मय विमिश्रित हर्ष का पार न रहा!

मुखवस्त्रिका का डोरा, जो दूर गिर गया था, महतर को मिला। श्रावको ने सौ दो सौ रुपये का लोभ देकर वह डोरा लेने का बहुत प्रयत्न किया। पर महतर ने कह दिया—आप इसे लेकर क्या करेंगे? आखिर सँभाल कर रख लेंगे न? तो मै भी इसे सँभाल लूंगा। महासतीजी की यह अन्तिम प्रसादी मेरे पास ही

रहेगी। सुना है, आज वह मेहतर बड़े मजे में है । उसकी दशा भी सुधर गई है !

संथारे के अवसर पर महान् प्रमुख सन्तों की और बहुसंख्यक प्रधान सतियों की उपस्थिति रही, यह इन महासतीजी के प्रबल पुण्य के परिपाक का द्योतक है !

महाभागा प्रभाविका श्रीकासाजी महाराज

मन्दसौर में आपने जन्म ग्रहण किया। पिता का नाम श्री तिलोकचन्दजी और माता का नाम श्रीजोताबाई था। महासती श्री सोनाजी म० के मुखारविन्द से सद्बोध पाकर तरुण अवस्था में, विद्यमान वैभव को तृण की तरह त्याग कर, परम संवेग के साथ आपने गृहत्याग कर दिया। महासतीजी के समीप साध्वी दीक्षा अंगीकार की। विनयशीलता आपकी सराहनीय थी। अतएव दीक्षा लेने के बाद अल्पकाल में ही आपने शास्त्रों का बोध प्राप्त कर लिया और पण्डिता बनी। जहां विनय और ज्ञान का समन्वय होता है, वहां अन्यान्य गुण स्वय आ रहते है । अतएव आप अनेक गुणों से अलंकृत हुईं।

आपका हृदय उदार और दयालु था। अपनी चित्तवृत्ति का संतुलन रखने की आपमे अद्भुत क्षमता थी। सब सतियों पर समान रूप से आपकी प्रीति थी। इस कारण सतियों पर आपका विशेष प्रभाव पड़ता थो। उस समय विचरने वाली करीब ४० सतियाँ आपके साथ एक ही मांडले पर आहार-पानी करती थीं। वाणी मे बड़ी मधुरता थी। आप बोलती तो ऐसा लगता, मानों फूल झर रहे हों !

महासतीजी का आचार उच्च कोटि का था। संवर और निर्जरा के साधनों में सदैव तन्मय रहती थीं। नाना प्रकार की तपस्या करती थीं। अल्प से अल्प उपधि से संयम-यात्रा का सम्यक् प्रकार से निर्वाह करती थीं। हित, मित और पथ्य वचन बोलती थीं। सारांश यह है कि आपकी जीवनवृत्ति उत्कृष्ट संयम-शीलता का प्रत्यक्ष निदर्शन थी।

आपके व्याख्यान सुनकर श्रोता मुग्ध हो जाते थे। शास्त्र के रहस्य को नाना प्रकार से समझाने की आपमें अपूर्व दक्षता थी। आपने मालवा, मेवाड़ बरमड़ आदि प्रान्तो में विचर कर अनेक भव्य जीवो को प्रतिबोध देकर सन्मार्ग से लगाया है।

विचरती-विचरती सं० १९७५ में आप जन्मभूमि पधारीं। वहाँ आपने शरीर की अनित्यता जानकर श्रीसंघ की साक्षी से संथारा ग्रहण किया। दो पहर का संथारा आया। समाधियुक्त भाव से आयुष्य पूर्ण करके स्वर्ग-गमन किया! कौन जाने किस प्रकार आपके अन्तःकरण मे अन्त समय जन्मभूमि में पदार्पण करने की प्रेरणा उत्पन्न हुई?

आपकी शिष्याओ में श्रीमथुराजी म० घोर तपस्विनी थीं। श्रीसरसाजी म० वैयावच्ची थे। प्र० श्रीकस्तूराजी म० सरलस्वभावा महासतीजी थे और प्र० श्रीहगामकुंवरजी वर्त्तमान में मालव प्रांत में विचरती है।

महासती श्रीफूलकुंवरजी महाराज

मालवा प्रान्त के गीरवी ग्राम मे आपका जन्म हुआ। श्रीमान् बालचन्दजी आपके पति थे। २५ वर्ष की तरुणावस्था में

महामुनि श्रीदौलतऋषिजी म० के मुखारविन्द से आपको दीक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महासती श्रीसरसाजी महाराज की नेश्राय में शिष्या बनीं। सं० १९७१ के फाल्गुन मास में आपकी दीक्षा हुई।

महासतीजी ने हिन्दी भाषा और शास्त्रों का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। आप सुन्दर ढङ्ग से व्याख्यान फर्माती थीं। मालवा आदि प्रान्तों मे विचरण किया। वि० सं० १९९२, मि० आषाढ़ शु० ११ के दिन प्रतापगढ़ मे आपका स्वर्गवास हो गया।

प्रवर्त्तिनी श्रीहगामकुंवरजी महाराज

आपकी जन्म भूमि प्रतापगढ़ थी। श्रीमान् माणकचन्दजी कडालिया की पुत्री और उनकी धर्मपत्नी श्रीअमृतबाई की आत्मजा थीं। सालोद निवासी श्रीमान् गुलाबचन्दजी कोठारी के साथ आपका पाणिग्रहण हुआ। अल्प काल तक ही आपका सांसारिक सौभाग्य कायम रहा। सांसारिक सौभाग्य छिन जाने पर आपने उस अनन्त और अक्षय सौभाग्य को प्राप्त करने का सकल्प किया, जिसे विश्व की कोई भी शक्ति कदापि नहीं छीन सकती। प्रभाविका महासती श्रीकासाजी महाराज का सदुपदेश श्रवण कर आपने संयम की आराधना करने का निश्चय किया। फाल्गुन शु० ३, सं० १९६० मे, प्रतापगढ़ मे, बड़े ही उत्साह के साथ अपनी प्रबोधदात्री महासतीजी से दीक्षा ग्रहण कर ली।

आपका शास्त्रीय ज्ञान अच्छा है। प्रकृति भद्रतापूर्ण है। हृदय उसी प्रकार सरल है, जैसा संतों-सतियो को शोभा देता है।

मालव, मेवाड़ वागड़, वरार, मध्यप्रदेश, झाड़ी जिला आदि मे आपने खूब भ्रमण किया है और जैन धर्म की अच्छी प्रभावना की है। जहाँ जैन धर्म का श्रद्धालु श्रावकवर्ग है, वहाँ विचरने मे विशेष कठिनाई नहीं होती, किन्तु जहाँ उपासक और भक्त अनुयायी न हो, उन क्षेत्रो मे विहार करना कष्टसाध्य होता है। ऋषिसम्प्रदाय के सन्तो ने कष्ट सहन करके अनेक क्षेत्रो को खोला है। जहाँ एक भी अनुयायी नहीं था या अत्यल्प संख्या मे नाम मात्र के अनुयायी थे, वहाँ वे उत्साह और धैर्य के साथ पहुँचे। नाना प्रकार के उपसर्ग सहन किये और वहाँ अपनी योग्यता के बल पर सहस्रो श्रावक बनाये। मगर यह परम्परा सन्तो तक ही सीमित नहीं रही। ऋषिसम्प्रदायी सतियाँ भी उन महान् सन्तो के चरणचिह्नो पर चली है, जिनमे श्रीहगामकुंवरजी म० भी एक है। सी० पी० और झाड़ी प्रान्त के जिन क्षेत्रो म सन्तो-सतियो का आवागमन नहीं होता था उनमे भी आपने पदार्पण किया और जिनवाणी का जयघोष-उपदेश-करके अनेक भव्य जीवो को धर्म के मार्ग पर लगाया। ऐसा करने मे आपको अनेक बार अनेक परीषह सहने पड़े, किन्तु आपका उत्साह कम नहीं हुआ। आप अपने ध्येय पर अटल रही और उग्र विहार करके नवीन-नवीन क्षेत्रो को पावन करती रही।

आपकी योग्यता देखकर प्रतापगढ़ के सं० १९८७ के ऋषि-संप्रदायी सती सम्मेलन में आप प्रवर्त्तिनी पद से अलकृत की गई। वर्त्तमान में आप मालवा प्रान्त में विचरण कर रही है।

आपको नौ शिष्याएँ हुई। उनमे से महासती श्रीजानकुंवरजी म० छोटी अवस्था में ही दीक्षित हुई थीं। उन्होंने परिश्रम करके अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था; किन्तु अल्पायु में ही उनका

स्वर्गवास हो गया। वर्त्तमान में श्रीसुन्दरकुंवरजी म० प्रभाविका सती हैं।

महासतीजी श्रीनजरकुंवरजी म०

नारायणगढ़ (मेवाड़) निवासी श्रीमनसारामजी छोगावत की धर्मपत्नी श्रीसरदारबाई की कुक्षि से आपने जन्म ग्रहण किया था। धमोत्तर के श्रीख्यालीलालजी-आपके पति थे। बीस वर्ष की अवस्था में सं० १९६० की फाल्गुन शु० ३-४ के दिन महासती श्री-कासाजी म० के मुखारविन्द से प्रतापगढ़ मे दीक्षा धारण की और श्रीहगामकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई।

आपने अच्छा शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया था। मालवा, मध्यप्रदेश, बरार आपकी प्रधान विहारभूमि रही।

महासतीजी श्रीछोटे हगामकुंवरजी म०

आपका जन्मस्थान भिंडर (मेवाड़) है। आपके पिता श्री-रामलालजी नरसिहपुरा थे। माता का नाम केशरीबाई था। कुंता (मेवाड़) निवासी श्रीलाभचंदजी-गन्नोर के साथ आपका दाम्पत्य संबंध स्थापित हुआ। २२ वर्ष की अल्पायु मे ही महासती श्रीहमी-राजी म० के पास सं० १९६५ की मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् के दिन धरियावद मे आपने दीक्षा ली।

आपने शास्त्रों का अभ्यास किया है और नियम, त्याग आदि की ओर विशेष अभिरुचि रक्खी है। महासती श्रीहगाम-कुंवरजी महाराज के साथ मालवा, मध्यप्रदेश और बरार आदि में विचरे है।

महासती श्रीकेसरजी महाराज

आपका जन्म सीतामऊ मे हुआ। आपके पिता श्रीनादरजी ब्राह्मण थे। माता का नाम एवन्ताबाई था। ब्राह्मण-परिवार में, जैन परम्परा मे प्रसिद्ध 'एवंता' नाम का संयोग अनोखा-सा मालूम होता है; किन्तु संसार में ऐसी भी घटनाएँ होती हैं, जिनका कार्य-कारण भाव समझना सर्वसाधारण के लिए सरल नहीं होता। श्रीएवंता बाई की सुपुत्री आगे चल कर एवन्ता मुनि की परम्परा में ही दीक्षित होकर साध्वी बनीं, इसे प्रकृति का दुर्ज्ञेय रहस्य ही समझना चाहिए।

आप ३२ वर्ष की वय में महाभाग्यशालिनी श्रीकासाजी महाराज के मुखारविन्द से भावगढ़ मे, सं० १६७१ की ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन दीक्षित होकर हगामकुंवरजी म. की नेश्राय में शिष्या बनीं। शास्त्रो का अभ्यास करके आपने अच्छा तत्त्वज्ञान प्राप्त किया था। गुरुणीजी महाराज की सेवा में रहकर आपने मालवा और मध्यप्रदेश आदि प्रान्तों में विचरण किया।

महासती श्रीहुलासकुंवरजी महाराज

आपने रामपुरा (मालवा) में जन्म ग्रहण किया। पिता का नाम श्रीऋषभचंद्रजी श्रीमाल था। श्रीराधा बाई की आत्मजा हैं। आपका विवाह-संबंध छावनी पाटन-निवासी श्रीभंवरलालजी धनवाड़ीया के साथ हुआ था। २१ वर्ष की उम्र में दीक्षा धारण की। मेवाड़ प्रान्त के बाड़ी विनोता ग्राम में माघ शुक्ला १२, सोमवार के दिन महासती श्रीकासाजी महाराज के मुखारविन्द से दीक्षा हुई। और श्रीहगामकुवरजी म की नेश्राय मे शिष्या हुई। आपने मालवा और मध्यप्रदेश आदि क्षेत्रो मे विचरण किया है। ज्ञानाभ्यास भी अच्छा किया है।

महासती श्रीकस्तूराजी महाराज

मालवा प्रान्त के अन्तर्गत कचनारा निवासी श्रीमान् हरीरामजी की धर्मपत्नी श्रीइंदिराबाई की कूंख से आपका जन्म हुआ। रेठाना निवासी श्रीयुत् पन्नालालजी बंबोरिया के साथ आप दाम्पत्य ग्रन्थि में आबद्ध हुईं। तीस वर्ष की आयु में सं० १९७१ की माघ वदि १२ के दिन महासती श्रीकासाजी म० के मुखारविन्द से अमरावध (मालवा) में दीक्षा ग्रहण की और महासतीजी श्री हगामकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं।

आपने आगमों का अभ्यास करके तत्त्वज्ञान प्राप्त किया था। आपने मालवा बरार मध्यप्रदेश में विचरण किया। मार्गशीर्ष शु. ३, सं० १९९५ में नागपुर में आपका स्वर्गवास हुआ।

महासती श्रीदाखाजी महाराज

मन्दसौर (मालवा) में आपका जन्म हुआ। पामेचा गोत्रीया श्रीमती सनगारबाई की कुक्षि को आपने पावन किया। नीमच छावनी निवासी श्रीकेसरीमलजी कांठेड़ के साथ विवाह हुआ था।

आपने १९ वर्ष की अल्पायु में ही सं० १९७३ की मार्गशीर्ष कृ० प्रतिपद् के दिन महासतीजी श्री हगाकुंवरजी म० के निकट नीमच में दीक्षा अंगीकार की। दीक्षित होने के पश्चात् शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। किन्तु समाज के दुर्भाग्य से सं० १९७७ की ज्येष्ठ शु० ११ को ही वाड़ी गाम में आपका असामयिक स्वर्गवास हो गया।

बालब्रह्मचारिणी महासती श्रीजानकुंवरजी महाराज

आपकी जन्मभूमि धरियावद (मालवा)। पिता श्रीमान् ताराचन्दजी कोठारी, और माता का नाम श्री हुलासाबाई था।

दस वर्ष की अल्प आयु मे, कुन्था नामक ग्राम में सं० १९९१, माघ शु० चतुर्थी, गुरुवार के दिन, मुनिश्री मनसुखऋषिजी म० के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की। प्रवर्त्तिनी श्रीहगामकुंवरजी महाराज की नेश्राय में शिष्या हुईं।

आपकी बुद्धि निर्मल तथा तीव्र थी। दो वर्ष जितने थोड़े से समय में संस्कृत, गुजराती और हिन्दी का अभ्यास किया। शास्त्रीय ज्ञान भी कुछ प्राप्त किया था। आप भविष्य मे चमकने वाली सती थी। बड़ी होनहार प्रतीत होती थीं, किन्तु सं० १९९४ का आषाढ़ शु० प्रतिपद् को भण्डारा (मध्यप्रदेश) में आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी श्रीमगनकुंवरजी म० एक शिष्या हुईं है। मालवा, मध्यप्रदेश और बरार मे आपका विचरण हुआ।

महासती श्रीमगनकुंवरजी महाराज

पीपाड़ (मारवाड़) निवासी श्रीमान् हस्तीमलजी भण्डारी आपके पिताश्री थे। उनकी धर्मपत्नी श्रीरतनबाई की कुक्षि से आपने जन्म ग्रहण किया है। हींगनघाट में आपका श्वसुरगृह था। श्रीशोभाचन्दजी गांधी के साथ विवाह-सम्बन्ध हुआ था। ४२ वर्ष की उम्र मे, मार्गशीर्ष शु० १५, सं० १९९२ मे, हींगनघाट मे ही, पूज्य श्रीदेवऋषिजी म० के मुखारविन्द से आपकी दीक्षा हुई और

महासती श्रीजानकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं। गुरुणीजी म० का समागम अत्यल्प समय तक ही रहा। वर्त्तमान मे आप प्रवर्त्तिनी श्रीहगामकुंवरजी म० की सेवा में विचर रही हैं।

महासती श्रीसुन्दरकुंवरजी महाराज

बालाघाट (म० प्र०) में श्रीफौजराजजी वाघरेचा की धर्मपत्नी श्रीबदाबाई की कुत्ति से सं० १९८१ आश्विन कृष्णा १ के दिन आपका जन्म हुआ। सं० १९९४ में आपका विवाह कटंगी निवासी श्रीदीपचन्दजी कोचर के साथ हुआ था। विवाह के नौ मास पश्चात् ही आपके पतिदेव का आकस्मिक देहावसान हो गया। इस आकस्मिक घटना से आपको तीव्र आघात लगा और आपका मन संसारसे उदासीन होगया। आपने दीक्षा धारण करनेका निश्चय किया। माता-पिता बन्धु तथा ससुराल पक्ष वालों ने १००००) रु. का प्रलोभन दिखाया परंतु आप पर उसका कोई असर नहीं हुआ। इनके ज्येष्ठ बन्धु चुन्नीलालजी के प्रयत्न से तपस्वीराय पूज्यश्री देवजीऋषिजी म० के मुखारविन्द से सं. १९९९ के वैसाख वदी १० को नागपुर में पूज्यश्री हगामकुंवरजी म० के नेश्राय में आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। आप शान्त सरल और सेवाभाविनी हैं।

महासती श्रीनन्दकुंवरजी महाराज

आपका जन्म चिचौंड़ी (पटेल) निवासी श्रीसोहनलालजी चोरड़िया की धर्मपत्नी नवलबाई की कुक्षि से सं० १९७२ में हुआ। आपका विवाह सं. १९८३ में चाँदा (सी. पी.) निवासी श्रीदलीचन्दजी गाँधी के साथ हुआ। सात वर्ष तक सौभाग्य रहा। सं० २००५ आषाढ़ सुदी २ को चाँदा के प्रवर्तिनी श्रीहगामकुंवरजी म० की नेश्राय मे आपने दीक्षा धारण की। आप गुरुणीजी म० की सेवा में तत्पर रहती हैं।

स्थविरा प्रवर्त्तिनी श्रीकस्तूराजी महाराज

आपके पिता श्रीलक्ष्मीचंदजी पोरवाड़ गरोठ (मालवा) में रहते थे। माताजी का नाम श्रीमती चन्दनबाई था। माघ शुक्ल तृतीया वि० सं० १९२३ मे आपका विवाह-संबंध हुआ।

आषाढ़ शुक्ल १२, सं० १९४९ के शुभ मुहूर्त्त में शाजापुर (मालवा) में प्रभाविका महासती श्रीकासाजी म. के समीप आपने दीक्षा ग्रहण की। आप अत्यन्त ही सरल स्वभाव की सती थीं। आपके अन्तःकरण से अपार करुणा का अजस्र प्रवाह प्रवाहित होता रहा था। स्वयं शान्ति के निर्मल सरोवर में निमग्न रहते थे और आसपास वालो को भी शान्ति प्रदान करते थे। भद्रता और भव्यता, शिष्टता और शालीनता आपके प्रत्येक व्यवहार से टपकती थी।

आपके चारित्र में उज्ज्वलता थी। ज्ञानाभ्यास मे परिश्रम करके शास्त्रो का अच्छा बोध किया था।

मालवा, मेवाड़, मध्यप्रदेश, वागड़, बरार आदि प्रान्तों में बड़े और छोटे क्षेत्रों को पावन करके आपने धर्म की खूब प्रभावना की थी। अन्तिम अवस्था में, विहार की शक्ति न रहने पर आपने प्रतापगढ़ में स्थिरवास किया। सं० १९८९ में प्रतापगढ़-सतीसम्मेलन में आप प्रवर्त्तिनी के पद पर प्रतिष्ठित की गईं।

सं० २००८ के चातुर्मास में प्रवर्त्तिनी श्रीहगामकुंवरजी महाराज, पण्डिता श्रीसिरेकुंवरजी महाराज आदि ठा० ७ प्रतापगढ़ में विराजमान थे। कार्तिक वदि ६ के दिन श्रीसंघ की साक्षी से आपने संथारा ग्रहण किया। दो दिन का संथारा आया। कार्त्तिक

वदि ८ के दिन समाधिमय समभाव के साथ आयुष्य पूर्ण करके स्वर्गप्रयाण किया।

आपकी तीन शिष्याएँ हुईं—(१) श्रीजड़ावकुंवरजी म० (२) श्रीइन्द्रकुंवरजी म० और (३) श्रीनजरकुंवरजी म०।

महासती श्रीजड़ावकुंवरजी महाराज

कानवन (जिला धार) निवासी श्रीमान् नन्दूलालजी की धर्मपत्नी श्रीमती मोतीबाई के उदर से एक कन्या का जन्म हुआ। वही कन्या आगे चल कर श्रीजड़ावकुंवरजी म० के नाम से प्रसिद्ध हुई। श्रावण शु० ६ बुधवार सं० १९४० के दिन आपका जन्म हुआ था। यथा समय नागदा (धार) निवासी श्रीमान् गंभीरमलजी नाहर के सुपुत्र श्रीलक्ष्मीचंदजी के साथ पाणिग्रहण-संबंध हुआ। आपको एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, जिनका नाम श्रीधन्नालालजी (सज्जनलालजी) था।

प्रत्येक मनुष्य में, चाहे वह नर हो या नारी, धार्मिकता के कम-बद अंश विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक आत्मा अपने सहज स्वभाव की ओर झुकने की परिणति वाला होता है; किन्तु अनुकूल निमित्त न मिलने से और प्रतिकूल कारण मिल जाने से उसकी गति विरुद्ध दिशा में हो जाती है। जिन सौभाग्यशाली व्यक्तियों को अनुकूल बाह्य-आभ्यन्तर निमित्त मिल जाते हैं, वे आत्मस्वरूप की ओर आकर्षित होते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए साधना का मार्ग अङ्गीकार कर लेते हैं। उन कारणों में सत्संगति प्रधान कारण है। सन्त जनों का समागम अचिन्त्य फल प्रदान करता है। श्रीजड़ावकुंवरजी के पुण्य के उदय से उन्हें सत्समागम मिला। सत्समागम से मोह की तीव्रता कम हुई, रागभाव में न्यूनता आई

और संसार के दारुण स्वरूप को समझ लेने से विरक्ति की उत्पत्ति हुई। आपने संयम के पथ पर चलने का निर्णय किया। पर परिवार के लोग आपका मोह त्यागने को तैयार न हुए। अनेक प्रकार से समझाने-बुझाने पर भी आपको दीक्षा की आज्ञा नहीं दी।

भोगों को भुजंग और विषयो को विष समझने वाला आखिर कब तक गृहस्थी के दलदल मे फँसा रह सकता है? जब आज्ञा न मिली तो आपने साध्वी-दीक्षा न लेकर भी साध्वी सरीखा आचार अपना लिया। पाँच वर्ष तक संवर (षट्काया दया) की स्थिति मे रहीं। केशलोच भी अपने हाथों से करतीं। परिवार-जनों ने तरह-तरह से प्रलोभन, दिये, मगर आपके चित्त पर उनका लेश भी प्रभाव नहीं पड़ा। दीक्षा लेना आपका दृढ़ और निश्चल संकल्प था। इस संकल्प के कारण विराग ने राग पर विजय प्राप्त की। राग को त्याग ने पछाड़ दिया। आखिर पचीस वर्ष की तरुणावस्था मे आप दीक्षा लेने में सफल हो सकीं। पीपलोदा में पं. मुनिश्री-भैरोंऋषिजी म के मुखारविन्द से आपने दीक्षा ग्रहण की। मार्गशीर्ष शु० ११ बुधवार के दिन दीक्षा सम्पन्न हुई। महासती श्रीकस्तूरांजी महाराज की नेश्राय में शिष्या हुईं।

आप शान्ति, सरलता, विनम्रता और भद्रता की मूर्त्ति थीं। पण्डिता थीं। आपका व्याख्यान मधुर और प्रभावक होता था। आपने मालवा, मेवाड़ आदि प्रान्तों में विचर कर धर्म की खूब प्रभावना की है।

श्रावण शु० ६ सं० १६७६ में प्रतापगढ़ में अपने मुख से ही संथारा ग्रहण किया। समभाव के सरोवर में अवगाहन करती हुई, चार शरण को अंगीकार करके, आपकी आत्मा इस नश्वर और जीर्ण शरीर का परित्याग करके इस भव से विमुक्त हुईं।

आपकी तीन शिष्याएँ हुई थीं। १ श्री मानकुंवरजी म० २ श्रीबरू-जूजी म० ३ श्रीअमृतकुंवरजी म०।

महासतीजी श्रीइन्द्रकुंवरजी म०

मन्दसौर-निवासी श्रीमान् चम्पालालजी छाजेड़ की धर्मपत्नी श्रीसरदारबाई की कुक्षि से आपका जन्म सं० १९४२ में हुआ। मन्दसौर-निवासी श्रीमान् देवीलालजी नाहर के साथ विवाह-संबंध हुआ था। प्रतापगढ़ मे विराजमान पंडिता महासती श्रीकासाजी म० तथा श्रीकस्तूराजी म० आदि सतियों के सदुपदेश से आपको वैराग्य प्राप्त हुआ। १९ वर्ष की उम्र में, पौष वदि ४ सं० १९६० के दिन महासती श्रीकासाजी म० के मुखारविन्द से दीक्षाग्रहण की। महासतीजी श्रीकस्तूराजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं। आपने शास्त्र का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। प्रकृति में शान्तिप्रियता थी। सन्तों और सतियों के प्रति धार्मिक वात्सल्यभाव आदर्श था। आपने मालवा, मध्यप्रदेश, विदर्भ और खानदेश आदि प्रान्तों में विचरण करके धर्म का प्रचार किया है। मध्यप्रदेश मे ही आपका स्वर्गवास हुआ। श्रीदौलतकुंवरजी आपकी शिष्या हुईं।

महासतीजी श्रीदौलतकुंवरजी म०

बड़वा (जिला धार) निवासी श्रीचुन्नीलालजी कंदोई आपके पिताश्री थे। माता का नाम श्रीरुक्माबाई था। कार्त्तिक वदि ११ संवत् १९५८ मे आपका जन्म हुआ। आपका विवाह प्रतापगढ़ निवासी श्रीकालूरामजी कंदोई के साथ हुआ था।

मार्गशीर्ष शु० ५ सं० १९९० में महासती श्रीइन्द्रकुंवरजी म० के समीप मंदसौर मे पं. रत्न मुनिश्री आनंदऋषिजी म० के

मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की थी। हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। साधारण शास्त्रीय ज्ञान भी था। प्रकृति में सरलता थी। मालवा, बरार, मध्यप्रदेश, खानदेश आदि प्रान्तों मे अपनी गुरुणी श्रीइन्द्रकुंवरजी म० के साथ विचरण किया है। छोटे-छोटे ग्रामों को भी स्पर्श करके धर्म की प्रभावना की है।

कार्तिक वदि १४ सं० २००० में यवतमाल में आपका स्वर्गवास हुआ है। आपकी दो शिष्याएँ हुईं—श्रीहुलासकुंवर म० तथा श्रीगुलाबकुंवरजी म०।

महासती श्रीगुलाबकुंवरजी महाराज

आप रालेगाँव (बरार) की निवासिनी थीं। पिता श्रीरतनचन्दजी सिंघी और माताजी श्रीमती लाड़बाई थीं। मार्गशीर्ष शु. १४ स० १९५८ मे आपका जन्म हुआ। यथा समय विवाह हुआ।

सं० १९९८ की मार्गशीर्ष शु० ५ के दिन स्थविरा प्रवर्तिनीजी श्रीकस्तूराजी म०, महासती श्रीइन्द्रकुंवरजी म० के समीप दीक्षा ग्रहण की और महासती श्रीदौलतकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई। आपने साधारण शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया है। हिन्दी का अभ्यास किया है। बोल-थोकड़ा आदि सीखे हैं। गुरुणी महाराज की सेवा में रहकर आपने अच्छी सेवा की है। वर्त्तमान मे आप पं महासती श्रीसिरेकुंवरजी म० की सेवा में विचर रही हैं। मध्यप्रदेश, मालवा, विदर्भ और खानदेश आदि प्रान्त आपकी मुख्य विहार भूमि हैं।

महासती श्रीहुलासकुंवरजी महाराज

सं० १९६७ चैत्र वदि ३ के दिन चांदूर बाजार (बरार) में

आपका जन्म हुआ। श्रीदीपचन्दजी कांकरिया आपके पिताश्री थे। आपने श्रीमती सिरेकुंवरबाई की कुक्षि को पावन किया था। गोंदिया (मध्यप्रदेश) निवासी श्रीयुत मिश्रीलालजी चोरड़िया के साथ आपका विवाह-संबंध स्थापित हुआ था।

महासती श्रीइन्द्रकुंवरजी म० की सत्संगति प्राप्त करने से आपके अन्तःकरण मे आत्मकल्याण को पुनीत भावना जागृत हुई। पूज्यश्री आनन्दऋषिजी म. ठा. ५ का सं. २००१ का चातुर्मास जालना मे था। आपने जालना पहुँच कर पूज्यश्री से दीक्षा की अनुमति प्राप्त की। साथ ही निवेदन किया कि आपश्री के पावन सान्निध्य में और आपश्री के मुखारविन्द से ही दीक्षा ग्रहण करने की मेरी अभिलाषा है कृपा करके मेरी इस अभिलाषा की पूर्त्ति भी कीजिए।

दयार्द्र हृदय पूज्यश्री श्रद्धा-भक्ति प्रेरित इस प्रार्थना को टाल न सके। अतएव चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् पूज्यश्री यवतमाल (बरार) पधारे। वहीं माघ शु० ६ सं० २००१ में आपकी दीक्षा हुई। आप महासती श्रीदौलतकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई। दीक्षा प्रसंग पर स्थविरा प्रवर्त्तिनीजी श्री हगामकुंवरजी म०, महासतीजी श्री इन्द्रकुंवरजी म०, श्री सिरेकुंवरजी म० कोटा सम्प्रदाय के श्रीबिरदीकुंवरजी म० आदि ठाणों से बिराजते थे।

आपकी दीक्षा के अवसर पर शास्त्रज्ञ सुश्रावक श्रीमान् तारा-चंदजी सुराणा, और यवतमाल-श्रीसंघ ने बड़े हर्ष एवं उल्लास के साथ सेवा का लाभ उठाया। आगत साधर्मी भाइयों-बाइयों का यथोचित सत्कार किया। दीक्षा-महोत्सव पर मध्यप्रदेश, बरार, और खानदेश की करीब पाँच हजार जनता उपस्थित हुई थी। अतिथियो के भोजन आदि का व्यय आपकी ओर से ही किया गया

था। धार्मिक संस्थाओं को तथा अन्य सुकृत के निमित्त आपने हजारो का दान दिया था। इस प्रकार त्याग से पहले दानधर्म के आचरण का आदर्श उपस्थित करके आपने दीक्षा धारण की।

आपने संयमोपयोगी शास्त्रीय एवं हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया है। महासती श्रीदौलतकुंवरजी म० का स्वर्गवास होने पर आप बरार-मध्यप्रदेश मे विचरती हुई महासती श्रीसिरेकुंवरजी म० की सेवा मे पधारीं और उन्हीं की सेवा मे रहकर मालवा, मेवाड़, मारवाड़ आदि प्रान्तो में विचर रही हैं।

भद्रपरिणामी महासती श्रीअमृतकुंवरजी म. और उनकी परंपरा

प्रतापगढ़-निवासी मन्दिरमार्गी आम्नाय के अनुगामी श्रीमान् बालचंदजी मडावत आपके पिताजी थे। माता को नाम श्रीमती सरसीबाई था। सं० १९५९ की मिति पौष शु० १० गुरुवार के दिन आपका जन्म हुआ।

यद्यपि आपका जन्म और लालन-पालन मूर्त्तिपूजक सम्प्रदाय में हुआ था, तथापि आत्म कल्याण के सच्चे अभिलाषी जन सम्प्रदाय या पथ को महत्त्व न देकर सत्य एवं आत्मकल्याण के वास्तविक पथ को ही सर्वोपरि मानते है। यह मुमुक्षु आत्मा भी सत्य के महामार्ग पर अग्रसर होने के लिए लालायित थी। अतएव धर्म की सन्देशवाहिका महासती श्रीकासाजी म० के सम्पर्क में आई। उनका सदुपदेश पाकर वैराग्य का बीज हृदय में उत्पन्न हुआ। बीज अङ्कुरित हुआ और श्रीमहावीर जयन्ती के दिन सं० १९७४ मे, प्रतापगढ़ मे विराजित श्रीकासाजी म० के श्रीमुख से दीक्षित हुईं। महासती श्रीजड़ावकुंवरजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुई।

आपका स्वभाव अत्यन्त सरल और भद्र था। चित्त काच के समान स्वच्छ था। शास्त्रीय ज्ञान और थोकड़ों आदि का बोध अच्छा था। आपके स्वर में मधुरता थी। रोचक शैली से व्याख्यान वांचती थी। श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता था।

मालवा, विदर्भ, खानदेश, मध्यप्रदेश, दक्षिण आदि प्रांतों में आपका विहार हुआ। सं० १९९३ का चातुर्मास धूलिया में पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म० की सेवा में किया था। अन्तिम अवस्था में शरीर अशक्त हो जाने के कारण आप मनमाड़ में विराजती थीं। वहां चैत्र शु० ९, सं० २००६ में आपका स्वर्गवास हो गया।

आपकी ग्यारह शिष्याएँ हुई हैं। उनमें से श्रीफूलाजी म० और श्री केसरजी म० आदि दक्षिण और खानदेश में विचर रही है।

महासती श्रीकंचनकुंवरजी महाराज

आपका जन्म मालवा प्रान्त में हुआ था। महासती श्री अमृतकुंवरजी म० के निकट दीक्षित हुई थीं। शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया था और थोकड़े वगैरह सीखे थे। मालवा प्रांत में गुरुणीजी के साथ विचरती थीं। मालवा मे ही आपका स्वर्गवास हुआ। आप सरल और शांत स्वभाव की सती थीं।

आपके माता पिता आदि का नाम और स्थान आदि मालूम न हो सका।

महासती श्रीराजाजी महाराज

मालवा के अन्तर्गत रठांजणे ग्राम में आपका जन्म हुआ।

श्रीऋषभदासजी मोगरा की धर्मपत्नी श्रीमती प्यारीबाई के उदर से आषाढ़ वदि ११ सं० १६५७ में आपका जन्म हुआ। आपका श्वसुरगृह डावड़ा (मालवा) में था।

महासती श्रीअमृतकुंवरजी म० के सदुपदेश को श्रवण कर आपको वैराग्य हुआ। सं० १६८६ की वैशाख शुक्ला १० के दिन मन्दसौर मे उपदेशदात्री महासतीजी के समीप ही आप दीक्षित हो गईं।

आपकी प्रकृति बड़ी तेज थी। वैयावृत्य-परायणा सती थीं। आपने साधारण ज्ञान प्राप्त किया था, फिर भी अपने जीवन को महान् बनाया। मालवा, विदर्भ मध्यप्रदेश आदि प्रान्तों मे विचरण किया। विदर्भ से मालवा की ओर पधारते समय बीच मे ही आपका स्वर्गवास हो गया।

महासती श्रीसोनाजी महाराज

आपकी दीक्षा महासती श्रीअमृतकुंवरजी म० के समीप हुई थी। आप भद्रपरिणामों से विभूषित सरलहृदया सती थीं। शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करके संयममार्ग में अच्छा पराक्रम किया था। आप मालवा एवं वागड़ प्रान्त मे प्रायः विचरती रही। आप भी स्वर्ग सिधार गई है।

महासती श्रीफूलकुंवरजी महाराज

बरार के अन्तर्गत पहुर (यवतमाल) ग्राम में आपका जन्म हुआ। आपके पिता श्रीरामसुखजी थे। माता का नाम श्रीमगनी-बाई था। श्रावण शु० ३ स० १६५० मे आपने जन्म ग्रहण किया

था। माणिकवाड़ा (बरार) के श्रीहेमराजजी छल्लाणी के साथ आपका लग्न-संबंध हुआ था।

महासती श्रीअमृतकुंवरजी म० से सद्बोध पाकर आपके चित्त में जगत् के प्रति निर्वेद-भाव उत्पन्न हुआ। प्रतापगढ़ (मालवा) में कार्तिक शु० ७ सं० १९७८ को श्रीअमृतकुंवरजी म० के समीप दीक्षा धारण की। आपने प्राकृत और हिन्दी का अभ्यास किया है। शास्त्रीय ज्ञान भी यथेष्ट प्राप्त किया है। मालवा आदि प्रान्तो में विचरी हैं। इस समय विशेषतः बरार, खानदेश और मध्यप्रदेश की ओर ही आपका विहार हो रहा है। छोटे-छोटे ग्रामों में भी आप पदार्पण करती है और वहाँ धर्म का अच्छा प्रचार करती हैं।

आपकी एक शिष्या हुई हैं। उनका नाम है—श्रीबादाम-कुंवरजी म। आपका अन्तःकरण करुणापूर्ण, कोमल और सरल है। जैन धर्म की प्रभावना मे आपने अच्छा योग दिया है।

महासती श्रीबादामकुंवरजी महाराज

आप मध्यप्रदेश की निवासिनी थीं। महासती श्रीफूलकुंवरजी म० के पास माणिकवाड़ा (बरार) में आपकी दीक्षा हुई। गुरुणीजी से शिक्षा प्राप्त की है। शास्त्रो का भी अध्ययन किया है। हिन्दी, संस्कृत, और प्राकृत भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर अपने बुद्धि वैभव को बढ़ाया है। व्याख्यान फरमाती हैं। बरार, खानदेश, मध्यप्रदेश आदि ही आपके विहार के मुख्य स्थल रहे हैं।

महासती श्रीकेसरजी महाराज

आप मन्दसौर निवासी श्रीमान् निहालचंदजी पोरवाड़ की सुपुत्री हैं। माताजी का नाम श्रीमोती बाई था। वैशाख वदि १२,

शुक्रवार सं० १९५५ के दिन आप इस भूतल पर अवतरित हुईं। गङ्गधार (मालवा) निवासी श्रीधूलचंदजी पं.रवाड़ के साथ आपका विवाह-संबंध हुआ।

महासती श्रीअमृतकुंवरजी म० के सदुपदेश का निमित्त पाकर आप संसार से उदासीन हुईं। पण्डितरत्न मुनिश्री दौलत-ऋषिजी म० के मुखारविन्द से उज्जैन मे ज्येष्ठ शुक्ला ५, गुरुवार स० १९७९ मे दीक्षा धारण की। महासती श्रीअमृतकुंवरजी म० की शिष्या बनीं। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आपने गुरुणीजी म० की सेवा में रह कर मालवा, खानदेश, बरार, पूना, अहमदनगर नाशिक आदि क्षेत्रो मे विचरण किया। अब भी उधर ही विचर रही हैं। आपने हिन्दी का तथा शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया है।

श्रीहर्षकुंवरजी म० नामक आपकी एक शिष्या हुई है।

महासती श्रीहर्षकुंवरजी महाराज

आप बारामतो (पूना) की निवासिनी थीं। महासती श्रीकेसरकुंवरजी म० का सदुपदेश पाकर आपने भागवती दीक्षा अंगीकार की है। हिन्दी का तथा संयमोपयोगी शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया है। अहमदनगर, पूना आदि क्षेत्र आपकी विहारभूमि है।

महासती श्रीचांदकुंवरजी महाराज

प्रतापगढ़-निवासी श्रीजीतमलजी मूथा की धर्मपत्नी श्रीरतन बाई की कुक्षि से इनका आविर्भाव हुआ। आषाढ़ कृष्णा ९, शनि-वार सं० १९६५ में आपका जन्म हुआ। आपका नाम चांदा बाई था। डावड़ा के श्री भैरोलालजी लसोड़ के साथ विवाह-सम्बन्ध हुआ था।

मन्दसौर में आषाढ़ सुदि २, सं० १९८७, शनिवार के दिन आपकी साध्वी दीक्षा हुई। दीक्षा के समय आपकी उम्र २२ वर्ष की थी। आपने साधारण ज्ञान प्राप्त किया था। आग्रहशील मनोवृत्ति थी। मालवा और महाराष्ट्र मे प्रायः विचरण किया। कुकाणा (अहमदनगर) में आपका स्वर्गवास हो गया।

महासती श्रीराधाजी महाराज

श्री हर्षचन्दजी वागरेचा सिलोड़ (पू. खानदेश) निवासी की सुपुत्री थीं। माताजी का नाम जड़ावबाई था। चैत्र शु० ४ सोमवार सं० १९५६ को आपका जन्म हुआ। येवती (पू. खानदेश) निवासी श्रीउमरावसिंहजी के साथ विवाह सम्बन्ध हुआ था।

संसार की असारता, मानव जीवन की दुर्लभता और संयम की उपादेयता समझ कर आपने अमरावती में, ३४ वर्ष की उम्र में, महासती श्रीअमृतकुंवरजी म० के पास दीक्षा ग्रहण की थी। संयम ग्रहण करके आपने बड़ी तत्परता के साथ अपने जीवन को उच्च एवं निर्मल बनाने का प्रयास किया। वास्तव में आत्मार्थी सती थीं। शास्त्रों का वाचन करके ज्ञान प्राप्त किया था।

अहमदनगर निवासी श्रीउत्तमचन्दजी करणावट की भगिनी श्रीराजीबाई आपके समीप दीक्षित हुई हैं। खानदेश बरार, नाशिक, पूना आदि क्षेत्रों में आपका विचरण हुआ था। अहमदनगर के समीप किसी गांव में आपका स्वर्गवास हुआ।

महासती श्रीराजकुंवरजी महाराज

पिपली (जिला पूना) में आपका जन्म हुआ। करंडी (पूना) के श्रीगम्भीरमलजी आपके श्वसुर थे। सांसारिक सौभाग्य

थोड़े दिनों तक ही कायम रहा । वैधव्य-प्राप्ति के पश्चात् आपने सत्संग करके धार्मिकवृत्ति में वृद्धि की । महासती श्रीकेसरकुंवरजी तथा श्रीराधाजी म० के सदुपदेश से पाथर्डी में दीक्षा लेने का सकल्प किया । माता-पिता आदि कुटुम्बीजनो की आज्ञा प्राप्त करके पूज्य श्रीआनन्दऋषिजी म० के श्रीमुख से अहमदनगर में दीक्षा अङ्गीकार की । महासती श्रीराधाजी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं ।

आपने संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी भाषाओं का शिक्षण लिया है । अहमदनगर, पूना आदि क्षेत्रो में विहार कर रही हैं और जैन धर्म की प्रभावना तथा आत्मकल्याण कर रही है ।

महासती श्रीजयकुंवरजी महाराज

यवतमाल (बरार) में आपका जन्म हुआ । आपके पिता श्रीपरशुरामजी महाराष्ट्रीय राजपूत थे । माता का नाम श्रीमती गंगाबाइ था । मार्गशीर्ष शु० १४ स० १९८८ , गुरुवार के दिन आपका जन्म हुआ ।

ग्यारह वर्ष की बाल्यावस्था में माघ शु० ७ गुरुवार सं० १९९२ में आपने पोपरखुटा (बरार) में महासती श्रीअमृतकुंवरजी म० से दीक्षा अंगीकार की ।

बाल्यावस्था में संयम ग्रहण करने से आपको अध्ययन करने का अच्छा अवसर मिला । हिन्दी का अभ्यास किया संस्कृत व्याकरण सीखा । श्रीआचारांग, अनुत्तरोववाई, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, और सुखविपाक सूत्र का वाचन किया ।

मध्यप्रदेश, बरार, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में आपने गुरुणीजी के साथ विचरण किया था । आपका हृदय अतिशय प्रशांत

था। गुरुणीजी की तन-मन से सेवा किया करती थीं । खेद है कि समाज इन होनहार महासतीजी के लाभ से असमय में ही वंचित हो गया।

महासती श्रीअजितकुंवरजी महाराज

आप देवलगांव बालाजी (हैदराबाद रियासत) के एक ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न हुई। सं० २००१ में महासती श्रीअमृतकुंवरजी म० का वहां चातुर्मास हुआ । आप सतीजी के सम्पर्क में आईं। सत्संगति पाकर आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ । पिताजी की आज्ञा लेकर चातुर्मास के पश्चात् आप महासतीजी के साथ ही रहीं और संयम मार्ग की शिक्षा ग्रहण करने लगीं । उस साल आप दीक्षित हो गईं।

गुरुणीजी की सेवा में रह कर आपने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया है। भुसावल की जैन सिद्धान्तशाला में भी अभ्यास किया है। वर्त्तमान में महाराष्ट्र प्रदेश में विचरण कर रही हैं।

महासती श्रीविमलकुंवरजी महाराज

अहमदनगर जिला के अन्तर्गत कुकाणा ग्राम आपकी जन्मभूमि है। बाल्यकाल में ही आप माता की अनुज्ञा लेकर महासती श्रीअमृतकुंवरजी म० की सेवा में शिक्षण प्रीत्यर्थ रहने लगीं । करीब चार वर्ष तक सेवा में रह कर आपने उक्त सतीजी के समीप ही दीक्षा अंगीकार कर ली।

आपकी प्रकृति कोमल और बुद्धि निर्मल है। गुरुणीजी की सेवा में रहकर हिन्दी और प्राकृत आदि का अभ्यास किया है।

भुसावल में विराज कर सिद्धान्तशाला में शास्त्राभ्यास किया है। गुरु भगिनी महासती श्रीफूलकुंवरजी म० की सेवा में महाराष्ट्र-खानदेश में आपका विहार हुआ। वर्तमान में श्रीअजितकुंवरजी म० के साथ अहमदनगर जिले में विचर रही है।

महासती श्रीवल्लभकुंवरजी महाराज

आप बैतूल (मध्यप्रदेश) की निवासिनी हैं। सं० २००३ में महासती श्रीअमृतकुंवरजी म० ठा० ४ का चातुर्मास था। उनका समागम करने से आपको वैराग्य हुआ और बैतूल में ही दीक्षा ग्रहण की।

बरार, खानदेश और मध्यप्रदेश मे गुरुणीजी के साथ आपने विहार किया है। जब आप मनमाड़ पधारीं तो वहाँ महासतीजी श्रीअमृतकुंवरजी म० का स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् आप श्रीगुरु भगिनी श्रीकेसरजी म० की सेवा में पधार गईं। परन्तु अशुभ कर्म के उदय से संयम मार्ग को निभा न सकी।

पंडिता महासतीजी श्रीवरजूजी महाराज

आपका जन्म मालव प्रांत में हुआ था। पं० महासतीजी श्रीजड़ावकुंवरजी म० का सदुपदेश सुनकर वैराग्यभाव जागृत हुआ और संसार से उदासीन होकर उत्कृष्ट वैराग्य भावना से आप पं० महासतीजी के समीप दीक्षित हुईं। आपने शास्त्रीय ज्ञान विशेष परिश्रम करके प्राप्त किया था और आप अच्छी विदुषी बनी। तत्पश्चात् आपने मालव प्रांतीय छोटे बड़े क्षेत्रो मे श्रीजिनवाणी की वर्षा करते हुए अनेक भव्य जीवो को सन्मार्ग मे प्रवृत्त करके उनके

जीवन पवित्र बनाये। आपकी वाणी में माधुर्य-रस झरता था। संवत् १९६७ फाल्गुन शुक्ल ७ के दिन उज्जैन शहर में श्रीसिरेकुंवर-बाई निनोर (मालवा) निवासी की दीक्षा आपके समीप हुई थी। आपकी विहारभूमि मालव आदि प्रांतों में रही और आपका स्वर्गवास भी इस प्रांत में हुआ।

पण्डिता महासती श्रीसिरेकुंवरजी महाराज

आपकी जन्मभूमि निनोर (प्रतापगढ़) है। श्रीरामलालजी बोहरा की धर्मपत्नी श्रीवरजूबाई की कुक्षि से ज्येष्ठ शु० ९ सं० १९५८ में आपका जन्म हुआ। बाल्यावस्था में, करीब ९ वर्ष की उम्र में आपने दशवैकालिक सूत्र कण्ठस्थ कर लिया था। बाद में उत्तराध्ययन, नन्दी और सुखविपाक शब्दार्थ सहित कण्ठस्थ किये। तथा नवतत्त्व और कुछ थोकड़े भी सीख लिये थे।

इतनी छोटी-सी उम्र में इतने शास्त्रों को कण्ठस्थ कर लेना और तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेना साधारण बात नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि कुछ आत्माएँ पूर्व जन्म के विशिष्ट संस्कार लेकर जन्म लेती है। उन्हीं असाधारण आत्माओं मे से आप हैं।

सं० १९६७ की फाल्गुन शु० ७ के दिन उज्जैन में पण्डितरत्न मुनि श्रीअमोऋषिजी म०, पण्डिता श्रीकासाजी म० आदि सन्तों और सतियों की उपस्थिति में भागवती दीक्षा अंगीकार की। आप पं० महासती श्रीवरजूजी महाराज की नेश्राय मे शिष्या हुईं। इस प्रकार आपने माता वरजूबाई का परित्याग कर गुरुणी श्री वरजूजी महासती का आश्रय लिया।

दीक्षा के पश्चात् भी आपका अभ्यास चालू रहा। हिन्दी,

संस्कृत तथा उर्दू भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया और छब्बीस शास्त्रों का वाचन किया है।

आपका स्वभाव शान्त और विनीत है। व्याख्यान सरस, मधुर और रोचक होता है। मालवा, मेवाड़, मारवाड़, मध्यप्रदेश, बरार, खानदेश आदि प्रांतों में आपने विचरण किया है। छोटे-छोटे ग्रामों की धर्मपिपासु जनता को वीर-सन्देश सुनाने की आप की विशेष अभिरुचि रही है। नाना प्रकार की कठिनाइयाँ सहन करके जैन धर्म को खूब दिपाया है। वर्त्तमान में आप राजस्थान में विचर रही है।

आपकी तीन शिष्याएँ हुई हैं:—श्रीगुमानकुंवरजी म० श्रीहुलासकुंवरजी म० और श्रीगुलाबकुंवरजी महाराज।

महासती श्रीगुलाबकुंवरजी महाराज

आपका जन्म आसौज वदि १२ सं० १९५४ को झालरापाटन में हुआ। पिताजी का नाम श्रीचम्पालालजी मेहता था। माताश्री सिनगार बाई थीं। बोरिया-निवासी श्रीहीरालालजी बीजावत के के साथ विवाह हुआ। ११ वर्ष तक सांसारिक सौभाग्य रहा। महासती श्रीसिरेकुंवरजी म० को सदुपदेश पाकर आपको वैराग्य हुआ। मार्गशीर्ष वदि १३ सं० १९९७ के दिन चांदूर बाजार (म. प्र.) में, ४२ वर्ष की उम्र में दीक्षा अङ्गीकार की है। शिक्षण साधारण हुआ। आप प्रकृति के शान्त और सरल हैं। गुरुणीजी के साथ मालवा, मध्यप्रदेश और बरार आदि प्रान्तों में विहार किया है। आप वैयावृत्य तप के प्रति विशेष अनुराग रखती है।

महासती श्रीगुमानकुंवरजी महाराज

वि० सं० १९५१ मि० आसौज वदि ३ को भानपुर (मालवा) में आपका जन्म हुआ। आपके पिता का नाम श्रीकनकमलजी

कोठारी था। श्रीसरदारबाई की आत्मजा हैं। आपका विवाह अमरावती निवासी श्रीमान् कानमलजी सोजतिया के साथ हुआ था। बाल्यावस्था से ही आपके अन्तःकरण में धर्म के प्रति विशेष अभिरुचि थी। उस समय भी आप यथाशक्य व्रत-नियमों का पालन किया करती थीं और बाइयों को चौपाई आदि ग्रन्थ पढ़-पढ़ कर सुनाया करती थीं।

अमरावती में मार्गशीर्ष शु० १३ सं० २००१ में श्रीसिरेकुँवरजी म० के पास आपकी दीक्षा हुई। ४६ वर्ष की उम्र में आप दीक्षित हुईं। दीक्षा का खर्च आपने स्वयं ही किया था।

आपकी चित्त-वृत्ति सरल और उपशम प्रधान है। शास्त्रों का तथा हिन्दी का वाचन करके संयमोपयोगी ज्ञान प्राप्त किया है। गुरुणीजी की सेवा में रह कर बरार, मध्यप्रदेश, मालवा, मेवाड़, मारवाड़ एवं मेरवाड़ा आदि प्रान्तों में विचरी तथा विचर रही हैं।

महासती श्रीहुलासकुंवरजी महाराज

वि० सं० १६५७ में मि० आश्विन वदि ५ के दिन धरियावद (मेवाड़) मे आपका जन्म हुआ। पिता का नाम श्रीहजारीमलजी पामेचा और माता का नाम श्री नोजीबाई था। धरियावद के श्री तोलाचंद्रजी कोठारी के साथ आपका लग्न हुआ था।

२६ वर्ष की आयु में पौष वदि ६ सं० १६८६ बुधवार के दिन प्रव० श्रीकस्तूराजी म० के मुखारविन्द से सीतामऊ मे दीक्षा ग्रहण की और महासती श्री सिरेकुंवरजी म० की शिष्या हुईं। आपकी प्रकृति सरल और शांत है। आपने हिन्दी ज्ञान के साथ-साथ शास्त्रीय ज्ञान भी प्राप्त किया है।

मालवा, मारवाड़, मेवाड़, मध्यप्रदेश, वरार आदि प्रांतों में आपने विचरण किया है। वर्त्तमान में आप गुरुणीजी महाराज

की सेवा में रह कर राजस्थान में विचर रही हैं। आपकी एक शिष्या हुई, उनका नाम श्रीदयाकुँवरजी म० है।

महासती श्रीदयाकुंवरजी महाराज

चांदूरबाजार (बरार) आपकी जन्मभूमि है। आषाढ़ शु० १३ सं० १९७४ में आपका जन्म हुआ। पिता का नाम श्रीआसकरणजी छाजेड़ और माता का नाम श्रीमती चुन्नीबाई था। आप का लग्न सम्बन्ध नागौर निवासी अमरावती वाले श्रीनेमिचन्द्रजी सुराणा के साथ हुआ था।

पं० महासती श्रीसिरेकुंवरजी म० के सदुपदेश को सुन कर आपके चित्त में विरक्ति का आविर्भाव हुआ। इन्हीं महासती के श्रीमुख से वैशाख वदि १३ सं० २००० में चांदूरबाजार में दीक्षा ग्रहण की। महासती श्रीहुलासकुंवरजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई।

आपकी प्रकृति बहुत ही कोमल तथा सरल है। ज्ञानवृद्धि की ओर आपका विशेष लक्ष्य रहता है। निरन्तर नूतन ज्ञानार्जन के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। शास्त्रीय ज्ञान के साथ-साथ हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का आपने अभ्यास किया है। भविष्य में आपसे बहुत आशाएँ हैं। आन्तरिक कामना है कि सतीजी अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँचे और श्रीसंघ का श्रेयस् साधन करती हुई आत्मोत्थान के प्रयास मे सफल हों।

आपने बरार, मध्यप्रदेश, मेवाड़, मालवा, मारवाड़ आदि प्रांतों में विचरण किया है।

उपसंहार

पिछले पृष्ठों में ऋषि सम्प्रदायी सन्तों और सतियों का जो परिचय दिया गया है, नम्रतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए कि उसमें परिपूर्णता नहीं आ सकी, बल्कि काफी अधूरापन है। कितने ही सन्तों और सतियों के नामों तक का पता नहीं चल सका है। जिनके नामों का पता चला है उनमें से कइयों का परिचय प्राप्त नहीं हो सका, और जिनका परिचय भी प्राप्त हुआ, वह परिचय पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं हो सका। हो सकता है कि इस मेरे प्रयत्न में अपूर्णता रही हो तथापि मुख्य कारण यह है कि पहले इतिहास लिखने की आजकल जैसी प्रथा नहीं थी। मुमुक्षु महात्माओं का इस ओर ध्यान नहीं था। वे अपनी साधना लीन रहते और शासन का उद्योत करने में ही दत्तचित्त रहते थे। महान् से महान् कार्य करते हुए भी उसका किसी जगह उल्लेख कर देने की उन्हें रुचि नहीं थी। यही कारण है कि इतिहास को परिपूर्ण रूप से लिखने योग्य सामग्री आज उपलब्ध नहीं है। और जो सामग्री है, वह इतनी बिखरी पड़ी है कि उसे संकलित करने के लिए जितना प्रयत्न आवश्यक है, उतना प्रयत्न अपनी अनेक विवशताओं के कारण मैं नहीं कर सका। इन सब कारणों से अगर इस इतिहास में अनेक महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय घटनाएँ छूट गई हो तो स्वाभाविक ही है। लेखक की भावना है कि भविष्य में मैं इस ओर प्रयत्नशील रह कर ऐतिहासिक तथ्यों का अन्वेषण करता रहूँ। इसका जो परिणाम आएगा, वह संभव है, पाठकों के समक्ष पुनः उपस्थित किया जा सकेगा।

इस प्रकार इस इतिहास में परिपूर्णता न होने पर भी यह कहा जा सकता है कि यहां जो कुछ लिखा गया है, वह सब साधार

है और छान-बीन करके ही लिखा गया है। तथापि इससे अधिक पुष्ट आधार मिलने पर आगे चल कर उसमें न्यूनता-अधिकता न करने का लेखक का आग्रह नहीं। इतिहास में नवीन खोज की सदैव गुञ्जाइश रहती है, और उसके आधार पर परिवर्तन करने की भी। तदनुसार ही यहां भी समझना चाहिए।

भारतवर्ष तपस्वियों, त्यागियों और महात्माओं की उर्वरा भूमि रहा है। इस देश मे बड़े-बड़े महापुरुषो ने जन्म लिया और अपने दिव्य ज्ञान तथा उत्कृष्ट चर्या द्वारा अपने जीवन को सफलता की चरम सीमा पर पहुँचाया। उन महापुरुषों की जीवनियों पर दृष्टि डालते हैं तो चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर की स्मृति सब से पहले हो आती है। भगवान् महावीर ने अपने साधना जीवन में जिस कठोरतर चर्या को अपनाया था, वह तपस्वो जगत् मे असाधारण और विस्मयजनक थी। उसका वर्णन पढ़ते पढ़ते हमारे रोंगटे खड़े जाते है। लगातार बारह वर्ष से भी कुछ अधिक समय तक उनका जीवन घोर संयम-साधना मे ही संलग्न रहा।

महान् विरासत

भगवान् महावीर की साधना का मार्ग ही उनके उत्तरवर्ती श्रमण समुदाय का आदर्श था। जिस पथ पर भगवान् चले थे, वही पथ उनके अनुयायियो का था। यह सत्य है कि भगवान् के समान प्रकृष्ट आत्मबल और शरीरबल प्रत्येक साधक में नहीं हो सकता, और इस कारण श्रमण समाचारी में सब प्रकार के श्रमणों के निर्वाह के योग्य गुंजाइश की भगवान् ने स्वयं आज्ञा फरमाई थी, फिर भी आदर्श तो भगवान् का चरित्र ही था। अतएव बाद के श्रमण-संघ ने देश, काल और परिस्थिति को दृष्टि के समक्ष रखकर भी भगवत्चरित्र से फलित होने वाली प्रेरणाओं को नहीं भुलाया और यथाशक्ति वे उन्हीं के चरणचिन्हों पर चले।

इस अनुकरण का प्रभाव बहुत ही सुन्दर हुआ। जैन श्रमणों का आचार अन्य परम्पराओं के त्यागी वर्ग की तुलना में सदैव उच्चकोटि का रहा और आज भी है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह परम्परा अविच्छिन्न रूप में एक-सी चली आई है। संसार की कोई भी परम्परा और कोई भी संस्था उतार-चढाव के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकती। जैन श्रमण-परम्परा में भी अतीतकाल मे उतार चढाव आते रहे।

क्रियोद्धार

एक युग आया कि श्रमणों में घोर शिथिलता फैल गई और भगवान् महावीर की उत्कृष्ट चर्या के साथ जैसे उसकी कोई समानता ही न हो, ऐसा दिखलाई देने लगा। हम देखते हैं और इतिहास साक्षी है कि उस उतार को चढाव के रूप में परिवर्तित कर देने के लिए ही ऋषियों का एक पृथक् सम्प्रदाय के रूप में जन्म हुआ। यद्यपि श्रीमान् लोंकाशाह ने भगवान् की आचार परम्परा में आये हुए शैथिल्य को दूर करने का एक महान् प्रयत्न किया था और उसमे उन्हें सफलता भी मिली थी, परन्तु खेद की बात यह है कि उनका वह प्रयत्न स्थायी नहीं बन सका। श्रीमान् लोंकाशाह के स्वर्गवास के पश्चात् शीघ्र ही करीब सौ सवा सौ वर्ष बाद ही फिर ज्यों की त्यों परिस्थिति हो गई और पूर्ववत् शिथिलता व्याप गई। इसी समय परमपूज्य श्रीलवजी ऋषिजी म० सामने आये और खंभात में उन्होंने स्वयं शुद्ध संयम मार्ग अंगीकार किया और अनेकानेक दुस्सह यातनाएँ सहन करके संयम क्रिया का उद्धार किया। उनके मार्ग में जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, वह आज सर्व साधारण की कल्पना से भी परे हैं। मगर उनका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसी प्रयत्न में उन्हें और उनके शिष्य को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। लेकिन पूज्यश्री लवजीऋषिजी

म० ने इतनी दृढ़ता और तेजस्विता के साथ शासन के उद्धार का कार्य आरम्भ किया था कि उसमें पहले के समान शिथिलता नहीं आने पाई और वह प्रयत्न न केवल स्थिर ही हो गया, वरन् दिनों दिन विस्तार भी पाता गया। आज स्थानकवासी परम्परा अगर किसी के प्रयत्न, किसी के तप, त्याग, उत्सर्ग, उत्कृष्ट चरित्र एवं दीर्घदर्शिता के लिए आभारी है तो उनमें पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म०, पूज्यश्री धर्मसिंहजी म०, और पूज्यश्री धर्मदासजी म० ही प्रमुख हैं।

पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० आदि महापुरुषों से आरम्भ हुई यह परम्परा आज तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। इन लगभग चार सौ वर्षों में उसने विशाल वृक्ष का रूप धारण किया है और उसकी एक एक शाखा भी स्वतंत्र वृक्ष का रूप ग्रहण कर सकी है।

नवीन क्षेत्रों को खोलना

ऋषि सम्प्रदायी महान् संतों ने इस विशाल भारतवर्ष के प्रान्त प्रान्त में विचरण करके धर्म का उपदेश किया और नये नये क्षेत्र खोले है। काठियावाड़ और गुजरात तो प्रारम्भिक समय में इस सम्प्रदाय का प्रधान केंद्र रहा ही है। पजाब देश में पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० की आज्ञा से पं० श्रीहरदास ऋषिजी म०; उसके बाद मालवा देश में पूज्यश्री कहानजी ऋषिजी म०, पं० श्री हरखाऋषिजी म०, पं० श्रीखूबाऋषिजी म०; महाराष्ट्र दक्षिण देश मे कविकुल भूषण पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी म०; हैदराबाद (निजाम) और कर्णाटक देश मे शास्त्रोद्धारक पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म०, छत्तीसगढ़ और सी० पी० में तपस्वी पूज्यश्री देवजी ऋषिजी म०, ने सर्व प्रथम पहुँच कर और कठिन यातनाएँ सहन करके स्थानकवासी परम्परा को सुदृढ़ किया है।

ज्ञान प्रचार

ऋषि-सम्प्रदायी सन्त क्रिया की उत्कृष्टता का ध्यान तो रखते ही थे, क्योंकि क्रियोद्धार के लिए परम्परा आरम्भ हुई थी, मगर मुक्ति का मार्ग ज्ञान और क्रिया दोनों हैं और सम्यग्ज्ञान के अभाव में की गई क्रिया यथेष्ट फलप्रद नहीं होती, यह बात भी उन्होंने कभी नजर से ओझल नहीं होने दी। ज्ञान के मुख्य दो साधन है—साहित्य और शिक्षा। अतएव इन दोनों साधनो की ओर भी उनका पर्याप्त ध्यान रहा है।

साहित्य-सेवा

साहित्य के क्षेत्र में कविकुल भूषण पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० तथा शास्त्र विशारद प्रौढ़ कवि पं० रत्न श्रीअमीऋषिजी म० ने उत्कृष्ट से उत्कृष्ट पद्य रचनाएँ हमारे समक्ष प्रस्तुत की हैं। इनमे पूज्यपाद श्री अल्प आयु में ही स्वर्गवासी हो गये, फिर भी उन्होने इतना बृहत् पद्य-साहित्य लिखा है कि उसे देख कर चकित रह जाना पड़ता है। कौन स्थानकवासी जैन ऐसा होगा जो "कहत तिलोक रिख" की पावनी ध्वनि कर्णगोचर न कर चुका हो? आपने ३६ वर्ष की अल्प आयु मे अनेक चरित ग्रन्थ और इनके अतिरिक्त बहुत से प्रकीर्णक पद्य लिखे हैं। इसी प्रकार श्री अमी-ऋषिजी म० की कविताएँ भी उच्चकोटि की हैं। आपकी रचनाएँ अध्यात्म, वैराग्य एवं नीति की शिक्षाओं से ओतप्रोत हैं। उनमें अमृत का माधुर्य है, सरसता है, चित्त को चुम्बक की तरह खींच लेने का सामर्थ्य है। सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रकाशमान इन दोनों महाकवियो के अतिरिक्त श्री पूनमऋषिजी म० आदि और भी अनेक कवियों ने इस सम्प्रदाय की कीर्ति बढ़ाई है।

पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म० के पवित्र नाम से आज कौन अपरिचित है ? उन्हें स्थानकवासी सम्प्रदाय का आद्य साहित्य-स्रष्टा कह कर उल्लिखित करने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी । जिस समय लोग भगवान की पावन वाणी का रसास्वादन करने के लिए तरस रहे थे और हिन्दी भाषा में किसी ने मूल आगमों का अनुवाद करने का साहस नहीं किया था, उस समय पूज्यश्री ने पर्याप्त साधन न होने पर भी शास्त्रों का अनुवाद करके एक महान् त्रुटि की पूर्ति की। एकासन व्रत पूर्वक तीन वर्ष जितने स्वल्प काल में प्रतिदिन सात घन्टे तक आपने बत्तीसों शास्त्रों का हिन्दी भाषांतर करके शास्त्रोद्धार के भगीरथ कार्य को सम्पन्न किया । यही नहीं आपने जैन तत्त्व प्रकाश, ध्यानकल्पतरु परमात्म मार्ग दर्शक, अघोद्धार कथागार, मुक्तिसोपान आदि-आदि अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों का भी प्रणयन किया और साहित्यिक-जगत् में एक नया युग स्थापित किया।

आपश्री के अतिरिक्त भूतपूर्व ऋषि सम्प्रदायाचार्य और वर्तमान में श्रीवर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रधानमंत्री, पं० रत्न, बालब्रह्मचारी श्रीआनन्दऋषिजी म०, आत्मार्थी पं० रत्न मुनिश्री मोहनऋषिजी म०, पं० मुनिश्री कल्याणऋषिजी म० ने भी साहित्य समृद्धि की वृद्धि करने में प्रमुख भाग लिया है। आत्मार्थी मुनिश्रीजी की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है। पं० श्रीकल्याण ऋषिजी म० के उपदेश के फलस्वरूप धूलिया मे श्रीअमोल जैन ज्ञानालय नामक संस्था चल रही है, जिसकी ओर से अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए और हो रहे हैं। प्रधानमंत्रीजी महाराज के विषय में कितना लिखा जाय ! उनके प्रभावशाली उपदेश और व्यक्तित्व के फल स्वरूप बोदवड़, बड़नेरा, रालेगांव, हिंगनघाट, नागपुर आदि अनेकों स्थानों पर धार्मिक पाठशालाएँ, साहित्य मन्दिर

(पुस्तकालय) वाचनालय, शास्त्र भंडार आदि स्थापित हुए हैं। पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म०, पं० श्रीअमीऋषिजी म० के कुछ ग्रंथ आपके द्वारा सम्पादित होकर प्रकाश में आये और आने वाले हैं। श्रीजैनधर्म प्रसारक संस्था (सदरबाजार, नागपूर) भी आपश्री के ही सदुपदेश का फल है। इस संस्था से प्रकाशित ट्रेक्टों द्वारा महाराष्ट्र प्रान्त में जैनधर्म का प्रचार हुआ है। तात्पर्य यह है कि साहित्यिक क्षेत्र में भी इस संप्रदाय की देन असाधारण है।

शिक्षा प्रचार

शिक्षा-संस्थाओं पर दृष्टि डाली जाय तो प्रतीत होता है कि बालकों को धार्मिक ज्ञान देने के लिए ऋषि सम्प्रदाय के सन्तों ने अपनी मर्यादा के अनुरूप जो महान् और विशाल कार्य किया है, वह अत्यन्त ही प्रशस्त है। प्रधानमन्त्रीजी म० के सत्प्रयास से पाथर्डी में श्रीतिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड चल रहा है, जो समग्र स्थानकवासी समाज में अद्वितीय है। वह अपने साहित्य प्रकाशन कार्य द्वारा तथा प्रतिवर्ष हजारों बालकों के धार्मिक अध्ययन की परीक्षा लेकर और उनका उत्साह बढ़ाकर बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इसी तरह धार्मिक पाठ-शालाओं का निरीक्षण एवं ग्रान्ट, और होनहार छात्रों को छात्र-वृत्ति देकर जैनधर्म का प्रसार करने में श्रीवर्द्धमान स्था० जैनधर्म शिक्षण प्रचारक सभा पाथर्डी द्वारा सामाजिक सेवा हो रही है। आपश्री के सदुपदेश से ही पाथर्डी, अहमदनगर, घोड़नदी, ब्यावर आदि स्थानों मे सिद्धान्तशालाएँ स्थापित हुई हैं।

ब्यावर जैन गुरुकुल के संस्थापक और उपदेशक आत्मार्थी मुनिश्री मोहनऋषिजी म० हैं। आत्मार्थीजी म० के उपदेश से और भी अनेक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना हुई है।

तपस्वीराज पूज्यश्री देवजी ऋषिजी म० के शिष्य मुनिश्री सिरीऋषिजी म० के सदुपदेश से राजनांदगांव (सी० पी०) में श्रीदेवआनन्द जैन विद्यालय नामक संस्था स्थापित हुई है।

अभिप्राय यह कि ऋषि सम्प्रदायी सन्तों का शिक्षा प्रसार की ओर सदैव पूर्ण लक्ष रहा है, और वे पचासों संस्थाओं के प्रेरक और उपदेशक है।

संगठन में योगदान

ऋषि सम्प्रदाय के सन्तों ने "संघे शक्तिः कलौ युगे" अर्थात् इस युग मे संगठन मे ही शक्ति का वास है, इस बात को सदैव ध्यान में रक्खा है। संगठन की ओर उनका विशेष ध्यान रहा है। आज से करीब दो-सौ वर्ष पूर्व पूज्यश्री ताराऋषिजी महाराज आद्य क्रियोद्धारक पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म० के आद्य क्रियोद्धार स्थल-खंभात पधारे थे। आपके ही नेतृत्व में पंचेवर ग्राम में सं० १८१० मे चार सम्प्रदायों के प्रमुख सन्त-सती एकत्र हुए और संगठन किया गया। पूज्यश्री बच्चुऋषिजी म० तथा पदवीधरजी श्री कुशलकुंवरजी म० के समय में जो ८४ बोल की समाचारी बनाई थी, उसको ही पं० स्थविर मुनिश्री हरखाऋषिजी म०, स्थविर मुनिश्री खूबाऋषिजी म०, पं० मुनिश्री सुखाऋषिजी म० आदि संत-सतियां रतलाम (मालवा) में एकत्रित होकर स्थानीय शास्त्रज्ञ सुश्रावक श्रीमान अमरचन्दजी पीतलिया तथा प्रतापगढ़, पीपलोदा, जावरा, उज्जैन, शाजापुर, शुजालपुर, भोपाल वगैरह गांवों के मुख्य २ श्रावकों की सलाह से मर्यादा के ८४ बोल सर्वानुमति से मान्य किये गये।

धुलिया (खानदेश) में सं० १६८८ माघ कृष्ण ५ गुरुवार के दिन आगमोद्धारक पं० मुनिश्री अमोलक ऋषिजी म० तथा पं०

रत्न मुनिश्री आनन्द ऋषिजी म० इन दोनों महापुरुषों ने अहमद-नगर निवासी शास्त्रज्ञ सुश्रावक श्रीमान किशनदासजी मुथा तथा रावबहादुर श्रीमान मोतीलालजी मुथा सतारा निवासी की सलाह से समाचारी तैयारी की थी, वह आचार्य पद के शुभ प्रसंग पर इन्दौर में ऋषि सम्प्रदायी सन्त-सतियों की सम्मति से परिवर्तन संवर्द्धन करके मान्य की गई।

तत्पश्चात् समय समय पर संगठन के हेतु प्रमुख संतों एवं सतियों के सम्मेलन होते ही रहे हैं। जैसे—शास्त्रोद्धारक पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म० के नेतृत्व में मालव प्रांतीय ऋषि सम्प्रदायी महासतियों का सम्मेलन प्रतापगढ़ (मालवा) में संवत् १९८९ पौष वदि ५ के रोज हुआ था और आचार्यश्रीजी की आज्ञा से पं० रत्न श्रीआनन्द ऋषिजी म० के नेतृत्व में दक्षिण प्रांतीय ऋषि सम्प्रदायी महासतियों का सम्मेलन प्रसिद्ध क्षेत्र पूना में सं० १९९१ चैत्रवदि ७ के दिन हुआ, जिससे सम्प्रदाय मे जागृति आई। अजमेर वृहत् साधु सम्मेलन मे पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म० ने महत्वपूर्ण भाग लिया। उनके प्रवचनों ने संगठन के अनुकूल वातावरण का निर्माण करने मे अच्छा योग दिया और वहाँ उपस्थित सन्तों के हृदय गद्गद् कर दिये थे।

तत्पश्चात् पूज्यश्री आनन्द ऋषिजी म० ने भी अपने समय में संगठन कार्य मे प्रमुख भाग लिया है। सर्व प्रथम आपके नेतृत्व मे ही व्यावर मे सैकड़ों वर्षों से पृथक्-पृथक् चली आने वाली पांच सम्प्रदायों का अपना अपना पृथक् अस्तित्व विलीन करके एक संघ मे सम्मिलित हो जाना इतिहास की एक अपूर्व घटना थी, जो आपके औदार्यपूर्ण पथ प्रदर्शन से सभव हो सकी थी। पाँच संप्रदाय के सन्तो ने एक संघ का निर्माण करके आपश्री को प्रधानाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। सच पूछिये तो यह क्रांतिकारी कदम ही

सादड़ी साधु सम्मेलन की सफलता का प्रधान कारण बना। सादड़ी वृहत् साधु सम्मेलन में भी संगठन के लिए आपने अद्भुत कार्य किया हैं। वस्तुतः इसके लिए युग-युग तक धर्मप्रेमी जनता उनका हार्दिक अभिनंदन करती रहेगी।

तपश्चर्या

ऋषि सम्प्रदाय में तपश्चर्या आदि सन्त-जनोचित क्रियाओं की भी गहरी परम्परा रही है। आद्य क्रियोद्धारक परमपूज्यश्री लवजी ऋषिजी म०, उनके उत्तराधिकारी पूज्यश्री सोमजी ऋषिजी म० तथा पूज्यश्री कानजी ऋषिजी म० निरन्तर बेले बेले पारणे की तपस्या किया करते थे। दिन में सूर्य की आतापना और रात्रि में शीत की आतापना लेते थे। बाद में भी अनेक तीव्र तपस्या करने वाले अनेक सन्त हुए हैं, जिनमें श्रीभीमजी ऋषिजी म०, तपस्वी-राज श्रीकेवलऋषिजी म०, तपस्वीराज पूज्यश्री देवजी ऋषिजी म०, तपस्वी श्रीवृद्धिऋषिजी म०, तपस्वी श्रीवेलजी ऋषिजी म०, तपस्वी श्रीकुंवर ऋषिजी म०, तपस्वी श्रीउदय ऋषिजी म०, तपस्वीश्री चम्पक ऋषिजी म०, तपस्वी श्रीभक्तिऋषिजी म०, आदि विशेष उल्लेखनीय है। तपस्वी श्रीभीमजी ऋषिजी म० को तपश्चर्या के प्रभाव से "खेलोसही" लब्धि प्राप्त थी। जावरा की चमत्कारिक घटना का उल्लेख उनके परिचय में किया जा चुका है। तपस्वी प्रवर श्रीकेवल ऋषिजी म० ने एक से लेकर बीस दिनों की और फिर ३१-४१-५१-६१-७१-८१-९१-१०१-१११-१२१ दिन तक की घोर तपश्चर्या छाछ के आधार पर की थी, तथा उग्रविहार भी किया था। आप पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी म० के संसारी अवस्था के पिताजी थे।

तपस्वीराज पूज्यश्री देवजी ऋषिजी म० ने भी एक उपवास

से लेकर ४१ उपवास तक गरम पानी केआधार पर तपश्चर्या की थी। तपश्चर्या-काल में दैनिक-कार्य जैसे कि एक घण्टे तक खड़े रहकर ध्यान करना, प्रतिदिन व्याख्यान देना, आदि सभी कार्य नियमित करते थे। तपस्वी श्रीवृद्धि ऋषिजी म० भी अनेक छोटी बड़ी विशिष्ट तपश्चर्याएँ करते ही रहते थे। आपने एक मास, दो मास तक के आधार पर तपश्चर्या की थी, और अजमेर वृहत् साधु सम्मेलन के शुभ प्रसंग पर उष्णोदक के आधार पर एक मास की तपश्चर्या की थी।

श्री वेलजीऋषिजी म० भी उग्र तपस्वी थे। वे छाछ के आधार पर ही सोलह वर्ष तक रहे। एक बार तपस्या के पारणक के लिए अभिग्रह किया। अभिग्रह पूर्ण न हुआ हो यावज्जीवन अन्न का ही त्याग कर दिया। सिर्फ छाछ के आधार पर ही जीवन विताया। छाछ की भी एक से लगाकर सात दाति तक क्रमशः घटाते-बढ़ाते रहे। इस घोर तपश्चर्या से आपको भी लब्धि की प्राप्ति हुई थी।

तपस्वी श्रीकुंवरऋषिजी म० ने यावज्जीव एकांतर उपवास की तपश्चर्या की थी। तपस्वी श्रीउदयऋषिजी म० और श्रीचम्पक-ऋषिजी म० एवं तपस्वी भक्तिऋषिजी म० ने अनेक बार मास-खमण और ४१-५१ दिन की तपश्चर्या का है।

इस प्रकार देखते हैं कि ऋषि सम्प्रदायी सन्तों ने स्थानक-वासी परम्परा को जीवन-दान देकर उसका पूरी तरह पालन-पोषण किया है, संवर्धन और संगोपन किया है और उसके प्रत्येक अंग के विकास के लिए सराहनीय उद्योग किया है। इन सब कार्यों को जिन परिस्थितियों में उन महाभाग्यवान महापुरुषों नेसम्पन्न किया, वह अतिशय-प्रतिकूल थीं। अपने ध्येय की सिद्धि के लिए उन्हें रोमांच-

कारिणी यातनाएँ सहनी पड़ीं। उन्हें जहर दिया गया, तलवार के घाट उतरना पड़ा, भूख और प्यास की प्रबल वेदनाएँ भोगनी पड़ी, फिर भी जिन शासन के उद्योत की प्रबलतर भावना उन्हे निरुत्साह न कर सकी। वे कभी एक भी कदम पीछे न हट कर निरन्तर आगे ही आगे कदम बढ़ाते रहे। यह उन्हीं त्यागी, वैरागी, तपस्वी महापुरुषों का पुण्य-प्रताप है कि आज भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों में स्थानकवासी सन्त-सती वर्ग बिना किसी विशेष कठिनाई के विचरण कर सकते हैं।

महासतियों का स्थान

क्रियोद्धारक पूज्य श्रीलवजीऋषिजी म० के समय से महासतियों का उल्लेख अभी तक नहीं मिल सका है। संवत १६१० में पूज्य श्रीताराऋषिजी म० के समय से महासतियों उल्लेख मिलता है। उस समय महाभाग्यवती सती शिरोमणि श्री राधाजी म० आदि महासतियां विद्यमान थीं तत्पश्चात् वह परम्परा वृद्धिंगत होती चली गई। इन महासतियों ने भी सन्तों के समान ही अनेकानेक परीषह सहन करके संघ और शासन की बहुमूल्य सेवा की है।

संगठन कार्य

संवत् १८१०के पंचेवर सम्मेलन में सती शिरमणि श्रीराधाजी म० ने भाग लिया था। तत्पश्चात् श्रीकुशलकुंवरजी म० महाप्रभाविका सती हुई। आपने मालव और बागड़ प्रांत में श्री जैन धर्म की अलख जगाई थी। आपकी प्रभावपूर्ण वाणी सुन कर २७ मुमुक्षु महिलाओ ने संयम अगीकार करके आत्मा का कल्याण किया। आप पदवीधरजी (प्रवर्तिनीजी) के पद से सुशोभित थीं।

जिन शासन प्रभाविका पं० प्रवर्तिनीजी श्रीरतनकुंवरजी म०

का संगठन विषयक हार्दिक उत्साह है । इसी वजह से श्रीऋषि-सम्प्रदायी आचार्य पद महोत्सव इन्दौर और आचार्य-युवाचार्यपद महोत्सव भुसावल के शुभ प्रसंग पर पधार कर आपने सहयोग दिया था । अजमेर वृहत् साधु सम्मेलन में भी आप उपस्थित थीं । इसी तरह स्थविरा प्रवर्तिनीजी श्रीहगामकुंवरजी म०, स्थ० श्रीइंद्र-कुंवरजी म०, सुव्याख्यानी श्रीसिरेकुंवरजी म० और श्रीअमृत-कुंवरजी म० श्रीफूलकुंवरजी म० ने आचार्य युवाचार्य पदवी के शुभ प्रसंग पर अपनी उपस्थिति देकर संगठन कार्य में वृद्धि की थी ।

सादड़ी वृहत् साधु सम्मेलन और सोजत मन्त्री मुनि सम्मेलन के समय में प्रवर्तिनीजी श्रीरतनकुंवरजी म०, पं० श्रीवल्लभ-कुंवरजी म०, सुव्याख्यानी श्रीसिरेकुंवरजी म०, सरल स्वभावा श्रीरम्भाजी म०, विदुषी महासतीजी श्रीसुमतिकुंवरजी म० ने पधार कर शासन संगठन कार्य में अपनी सद्भावना प्रकट की थी ।

शासन-प्रभावना

सती शिरोमणि यथार्थनाम्नी श्रीहीराजी म० की परम्परा में निम्न महासतियों ने शासन-प्रभावना करने में अपना सहयोग दिया है । श्रीभूराजी म०, श्रीरामकुँवरजी म०, श्रीनन्दूजी म० ।

(१) महाभागा महासतीजी श्री भूराजी म० एक सरल स्वभावा पुण्यशालिनी सतीजी हुई हैं । आपके समीप बाल ब्रह्म-चारिणी महासतीजी श्रीराजकुँवरजी म० ने दीक्षा ग्रहण की थी । शास्त्रों का अध्ययन करके पंडिता हुई और प्रभावशाली व्याख्यान-दात्री बन कर समाज की जागृति की । आप प्रवर्तिनी पद से सुशोभित थीं । आपकी नेश्राय में अनेक शिष्याएँ हुईं, उनमें पंडिता प्र० श्रीउज्ज्वल कुंवरजी म० विशेष उल्लेखनीय हैं । आपके व्याख्यान "जैन प्रकाश" में समय २ पर भिन्न-भिन्न विषयों पर

प्रकाशित होकर "उज्ज्वलवाणी" नामक पुस्तक के दो भागों में प्रकाशित किये गये हैं। आपने अनेक प्रान्तों में विचर कर जैन-धर्म की जागृति की है।

(२) शान्तमूर्ति श्रीरामकुंवरजी म० भी एक दक्षिण देश में यशःकीर्ति सम्पन्न प्राभाविक महासतीजी हुई हैं। जिनकी २३ शिष्याएँ हुईं और दक्षिण देश में स्थान २ पर विचरकर धर्मप्रचार एवं आत्म-साधना करके अपना आदर्श पीछे छोड़ गये है। आपके परिवार में प्र० श्रीशांतिकुंवरजी म० प्रभावशाली सतीजी हुई। वर्त्तमान में विदुषी सती श्रीसुमति कुंवरजी म० देश देशांतरों में उग्रविहार करके जिनशासन का उद्योत कर रही है।

(३) तपस्विनी श्रीनन्दूजी म० और उनके परिवार में मधुर व्याख्यानी पण्डिता प्रवर्तिनीजी श्रीसायर कुंवरजी म० ने भी निजाम स्टेट तथा कर्णाटक प्रदेश, मद्रास, बेंगलोर, रायचूर आदि में विचरकर शासन सेवा देते हुए धर्म प्रभावना की है।

(४) तपस्विनी श्रीगुमानाजी म० की शिष्या तपस्विनी श्रीसिरेकुंवरजी म० की परम्परा में पण्डिता प्रवर्तिनीजी श्रीरतन-कुंवरजी म० और उनकी शिष्या विदुषी सतीजी श्रीवल्लभकुंवरजी म० ने भी पञ्जाब, देहली, बम्बई, महाराष्ट्र, खानदेश, मालवा, मेवाड़ आदि प्रान्तो में विचरकर जैनधर्म का खूब उद्योत किया।

(५) सती शिरोमणि श्रीलछमाजी म० के परिवार में महासतीजी श्रीसोनाजी म० की शिष्या तपस्विनी श्रीकासाजी म० और उनकी परंपरा में प्र० श्रीकस्तूराजी म०, तथा स्थविरा श्रीसर-दाराजी म०, और बड़े हमीराजी म० इन महासतियों ने मालव प्रान्त मे तथा सी. पी. प्रांत में विचरकर धर्म की जागृति की थी।

(६) स्थविरा प्रवर्तिनीजी श्रीरम्भाजी म० भी गुजरात, मालवा, दक्षिण आदि प्रान्तों में विचरी हैं। आपको अठारह शिष्याएँ हुईं। उनमें पण्डिता श्रीचन्द्रकुंवरजी म० प्राभाविका व्याख्यानदात्री सतीजी हुई है वर्तमान में पं० प्र० श्रीइन्द्रकुंवरजी म० दक्षिण देश में विचर रही है। इसी तरह सुव्याख्यानी श्रीआनन्दकुंवरजी म० श्रीप्रेमकुंवरजी म० ने खानदेश, निजाम-स्टेट, कर्णाटक आदि देशो में विचरण कर धर्म संरक्षण किया है।

(७) प्रवर्तिनीजी श्रीहगामकुंवरजी म० मालवा, खानदेश, बरार, सी. पी. आदि प्रान्तों में विचरे हैं और आपके उपदेश से धर्म का अच्छा प्रसार हुआ है।

आदर्श सहकार

अतिविचक्षणा महासतीजी श्रीहीराजी म० की यह दूरदर्शिता थी कि कविकुल भूषण पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म० का संवत् १६४० के अहमदनगर चातुर्मास के प्रारम्भ में असामायिक स्वर्ग-वास हो जाने पर उनके अल्पवयस्क शिष्य मुनिश्री रत्नऋषिजी म० को गुरुबन्धु के साथ मालव देश में पधारने के लिए प्रेरणा दी और स्थविर संतों की सेवा में रखकर उन्हें सुयोग्य विद्वान् बनने का अवसर दिया। आगे चलकर इन्हीं गुरुदेव के अनुग्रह से पूज्य श्रीअमोलक ऋषिजी म० तथा श्रीवर्द्धमान स्था० जैन श्रमण संघ के प्रधान मन्त्री पं० रत्न श्रीआनन्द ऋषिजी म० जैसे महान् संतों का परिपाक हुआ।

शिक्षण-प्रसार

पं० प्रवर्तिनीजी श्रीरतनकुवरजी म० के सदुपदेश से भदेसर (मेवाड़) में और आप ही की शिष्या पं० महासतीजी श्रीवल्लभ

कुंवरजी म० के सदुपदेश से शाजापुर (मालवा) में श्री जैन धार्मिक पाठशालाएँ स्थापित हुई। इसी तरह नागदा जंकशन में प्रवर्तिनीजी म० की प्रेरणा से श्रीरत्न जैन पुस्तकालय भी स्थापित हुआ है, वहाँ हजारों पुस्तकों का संग्रह है।

सुव्याख्यानी प्र० श्रीसायरकुंवरजी म० के प्राभाविक व्याख्यानों से मद्रास में अनेक स्थानों पर धार्मिक संस्थाएँ स्थापित हुईं। श्रीअमोल जैन ज्ञानालय धुलिया में भी आपका सहयोग प्राप्त था।

पंडिता महासतीजी श्रीसुमतिकुंवरजी के सदुपदेश से १ घोड़नदी (पूना) २ कडा (अहमदनगर) और ३ सिकन्दराबाद (निजाम स्टेट) में कन्या पाठशालाएँ स्थापित हुईं।

कठिन तपश्चर्या

उग्र तपस्विनी श्रीगुमानाजी म० ने ३६ वर्षों तक एकांतर उपवास की तपश्चर्या की थी। उनमें से १२ वर्ष तक पारणे के रोज आयंबिल और कभी एकासन करते थे। २४ वर्षों के एकांतर पारणे में एकलठाणा या बियासना तप करते थे। धन्य है आपकी तपश्चर्या को!

तपस्विनी गुमानाजी म० की शिष्या तपस्विनी श्रीसिरेकुंवर जी म० ने मासखमन अर्द्धमास खमन आदि तपश्चर्या की थी। आप विनयमार्ग के विशेष आराधक थे। अविनीतता से यदि बड़ों के सामने बोला गया तो एक बेले का प्रायश्चित्त करना इनकी प्रतिज्ञा थी। धन्य है आपकी विनयता को!

तपस्विनी श्रीनंदूजी म० ने कर्मचूर, धर्मचक्र, चक्रवर्ती के तेरह तेले, अठाइयां तेरह, पचरंगी तपस्या, एक उपवास से वृद्धि करते

हुए १५ उपवास तक, १८ दिन का एक थोक, और २१ दिन की तपश्चर्या का एक थोक, इस प्रकार की तपस्या करके अपना आदर्श पीछे छोड़ गये।

भाग्यशालिनी श्रीकासाजी म० भी तपश्चर्या में विशेष अभिरुचि रखते थे।

श्रीकासाजी म० की शिष्या तपस्विनी श्री सरसाजी म०, प्र० श्रीराजकुंवरजी म० की शिष्या तपस्विनी श्रीचन्द्रकुंवरजी म०, और महासतीजी श्रीआनन्दकुंवरजी म० की शिष्या तपस्विनी श्री हर्षकुंवरजी म० ने अपना जीवन तपश्चर्या करने में सफल किया।

विशिष्ट अनशन व्रत

(१) पदवीधरजी श्रीकुशलकुंवरजी म० की शिष्या श्रीदयाकुंवरजी म० को रतलाम शहर में २५ दिन का संथारा आया था। (२) सती शिरोमणि श्रीहीराजी म० की शिष्या महासतीजी श्रीचंपाजी म० ने पाँच दिन की तपश्चर्या सहित ६५ दिन का सथारा घोड़-नदी (पूना) में लेकर समतापूर्वक आयुष्य पूर्ण किया था। (३) प्र० महासतीजी श्रीरम्भाजी म० ९ दिन की तपश्चर्या और ३६ दिन का अनशन व्रत संथारा पालकर, पूना में स्वर्गवासी हुए (४) तपस्विनी सतीजी श्रीनन्दूजी म० की शिष्या महासतीजी श्रीरामकुंवरजी म० ने कोपरगांव (अहमदनगर) में ४३ दिन तक अनशन व्रत अंगीकार करके समाधि पूर्वक आयुष्य पूर्ण किया था। (५) शांतमूर्ति श्रीरामकुंवरजी म० की प्रधान शिष्या बड़े सुन्दरजी म० ने बांबोरी (अहमदनगर) में आठ दिन की तपश्चर्या करने के पश्चात् नौ दिन का संथारा पाल कर उत्कृष्ट भावना से इसलोक की यात्रा पूर्ण करके देवलोक पधारे (६) तपस्विनी सतीजी श्रीनन्दूजी

म० की शिष्या श्रीकेशरजी म० घोडनदी (पूना) क्षेत्र में पाँच दिन की तपश्चर्या और २२ दिन तक अनशन व्रत ग्रहण कर समाधि-पूर्वक चढ़ते परिणामों से देवलोक हुए।

संगठन कार्य, शासन प्रभावना, आदर्श सहकार, शिक्षण प्रसार, कठिन तपश्चर्या, विशिष्ट अनशन आदि कार्यों में महासती मंडल ने भी कुछ कसर नहीं रक्खी। ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप महत्त्व-पूर्ण कार्य में योग देने वाली सतियाँ इस संप्रदाय में हुईं और हैं।

वर्तमान समय मे प्र० पं० महासतीजी श्रीरतनकुंवरजी म०, पंडिता श्रीवल्लभकुंवरजी म०, प्र० श्रीसायरकुंवरजी म०, प्र० पं० श्रीउज्ज्वलकुंवरजी म०, और विदुषी श्रीसुमतिकुंवरजी म०, जैसी संघ की निधि स्वरूप सतियाँ आज भी महान् शासनोद्योत कर रही हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ऋषि सम्प्रदायी सन्तों एवं सतियों ने शासन एवं संघ की अनुपम, मूल्यवान्, चिरस्मरणीय और साथ ही अनुकरणीय सेवा की और साधुता के स्तर को सदैव ऊँचा रखने का प्रयास किया है।

-: परिशिष्ट-पट्टावली :-

१ श्री सुधर्मा स्वामी
२ ,, जम्बू ,,
३ ,, प्रभव ,,
४ ,, शय्यंभव ,,
५ ,, यशोभद्र ,,
६ ,, संभूतिविजय ,,
७ ,, भद्रबाहु ,,
८ ,, स्थूलभद्र ,,
९ ,, महागिरी ,,
१० ,, आर्यसुहस्ती ,,
११ ,, बलिस्सह ,,
१२ ,, स्वाति ,,
१३ ,, श्यामार्य ,,
१४ ,, सांडिल्य ,,
१५ ,, समुद्र ,,
१६ ,, मंगु ,,
१७ ,, नन्दिल ,,
१८ ,, नागहस्ती ,,
१९ ,, रेवती ,,
२० ,, ब्रह्मद्वीपिकसिंह ,,
२१ ,, स्कंदिलाचार्य ,,
२२ ,, हिमवन्त ,,
२३ ,, नागार्जुन ,,
२४ ,, भूतदिन्न ,,
२५ ,, लोहित ,,
२६ ,, दूष्यगणी ,,
२७ ,, देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण
२८ ,, वीरभद्र स्वामी
२९ ,, शंकरभद्र ,,
३० ,, यशोभद्र ,,
३१ ,, वीरसेन ,,
३२ ,, वीरसंग्रामसेन ,,
३३ ,, जयसेन ,,
३४ ,, हरिसेन ,,
३५ ,, जयसेन ,,
३६ ,, जगमाल ,,
३७ ,, देवर्षि ,,
३८ ,, भीमऋषि ,,
३९ ,, करमसी ,,
४० ,, राजऋषि ,,
४१ ,, देवसेन ,,
४२ ,, शंकरसेन ,,
४३ ,, लक्ष्मीलाभ ,,
४४ ,, रामऋषि ,,
४५ ,, पद्मऋषि ,,
४६ ,, हरिसेनाचार्य ,,

४७ ,, कुशलदत्त ,,
४८ ,, उमणऋषि ,,
४९ ,, जयसेन ,,
५० ,, विद्याऋषि ,,
५१ ,, देवऋषि ,,
५२ ,, सुरसेन ,,
५३ ,, महासुरसेन ,,
५४ ,, महासेन ,,
५५ ,, जयसेन ,,
५६ ,, गजसेन ,,
५७ ,, मित्रसेन ,,
५८ ,, जयसिंहऋषि ,,
५९ ,, शिवराजऋषि ,,
६० ,, लालजी ,,
६१ ,, ज्ञानजीऋषि ,,
६२ ,, भानजीऋषि ,,
६३ ,, रूपऋषिजी ,,
६४ ,, जीवाजीऋषि ,,
६५ ,, वृद्धवरसिंह ,,
६६ ,, लघुवरसिंह ,,
६७ , जसवन्तसिंह ,,
६८ ,, बजरांगजी ,,
६९ पूज्यश्री लवजीऋषिजी
क्रियोद्धारक
७० पूज्यश्री सोमजीऋषिजी
७१ ,, कहानजीऋषिजी
७२ ,, ताराऋषिजी
७३ ,, कालाऋषिजी
७४ ,, बच्छुऋषिजी
७५ ,, धन्नजीऋषिजी
७६ पूज्यपाद अयवंताऋषिजी
७७ ,, श्रीतिलोकऋषिजी
७८ ,, श्रीरत्नऋषिजी
७९ पूज्यश्री अमोलकऋषिजी
८० ,, देवजीऋषिजी
८१ ,, आनन्दऋषिजी

समाप्त